अमरकांत के उपन्यास साहित्य में चित्रित यथार्थवादः एक अनुशीलन

Amarkant ke upanyas sahitya mein chitrit yatharthwaad: Ek Anushilan

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की
पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध–प्रबन्ध
कला संकाय

शोधार्थी

मधु मीना

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. (श्रीमती) कल्पना लाल

सह–आचार्य

सह–शोध पर्यवेक्षक

डॉ. (श्रीमती) कंचना सक्सेना

सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष

हिन्दी विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

वर्ष 2019

प्रमाण–पत्र

हमें यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध–प्रबन्ध "अमरकांत के उपन्यास साहित्य में चित्रित यथार्थवाद : एक अनुशीलन" शोधार्थी (श्रीमती) मधु मीना ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच. डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है–

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूर्ण किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी को बताई गई शोध पत्रिका में शोध–पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध–प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय कोटा की पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देती हूँ।

दिनांक :

हस्ताक्षर शोध पर्यवेक्षक
डॉ. (श्रीमती) कल्पना लाल
सह आचार्य
हिन्दी विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

हस्ताक्षर सह शोध पर्यवेक्षक
डॉ. (श्रीमती) कंचना सक्सेना
सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
हिन्दी विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that PhD Thesis ″अमरकांत के उपन्यास साहित्य में चित्रित यथार्थवाद : एक अनुशीलन″ by Smt. Madhu Meena has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, dia gram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been pre sented as author's own work.

c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and ana lyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment of pro cesses, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented inthe research record.

e. The thesis has been checked using Plagiarism checker plagiarismchecker.com, and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Name & Signature of Research Scholar)
(Smt.) Madhu Meena

(Name & Signature of Supervisor)
Dr. (Smt.) Kanchana Saxena

Place :
Date :

Place :
Date :

Candidate Declaration

I hereby certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled ″अमरकांत के उपन्यास साहित्य में चित्रित यथार्थवाद : एक अनुशीलन″ in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of Dr. (Smt.) Kanchana Saxena and submitted to the research center University of Kota, University of kota, kota represents my ideas in my own words and whenever other ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted else where for the award any other degree or diploma from any institution.

I also declare that I have adhered to all principles of academics honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/date/fact/source in my submission. I understand that violation of the above will be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date : (Smt.) Madhu Meena

This is to certify that the above statement made by (Smt.) Madhu Meena (Registration No. RS/1427/16) is correct to the best of my knowledge

Dr. (Smt.) Kanchana Saxena
Associate Professor
Supervisor

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
	शोध–सार	i-iii
	प्राक्कथन	vi-vii
	प्रथम अध्याय	1–46
1.0	**अमरकांतः व्यक्तित्व एवं कृतित्व**	
1.1	व्यक्तित्व	
1.1.1	जन्म और पारिवारिक पृष्ठभूमि	
1.1.2	समकालीन परिस्थितियां और अमरकांत	
1.1.3	वैचारिक अवधारणा	
1.2	कृतित्व	
1.2.1	लेखन की प्रेरणा	
1.2.2	साहित्यिक सृजन के सोपान	
	कहानी	
	उपन्यास	
	बाल साहित्य	
	संस्मरण	
	अन्य	
1.2.3	पुरस्कार और सम्मान	
1.3	यथार्थ अभिव्यक्ति की सशक्त विधाः उपन्यास	
1.4	आलोच्य उपन्यास का संक्षिप्त परिचय	
	संदर्भ सूची	
	द्वितीय अध्याय	**47–88**
2.0	यथार्थवादः स्वरूप और विकास	
2.1	यथार्थवाद का परिभाषिक स्वरूप व प्रकृति	
2.2	यथार्थवाद उद्‌भव एवं विकास	
2.3	यथार्थ और यथार्थवाद	
2.4	उपन्यास साहित्य और यथार्थ का अन्तर्संबंध	
2.5	यथार्थ उपन्यास साहित्य की विशेषताएं	
2.6	अमरकांत और यथार्थवाद	
	सन्दर्भ सूची	

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
	तृतीय अध्याय	
3.0	**हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद का विकास**	**89–127**
3.1	पूर्व प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद	
3.2	प्रेमचंदयुगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद	
3.3	प्रेमचन्द्रोत्तर युगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद	
3.4	समकालीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद	
	सन्दर्भ सूची	
	चतुर्थ अध्याय	
4.0	**अमरकांत और उनके समकालीन उपन्यासकारों में यथार्थवाद**	**128–148**
4.1	कमलेश्वर	
4.2	मन्नू भंडारी	
4.3	मोहन राकेश	
4.4	विष्णु प्रभाकर	
4.5	राजेन्द्र यादव	
4.6	भीष्म साहनी	
	सन्दर्भ सूची	
	पंचम अध्याय	
5.0	**अमरकांत के उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति**	**149–246**
5.1	सामाजिक सन्दर्भ	
5.2	राजनीतिक सन्दर्भ	
5.3	आर्थिक सन्दर्भ	
5.4	सांस्कृतिक सन्दर्भ	
	सन्दर्भ सूची	
	षष्ठम् अध्याय	
6.0	**अमरकांत का उपन्यास साहित्यः भाषा एवं शिल्प विधान**	**247–305**
6.1	शिल्प, अर्थ, परिभाषा व स्वरूप	
6.2	भाषा के विविध प्रयोग	
	सहज, सरल, प्रभावी, भाषा	
	पात्रानुकूलता	
	प्रतीकात्मता	

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
	काव्यात्मकता	
	वातावरण प्रयोग	
	ध्वन्यात्मकता	
6.3	शब्द–प्रयोग	
	तत्सम	
	अरबी–फारसी	
	अंग्रेजी	
	प्रादेशिक शब्द	
	लोकोक्तियाँ	
	मुहावरे	
	सूक्तियां	
	भदेश शब्दावली का प्रयोग	
	आलंकारिता	
6.4	शैली	
	वर्णानात्मक शैली	
	आत्मकथात्मक शैली	
	भावात्मक शैली	
	व्यंग्यात्मक शैली	
	पूर्वदीप्ति शैली	
	पत्रात्मक शैली	
	संवाद शैली	
	सन्दर्भ सूची	
7.0	**सप्तम अध्याय**	**306–311**
	उपसंहार–वर्तमान संदर्भों में अमरकांत के उपन्यास साहित्य में यथार्थबोध की प्रासंगिकता व उपलब्धि।	
	शोध–सारांश	**312–331**
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	**332–339**
	आधार एवं सहायक ग्रंथ	
	पत्र–पत्रिकाएं	
	शोध–पत्र	

शोध–सार

दुनियां की सारी सृजित रचनाएं सदा ही यथार्थ का प्रतिबिम्बित स्वरूप रही है। साहित्यकार की प्रतिभा में संचरित और परिवर्तित होते हुए ही वह अपना निश्चित आकार प्राप्त करती है। एक सच्चा यथार्थवादी साहित्यकार अपने समय के संघर्ष से दो–दो हाथ करता हुआ, अतीत और भविष्य के व्यापक सत्य को अपने समकालीन यथार्थ से जोड़ने का प्रयास कर, अपनी रचना को कालजयी बना देता है। आज जो लेखक यथार्थवाद को अपनाते हैं, वे दुनियां को उसके सकारात्मक परिवर्तन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में देखते हैं। ह्रास सृष्टि का नियम है, किंतु समय से पूर्व ह्रास का वरण करना यथार्थ को छोड़ देने के समान है। जिन सचेत लेखकों ने यथास्थिति से बाहर आकर अपने समय के यथार्थ को पकड़ा केवल वे ही ह्रास से लड़ सके और उससे उबर सके।

साहित्य में यथार्थपरक दृष्टि से अभिप्राय रचनाकार द्वारा अपने भौतिकवादी–वैज्ञानिक चिंतन और ज्ञान के आधार पर सामाजिक जीवन के वास्तविक रूप का सच्चा चित्रण करने से है। रचनाकार की यह दृष्टि रचना को यथार्थवादी ही नहीं बनाती, बल्कि उसे भाववादी–आदर्शवादी मूल्यों, कलावाद तथा अमूर्तिकरण के खतरों से मुक्त करती है। यथार्थवादी अपने वैयक्तिक अनुभव, इन्द्रियबोध और संवेदना को सामाजिक यथार्थ के नजरिये से प्राप्त करता है।

अमरकांत सच्चे अर्थों में एक यथार्थवादी उपन्यासकार है, क्योंकि उनके उपन्यासों के पात्र वर्तमान कटंकाकीर्ण समाज में भी स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आते हैं। यह ऐसे पात्र है, जिनकी सहजानुभूति पाठक वर्ग स्वयं में अनुभूत करता है। उपन्यासकार ने अपने उपन्यास साहित्य के पात्रों का चुनाव आज के जीवन यथार्थ को समक्ष रखते हुए किया है। आधुनिक युग में यह एक चिंतनीय विषय है कि मानवीय संवेदनाएँ क्षीण होती जा रही है। इन संवेदनाओं के संरक्षण हेतु मनुष्य के संघर्षों के वस्तुगत यथार्थ से संबंध बनाए बिना प्रेम, सहानुभूति, आदर व मानवता इत्यादि की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

'अमरकांत के उपन्यास साहित्य में चित्रित यथार्थवादः एक अनुशीलन' विषय अपने आप में आज मौलिक प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण है। इसकी यही मौलिकता शोध की आवश्यकता, महत्ता एवं उसके उद्देश्य को प्रमाणित करती है। वस्तुतः अमरकांत के उपन्यास साहित्य में व्यक्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिदृश्य आज के समकालीन परिवेश में जिस यथार्थ व जीवन्त रूप में चित्रित हुए हैं, उसका आज विशेष महत्त्व है। अतः मेरे द्वारा अमरकांत के उपन्यासों में

व्यक्त यथार्थवाद के विविध रूपों को रूपायित करके हिंदी उपन्यास साहित्य की महत्ता एवं उपयोगिता को शोधात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

अमरकांत के उपन्यासों के अनुसंधान के माध्यम से आज के इस अति भौतिकवादी अर्थ प्रधान युग में यथार्थवाद का उद्घाटन कर नवीन जीवन–मूल्यों की प्रतिष्ठा करना तथा अपने भौतिकवादी वैज्ञानिक चिंतन और सूझ के आधार पर सामाजिक जीवन में वास्तविक रूप का सच्चा चित्रण करना शोध का वास्तविक उद्देश्य है। प्रस्तुत शोध प्रबंध "अमरकांत के उपन्यास साहित्य में चित्रित यथार्थवाद : एक अनुशीलन" के अंतर्गत मेरे द्वारा उक्त शोध–प्रबंध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय – 'अमरकांत व्यक्तित्व एवं कृतित्व' के अन्तर्गत उपन्यासकार अमरकांत के व्यक्तित्व संबंधी परिचय और उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही उनकी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक वैचारिक अवधारणा तथा समकालीन परिस्थितियों पर दृष्टिपात किया गया है। उनके साहित्य सृजन के सोपान यथा – कहानी, उपन्यास, बाल साहित्य, संस्मरण इत्यादि का नामोल्लेख किया गया है। अमरकांत को उनकी रचनाओं के लिए अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है, जिसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत अध्याय में दृष्टिगत है। उपन्यास यथार्थ की अभिव्यक्ति हेतु व्यापक फलक प्रस्तुत करता है। इस वक्तव्य की प्रामाणिकता प्रस्तुत की गयी है। साथ ही उपन्यासकार द्वारा सृजित आलोच्य उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। अंत में निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है, जिसके अनुसार अमरकांत का व्यक्तित्व कईं विभिन्नताओं से परिपूर्ण है। वे एक यथार्थवादी लेखक के रूप में उभरकर सामने आते हैं। उनका साहित्य भविष्य में झांकने की क्षमता रखता है। अंत में संदर्भ–सूची प्रकाशित की गई है।

द्वितीय अध्याय – 'यथार्थवादः स्वरूप एवं विकास' के अंतर्गत यथार्थवाद का पारिभाषिक स्वरूप व प्रकृति, यथार्थवाद उद्भव एवं विकास, यथार्थ और यथार्थवाद, उपन्यास साहित्य और यथार्थ का अन्र्तसम्बन्ध, यथार्थ उपन्यास साहित्य की विशेषताएं तथा अमरकांत के उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद पर प्रकाश डाला गया है। निष्कर्षानुसारेण किसी वस्तु, तत्त्व अथवा पदार्थ की यथार्थ वस्तुस्थिति, जो कि वास्तविक जगत में प्रत्यक्ष एन्द्रिय भूत हो उसका हूबहू वर्णन अथवा निरूपण ही यथार्थ है। अंत में संदर्भ–सूची दी गई है।

तृतीय अध्याय – 'हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद का विकास' के अंतर्गत पूर्व प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद, प्रेमचंदयुगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद,

प्रेमचन्द्रोत्तरयुगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद तथा समकालीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद पर प्रकाश डाला गया है। निष्कर्षतः पूर्व प्रेमचंदयुगीन साहित्य से लेकर समकालीन उपन्यास साहित्य तक के उपन्यासकारों के साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति पर दृष्टिपात किया गया है। अंत में संदर्भ सूची प्रस्तुत की गई है।

चतुर्थ अध्याय – 'अमरकांत और उनके समकालीन उपन्यासकारों में यथार्थवाद' के अंतर्गत मुख्य रूप से कमलेश्वर, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी तथा मन्नू भण्डारी इत्यादि के उपन्यास साहित्य में सामाजिक जन–जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त किया गया है। निष्कर्षतः उक्त उपन्यासकारों के साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पक्षों में देखी जा सकती है। अंत में संदर्भ सूची दी गई है।

पंचम अध्याय – 'अमरकांत के उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति' के अंतर्गत उनके उपन्यासों में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। उनके उपन्यास साहित्य में बदले हुए परिवेश में संस्कार और आधुनिकता के मध्य उलझे हुए मध्यवर्गीय मानव–मन का अन्तर्द्वन्द्व मुखरित है। निष्कर्षतः उनके उपन्यास साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक यथार्थ के उजले व धूमिल पक्षों को देखा जा सकता है। अंत में संदर्भ–सूची दी गई है।

षष्ठम् अध्याय – 'अमरकांत का उपन्यास साहित्यः भाषा एवं शिल्प विधान' के अंतर्गत अमरकांत के उपन्यासों की भाषा एवं शिल्प को विभिन्न परिभाषा व उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। निष्कर्षतः अमरकांत के समस्त रचनाधर्मिता में भाषा और शिल्प के सभी तत्त्वों का समावेश जल में तरंगों के समान अतुल्य व अनुपम है। अंत में संदर्भ–सूची दी गई है।

सप्तम अध्याय – 'नवनीत' के अंतर्गत शोध–प्रबंध का सार तथा वर्तमान संदर्भो में अमरकांत के उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद की प्रासंगिकता व उपलब्धि को प्रस्तुत किया गया है। साथ ही 'शोध–सारांश' के अंतर्गत 'शोध –प्रबंध' का संक्षिप्तीकरण प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट के अंतर्गत संदर्भ–ग्रंथ सूची, आधार एवं सहायक–ग्रंथ सूची, पत्र–पत्रिकाएं एवं विश्वकोश इत्यादि की सूची प्रस्तुत की गई है।

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध–प्रबंध 'अमरकांत के उपन्यास साहित्य में चित्रित यथार्थवादः एक अनुशीलन' विषय की परिपूर्णता में अनेक सुधीजनों का सहयोग रहा है, जिनकी मैं सदैव ऋणी रहूँगी। उन सभी सुधीजनों का अमूल्य सहयोग व योगदान सदैव मेरे हृदय में चिरस्मरणीय रहेगा।

प्रस्तुत शोध–यात्रा में सर्वप्रथम विद्या की अधिष्ठात्री देवी माँ सरस्वती के श्री चरणों में नमन करते हुए मैं मातृ स्वरूपा प्रथम वंदनीया मेरी शोध–निर्देशिका श्रद्धेया डॉ. (श्रीमती) कल्पना लाल, हिंदी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.) तथा सह–निर्देशिका श्रद्धेया डॉ. (श्रीमती) कंचना सक्सेना, सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय कोटा (राज.) की अत्यंत आभारी हूं, जिन्होंने विषय चयन से लेकर विषय निर्वाह तक की समस्त कठिनाईयों को दूर करने में पूर्ण मनोयोग, स्नेहिल भाव से निर्देशन, आशीर्वाद, प्रोत्साहन प्रदान किया तथा विषय को आद्योपान्त पढ़कर अमूल्य मार्गदर्शन भी दिया। कार्यों की व्यस्तताओं से समय निकाल कर आपने अपना बहुमूल्य समय मुझे प्रदान किया। आपके सहृदय एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार ने न केवल मेरी समस्त शंकाओं का समाधान किया, अपितु मुझे शोध–प्रबंध को समय पर पूर्ण करने का हौंसला भी प्रदान किया।

प्राचार्य डॉ. जी.एल. मालव, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.) का भी बहुत–बहुत आभार, जिनके कुशल संचालन और निर्देशन में यह असाध्य कार्य समय पर परिपूर्ण हो सका। साथ ही हिंदी विभाग के समस्त गुरूजनों से भी मुझे सतत् प्रेरणा प्राप्त हुई। अतः मैं हृदय से इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। गुरूश्रेष्ठ की श्रृंखला में स्व. कमलेश कुमार दीक्षित, व्याख्याता, राजकीय विट्ठलनाथ सदाशिव पाठक आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, कोटा (राज.) का सहयोग मेरे हृदय में चिरस्मरणीय रहेगा। उन्हीं की सतत् प्रेरणा से हिंदी विषय के प्रति मेरे मन में अनभिव्यक्त अनुराग पुनः उत्पन्न हुआ। उन्होंने मुझे हिंदी विषय से स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए प्रेरित किया, जिसकी यथार्थ परिणति इस शोध–प्रबंध के पूर्ण होने पर आपके समक्ष प्रस्तुत है। साथ ही पितृतुल्य गुरूवर अवधेश कुमार मिश्र, साहित्य–विभागाध्यक्ष एवं प्राचार्य, राजकीय विट्ठलनाथ सदाशिव पाठक आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, कोटा (राज.) की भी मैं अत्यंत आभारी हूँ, जिन्होंने अपनी सुता समान मुझे निरंतर प्रेरणा, आत्मीय सहयोग एवं असीम स्नेह प्रदान किया। उनका व्यापक ज्ञान, विद्वता और उनके अमूल्य सुझाव मेरे कटंकाकीर्ण जीवन

पथ का मार्ग सुगम करते रहे। यहां मैं मेरी गुरूमाता श्रीमती पुष्पम् मिश्र के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपने आशीर्वचनों, सद्व्यवहार तथा निर्मल मुस्कान से मुझे कठिन समय में भी उत्साहित रहने की प्रेरणा दी। शोध–प्रबंध के विषय चयन की मुश्किल घड़ी में मेरे मागदर्शक व अग्रज गुरू डॉ. यदुंवीर सिंह खिरवार, सह आचार्य, हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, दुदु (जयपुर) का विशेष सहयोग मिलना परम सौभाग्य रहा। उन्होंने मुझे वरिष्ठ कथाकार अमरकांत को समझने की सुयोग्य दृष्टि प्रदान की। इसी कड़ी में डॉ. योगेश गोकुल पाटिल, सह. प्राध्यापक, स्नातकोत्तर, हिंदी विभाग, विद्यावर्धिनी महाविद्यालय, साक्री रोड़, धुले महाराष्ट्र की भी में अत्यंत आभारी हूँ, जिन्होंने समय पर उपन्यासकार अमरकांत के साहित्य–संबंधी मौलिक जानकारियों तथा अमूल्य सुझावों के माध्यम से मुझे कृतार्थ किया। यह देवयोग ही है कि शोध प्रबंध के दौरान मुझ पर माँ सरस्वती सहित समस्त गुरूजनों की विशेष कृपा रही। अतः समस्त गुरूजनों को कोटि–कोटि नमन, जिन्होंने शैशवकाल से लेकर शोध–प्रबंध तक की यात्रा में मेरा मार्ग प्रशस्त किया। आप सभी का वरदहस्त सदैव मुझ पर बना रहे। ऐसी विद्यावर्धिनी से प्रार्थना है।

वरिष्ठ साहित्यकार अमरकांत के पुत्र अरविंद बिंदु जी का भी ह्रदय के अन्तःतल से आभार, जिन्होंने मूल रचनाओं और उपन्यासकार अमरकांत के वृत्तचित्र की सी.डी. को डाक द्वारा भेजकर मेरे इस श्रमसाध्य कार्य को सरल बनाने में सहयोग प्रदान किया। आपका अनन्त आभार। उन सभी विद्वज्जनों के प्रति नतमस्तक हूँ, जिनकी पुस्तकों से मुझे शोध–प्रबंध की पूर्ति में सहायता प्राप्त हुई।

इस शोध–प्रबंध को पूर्ण करने में पुस्तकालय राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज.), सार्वजनिक पुस्तकालय मण्डल कोटा (राज.), पुस्तकालय जानकी देवी बजाज कन्या महाविद्यालय, कोटा (राज.), पुस्तकालय राजकीय विट्ठलनाथ सदाशिव पाठक आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, कोटा (राज.) केन्द्रीय पुस्तकालय डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्याल, आगरा, पुस्तकालय जीवाजीराव सिंधिया, गुना (म.प्र.) तथा पुस्तकालय शासकीय महाविद्यालय, राद्यौगढ़, गुना (म.प्र.) के पुस्तकालयाध्यक्ष तथा पुस्तकालय के अन्य सदस्यों के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे अध्ययन हेतु शोध सामग्री उपलब्ध कराई। इनकी निस्वार्थ सहयोग भावना तथा यथौचित मार्गदर्शन की मैं सदैव आभारी रहूँगी।

परिवार के सदस्य शरीर पोषण के साथ यदि ज्ञान का भी पोषण करें, तो यह व्यक्ति का परम सौभाग्य होता है और मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरे पितृ श्री रणधीर सिंह मीना और मातृ श्रीमती प्रेमादेवी की सतत् प्रेरणा मेरी पथ–प्रदर्शक रही है। उन्होंने जिस वात्सल्य, अद्भुत सर्मपण से मेरा मार्ग प्रशस्त किया। उनके ऋण को शब्दों के द्वारा प्रकट करना असम्भव है। कुछ मानसिक भाव ऐसे होते हैं, जिनका प्रकटन कठिन होता है। माता–पिता के स्नेहपूरित वात्सल्य के भाव भी ऐसे ही भाव है, जिनका प्रकटीकरण शब्दों के द्वारा असंभाव्य है। उनका ऋण और वरदान तो आजन्म मेरे साथ रहेगा।

शोध–प्रबंध को निरंतर सक्रिय रखने मे प्रेरक मेरे जीवनसाथी परम आदरणीय श्री महेन्द्र मीनाा की मैं शब्दतः नहीं बल्कि ह्रदय से पूर्णतः आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे अध्ययन कार्य में सदा उत्साह दिखाया। शोध–यात्रा के दुर्गम स्थलों पर कदम से कदम मिलाकर मुझे सम्बल प्रदान किया। इतना ही नहीं घरेलु कार्यों में भी मेरा हाथ बंटाकर मुझे सहयोग प्रदान किया ताकि मैं शोध कार्य के लिए समय निकाल सकूँ। उनके इस अतुल्य व अप्रतिम सहयोग व समर्पण को शब्दों में ज्ञापित कर संकुचित बनना नहीं चाहूंगी।

हमारे हिंदी विभाग के समस्त शोधार्थी एक परिवार के समान है। वे एक–दूसरे की सहायता और मार्गदर्शन करते रहते हैं। सह शोधार्थियों की सतत् सहायता भी मेरी मार्गदर्शिका रही है। अतः डॉ. अवधेश कुमार जौहरी जी, शिवकुमार वर्मा जी, श्रीमती कृष्णा कुमारी जी, सुश्री प्रीति दुबे जी तथा समस्त शोधार्थियों का भी बहुत–बहुत आभार ज्ञापित करती हूँ। आप सबका प्रेम, प्रेरणा तथा साथ बना रहे ऐसी ईश्वर से प्रार्थना है।

मित्रता एक ऐसा पावन बन्धन है, जिसे किसी अन्य बंधन के समकक्ष नहीं आंका जा सकता। अन्य सभी बंधनों में हम शिष्टाचार की भावना से जुड़े होते है, लेकिन मित्रता में हम खुले दिल से जीवन व्यतीत करते हैं। इसी कारण मित्रता को अभिन्न ह्रदय भी कहा जाता है। 'शोध–प्रबंध' के प्रथम पड़ाव में विषय चयन तथा शोध–सामग्री के संकलन में सहायक डॉ. (श्रीमती) वर्षारानी व्यास ने एक छाया की भांति मेरा साथ ही नहीं दिया, अपितु निराशा रूपी तिमिर में एक दिये की भांति मेरा मार्ग भी प्रशस्त किया। मेरी अभिन्न मित्र प्रीति दुबे ने अपने स्वास्थ्य के खराब चलते तथा विपरीत परिस्थितियों में भी सह्रदयता से मेरा सहयोग किया और हौंसला बढ़ाया। इसी श्रृंखला में मेरे अग्रज व सहकर्मी श्री गोपाल कृष्ण शर्मा तथा श्री लाल सिंह

सूर्याम का नाम भी लेना चाहूँगी, जिन्होंने एक बड़े भाई के समान मेरी सभी परेशानियो का समाधान करने का प्रयास किया। आप सभी की सहृदयता तथा सहयोग की मैं अन्तःकरण से आभारी हूँ।

मैं हिंदी की एक अल्पज्ञ शोधार्थी हूँ। मेरी ग्रहण करने की शक्ति और आलोचना की प्रतिभा अभी पूर्ण विकसित नहीं हुई है। हिंदी विषय में शोध–प्रबंध का यह मेरा प्रथम प्रयास है। कहां प्रस्तुत शोध–प्रबंध के प्रतिपाद्य और नयी पीढ़ी के चर्चित उपन्यासकार अमरकांत का यथार्थ धरातल पर रचित प्रौढ़ साहित्य और कहां मेरी अल्पबुद्धि। अतः अमरकांत के उपन्यास साहित्य की समीक्षा करने में शोधार्थी के रूप में मेरी सीमाएं अवश्य रही होंगी। जब कालिदास जैसे महाकवि ही, रघुवंश के प्रारम्भ में **'क्व सूर्य प्रभवो वंशः क्वचाल्प विषयामति'** का उद्घोष करते हैं, तो अकिञ्चन शोधार्थी के रूप में, मैं विद्वानों के समक्ष अपनी अल्पज्ञता को किन शब्दों में प्रकट करूँ। अतः मुझसे अनेक त्रुटियाँ होना सम्भाव्य है। विद्वज्जन इसी दृष्टि से मेरे इस शोध–प्रबंध का मूल्यांकन करने की कृपा करें। एक प्रौढ़ आलोचक, सहृदय पाठक और अल्पज्ञ शोधार्थी में अन्तर होना स्वाभाविक है। अतः विद्वज्जन सहृदय होकर मेरे इस शोध–प्रबंध का मूल्यांकन करेंगे ऐसी मुझे आशा है।

मेरे इस शोध–प्रबंध के टंकणकार श्री राकेश दाधीच की भी मैं हृदय से आभारी हूँ। उन्होंने बड़ी ही कुशलता व तत्परता से शुद्ध टंकण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, फिर भी टंकण एक कठिन कार्य है और उसमें अशुद्धियां रहना स्वाभाविक है। अतः विद्वज्जन इन अशुद्धियों को क्षमा करने का प्रयत्न करेंगे। अंत में उन सभी महानुभवों को सादर आभार, जिन्होंने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मेरे शोध–प्रबंध को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया। मैं आजीवन आप सभी की ऋणी रहूंगी।

शोधार्थी
मधु मीना

प्रथम अध्याय

अमरकांतः व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय
अमरकांतः व्यक्तित्व एवं कृतित्व

भूमिका

उत्तर भारत का सांस्कृतिक शहर इलाहाबाद तथा हिन्दू धर्म के अनुयायियों का तीर्थ स्थल इलाहाबाद, जिसे तीर्थ राज और प्रयाग के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इलाहाबाद गंगा, जमुना और अदृश्य सरस्वती की त्रिवेणी का शहर भी है। इलाहाबाद न सिर्फ हिन्दुओं का तीर्थस्थल है, बल्कि आज के भारत को बनाने में भी इसकी अहम् भूमिका रही है। पूर्व में प्रयाग के नाम से प्रसिद्ध इलाहाबाद का वर्णन वेदों के साथ–साथ रामायण और महाभारत में भी मिलता है। पूरब को ऑक्सफोर्ड और समाज को दिशा देने वाले हाईकोर्ट का शहर इलाहाबाद ही वह जगह है, जहां सन् 1985 में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की गई थी और सन् 1920 में महात्मा गांधी ने अहिंसा आंदोलन की शुरूआत भी यहीं से की थी। ब्रिटिश शासन काल में इलाहाबाद ही पश्चिमोत्तर प्रांत का मुख्यालय हुआ करता था। इसके साथ ही निराला, पंत, महादेवी, हरिवंशराय बच्चन तथा फ़िराक की रचनात्मकता के साथ–साथ मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू और मुरली मनोहर जैसे कई विद्वानों की जन्मस्थली भी रहा है, इलाहाबाद। ऐसे ही शहर में पचास के दशक में प्रेमचंद की यथार्थवादी परम्परा को नए आयाम प्रदान करने, निम्न मध्यमवर्ग के जीवन की हर एक समस्याओं को लेकर आम आदमी के दुःख–सुख को निकट से परखने और जानने वाला एकमात्र कथाकार अमरकांत का व्यक्तित्व अपने आप में विशद् एवं व्यापक है।

1.1 व्यक्तित्व

किसी भी साहित्यकार के सर्जनात्मक व्यक्तित्व निर्माण के पीछे जीवन के महत्वपूर्ण पक्ष होते है, जो व्यक्ति को सर्जनात्मकता प्रदान कर उसे सामान्य से विशिष्ट बनाते हैं। उसके पीछे भोगा हुआ साहित्यकार का संघर्ष उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार की सुंदर मीनार का निर्माण किया जाता है। उसकी अटारियाँ, गुम्बद बनते है, लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी होती है। शायद उस संघर्ष को आम वर्ग नहीं देख पाता, और उसे देखना भी नहीं चाहता, क्योंकि आम वर्ग तो मीनार की ऊंचाई को देखकर ही उसके सौंदर्य का आनंद उसी प्रकार लेता है, जिस प्रकार पाठक वर्ग साहित्यकार के साहित्य को पढ़कर आनंदित होता है। इस दृष्टिकोण से यहां अमरकांत के व्यक्तित्व को समझना नितान्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य पूर्ति हेतु यहां अमरकांत के जीवन और कृतित्व का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

इलाहाबाद के मनीषी प्रवर अमरकांत के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने से पूर्व मैं कविवर भर्तृहरि के एक श्लोक को उद्धृत कर रही हूँ –

"मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा –
स्त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुण परमाणन पर्वती कृत्य नित्यं
निजह्रदि विकसन्त सन्ति सन्तः क्रियन्तः।।"

अर्थात् जो व्यक्ति मन, वचन और शरीर में पुण्य रूपी अमृत को धारण करने वाले है। सब लोगों का प्रतिक्षण उपकार करने वाले है। दूसरों के गुण को देखकर हर्षित होने वाले है। ऐसे सज्जन इस संसार में विरले ही है। वस्तुतः अमरकांत ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी, प्राच्य तथा आधुनिक हिंदी पद्धतियों के संगम स्थल है।

1.1.1 जन्म और पारिवारिक पृष्ठभूमि

जन्म

पूर्वी उत्तर प्रदेश का शहर बलिया इस जिले ने हिंदी समाज को परशुराम चतुर्वेदी और हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसी विभूतियां दी। यहीं सन् 1857 के विद्रोह के नायक मंगल पाण्डे का जन्म हुआ। सन् 1942 के आंदोलन में चित्तु पाण्डे के नेतृत्व में बलिया की क्रांतिकारी भूमिका रही। इस सांस्कृतिक भूमि पर अमरकांत ने प्रयाग भूमि के गौरवभूत त्रिवेणी की आभा से विभूषित इलाहाबाद (वर्तमान उत्तरप्रदेश) के शहर बलिया के भगमलपुर गांव को 01 जुलाई 1925 को उपकृत किया था। उनके जन्मस्थल भगमलपुर को नगरा भी कहा जाता है, क्योंकि वह नगरा का एक टोला सा लगता है, जो सड़क के दूसरी ओर बसा है। भगमलपुर में अहीरों का टोला था, उत्तर और दक्षिण में थी चामरटोली जिनके बीच कायस्थों के तीन परिवार थे। इसी गांव में एक कायस्थ परिवार में आषाढ़ के किसी बरसाती दिन को इनका जन्म हुआ। जिस तरह बालपन में बालक को अनेक नामों से पुकारा जाता है, उसी प्रकार अमरकांत को श्रीराम परिवार द्वारा दिया नाम था और दूसरा अमरनाथ यह किसी साधु द्वारा दिया नाम था। इनकी दादी स्नेह से इन्हें ए अमरनाथ! कहकर पुकारती थी। इस प्रकार अमरनाथ बालपन में इन नामों से संबोधित हुए और किशोरावस्था तक आते–आते श्री राम तक ही सीमित हो गये। साहित्यिक जगत् को उन्होंने अपना परिचय अमरकांत नाम से कराया।

माता–पिता

अमरकांत की मां का नाम अनंतीदेवी था। वह एक सीधी–सादी, रूढ़िवादी परम्पराओं को मानने वाली ग्रामीण महिला थी। वे पढ़ी–लिखी नहीं थी। वह राधा सम्प्रदाय की भक्ति किया करती थी। उनका अपने बच्चों के प्रति अत्यधिक स्नेह था।

अमरकांत के पिता का नाम सीताराम वर्मा था, जो पेशे से मुख्तार थे। उन्हें उर्दू व फारसी भाषाओं का खासा ज्ञान था। साथ ही वह कुछ काम चलाऊ हिंदी भी जानते थे। वह उस छोटे शहर के रईसों में से एक थे – लम्बे, चौड़े, मजबूत, प्रभावशाली। इनके व्यक्तित्व की एक विशेषता यह थी कि वे गाते बहुत अच्छा थे। अद्भुत स्वर था उनका बुलंद, चिकनी और फिसलती हुई आवाज जो दूर तक सुनाई देती थी। वह मंदिर में यदि कोई भजन गाते तो सारा मंदिर गूंजने–गमकने लगता। स्वयं अमरकांत ने उनके विषय विषय में कहा है कि – "यदि उनकी अच्छी ट्रेनिंग होती तो वह फैयाज खान की टक्कर के संगीत कार होते।"[1]

भाई–बहन

अमरकांत को छोड़कर छह भाई और दो बहनें थी। भाईयों में अमरकांत सबसे बड़े थे। उनकी बड़ी बहन गायत्री का बीमारी के कारण देहांत हो गया, तब अमरकांत बहुत छोटे थे। दूसरे भाई राधेश्याम वर्मा लखनऊ में अधिकारी थे। तीसरे भाई शिवराम वर्मा कार्यकारी अभियंता थे, जो सेवानिवृत्त हो गए। चौथे भाई घनश्याम वर्मा धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। पांचवे भाई ब्रिजशाह वर्मा डिप्टी कमिशनर थे। छोटे भाई हरिश्याम वर्मा लखनऊ में वकील हैं। सातवें भाई कुंजश्याम वर्मा डिप्टी चीफ मेडिकल आफिसर है।

बचपन

अमरकांत का बचपन उनके गांव भगमलपुर में ही बीता। उनका मिट्टी का बड़ा मकान था। जिसमें दो आंगन थे। मकान के बाहर दरवाजे के सामने एक कदंब का वृक्ष था। कुछ समय बाद बड़ा होने पर उनका नाम नगरा के प्राथमिक विद्यालय में लिखा दिया गया। गांव के घरेलू नौकर ढेलू बाबा रोज उन्हें स्कूल छोड़ आते और वापस ले आते। बचपन में ही माताजी का निधन होने के कारण कुछ समय उनका ननिहाल में बीता। बाद में वह बलिया शहर में पिताजी के पास आ गए। बचपन में अमरकांत की सहृदयता और उदात्तता के विषय में रविंद्र कालिया ने लिखा है–"बचपन से ही अमरकांत सहानुभूति और सहृदयता के उदात्त व्यक्ति थे। दूसरों के दुःखों को देखकर वे भी दुःखी होते। दरवाजे पर रोज दुःखिया, दरिद्र, अपाहिज, बेसहारा लोग आते थे, मुंह खोल गिड़गिड़ाते थे और लोगों की डांट–डपट खाते रहते थे। किसी दावत समारोह के बाद मेहतर लोग कूड़े पर फैंकी गई झूठी पत्तलों के लिए आपस में लड़ते थे। ऐसे दृश्यों को देखकर वह उदास हो जाते।"[2] अमरकांत घर के बाहर बेहद शर्मीले और चुप्पा थे, पर

घर के अंदर उन्हें सीधा नहीं कहा जा सकता। छोटे भाईयों की नाक मलने में उन्हें बड़ा आनंद आता, जिसके बाद उनकी लाल नाक जुकामिया लगने लगती थी। नौकर छबीला जब गांजा का दम लगाकर आंखे लाल–लाल किए आंगन में पानी भरे गगरे लेकर चलता तो अमरकांत उसके पीछे से लंगी लगाकर गिराने की कोशिश करते। गुल्ली–डंडा, गोली लट्टू, हॉकी–फुटबॉल, चिक्का, कबड्डी आदि खेलों के वे बेहद शौकीन थे।

इस प्रकार अमरकांत का बचपन माता के स्नेह से वंचित रहा और जीवन के कुछ कटु व कुछ मीठे अनुभवों के साथ धीरे–धीरे बढ़े होते हुए अंततः उनका यह अनुभव उनके लेखन के रूप में प्रतिफलित हुआ।

शिक्षा

अमरकांत की प्रारंभिक शिक्षा उनके गांव भगमलपुर में हुई। उनका नाम नगरा के किसी प्राथमिक विद्यालय में लिखा दिया गया। बाद में उन्हें बलिया शहर के तहसीली मिडिल स्कूल, फिर गवर्नमेंट हाईस्कूल में दाखिला करा दिया गया। बचपन में अमरकांत को उनके घर एक पंडित जी पढ़ाते थे। वे शरीर से दुबले थे और उनके चहरे की नसे उभरी हुई थी। पढ़ाने से अधिक वह मार–पीट और लंठई के आत्मानुभव सुनाते थे, जिनमें उन्हीं की सदा जीत होती थी, लेकिन एक चीज का लाभ उन्हें उनसे हुआ कि उन्होंने पिताजी को चलता पुस्तकालय का सदस्य बना दिया था, जहां से हर सप्ताह दो पुस्तकें घर पहुंचा दी जाती थी। उनके पिताजी को पुस्तकें पढ़ने की फुर्सत नहीं थी, किन्तु अमरकांत चुरा–चुराकर उन पुस्तकों को पढ़ा करते थे। उनमें से कईं पुस्तकें हल्की–फुल्की, रूमानी और जासुसी होती थी, लेकिन कई किताबें बहुत अच्छी होती थी, जिनका उन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अमरकांत को गवर्नमेंट हाई स्कूल बलिया में गुरू के रूप में आदरणीय बाबू गणेश प्रसाद मिले, जिनका उनकी शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान रहा। बाबू गणेश प्रसाद एम.ए. पास नए नौजवान थे और एक शिक्षक के रूप में साहित्यिक जुड़ाव रखने वाले व्यक्ति थे। उनकी प्रेरणा से उन्हें आठवीं और नौवीं कक्षा से ही साहित्य सृजन की प्रेरणा मिली। उन्होंने कुछ समय तक गोरखपुर और इलाहाबद में इंटरमीडियएट की पढ़ाई की, जो 1942 में स्वाधीनता–संग्राम में अर्थात् भारत छोड़ो आंदोलन में शामिल होने से अधूरी रह गई, बाद में 1946 में उन्होंने सतीशचन्द्र कॉलेज बलिया में इंटरमीडिएट की परीक्षा पास की। प्रयाग विश्वविद्यालय से 1947 में बी.ए. करने के बाद उन्होंने हिंदी की सेवा करने का निश्चय किया।

वैवाहिक जीवन

अमरकांत का विवाह सन् 1946 में हुआ। उनकी पत्नी का नाम गिरिजा देवी था। वह गोरखपुर की रहने वाली थीं। इनके दो पुत्र और एक पुत्री है। इनके बड़े पुत्र अरूणवर्धन विशेष संवाददाता 'नवभारत टाइम्स' दिल्ली में है। पुत्री संध्या दूसरे नम्बर की है, जो पति के

साथ पटना में रहती है। इनके दूसरे पुत्र का नाम अरविंद कुमार वर्मा है, वह 'अमर कृतित्व' नाम से प्रकाशन का कार्य करते हैं।

व्यवसाय

अमरकांत ने एक पत्रकार के रूप में अपना व्यवसाय प्रारंभ किया। उन्होंने सन् 1948 में आगरा के दैनिक पत्र 'सैनिक' के संपादकीय विभाग में कार्य करना शुरू किया। सन् 1950 में उन्होंने इलाहाबाद के 'अमृत पत्रिका' नामक 'दैनिक भारत' तथा मासिक पत्रिका 'कहानी' के संपादकीय विभाग में कार्य किया। अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता कहानी में 'डिप्टी क्लेक्टरी' नामक कहानी पुरस्कृत हुई। संप्रति मनोरमा इलाहाबाद के संपादकीय विभाग से संबद्ध रहते हुए वहीं से सेवानिवृत हुए। पत्रकार का जीवन उनके लिए सुखमय नहीं था। इस दौरान उन्हें कई आर्थिक संकटों का सामना भी करना पड़ा।

1.1.2 समकालीन परिस्थितियां और अमरकांत

लेखक के इर्द–गिर्द जो भी रचना संसार बनता है। वह बहुत कुछ उस काल की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कहा भी गया है कि–"साहित्य अपने युग और समाज का प्रतिबिम्ब होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो बहुधा साहित्यकार के लिए उससे अविचलित एवं अप्रभावित रहना असम्भव हो जाता है।"[3] लेखक समकालीन जीवन परिवेश और परिस्थितियों में गहराई से पैठकर अनुभूत सच्चाईयों के सहारे श्रेष्ठ साहित्य का सृजन करता है। शरत ने एक बार अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था – "घर में बैठे रहने या आराम कुर्सी पर लेटे रहने से साहित्य का निर्माण नहीं होता। .... इन्सान क्या है उसका बिना अध्ययन किये नहीं समझा जा सकता।"[4] प्रेमचन्द जी ने दयानारायण निगम को अपने पत्र में लिखा है – "जब तक करैण्ट अफेयर्स से लगाव न रहे किसी मजमून पर लिखने की तहरीक नहीं होती और मजमून भी मुश्किल से सूझता है।"[5] अपने काल के भावों और विचारों से स्पंदित अमरकांत की पैनी दृष्टि हर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और घटनाक्रम पर थी। नई सभ्यता का आगमन, विभिन्न सुधार आंदोलन, राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष, युग पुरूष गांधी के सिद्धांत, प्रथम विश्वयुद्ध, सोवियत क्रांति आदि सबसे उनका गहरा सरोकार था और उसके प्रभाव को ग्रहण कर वे चले थे। इस प्रकार अमरांकत के साहित्य पर किन–किन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा अथवा उनके जीवन में किस प्रकार का संघर्ष, आर्थिक विषमताएं आई तथा उनकी क्या–क्या वंशानुगत विशेषतएं थी। इन सभी स्थितियों को तत्कालीन युग और परिस्थितियों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

संघर्षमय जीवन

अमरकांत का जीवन सुखमय नहीं कहा जा सकता। बाल्यकाल में ही पहले माता के ममतामयी आंचल की सुखमयी छांव से वे वंचित हो गये। उनके प्यार–दुलार व आशीष

से वे अछूते ही रहे। थोड़ा बड़ा होने पर माँ समान बड़ी बहन गायत्री भी इस संसार को छोड़कर चली गयी। इस कारण उन्हें कुछ समय ननिहाल में भी गुजारना पड़ा। उनके पिताजी ने ही उनका लालन पालन किया। इस प्रकार वे बाल्यकाल से ही अत्यन्त संवेदनशील रहे। अध्ययनपूर्ण करने के पश्चात् जब आजीविका का समय आया, तो उन्होंने हिंदी व देश की सेवा करने के उद्देश्य से पत्रकारिता को अपने व्यवसाय के रूप में चुना। इस दौरान उन्हें कई बार आर्थिक संकट से गुजरना पड़ा। एक पत्रकार को काफी अनुशासन और धैर्य से गुजरना पड़ता है। वेतन के नाम पर उन्हें कुछ ही तनख्वाह मिलती थी, जिसमें परिवार का गुजारा करना तो दूर स्वयं अमरकांत की मूलभूत आवश्यकताएं भी पूर्ण नहीं हो पाती थी। स्वाभिमानी स्वभाव के कारण उन्होंने कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। उनकी रचनाओं में जो पात्र चित्रित किये गये है। वह भी कईं प्रकार के संघर्षों से लड़ते दिखाई देते है। पारिवारिक दुःख, आर्थिक संकट तथा शारीरिक कष्ट को झेलते हुए भी उन्होंने कभी हार नहीं मानी और निरंतर साहित्य रचना करते रहे।

परिमल और प्रगतिशील लेखक संघ की सरगर्मियों के दिनों में अमरकांत बीमार होकर सन् 1954 में इलाहाबाद से लखनऊ आ गए। बीमारी और बेकारी के दौरान ही सन् 1954 में उन्होंने अपनी सबसे महत्वपूर्ण कहानी 'दोपहर का भोजन' अपने भाई के यहां आजमगढ़ में लिखी। सन् 1957 में बीमारी से उबरने के बाद अमरकांत एक बार फिर इलाहाबाद आ गए। अमरकांत की जगह यदि कोई आम आदमी होता तो आर्थिक तंगी में अपना व्यवसाय बदलकर सरकारी नौकरी इत्यादि करके सुख से जीवन व्यतीत करता, लेकिन अमरकांत तो हिंदी में और हिंदी जैसे अमरकांत में रच बस गई थी। अमरकांत की बीमारी भी इन दोनों को एक–दूसरे से अलग न कर सकी। इतने बड़े संकट से स्वयं को निकालकर अमरकांत फिर साहित्य सृजन करने लगे। क्या बीमारी की अवस्था में भी कोई शख्स इतना धैर्यवान हो सकता है कि उसके मस्तिष्क में विचारों का गुलदस्ता सदा महकता रहे। साधारण मनुष्य बीमारी की अवस्था में जहां सोचने समझने की क्षमता खो बैठता है और अपने आप को कोसता है उस समय अमरकांत जैसी महान् विभूति अत्यन्त धैर्य व सहन शक्ति के साथ अपना कार्य करते हुए समाज को उन्नत दिशा निर्देश देने में प्रवृत्त होते है।

जीवन संगिनी गिरिजा देवी ने अपने अनुभवों द्वारा अमरकांत को कईं रचनाओं के प्लॉट दिए थे। वह अत्यन्त ही सरल व धैर्यशालिनी महिला थी। अमरकांत का जीवन संगिनी से साथ भी बीच में ही छूट गया। इस असहनीय दर्द को सहते हुए भी वे निरंतर अपने कार्य में प्रवृत्त रहे। कहते है कि सोना आग में तपकर ही कुंदन बनता है। उसी प्रकार बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक भोगे हुए संघर्षों ने अमरकांत को फौलाद बना दिया था। अतः दुःख को झेलने के पश्चात् भी वे जब तक जीवित रहे निरंतर उनके लेखन की सरिता प्रवाहित होती रही।

आर्थिक विषमताएं

अर्थ ही जीवन का विद्यायक है। भले ही व्यक्ति कितना ही अर्थ की महत्ता को नकारने की कोशिश करे, किन्तु जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धन का अर्जन करना ही पड़ता है। अमरकांत का जीवन तो आर्थिक विषमताओं से भरा पड़ा है। इलाहाबाद से बी.ए. की पढ़ाई करने के बाद पत्रकार के रूप में हिंदी व देश सेवा के उद्देश्य से अमरकांत हिंदी दैनिक 'सैनिक' पत्रिका में काम करने आगरा आ गए। इसे आप अमरकांत जी की 'रोमाण्टिक भावना' कहे या 'आवारगी' लेकिन एक पत्रकार बनने का जज्बा, जो उनमें उस समय चरम सीमा पर था। इस जज्बे ने उन्हें आजीविका का और कोई साधन चुनने ही नहीं दिया। वे चाहते तो कोई सरकारी नौकरी प्राप्त कर सुखमय जीवन यापन कर सकते थे। पर उन्होंने ऐसा न कर पत्रकार बनने का दृढ़ निश्चय किया। उन्हें तब यह ज्ञात नहीं था कि एक पत्रकार की तनख्वाह काफी कम होती है। आगरा के 'सैनिक' पत्रिका में नौकरी करने के पश्चात् जल्द ही वह इलाहाबाद आ गए। आर्थिक तंगी को झेलने के पश्चात् भी उन्होंने हार नहीं मानी और इसी क्षेत्र में आगे बढ़ते हुए 'अमृत' पत्रिका में नौकरी कर ली। यहां भी उनकी तनख्वाह बहुत कम थी। वह भी समय पर नहीं मिल पाती थी। स्वयं अमरकांत ने कहा है कि – "वहां तनख्वाह बहुत कम 100 रूपया ही थी वह भी समय पर नहीं मिलती थी और उस मंहगाई के दौर में सौ रूपये भी टुकड़ो में दिये जाते थे। मुनीम कहता था कि पच्चीस रूपये ले जाइए, कभी–कभी तो कहता कि अट्ठनी है भैया अट्ठनी ही ले जाइए। इस तरह की बात सुनने को मिल जाती थी।"[6]

सन् 1954 में अमरकांत परिमल और प्रगतिशील लेखक संघ के सरगर्मियों के दिनों में बीमारी के दौरान इलाहाबाद से लखनऊ और फिर बलिया चले गए। बीमारी और बेकारी के दौरान ही अमरकांत ने अपनी सबसे महत्त्वपूर्ण कहानियां लिखीं। 'दोपहर का भोजन' उन्होंने आजमगढ़ में अपने भाई के यहां लिखी थी। कुछ समय पश्चात् 'डिप्टी कलक्टरी' कहानी भी लिखी। शायद इन कहानियों में उनके द्वारा भोगा हुआ संघर्ष ही छिपा था। 'दोपहर का भोजन' कहानी में अमरकांत ने अपने ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज की आर्थिक विन्नपता को दर्शाया है। उनके आर्थिक संघर्ष का चित्रण उनकी कहानियों व उपन्यासों में बखूबी दिखाई देता है। 'दोपहर का भोजन' कहानी के विषय में स्वयं अमरकांत कहते है कि इस कहानी को लिखने का विचार उनके एक मित्र के द्वारा कही गयी बात से आया था। वे कहते है –"मित्र जयदेव ने कहा था कि प्रगतिशील लोग भूख की कहानियां क्यों लिखते हैं, भूख तो हम जानते है। हम जानते है कि हमारे पास खाने को नहीं है फिर भी हम यह दिखाते है कि हमारे पास पर्याप्त भोजन है और हमारा पेट भरा हुआ है। उनकी इस बात ने मुझे गहराई तक झकझोरा और मेरे बीते दिनों के अनुभव से भी उसका तालमेल था। ऐसे लाखों करोड़ो लोग होंगे, जो आधा पेट खाना खाकर जीवन जीते हैं, जिंदगी से लड़ते है उसका मुकाबला करते है, लेकिन शोर नहीं मचाते कि हम

भूखे है बल्कि इसे बर्दाशस्त करते हुए संघर्ष करते है, इस अभाव को कम से कम शब्दों में 'दोपहर का भोजन' कहानी रूप में पाठक के सामने प्रस्तुत किया।"[7]

कथाकार अमरकांत का यह कहना कि साहित्य में भौतिक सफलता नहीं मिल सकती, उसे कष्ट सहना ही पड़ेगा। एक सच्चे, पत्रकार, लेखक व साहित्यकार के जीवन का कटु यथार्थ है। आर्थिक विपन्नताओं व विषमताओं से परिपूर्ण अमरकांत का जीवन उन लेखकों के लिए एक आदर्श है, जो केवल अर्थ की प्राप्ति हेतु कुछ भी भौंडा साहित्य पाठक वर्ग को उपलब्ध कराते है। वे यथार्थ के नाम पर कुत्सित मानसिकता भरे सस्ते साहित्य को प्रस्तुत कर धन व शौर्य कमाना चाहते हैं, किंतु वास्तविकता तो यह है कि सच्चा यथार्थ आदर्श से ही निकलता है। जिस साहित्य में आदर्श व यथार्थ साथ–साथ दिखाई दे, वही साहित्य सचमुच एक जीवंत साहित्य है, जिसके दर्शन हमें अमरकांत के साहित्य में सहज ही हो जाते है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमरकांत का जीवन आर्थिक विषमताओं में ही बीता।

व्यक्तित्व विशेषताएं

उपन्यासकार अमरकांत की रूचि बाल्यकाल से ही खेलों के प्रति अत्यधिक थी। वे चिक्का–कबड्डी, गुल्ली–डंडा, हॉकी, फुटबॉल इत्यादि खेलों के शौकीन थे। उनके व्यक्तित्व में एक साथ कई रंग देखने को मिलते है। जैसे – गायन, राजनीति, लेखन, पत्रकार व व्यवहार संबंधी विशेषताएं इत्यादि। गायकी का शौक उन्हें शायद अपने पिता से ही संस्कार में मिला था। उनके संबंध में कहा गया है कि – "साहित्य के महारथी अमरकांत लेखन के क्षेत्र में न आते तो खिलाड़ी या संगीतज्ञ हो सकते थे। हाई स्कूल में बॉलीबाल की 'ए' टीम के सदस्य रहे और हॉकी, टेनिस, फुटबॉल, क्रिकेट देखना उन्हें आज भी पसंद है। संगीत का शौक भी बचपन से ही रहा। बड़े गुलाम अली, परशुराम फैयाज खान आदि के गाने अब भी बड़े चाव से सुनते है।"[8]

अमरकांत के जीवन पर समाज की अवस्था का भी काफी प्रभाव पड़ा। सामाजिक वातावरण व्यक्तित्व के विकस में काफी हद तक अपना प्रभाव डालते है। एक साहित्यकार का व्यक्तित्व समाज के वातावरण से गूंथा होता है और वहां कि संस्कृति वह आधारभूमि होती है, जिसमें उसके व्यक्तित्व का विकास समुचित रूप में होता है। बचपन से ही उन्हें लिखने–पढ़ने का काफी शौक था। उन्होंने कई साहित्यिक पुस्तकें अपने प्रारम्भिक दिनों में ही पढ़ ली थी। अमरकांत के पिता को उनके एक मित्र ने चलता पुस्तकालय का सदस्य बना दिया था। वहां से पन्द्रह दिन में दो पुस्तकें पढ़ने के लिए आती थीं। उनके पिता को पढ़ने का समय न मिल पाता, लेकिन अमरकांत छिप–छिप कर पुस्तकों को पढ़ा करते थे। अमरकांत स्वयं

इस विषय में कहते है कि – "महाभारत, रामायण, आदि कईं धार्मिक उपन्यास भी पढ़ने को मिल जाते थे।"[9]

व्यक्ति के जवन को उत्कृष्ट बनाने में आदर्श साहित्य का महत्त्व असाधारण होता है। अमरकांत पर भी इसका काफी प्रभाव पड़ा। अमरकांत इस संबंध में कहते है कि – "मेरा व्यक्तित्व निर्माण किताबों ने ही किया। किताबें पढ़कर ही मैंने राजनीतिक चेतना, राष्ट्रीयता तथा भारतमाता का अर्थ जाना।"[10]

अमरकांत के व्यक्तित्व निर्माण में उनके अध्यापक की महती भूमिका रही। हिंदी के अध्यापक बाबू गणेश प्रसाद का साहित्य से जुड़ाव था। वे चाहते थे कि उनके विद्यार्थी न केवल साहित्य को पढ़े बल्कि उसे समझें। वे अपने विद्यार्थियों को कहानी, कविता लिखने के लिए प्रेरित भी करते। अमरकांत सन् 1938–39 में जब आठवी कक्षा में थे, उस समय के राजनीतिक माहौल ने उन पर जबरदस्त प्रभाव डाला। उन्हें साहित्य से भी ज्यादा राजनीति प्रभावित करने लगी। बाल्यकाल में ही उन्होंने कुछ साथियों के साथ मिलकर एक राजनीतिक दल का गठन भी किया था, जिसका कुछ वर्णन उनके 'सूखा पत्ता' उपन्यास में भी देखने को मिलता है। बाद में वे किसी सोशल कम्यूनिटी पार्टी के सदस्य बन गए। उनका रहन–सहन, खान–पान सब कुछ बदल गया। वे खद्दर पहनने लगे थे। आजादी मिलने के बाद उनके कुछ साथी राजनीति छोड़कर चले गये। देश का विभाजन, सत्तालोलुप नेताओं का कुर्सी प्रेम आदि घटनाओं ने उनका राजनीति से मोह भंग कर दिया और अमरकांत राजनति को छोड़कर पत्रकारिता के क्षेत्र में आ गए। इन सब विशेषताओं के साथ–साथ अमरकांत का हृदय अत्यन्त सरल, उदार व धैर्य इत्यादि गुणों से परिपूर्ण था। उनमें यश या पुरस्कार प्राप्त करने का गर्व कदापि नहीं रहा।

उनमें "डिप्टी क्लेक्टरी जैसा तेवर कभी नहीं रहा वो सहजता व विनम्रता से पुरस्कारों का अर्थ बताते हुए मुम्बई–दिल्ली सहित देश के तमाम हिस्से से आने वाली बधाईयों के प्रति आभार जताते रहे। बोले–कोई लेखक पुरस्कार के लिए नहीं लिखता। पुरस्कार मिलना प्रसन्नता की बात है पर न मिले, तो कोई लेखक छोटा भी नहीं हो जाता। निराला, रेणू को तो कोई सम्मान नहीं मिला, बावजूद इसके उनका साहित्य अमर है। एक समय ऐसा भी आया जब गंभीर आर्थिक संकट से जूझ रहे अमरकांत अशांत दिखे, पर पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा, बस खामोशी से नियमित लिखते रहे। कहते है जब तक क्षमता रहे लेखक को अपने दायित्वों का निर्वहन करते रहना चाहिए।"[11]

अमरकांत का जीवन अत्यन्त सौम्य व शान्त प्रकृति का था। आर्थिक संकटों का सामना करते हुए भी वे निरंतर शांत मन से लिखते रहे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमरकांत का व्यक्तित्व एक गुलदस्ते के समान था, जिसमें अनेक रंगों के पुष्प एक साथ महक

रहे थे। वे संगीतकार, राजनेता अथवा खिलाड़ी तो न बन सके, किन्तु एक महान् साहित्यकार के रूप में उन्होंने इलाहाबाद की गौरवभूत भूमि में अपना नाम अंकित कर दिया।

1.1.3 वैचारिक अवधारणा

"अवधारणा या संकल्पना भाषा दर्शन का शब्द है, जो संज्ञात्मक विज्ञान, तत्त्वमीमांसा एवं मस्तिष्क के दर्शन से संबंधित है। इसे 'अर्थ' की संज्ञात्मक इकाई, एक अमूर्त विचार या मानसिक प्रतीक के तौर पर समझा जाता है। अवधारणा के अंतर्गत यथार्थ की वस्तुओं तथा परिघटनाओं का संवेदनात्मक सामान्यीकृत बिम्ब जो वस्तुओं तथा परिघटनाओं की ज्ञानेन्द्रियों पर प्रत्यक्ष संक्रिया के बिना चेतना में बना रहता है तथा पुनर्सृजित होता है। यद्यपि अवधारणा संवेदनात्मक परिवर्तन का एक रूप है। फिर भी मनुष्य में सामाजिक रूप से निर्मित मूल्यों से उसका अविच्छेद संबंध रहता है। अवधारणा भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होती है, उसका सामाजिक महत्त्व होता है और उसका सदैव बोध किया जाता है। अवधारणा चेतना का आवश्यक तत्त्व है, क्योंकि वह संकल्पनाओं के वस्तु अर्थ और हमारी चेतना को वस्तुओं के संवेदनात्मक बिम्बों के साथ जोड़ती है और हमारी चेतना को वस्तु के संवेदनात्मक बिम्बों को स्वतंत्र रूप से परिचालित करने की संभावना प्रदान करती है।"[12]

अवधारणा का अर्थ जानने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि वैचारिक अवधारणा से तात्पर्य उस काल विषय में समाज में घट रही घटनाओं का बिम्ब है, जो हमारे मस्तिष्क में विद्यमान रहता है तथा अनुकूल समय पाकर वह चेतना पटल पर आ जाता है। अमरकांत भी अपने समय में कई वैचारिक अवधारणाओं से घिरे थे, जिसका प्रभाव उनके लेखन में देखा जा सकता है। अमरकांत की वैचारिक अवधारणा समाज, राजनीति, साहित्य व संस्कृति से किस प्रकार जुड़ाव रखती है, इसे जानने की यहां आवश्यकता है।

सामाजिक अवधारणा

समाज की धूरी व्यक्ति है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। समाज में हो रहे विभिन्न परिवर्तनों का प्रभाव व्यक्ति पर होना एक साधारण सी बात है। अमरकांत का जीवन स्वतंत्रता पूर्व व स्वातंत्र्योत्तर काल का संधिकाल कहा जा सकता है। उनका जन्म ऐसे समय हुआ जब भारत गुलामी की बेड़ियो मे जकड़ा हुआ था। अमरकांत भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ–साथ जवान हुए थे। उन्होंने भारत को कुप्रथाओं, रीति–रिवाजों, परम्पराओं व मान्यताओं से घिरा हुआ पाया। हालांकि जिस समय एक ओर जाति–पांति, छूआ–छूत, बाल–विवाह, अनमेल विवाह, सतीप्रथा इत्यादि कईं कुप्रथाओं के विरोध में नवयुवा अग्रणी होकर अपने समाज को सामाजिक बुराईयों से मुक्ति दिलाने का प्रयास कर रहे थे। वर्षों पुरानी कुप्रथाओं को जड़ से उखाड़ फैंकना इतना आसान काम नहीं था बावजूद इसके स्वामी

दयानंद सरस्वती, गोविंद नाराडे, नेहरू व महात्मा गांधी जैसे समाज सुधारकों के अथक प्रयासों से इस प्रयोजन में कुछ सफलता प्राप्त हुई। भारत छोड़ो आंदोलन के समय बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री–पुरूष सभी ने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया। स्वयं अमरकांत भी पढ़ाई बीच में ही छोड़कर इस अभियान का हिस्सा बने। अथक प्रयासों के बाद स्वतंत्रता मिल तो गई, लेकिन जो स्वतंत्र भारत हमारे हिस्से में आया था, उसकी आत्मा मृत–प्रायः हो चुकी थी।

स्वतंत्रता के पश्चात् मानव–मूल्य बदल गये जिनमें, स्वार्थ, अवसरवाद और सिद्धांत हीनता का बोलबाला था। अंग्रेजों ने स्वतंत्र भारत की आड़ में उसका विभाजन कर साम्प्रदायिक दंगे करवा दिए। इन दंगों ने हमारे समाज का नैतिक पतन किया, जगह–जगह भयंकर रक्तपात हुआ। लोगों ने एक–दूसरे को लूटना शुरू कर दिया तथा मां–बहनों की इज्जत लूट ली गई। इन दंगों ने हमारे समाज की नीवं को हिला कर रख दिया था, फलस्वरूप ऐसे धृणित समाज का जन्म हुआ, जिससे लोगों को एक–दूसरे पर विश्वास नहीं रहा। अवसरवादिता, स्वार्थपरता, पूंजीवादिता, धनलोलुपता व कुर्सी के मोह में लोगो ने आजाद भारत का जो स्वप्न देखा था। उसे भुला दिया और स्वार्थवश धनार्जन में लग गए।

आजादी के बाद अमरकांत ने बहुत से लोगों को चोला बदलते हुए देखा था। उनमें से बहुत ऐसे थे, जिन्हें वे करीब से जानते थे और उनका आदर भी करते थे। अमरकात ने इस विषय में लिखा है कि – "एक ओर शरणार्थियों की फौज, सारे वातावरण को विषाक्त करने वाली घटनाएं और किस्से, सांप्रदायिक दंगों का दावानल और दूसरी ओर सत्ता एवं सुविधाओं की दौड है। चारों ओर जातिवाद, क्षेत्रवाद और साम्प्रदायिकता का नृत्य दिखाई देने लगा। कालाबाजारी, भ्रष्टाचार, गुटबाजी, परमिट परस्ती। बहुत से प्रतिक्रियावादी, सामंतवादी, साम्प्रदायवादी तत्त्व भी राष्ट्रीय संघटन कांग्रेस में चोला बदलकर घुस आए।"[13]

आजादी के बाद का भारत कई प्रकार की सामाजिक विषमताओं से घिर गया था। समाज की व्यवस्था को समुचित रूप से चलाने के लिए जिस वर्ण व्यवस्था की स्थापना की गई थी, उसे तथाकथित धर्मानुयायियों ने अपने हिसाब से बदलकर उसका कुत्सित रूप लोगों के सामने रखा। सामाजिक दबाव व तनाव के फलस्वरूप स्वच्छन्द प्रेम विवाह, यौन संबंधी स्वच्छंदता इत्यादि स्थितियाँ उत्पन्न हुई। इन सबके परिणामस्वरूप सामाजिक कुठांओं, समस्याओं और विकृतियों का जन्म हुआ। संयुक्त परिवार एकल परिवारो में तब्दील हो गए। रही सही कसर नवीन युग के वैज्ञानिक चिंतन के परिप्रेक्ष्य में जन्मे हुए व्यक्तिवाद ने पूरी कर दी। व्यक्तिवाद की भावना का मूल केंद्र 'अहम' माना जाता है। उपन्यास साहित्य में समष्टि में व्यष्टि के रूप में दो इकाईयों पुरूष और स्त्री के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। बदलते युग व चेतना ने स्वातंत्र्य भावना से स्त्री–पुरूष में पारस्परिक स्पर्द्धा का बीज बो दिया, जिसके परिणामस्वरूप

उनके अहम् व आपसी मतभेद टकराने लगे। समाज में घुटन, कुंठा तथा संत्रास की स्थिति बढ़ने लगी। कथाकार अमरकांत जागरूक रहते हुए अपने इसी समाज को भोग रहे थे। उनके साहित्य में इन सभी घटनाओं के प्रति आक्रोश दिखाई देता है।

अमरकांत ने सूखा पत्ता, ग्राम सेविका, कंटीली राह के फूल, इन्हीं हथियारों से आदि औपन्यासिक रचनाओं की सर्जना कर कुरीतियों, विसंगतियों, कुप्रथाओं आदि के साथ–साथ मध्यवर्गीय जीवन में उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व की मनःस्थिति पर तीखा प्रहार किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमरकांत की रचनाओं में सामाजिक अवधारणा की विविधता एवं व्यापकता दिखाई देती है। उन्होंने साहित्य सृजन के कार्य को राष्ट्रीय सेवा का कार्य समझकर स्वीकार किया था। उनका उपन्यास साहित्य तो मध्यमवर्गीय जीवन की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण ही है।

राजनीतिक अवधारणा

अमरकांत ने बाल्यकाल से ही राजनीतिक समस्याओं का दौर देखा था। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में राजनीति के दर्शन होते हैं। उस समय दो ही राजनेता मुख्य रूप से प्रसिद्ध थे, जिन्हें भारत का बच्चा–बच्चा जानता था। उनमें से प्रथम थे गांधी जी और दूसरे नेहरू।

"आलोच्ययुगीन भारतीय उपन्यास साहित्य प्रमुख रूप से गांधी–युग के समानान्तर दो विश्वयुद्धों के मध्य सृजित हुआ। स्वाधीनता संग्राम की प्रथम चिंगारी सन् 1857 के विद्रोह के रूप में दिखाई दी। ईस्ट इण्यिा कम्पनी एक व्यापारिक संस्था थी, जिसके लालची सौदागरों को राजकाज चलाने का कतई अनुभव नहीं था।"[14] "इसलिए भारत जब कम्पनी शासन के अधिकार में आया तो उसकी विस्तारवादी व अर्थदोहन की अमानवीय नीतियों के कारण संपूर्ण देश में असंतोष एवं अव्यवस्था व्याप्त हो गई थी। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप सन् 1857 का राजनीतिक विद्रोह हुआ जो एकता, संगठन शक्ति, आधुनिक हथियार एवं संपर्क सूत्रों के कारण निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया। सन् सत्तावन के इस विफल विद्रोह को मात्र ऐतिहासिक त्रासदी नहीं कहा जा सकता, इससे अंग्रेजों को अच्छा सबक मिला और आगे चलकर यह राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के लिए महान् प्रेरक सिद्ध हुआ।"[15]

गांधीजी ने अपने सिद्धांतों में सर्वाधिक जोर सत्य, अंहिसा व सत्याग्रह पर दिया। वे चाहते थे कि व्यक्ति को दण्ड के माध्यम से न सुधार कर बल्कि उसका हृदय परिवर्तन किया जाये। सत्याग्रही की दृष्टि में – "किसी को दबा देने की अपेक्षा उसका मत परिवर्तन कर देना ज्यादा अच्छा है।"[16] गांधीजी स्वाधीनता के साथ–साथ एक ऐसा समाज चाहते थे, जो कि सामाजिक विरूपताओं, विषमताओं तथा समस्याओं से मुक्त हो। वे एक राजनेता के साथ–साथ

समाजसेवी भी थे। उनके द्वारा कई सुधार कार्यक्रमों को सुचारू रूप से चलाने में सफलता प्राप्त हुई।

"उन्होंने स्वाधीनता संग्राम के साथ–साथ समूचे भारतीय जीवन संदर्भों के विकास के लिए अठारह सूत्री कार्यक्रम चलाए, जिनमें सर्वधर्म अथवा साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, मद्यपान निषेध, खादी, ग्रामोद्योग में सुधार, स्त्रियों की स्थिति में सुधार, नई बुनियादी तालीम, राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का प्रचार, किसान एवं मजदूरों के अधिकारों के लिए प्रयत्न, आर्थिक समानता आदि प्रमुख है। गांधी जी ने साम्प्रदायिक एकता के लिए धार्मिक सहिष्णुता को परम आवश्यक माना है। अंहिसा को जीवन धर्म के रूप में अपनाकर ही हमारे अन्तर में समस्त धर्मों के प्रति समभाव का उदय होता है।"[17] इस प्रकार कहा जा सकता है कि उस समय गांधी जी स्वाधीनता संग्राम के प्रथम नायक थे।

स्वयं अमरकांत पर भी राजनीतिक विचारधारा का असर हुआ और वे गांधी जी के स्वाधीनता संग्राम आंदोलन के साथ जुड़ गए। उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता ग्रहण कर ली। 1942 के आंदोलन में अमरकांत पढ़ाई छोड़ बलिया आ गए। उस समय स्टेफर्ड क्रिप्स सीमित आजादी का प्रस्ताव लेकर ग्रीष्मकालीन अवकाश में भारत आए थे, जिसे गांधी जी ने ठुकरा दिया था। गांधी जी के द्वारा 'हरिजन' पत्रिका में लिखे लेखों ने आम जनता में एक क्रांतिकारी भावना को इस प्रकार प्रज्ज्वलित कर दिया, जैसे कि सूखी लकड़ी में अग्नि का प्रवेश शीघ्र हो जाता है। आम जनता स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए उस लकड़ी के समान ही धूं–धूं करके मुक्ति के लिए जलने लगी और स्वाधीनता प्राप्ति का स्वर मुखरित होने लगा। "गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार के बारे में कहा था कि यह हमारे कंधे पर एक लाश के समान है, जिसे हम कईं वर्षों से ढो रहे है।"[18]

आजादी के बाद का जमाना नये युग तथा नये भारत के निर्माण का जमाना था। निश्चित ही नेहरू इस जमाने के निर्विवाद नायक थे। अमरकांत नेहरू के व्यक्तित्व से खासे प्रभावित थे। नेहरू का दृष्टिकोण वैज्ञानिक सोच लिए था। वे स्वाधीनता, स्वराष्ट्र, समाज इत्यादि के साथ–साथ अर्थप्राप्ति पर भी जोर देते थे। उनका मानना था कि देश को अर्थागत दृष्टि से भी मजबूत होना चाहिए। पण्डित नेहरू की लोकप्रियता के विषय में अमरकांत जी कहते हैं – "मुझे याद है कि एक अगस्त को स्वाधीनता का जुलुस चौक इलाहाबाद चौराहे से चला और उसमें पण्डित नेहरू भी शामिल थे। तब मैं क्रिश्चिन कॉलेज में एक लॉज में रहता था। मैं भी उनके जुलूस में लाल हॉफ पेण्ट और खद्दर की कमीज पहने हुए तथा टोपी लगाए हुए था। जुलूस पुरूषोत्तम दास टण्डन पार्क की ओर बढ़ गया वहां एक बड़ी मीटिंग हुई। नेहरू जी ने बताया कि आठ अगस्त को आई.सी.सी. की मीटिंग है, वहां पर आजादी का प्रस्ताव रखा जायेगा। नेहरू ने

वहां बहुत ही जोशीला भाषण दिया, जिसे सुनकर आम जनता का सीना फूल गया और वे जोश और उत्साह से हॉफने लगे, उनका सीना ऊपर को उठ गया तथा शरीर उत्साह से कांपने लगा।"[19] इन सभी चीजों का असर उनके उपन्यास 'सूखा पत्ता' में भी देखने को मिलता है। अमरकांत कहते हैं – "1948 में बी.ए. फाइनल करके राजनीतिक विचारधारा जो मेरे मन में चल रही थी, उसका असर भी लेखन में आया और लेखन का यह कार्य भी राष्ट्रकार्य ही लगता था।"[20]

साहित्यिक अवधारणा

अमरकांत ने जिस समय लेखन प्रारम्भ किया, वह एक संधियुग था। एक ओर राष्ट्रीय भावना से जुड़ी विचारधाराओं पर साहित्य लिखा जा रहा था, तो दूसरी ओर समाजवादी विचारधारा का यथार्थवादी चित्रण साहित्य में हो रहा था। वस्तुतः "साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित और सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो, साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाईयां और अनुभूतियां व्यक्त की गई हो।"[21]

अमरकांत का साहित्य उनके जीवन तथा चारों ओर के परिवेश की सच्चाईयों का दर्पण है। बाल्यकाल से ही उनकी रूचि साहित्य में थी। बाबू गणेश प्रसाद ने उनमें साहित्य के प्रति समझ को बढ़ाने का काम किया था। वे कहानी, कविता इत्यादि लिखने के लिए प्रेरित करते। उनके विषय भी वही दिया करते थे। अमरकांत जी अध्यापक बाबू गणेश प्रसाद के विषय में कहते है – "वे चाहते थे कि प्रेमचंद के स्तर की कहानियां, जो अपने समय की सर्वोत्तम स्तर की कहानियां है, इसमें कोई संशय नहीं है, किन्तु उस परिपाटी से हटकर कुछ नई ढंग की कहानियां लिखी जाए, जो कि प्रगतिशील व वास्तविकता की धारा में लिखी जा सके, जो उस समय की सामाजिक विचारधारा की मांग थी। इसके लिए बाबू गणेश प्रसाद ने मुल्कराज आनंद द्वारा रचित 'लास्ट चाइल्ड' कहानी का जिक्र किया तथा इस कहानी का पूरा कथानक उन्होंने सुनाया इस तरह से कहानी लिखने की प्रेरणा उन्होंने अपने विद्यार्थियों को दी।"[22]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी साहित्य उन्नति का काल माना जाता है। इस काल में हिंदी साहित्य का चहुंमुखी विकास हुआ। हिंदी में पद्य विधा के साथ–साथ गद्य की अन्य विधाओं ने भी प्रगति की।

साहित्य में राष्ट्रीय सामंती प्रथा, अस्पृश्यता, कईं प्रकार के सुधारों व आंदोलनों के साथ–साथ समाज की यथार्थवादी परम्परा की अभिव्यक्त हुई। हिंदी साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर काल को यथार्थवादी कहा जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हिंदी साहित्य में मूल्यगत संक्रमण दो पीढ़ियों का संघर्ष, परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता के साथ–साथ एक नये कृत्रिम जीवन के दर्शन हुए। साहित्य में इन सभी के वर्णन ने एक नया सौंदर्य स्थापित कर दिया। आप कहेंगे कि सौंदर्य

कैसा जिसमें जीवन का कटु यथार्थ हो उसमें सौंदर्य हो ही नहीं सकता, किंतु इस संबंध में प्रेमचन्द ने कहा है – "साहित्य तो हर एक रस में सुन्दर खोजता है, राजा के महल में, रंक की झोंपड़ी के शिखर पर, गन्दे नालों के अन्दर, ऊषा की लाली में, सावन–भादों की अंधेरी रात में। यह आश्चर्य की बात है कि एक रंक की झोपड़ी में जितनी आसानी से सुंदर मूर्तिमान दिखाई देता है, महलों में नहीं। महलों में तो वह खोजने से मुश्किलों से मिलता है।"[23]

वस्तुतः बदलते सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक विचारधारा को अमरकांत ने अपनी लेखनी के माध्यम से स्वीकृति प्रदान की। कथाकार अमरकांत ने प्रेमचन्द की आदर्श व यथार्थवादी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए, मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर समाजवादी यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत किया। इसके फलस्वरूप उनकी कहानियों व उपन्यासों में सामाजिक अर्न्तविरोधों के साथ–साथ राजनीतिक विकृतियों का यथार्थ चित्रण भी हुआ है। अमरकांत ने इन परिवर्तनों को स्वयं झेला व भोगा था। अतः इनकी कृतियों में इसकी प्रामाणिकता व जीवन्तता देखी जा सकती है। इस प्रकार हमें उनकी रचनाओं में यथार्थवाद के रूप में मानवता की पीड़ित अनुभूति का स्वर सुनाई देता है। फलस्वरूप उनके साहित्य में इसके प्रति आक्रोश भी देखा गया है। इस धारा के लेखकों में मोहन राकेश, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, ज्ञान रंजन, दूधनाथ सिंह, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, रवींद्र कालिया आदि प्रमुख है।

अमरकांत का साहित्य परम्परागत नारी संबंधी जीवन–मूल्यों का जीवंत चित्र प्रस्तुत करता है। इसके दर्शन उनके उपन्यास 'लहरे' में दिखाई देता है। आधुनिक युग की परिस्थितियों ने जन–जीवन को आमूल–चूड़ झकझोरा है, परिणामस्वरूप जीवन–मूल्यों को तीव्र आघात लगा। मूल्यों का यह संघर्ष भी अमरकांत के साहित्य में प्रतिफलित हुआ है। प्रतिपल गतिशील जीवन संघर्ष और मानव के अर्न्तद्वन्द्व का सफल चित्रण 'सूखा–पत्ता' उपन्यास में हुआ है। उन्होंने अपने साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक और वैयक्तिक आदि अनेक प्रकार की विचारधाराओं को स्थान दिया है। उनके साहित्य में अनन्य प्रतिभा, स्फूर्ति और शक्ति है, जिसमें विविध नवीन मूल्यों का समावेश हुआ है, जो स्वातंत्र्योत्तर भारत में विकसित हुए है।

सांस्कृतिक अवधारणा

प्राचीनकाल से ही धर्म सामाजिक जन–जीवन का नियंत्रक व नियामक रहा है। हमारे पर्व, रीति–रिवाज, धार्मिक–अनुष्ठान, उत्सव, परम्पराएं इन सभी में हमारी गौरवभूत संस्कृति के दर्शन होते हैं। हमारी प्राचीन संस्कृति ने हमारे जन–जीवन को गहराई तक प्रभावित किया है तथा समय–समय पर हमारा पथ प्रदर्शन भी किया, किन्तु शनैः शनैः धार्मिक रूढ़ियो,

अंधविश्वासों व मिथ्या आडम्बरों में परिवर्तित हुई हमारी आस्था ने संस्कृति में जड़ता की स्थिति उत्पन्न कर दी है।

उन्नीसवीं सदी के समाज सुधार आंदोलनों तथा अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार–प्रसार के कारण हमारी संस्कृति में आमूल–चूड़ परिवर्तन हुए। दो प्रकार की संस्कृति के दर्शन हमें भारतीय पृष्ठभूमि में देखने को मिलते है। प्रथम सम्पन्न वर्ग की संस्कृति जिसके रीति–रिवाजो, परम्पराएं और आदर्श भिन्न प्रकृति के थे। वहीं सामान्य, निम्न वर्ग व ग्रामीण वर्ग की संस्कृति वाले वर्ग ने ग्रामीण रीति–रिवाजों को मानने से इंकार कर दिया फलस्वरूप एक नवीन समाज का निर्माण हुआ। समर्पण और सहिष्णुता का स्थान अब अहं व अविश्वास के रूप में परिलक्षित होने लगा, जिससे मानव में स्वच्छंदता, कुंठा, भय, संत्रास, एकाकीपन व शून्यता का जन्म हुआ।

भारत में अंग्रेजी प्रभाव के साथ ही पाश्चात्य एवं पौर्वात्य संस्कृतियों के संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई। राजनैतिक तथा सामाजिक शक्तिशाली वर्ग के बल पर विदेशी संस्कृति का प्रचार प्रसार हुआ। लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति ने तो भारत की पृष्ठभूमि ही बदल दी, उसने एक ऐसी पढ़ी–लिखी पीढ़ी को तैयार किया, जिसका शरीर हाड़–मास, रक्त रंग इत्यादि तो भारतीय था, किंतु रहन–सहन, विचार, अभिरूचि, बुद्धि तथा नैतिकता सबकुछ अंग्रेजी थी। लार्ड मैकाले को आधुनिक शिक्षा नीति का जनक कहा जाता है। यदि भारत में मैकाले को पाश्चात्य संस्कृति का जनक माना जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पूर्वी भारत में दो धर्म हिन्दू व मुस्लिम धर्म देखने को मिलते है। इन दोनों धर्मों को जोड़ने का कार्य राष्ट्रीय एकता ने किया हुआ था, किन्तु अंग्रेजों की पाश्चात्य संस्कृति ने हिन्दू व मुस्लिम धर्म को साम्प्रदायिक दंगों की आग में झोंक कर उन्हें बांटने का काम किया।

विज्ञान के विकास, सामाजिक जागरण तथा पाशचात्य देशों के सम्पर्क के परिणाम स्वरूप मध्य युगीन धार्मिक कट्टरता के बंधन शिथिल होने लगे। यही कारण है कि उन्नीसवीं सदी के समाज सुधारकों ने धर्म के क्षेत्र में उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया था। "ब्रह्म समाज का निर्माण इस्लाम के एकेश्वरवाद, न्यूटेस्टामेन्ट की नैतिक शिक्षा तथा उपनिषदों के दर्शन से हुआ।"[24] इसी प्रकार आर्य समाज का भी समन्वयवादी दृष्टिकोण रहा है। प्राचीन काल में मनुष्य का विचार केन्द्र–ईश्वर, आत्मा, मोक्ष तथा परलोक जगत् था, किन्तु आज सांस्कृतिक जागरण के युग में जब मानव मन के अस्तित्व को महत्त्व मिला, तो उसकी चिंतन पद्धति में भी परिवर्तन आया।

अब विचार का केन्द्र मानव एवं मानव जगत् की समस्याएं, सांसारिक जीवन, सुख–दुःख आदि पर विचार किया जाने लगा है। वर्तमान में इन विचारों ने भी विकृत रूप ले लिया है। तत्कालीन समाज में वसुधैवकुटुम्बकम् की भारतीय भावना, व्यक्तिवादी भावनाओं में

परिणत हो गयी, जिसके कारण मानव स्वार्थी एवं स्व केन्द्रित होता गया। वैचारिक धरातल संकुचित और बौना होता चला गया। संयुक्त पविारों की परम्परा, एकल परिवारों में तब्दील हो गयी और धीरे–धीरे एकल परिवार भी अब व्यक्ति में सिमटते जा रहे है। इस व्यक्तिवादिता व एकाकीपन के फलस्वरूप मानव मन एक अजीब सी कुंठा, भय, संत्रास, एकाकीपन व शून्यता से भर गया है।

वर्तमान में समाज के अस्तित्व के साथ–साथ व्यक्ति के अस्तित्व पर भी संकट मंडरा रहा है और वह अपनी पहचान खो चुका है। वर्तमान समय में नैतिक रूढ़ियां द्रुत गति से टूट रही है। फलस्वरूप जीवन में उपभोक्तावाद व भोगवाद का जन्म हुआ। इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने उच्च वर्ग व मध्य वर्ग ही नहीं अपितु सदियों से शोषित, उपेक्षित, तिरस्कृत, दलित एवं स्त्री समाज को भी अपनी चपेट में लिया है। विश्वास संदेह के घेरे में खड़ा है, पवित्रता जैसे वेद और पुराण केवल श्रद्धा की वस्तु रह गये हैं, रिश्ते–संबंध जैसे अर्थहीन हो गये हैं, जिसके कारण मानव मन आज द्वन्द्व की स्थिति में है और एकाकीपन व शून्यता उसे घेरे खड़ी है। "वर्तमान समाज में नैतिक मूल्यों की समस्या और भी विकट इसलिए हो गई है कि प्राचीन शास्त्रीय, धार्मिक अथवा ईश्वर संभूत धार्मिकता इस युग में क्रमशः क्षीण होती जा रही है और आज नैतिकता का आधार एक मानव संभूत नीति में खोजा जा रहा है। जो दायित्व अब तक ईश्वर या धर्म पर था, अब मानव ने स्वयं ओढ़ लिया है।"[25]

वर्तमान में स्त्री–पुरुष के पवित्र संबंधों को आम परिचर्चा का विषय बना दिया गया, जारज संतान, स्वच्छंदता व अनुचित यौन संबंध आदि समाज के नैतिक शरीर के जर्जरित रूप को प्रकट करते है। इन सभी स्थितियों का चित्र अमरकांत के उपन्यास साहित्य में देखा जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अमरकांत ने भारतीय निम्न वर्ग व निम्न मध्य वर्ग की विभिन्न समस्याओं, विसंगतियों और युगीन परिस्थितियों को पूरी ईमानदारी और सच्चाई के साथ यथार्थ के धरातल पर उकेरने का सफल प्रयास किया है।

आर्थिक अवधारण

अर्थ को मानव जीवन की धूरी तथा मूल आवश्यकताओं की जननी माना जाता है। आधुनिक जीवन शैली तो पूर्णरूपेण अर्थ पर ही निर्भर है। अर्थ के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। प्राचीन काल में 'भारत सोने की चिड़िया' नाम से अभिहित किया जाता था, किंतु स्वातंत्र्यपूर्व की आर्थिक व्यवस्था को अंग्रेजों द्वारा अत्यधिक क्षति पहुंचाने के कारण भारत अपनी जर्जर अवस्था में आ चुका था। इसका प्रमुख कारण भारत में ब्रिटिश शासन के फलस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था का उपनिवेशी अर्थव्यवस्था में रूपातंरित होना था।

भारत हस्तशिल्प उद्योग का प्रमुख केंद्र रहा है। ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति के फलस्वरूप भारतीय बाजार सस्ते होने लगे तथा बाजार मशीन निर्मित आयात से भरने लगा। भारतीय उत्पादों का यूरोपीय बाजारों में प्रवेश करना अत्यंत कठिन था, जबकि ब्रिटिश साम्राज्य ने कूटनीति से भारत में व्यापार करने का परमिट हासिल कर लिया था। फलस्वरूप भारतीय हस्तशिल्प, अंग्रेजी माल के भारतीय बाजारों में भर जाने से हस्तशिल्प उद्योग अपनी मृत्यु के कगार पर पहुँच गया था तथा इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति अपने पूरे यौवन काल में होने के कारण देश का तेजी से औद्योगिकरण होने लगा। अतः भारतीय शिल्पकार एवं दस्तकार पर्याप्त संरक्षण के अभाव तथा विषम परिस्थितियों में दम तोड़ने लगे। अंग्रेजों की शोषणकारी तथा भेदभाव मूलक नीतियों के कारण भारतीय शिल्पकारों ने अपने परंपरागत व्यवसाय को त्याग खेती करना प्रारंभ कर दिया। अंग्रेजी सरकार की कृषि विरोधी नीतियों के कारण यह क्षेत्र पहले से ही संकट में था। अंग्रेजों की कर व्यवस्था अत्यधिक जटिल थी। इसके चलते किसानों के ऊपर सरकार, जमींदार एवं सूदखोरों का तिहरा बोझ होता था। अकाल और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय कृषकों की समस्यायें और भी बढ़ जाती थी। इस प्रकार स्वातंत्र्य पूर्व की आर्थिक व्यवस्था ब्रिटिश शासन की नीतियों के चलते चरमराने लगी। आजादी के पश्चात् जो भारत हमारे हिस्से में आया, उसकी अपनी कईं ज्वलंत समस्याएं थी, जिनमें आर्थिक समस्या के साथ–साथ अशिक्षा, रूढियां, कुरूतियां इत्यादि प्रमुख थी।

भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार हेतु सरकार ने ग्रामीणों के लिए योजनाएं बनायी। गांव–गांव में शिक्षा का प्रचार हुआ। कईं बड़े नेताओं व समाज–सुधारकों द्वारा रूढ़ियों व कुरीतियों के खिलाफ आंदोलन हुए, लेकिन भारतीय नेताओं की परोपकारी नीति भ्रष्टाचार के चलते जल्द ही स्वार्थपूर्ति में बदल गयी। ग्रामीणों के हित में बनायी गई योजनाओं का लाभ बिचौलियों को मिलने लगा। शनैः–शनैः भ्रष्टाचार ने अपना दानव रूप धारण कर लिया। धनी वर्ग और धनी तथा गरीब वर्ग और गरीब होता चला गया। अतः वर्तमान अर्थ प्रधान देश में भूमण्डलीकरण तथा आधुनिकीकरण के चलते स्वार्थलिप्सा व धनलिप्सा के कारण परिवारों का विघटन होना शुरू हो गया और आर्थिक विसंगतियां बढ़ने लगी।

अमरकांत स्वातंत्र्यपूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर भारत के संधिकाल के उपन्यासकार माने जाते हैं। स्वयं अमरकान्त का जन्म एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। अपने जीवन काल में उन्हें विकट आर्थिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था। अतः अमरकांत की आर्थिक अवधारणा में स्वातंत्र्यपूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर भारत की आर्थिक विषमताओं को स्थान प्राप्त है। साथ ही उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में नवीन आर्थिक परिस्थितियों से जुझते निम्न व मध्यवर्गीय समाज की हताशा, दुःख, पीड़ा व विवशताओं का चित्रण किया है।

1.2 कृतित्व

1.2.1 लेखन की प्रेरणा

कथाकार अमरकांत ने अपने प्रारंभिक लेखन की शुरूआत स्कूली दिनों से की। उस समय के लेखन का कोई प्रामाणिक दस्तावेज तो नहीं है और उस अवस्था के लेखन को विशेष भी नहीं कहा जा सकता। इन्हें विद्यार्थी जीवन से ही लिखने का शौक था। सन् 1950 में आगरा में पहली कहानी 'इंटरव्यू' इनके द्वारा लिखी गयी जिसे, उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ की एक मीटिंग में सुनाया था और वह काफी पंसद भी की गई थी। अमरकांत जी को लिखने की प्रेरणा उनके हिंदी के अध्यापक बाबू गणेश प्रसाद से मिली। वे साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने विद्यार्थियों को कहानी लिखने के लिए उत्साहित किया। इसके लिए वे कहानी के शीर्षक भी स्वयं ही दिया करते। बाल्यावस्था में अमरकांत के एक मित्र ने एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली उनके लिए यह एक अचम्भे का विषय था। इस पत्रिका के लिए उन्होंने भी एक कहानी लिखी। जिसका शीर्षक तो उन्हें याद नहीं, पर वह अपने आप में एक अद्‌भुत कहानी थी। इसके बाद तो उनका लेखन कार्य किसी न किसी रूप में अनवरत चलता ही रहा। सिर्फ परिस्थिति और वातावरण के अनुरूप पात्र और विषय बदलते गये।

अमरकांत को अपने लेखन कार्य में दो लोगों का अत्यधिक सहयोग प्राप्त हुआ, उनमें से एक तो पत्नी गिरिजा देवी तथा दूसरे छोटे भाई राधेश्याम वर्मा का नाम लिया जा सकता है। अमरकांत पत्नी गिरिजा देवी के विषय में कहते है – "मेरी बहुत सी कहानियों व उपन्यासों के पात्र उन्हीं के अनुभवों द्वारा सुझाए गये है।"[26] आगे अमरकांत कहते है – "मेरा इन्हीं हथियारों से 'उपन्यास सन् 1942 के आंदोलन से संबंधित है। उसमें राष्ट्रीय गीत लिखना था, जो मुझे याद नहीं आ रहा था। पत्नी गिरिजा देवी उस समय गम्भीर बीमारी की हालत में थी। उस हालत में भी उन्होंने मुझे वो गीत बताया जिसकी कुछ पंक्तियां है –

> **"शहीदों की टोली निकली, सर पे बांध कफनियां हो।**
> **अंग्रेजो का छक्का छूटा, शेखी मिल गई धूल**
> **भाई .... टोली निकली।"[27]**

अमरकांत की पत्नी गिरिजा देवी ने समय–समय पर उनका हौसंला बढ़ाया। उनका मानना था कि व्यक्ति को सांसारिक संघर्षों से हार नहीं माननी चाहिए, बल्कि उससे लड़ते हुए पूरी लगन व प्रसन्नता के साथ कर्म पथ पर चलते हुए अपने क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहिए। भयंकर आर्थिक संकटों में भी उन्होंने अपने पति का साथ जिस तरह निभाया वह कोई मामूली बात नहीं है।

एक बार अमरकांत गंभीर बीमारी से ग्रस्त हो गये। लम्बी बीमारी से स्वस्थ होकर जब वह आजमगढ़ अपने भाई 'राधेश्याम वर्मा' के यहां रहने आए तब उन्हें पूरी तरह से स्वस्थ नहीं माना जा सकता था। बीमारी व बेकारी के समय उन्हें एक कहानी लिखने का प्रस्ताव मिला। उस समय उन्होंने जो कहानियां लिखी, वे उनके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण कहानियां मानी जाती है, जिनमें से 'दोपहर का भोजन' व 'डिप्टी कलक्टरी' प्रमुख है। इन्हें लिखने के बाद भी उनका मन सन्तुष्ट नहीं हो पा रहा था। यह कहानियां जब उन्होंने अपने छोटे भाई राधेश्याम वर्मा को सुनाई तब उन्होंने इनकी काफी प्रशंसा की और उनका हौंसला बढ़ाया। बहुत सी कहानियों के प्लॉट उन्हें अपने भाई राधेश्याम वर्मा से ही मिले थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमरकांत को लेखन में उनकी पत्नी व भाई दोनों का ही अनुकूल सहयोग प्राप्त हुआ। वैसे रचनाकार को लिखने की प्रेरणा निजी जीवन से ही उद्भूत होती है फिर चाहे उसके विषय बाह्य जीवन से लिये जाये अथवा स्वयं के जीवन से। स्वयं अमरकांत ने एक साक्षात्कार में कहा है – "वैसे किसी भी व्यक्ति के मन में समाज और वहां रहने वाले प्रधान मनुष्य के प्रति लगाव, गहरी सहानुभूति और संवेदनाऐं होती है। तभी लिखने की प्रेरणा मिलती है। आप में संवेदना नहीं है तो आप दूसरों की परिस्थिति को न तो समझ सकते है और न ही उनके प्रति आपके दिल में कोई भावना पैदा होती है। यही गहरी और व्यापक भावना आपको कविता, उपन्यास, कहानी लिखने को प्रेरित करती है और इसी वजह से मुझे भी इन्हीं भावनाओं से परिचित होकर लिखने की प्रेरणा मिली।"[28]

1.2.2 साहित्य सृजन के सोपान

अमरकांत का रचना साहित्य विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य कहानी, उपन्यास, बाल उपन्यास, संस्मरण, लेखों इत्यादि रचनात्मक रूपी रत्नों से जड़ित समृद्ध साहित्य है। वह साहित्यिक संसार का एक ऐसा गुलदस्ता है, जिसमें विभिन्न रंग, रूप, गंध के पुष्प एक साथ महकते व पल्लवित होते है। कथाकार अमरकांत प्रमुख रूप से एक कहानीकार के रूप में साहित्यिक जगत् में जाने जाते है। उनके प्रमुख कहानी संग्रह इस प्रकार है –

कहानी संग्रह

- जिंदगी और जोंक
- देश के लोग
- मौत का नगर
- मित्र–मिलन तथा अन्य कहानियां
- कुहासा

- तूफान
- कलाप्रेमी
- प्रतिनिधी कहानियां
- एक धनी व्यक्ति का बयान
- सुख और दुःख का साथ
- जांच और बच्चे
- अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियां – भाग दो

अमरकांत का उपन्यास साहित्य भी कई अमूल्य विषयों को अपने गर्भ में समेटे हुआ है।

उपन्यास साहित्य

- सूखा पत्ता
- ग्राम सेविका
- सुख जीवी/पराई डाल का पंछी
- कंटीली राह के फूल
- आकाश पक्षी
- बीच की दीवार
- काले–उजले दिन
- सुन्नर पांडे की पतोह
- इन्हीं हथियारों से
- लहरें
- विदा की रात

बाल उपन्यास साहित्य

- नेऊर भाई
- वानर सेना
- खूंटा मे दाल है
- मंगरी

- बाबू का सपना
- दो हिम्मती बच्चे

प्रौढ़ साहित्य

- सुग्गी चाची का गांव
- झगरूलाल का फैसला
- एक स्त्री का सफर

संस्मरण

- कुछ यादे : कुछ बातें
- दोस्ती

संपादन

अमरकांत ने 'बहाव' साहित्यिक पत्रिका का संपादन किया। 'बहाव' साहित्य एवं संस्कृति की एक त्रैमासिक पत्रिका है। जिसका प्रारंभ सन् 2003 में हुआ था। नए साहित्यकारों की रचनाओं को इस पत्रिका के द्वारा एक मंच प्राप्त हो सका है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई पत्र– पत्रिकाओं में भी लेख लिखे हैं।

विदेशी भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं में भी इनकी रचनाओं का अनुवाद हुआ है। पेंग्विन इण्डिया में कहानियां प्रकाशित हुई है। दूरदर्शन पर इनकी कहानियों का फिल्मांकन भी हो चुका है तथा रंगमंच पर इनकी कहानियों के नाट्य रूपान्तरणों का प्रदर्शन समय–समय पर होता रहा है।

1.2.3 पुरस्कार एवं सम्मान

अमरकांत को उनके उपन्यास 'इन्ही हथियारों' के लिए सन् 2007 में साहित्य अकादमी पुरस्कर व व्यास सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है।'सूखा पत्ता' उपन्यास और कहानियों के लिए 'सोवियत लैण्ड नेहरू' पुरस्कार तथा यशपाल पुरस्कार 'मौत का नगर' कहानी संग्रह के लिए दिया गया।उत्तरप्रदेश 'हिंदी संस्थान पुरस्कार' ये सारी कृतियों के लिए दिया जाता है।'कीर्ति सम्मान' प्रगतिशील लेखक कीर्ति सम्मान। इसके अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार, जन संस्कृति सम्मान, मध्यप्रदेश का अमरकांत कीर्ति सम्मान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग का सम्मान, हेरभ मिश्र स्मृति पत्रकारिता संस्था, इलाहाबाद की ओर से कला शिखर सम्मान, सुमित्रानन्दन स्मृति सम्मान 2002 इलाहाबाद, इलाहाबाद न्यूज रिपोर्टर्स क्लब से पत्रकारिता के योगदान हेतु गौरवान्वित, ज्ञानपीठ पुरस्कार से अमरकांत को साहित्य जगत् में

नवाजा गया है। इस प्रकार अमरकांत को साहित्य में उनके ऐतिहासिक योगदान के लिए कई पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

1.3 यथार्थ अभिव्यक्ति की सशक्त विधाः उपन्यास

मानव जीवन के सर्वाधिक सन्निकट होने के कारण आधुनिक युग में उपन्यास साहित्य ने बड़ी शक्ति एवं महत्त्व प्राप्त कर लिया है। अब वह केवल मनोरंजन का साधन अथवा कल्पित गद्य कथा मात्र नहीं है बल्कि मानव जीवन का ऐसा गद्य है, जिसमें मनुष्य को समग्रता से समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जाता है।

"It is the prose of man's life, the first art to attempts to take the whole man and give him expression."[29]

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी 'उपन्यास' एवं 'नावेल' दोनों शब्दों का विवेचन करते हुए लिखते है, "उपन्यास वस्तुतः ही 'नवल' अर्थात् नया ताजा साहित्यांग है, परन्तु फिर भी जिस मेधावी ने कथा, आख्यायिका आदि शब्दों को छोड़कर अंग्रेजी 'नावेल' का प्रतिशब्द उपन्यास माना था उसकी सूझ की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। जहां उसने इस नये शब्द के प्रयोग से यह सूचित किया है कि यह साहित्यांश पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं से भिन्न जाति का है। वहीं इसके शब्दार्थ के द्वारा (उप, निकट, न्यास रखना) यह भी सूचित किया कि विशेष साहित्यांश द्वारा ग्रन्थकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिनव मत रखना चाहता है।"[30]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उपन्यासों की शक्ति को पहचानते थे। वे लिखते है – "समाज जो रूप पकड़ता है और उसके भिन्न–भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियां उत्पन्न होती है, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते आवश्यकतानुसार उनके विस्तार, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।"[31]

उपन्यास साहित्यिक विधाओं में एक मात्र ऐसी विधा है, जिसमें सभी अन्य विधाओं की झलक देखने को मिलती है। जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास वृहत्तर फलक प्रस्तुत करता है। मानव जीवन के सभी रहस्य पूर्णता के साथ उपन्यास में विवृत्त होते है। प्रेमचन्द ने उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्रण मानते हुए लिखा है–"मैं उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।"[32]

वैसे साहित्य की अन्य विधाओं में भी जीवन मूल्यों का चित्रण एक अनिवार्य स्थिति है। सिर्फ इन सभी विधाओं में अभिव्यक्ति का अवसर एक सा नहीं होता है। कविता एक

छन्द बद्ध रचना है, जिसमें सीमित शब्दों के माध्यम से ही कथ्य व्यक्त किया जा सकता है। नाटक में रचनाकार को जो कुछ भी कहलवाना है वह पात्र के माध्यम से ही कह सकता है। उसे पाठक के सामने आने की स्वतंत्रता नहीं होती। निबंध की शैली प्रत्यक्ष तो है, किंतु यहां पाठकीय संवेदना का अवसर अत्यल्प है। वहीं उपन्यास में इन सभी को एक साथ समाहित करने की शक्ति होती है। "उपन्यास में कथा तो है ही साथ ही साथ अवसर–अवसर पर वह काव्य की सी भावुकता और संवेदना जगाकर पाठकों को तल्लीन करता है। प्रकृति और प्रकृत्येत्तर दृश्यों और रूपों की योजना का सौंदर्य जगाता है। इसमें निबंध की सी चिंतनमूलकता भी है।"[33]

मैरियन फोक्स ने इसे 'जेबी थिएटर' (Packet Theator) की संज्ञा दी है क्योंकि इसमें नाटकीय समानता, संवाद योजना और देश–काल के चित्रण देखे जा सकते है। उपन्यास की व्यापक क्षमता के विषय में प्रेमचन्द ने लिखा है – "अगर आपको इतिहस से प्रेम है तो आप अपने उपन्यास में गहरे से गहरे ऐतिहासिक तत्त्वों का निरूपण कर सकते है। अगर आप को दर्शन में रूचि है तो उपन्यास में उसके लिए भी काफी गुंजाइश है। समाज, नीति, विज्ञान, पुरातत्त्व आदि सभी विषयों के लिए उपन्यास में स्थान है। यहां लेखक को अपनी कलम का जौहर दिखाने का जितना अवसर मिल सकता है, उतना साहित्य में और साहित्य के किसी अंग में नहीं मिल सकता है।"[34]

प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार और साहित्य चिन्तक ई.एम.फोर्स्टर ने उपन्यास के महान् भविष्य की भविष्यवाणी की है और इसे अन्य साहित्यिक विधाओं से इस कारण विशिष्ट कहा है कि "यह जीवन के गुप्त रहस्यों को भी सामने लाने की सामर्थ्य रखता है। इसमें जिस यथार्थ का चित्रण होता है। वह कविता, नाटक, सिनेमा, चित्रकला तथा संगीत के यथार्थ से भिन्न होता है और इस यथार्थ को एक भिन्न दृष्टि से प्रस्तुत करता है।"[35]

वर्तमान हिंदी उपन्यासों में परम्परा से हटकर नवीन प्रयोग देखने को मिलते है। प्रेमचंद के परवर्ती कथाकारों ने अपने लेखन को एक नई दिशा की ओर उन्मुख किया है। वर्तमान युग में लेखक और पाठक दोनों के लिए उपन्यास एक लोकप्रिय विधा बन गई है। "इस साहित्यांग उपन्यास ने मनोरंजन के लिए लिखी जाने वाली कविताओं का ही नहीं, नाटक का रंग भी फीका कर दिया है, क्योंकि पांच मील दौड़कर रंग शाला में जाने की अपेक्षा पांच सौ मील दूर से ऐसी पुस्तक मंगवा लेना कहीं आसान है, जो अपना रंगमंच अपने पन्नों में ही लिखे हुए हो।"[36]

वस्तुतः प्रेमचन्द के परवर्ती कथाकारों ने सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक और वैयक्तिक अनेक प्रकार के श्रेष्ठ उपन्यासों की सृष्टि की है। इनमें उन विविध नवीन मूल्यों का समावेश हुआ है, जो स्वातंत्र्योत्तर भारत में विकसित हुए है। इन कथाकारों ने अपने अनुभवों को आधार बनाकर यथार्थपरक दृष्टि से उपन्यासों की रचना की, क्योंकि पाठक अब

कल्पनापरक उपन्यासों से सन्तुष्ट नहीं होता। इस विषय में प्रेमचन्द लिखते हैं – "भविष्य में उपन्यास में कल्पना कम सत्य अधिक होगा, हमारे चरित्र कल्पित न होंगे बल्कि व्यक्तियों के जीवन पर आधारित होंगे। किसी हद तक तो अब भी ऐसा होता है, पर बहुधा हम परिस्थितियों का ऐसा क्रम बांधते है कि अन्त स्वाभाविक होने पर भी वह होता है जो हम चाहते है। हम स्वाभाविक का स्वाँग जितनी खूबसूरती से भर सके, उतने ही सफल होते है, लेकिन भविष्य में पाठक इस स्वाँग से सन्तुष्ट न होगा।"[37]

"यों कहना चाहिए कि भावी उपन्यास जीवन चरित्र होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। उसकी छुटाई–बड़ाई का फैसला उन कठिनाईयों से किया जायेगा कि जिन पर उसने विजय पायी है। हाँ, वह चरित्र इस ढंग से लिखा जायेगा कि उपन्यास मालूम हो। अभी हम झूठ को सच बनाकर दिखाना चाहते है भविष्य में सच को झूठ बनाकर दिखाना होगा। किसी किसान का चरित्र हो या किसी देशभक्त का या किसी बड़े आदमी का, पर उसका आधार यथार्थ होगा। तब यह काम उससे कठिन होगा जितना अब है, क्योंकि ऐसे बहुत कम लोग हैं, जिन्हें बहुत से मनुष्यों को भीतर से जानने का गौरव प्राप्त हो।"[38]

इस विषय में प्रेमचन्द ने लिखा है – "जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उत्कर्ष का अनुभव करें, उसके सद्भाव जाग उठे, वही सफल उपन्यास है। जिसके भाव गहरे है, प्रखर है, जो जीवन में बद्दू बनकर नहीं, बल्कि सवार बनकर चलता है, जो उद्योग करता है और विफल होता है, उठने की कोशिश करता है और गिरता है जो वास्तविक जीवन की गहराईयों में डूबा है, जिसने जिंदगी के ऊँच–नीच देखें है, सम्पत्ति और विपत्ति का सम्मान किया है, जिसकी मखमली गद्दों पर ही नहीं गुजरती, वही लेखक ऐसे उपन्यास रच सकता है, जिनमें प्रकाश, जीवन और आनंद प्रदान करने की सामर्थ्य होगी।"[39]

इस प्रकार हम देखते है कि उपन्यास सतत् संघर्षशील एवं विकासशील मानवचेतना को मुखरित करने वाली एक जीवित एवं गतिशील विधा है। इसमें लेखक जीवन के यथार्थ अनुभव, विचारों की गहनता, सृजनशीलता, कल्पना, रचना शक्ति एवं विवेचन क्षमता के द्वारा विविधताओं और विषमताओं से युक्त मानवता को गति व दृष्टि दोनों प्रदान करता है। अमरकांत का जीवन भी कुछ खट्टे–मीठे पलों को समेटे हुए है। उनके उपन्यास एक निम्न मध्यवर्ग की कथा को कहते हुए दिखाई देते हैं। अमरकांत प्रेमचन्द की परम्परा के यथार्थवादी उपन्यासकार माने जाते है। उन्होंने उपन्यासों के माध्यम से जीवन के सत्य को प्रकट करने का प्रयास किया है। जिसमें बनावटीपन नहीं है, अपितु स्वयं लेखक द्वारा भोगा हुआ यथार्थ है।

1.4 आलोच्य उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

अमरकांत का अनुभव फलक एक खुले आकाश की भांति अत्यन्त व्यापक है, जिसमें उनकी रचनाओं रूपी अनेक तारे विद्यमान है। वे जनसामान्य की पीड़ा को अपनी रचनाओं के माध्यम से उजागर करते हैं। उन्होंने मुख्य रूप से अपने उपन्यासों में मध्यवर्गीय मानस की कमजोरियों, विसंगतियों एवं विकृतियों का यथार्थ चित्रण 'सूखा पत्ता', 'काले–उजले दिन', 'कंटीली राह के फूल' ओर 'आकाश पक्षी' आदि उपन्यासों में विस्तृत रूप में किया है। मध्यम वर्ग की महिलाओं की संघर्ष गाथा 'ग्रामसेविका' तथा 'सुन्नर पाण्डे की पतोह' में व्यक्त हुई है। 'आकाश पक्षी' उस सामंती जीवन की दोहरी जिंदगी को प्रकट करता है, जिनकी आन–बान तो चली गयी, किन्तु उनकी शान–शौकत में कमी नहीं आई। सामंती जीवन की अकर्मण्यता के कारण ऐसे लोग अपनी बेटी को भी बेचने को विवश हो जाते है। "अमरकांत के उपन्यासों में जिंदगी के विकास का सूत्र मिलता है, जिसे वे उलट–पलटकर खरापन प्राप्त करते है।"[40] अमरकांत के उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण परिवेश की विभिन्न समस्याओं को उकेरा गया है। साथ ही नारी शक्ति, सामर्थ्य और उसके संघर्ष को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में प्रगतिशील चेतना के दर्शन होते है। प्रस्तुत अध्याय में अमरकांत के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

सूखा पत्ता

अमरकांत का प्रथम उपन्यास 'सूखापत्ता' आत्मकथात्मक शैली में रचित है। इस उपन्यास की रचना अमरकांत ने अपने मित्र के बीते दिनों संस्मरणों से युक्त डायरी को पढ़ने के पश्चात् की थी। वह कहते हैं –"यह मेरे मित्र की कहानी है। यह बीते दिनों के संस्मरणों से युक्त डायरी पढ़ने के बाद मन में उपन्यास लिखने की इच्छा तीव्र हुई। दिमाग में उसका खाका उभरता चला गया और कुछ ही महीनों में इस उपन्यास को लिख लिया। मैंने कल्पना का बहुत कम सहारा लिया। वस्तुतः घटनाओं को सजा भर दिया है, जो परिवर्तन हुआ है वह भाषा और शैली में ही।"[41]

अमरकांत का उपन्यास 'सूखापत्ता' तीन खंडो में विभक्त है। प्रथम खण्ड मनमोहन, दूसरा खण्ड तीन दोस्त और तीसरा उर्मिला। प्रथम खण्ड में कृष्ण के बचपन व मनमोहन के रूप में किशोरावस्था की मानसिक विकृतियों का चित्रण किया गया है। दूसरे खण्ड में नायक कृष्ण व तीन दोस्तों के माध्यम से किशोरावस्था में क्रांतिकारी रूझान के बहाने अपरिपक्व युवा मानस की कमजोरियों को दर्शाया गया है। तीसरे खण्ड में कृष्ण व उर्मिला प्रेम के माध्यम से पुरूष पात्र कृष्ण के असफल प्रेम तथा समाज की रूढ़ियों पर प्रहार किया गया है।

उपन्यास का मूल पात्र कृष्णकुमार बलिया का रहने वाला है। वह सुन्दर है, पढ़ने में भी तेज है, परन्तु शरीर से दुबला व कमजोर है। इसी के चलते वह हीन भावना से ग्रसित हो जाता है। वह अपने बड़े भाई के मित्र मोहन के बलिष्ठ शरीर व लठंई अंदाज से खासा प्रभावित है तथा मनमोहन को ही वह अपना आदर्श मान कर उसका अनुकरण करने लगता है। कृष्ण कुमार के बड़े भाई कृष्ण को मनमोहन के साथ न रहने की सलाह देते हैं, क्योंकि मनमोहन आवारा तथा शहर का लठंई था और कृष्ण कहीं इन आदतों का शिकार न हो जाए इसलिए उसे मनमोहन से मिलने व बात–चीत न करने को कहा जाता है। कृष्ण कुमार मनमोहन से बात करना बंद कर देता है, लेकिन एक दिन दोनों ही अमरूद तोड़ कर खाने के बहाने फिर से बोलना प्रारम्भ कर देते हैं। कृष्ण पर मनमोहन का जबरदस्त प्रभाव पड़ता है। एक दिन मनमोहन कृष्ण को एक पत्र लिखकर अपने समलिंगी प्रेम का इज़हार करता है। पत्र पढ़कर कृष्ण क्रोधित हो जाता है। उसने मनमोहन को जिस आदर्श रूप में देखा था, वह रूप धराशयी हो जाता है। इस घटना के पश्चात् दोनों में पुनः बात बंद हो जाती है। इसके पश्चात् मनमोहन ने कृष्ण व उसके साथियों को विभिन्न तरीकों से परेशान करना प्रारंभ कर दिया। एक दिन कृपाशंकर के वार्तालाप से मनमोहन का हृदय परिवर्तित हो जाता है। वह एक क्षमा पत्र कृष्ण को भेजता है, जिसे पढ़कर कृष्ण का साहस बढ़ जाता है।

दूसरे खण्ड में कृष्ण कुमार व उसके तीन मित्रों दीनानाथ, दीनेश्वर एवं मनोहर की उन गतिविधियों का चित्रण हुआ है, जो उन्होंने राजनीतिक भावभूमि पर क्रांतिकारी बनने के लिए की। यह उपन्यास 1945 के समय को प्रस्तुत करता है। यह वह समय था जब गांधी जी पूरे देश के मानस पटल पर छाए हुए थे। इस समय भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन पूरे उबाल पर था। सन् 1942 ई. की क्रांति मे तो बलिया पूरे देश में अग्रणी रहा। कृष्ण कुमार इसी क्षेत्र का है। इस आंदोलन से वह अपने आपको अछूता नहीं रख पाया।

वह कहता है – "उस समय की स्थिति में राजनीति ऐसा प्रशस्थ पथ था, जिस पर चलने से मेरे मन के आदर्श को आकार मिलता था। सन् 1942 का आंदोलन मेरे आंखों के सामने से गुजरा था और इस आंदोलन को जिस तरह दबाया गया था उससे मैं भली–भांति अवगत था। देश के क्रांतिकारियों के बलिदान के किस्सों को पढ़–सुनकर यौवन का गर्व और आत्मसम्मान सोये शेर की तरह जाग उठता था। दिल जोश और क्रोध से भर उठता था।"[42]

नायक कृष्ण कुमार अपने इस आदर्श रूप को साकार करने के लिए अपने तीनों दोस्तों के साथ मिलकर देश को आजाद कराने के लिए दृढ़ संकल्प लेते हुए विभिन्न प्रकार की योजनाएं बनाता है। वे भुथरी तलवार इकट्ठा करते हैं, कभी रात के सन्नाटे में ताला तोड़कर गोदाम से एक–दो बोरे चीनी चुराते हैं, तो केवल कभी खाली बोरे। कभी किसी अंग्रेज समर्थक

व्यापारी को बेहोश करने के लिए किसी डॉक्टर के यहां से क्लोराफार्म की शीशी चुराते है। इन चुराए गए खाली बोरो को बेचकर छूरा तथा 'लाठी व शिक्षक' नामक एक पुस्तक खरीदी जाती है। इतना समान इकट्ठा होने पर इन्हें रखने के लिए एक गुप्त स्थान की आवश्यकता महसूस हुई, जिसके लिए छोटा टोला में मुन्नीलाल का मकान किराए पर लिया गया। तत्पश्चात् सभी दोस्तों ने मिलकर विचार किया कि देश को आजादी दिलाने के उद्देश्य से एक पार्टी का गठन किया जाए। चारों मित्रों ने मिलकर खूनी आजादी क्रांतिकारी पार्टी का गठन कर आजीवन विवाह न करने की कसम अपने खून से लिखकर खाई। उस मकान में सारा सामान इकट्ठा करके भारत माता का एक चित्र भी अंकित किया गया। इसी बीच अजीजुद्दीन नामक व्यक्ति इनको बलराम तिवारी नामक क्रांतिकारी से मिलवाता है। बलराम तिवारी के साथ उन्हें एक प्रकरण में जेल भी जाना पड़ता है, जहां इन्हें विभिन्न प्रकार की यातनाओं को सहन करना पड़ता है। कृष्ण कुमार में इस यातना से अधिक दृढ़ता आ जाती है।

इस घटना के बाद दीनेश्वर व दीनानाथ के जीवन में भारी बदलाव आया। उन्होंने पुलिस से क्षमा याचना की, किन्तु कृपाशंकर ने पुलिस की मार के बावजूद भी माफी नहीं मांगी। पुलिस से छूटने के बाद कृपाशंकर को घर वालों ने बाहर भेज दिया। कृष्ण के अकेला रह जाने पर एक दिन उसकी भेट अखिलानंद वर्मा से होती है। जो उसे क्रांतिकारी के रास्ते से समाजवाद की ओर मोड़ देते है, जिससे कृष्ण काफी हद तक प्रभावित होता है और वह पूंजीवाद के खिलाफ लड़ने के लिए अपने आप को तैयार करता है।

उपन्यास के तीसरे खण्ड 'उर्मिला' में कृष्ण युवावस्था के उस पड़ाव पर होता है जब हर युवा अपने कल्पित मन में अपन प्रियतम अथवा प्रियतमा की छवि अंकित कर लेता है। इंटरमीडिएट प्रथम वर्ष की परीक्षा के उपरांत कृष्ण अपने घर पर रहता है। सर्वप्रथम उसकी कल्पना में कलवतिया महरिन की विधवा पुत्री जतिया आती है। जतिया में वासनाजन्य आकर्षण रहता है, जिससे कृष्ण विकर्षित होता है। कुछ समय पश्चात् वर्षा के दिनों में कृष्ण के पिता के विजातिय मित्र गंगाधारी बाबू का मकान धराशायी हो जाता है। कृष्ण के पिता उन्हें अपने घर ले आते है। गंगाधारी बाबू के परिवार में उनकी पत्नी तथा तीन पुत्रियां उर्मिला, गीता व निर्मला रहती है। इन्हें ऊपर के एक बड़े कमरे में आसरा मिलता है। उर्मिला सत्रह वर्षीय एक सुन्दर, सुशील कन्या है। वह कृष्ण के छोटे भाई कंचन के साथ कृष्ण से पढ़ने आती है। कृष्ण उर्मिला के प्रति आकर्षित हो जाता है। दोनों एक–दूसरे को चाहने लगते है। धीरे–धीरे उनमें मेल–मिलाप बढ़ने लगता है और शारीरिक स्पर्श तक स्थिति पहुंच जाती है। दोनों विवाह करने की प्रतिज्ञा लेते हैं। एक दिन उर्मिला की मां दोनों को प्रेम केलि करते देख लेती है और उर्मिला को खरी–खोटी सुनाते हुए उसकी पिटाई भी करती है। वह कृष्ण के घर से सभी बच्चों को लेकर पलायन कर जाती है। दोनों के घर का वातावरण गरम हो जाता है। अतः दोनों परिवारों के बीच

संघर्ष शुरू हो जाता है। कृष्ण उर्मिला से विवाह करना चाहता है, किंतु अन्तर्जातीय विवाह की स्वीकृति उन्हें नहीं मिलती। कृष्ण को पारिवारिक दबाव के कारण उर्मिला के प्रेम को ठुकराना पड़ता है। उसका आदर्शोन्मुख व्यक्तित्व उसे धोखा देता है। वह एक कायर व असफल प्रेमी की भांति अपने कर्त्तव्य से मुकुर जाता है। उर्मिला की दृढ़ता के बावजूद वह उसे मां–बाप की पंसद से विवाह करने की सलाह देता है। इसके बाद उर्मिला की शादी तय हो जाती है और वह गम में डूब जाता है। वह अपनी डिग्रियां फाड़ डालता है। वह कायर की भांति आत्महत्या की सोचता है, परंतु मित्र कृपाशंकर की समझाइश के पश्चात् जीवन को पुनः नए सिरे से जीने की राह ढूंढता है।

"कथा यही लड़खड़ाती हुई समाप्त हो जाती है, मगर लेखक ने इसके बाद भी उपसंहार लिखा है, जिसका शीर्षक है कृपाशंकर। लेखक हताश नायक के सम्मुख जो सूखे पत्ते की तरह रूमानी आदर्शों की हवा में उड़ता रहता है, कृपाशंकर के रूप में नया आदर्श उपस्थित करता है। कृपाशंकर अपनी टेक से ढ़लता नहीं और कम्यूनिस्ट पार्टी का सदस्य होकर राजनीति के अखाड़े में डटा रहता है।"[43] "वह उस वृक्ष की तरह था, जिसकी जड़ें गहरी होती है और जो आंधी बवण्डर में भी नहीं उखड़ता। पत्तों और फलों से भरी उसकी डालियां सबकी सेवा को उत्सुक मानों फैली रहती है। कृपाशंकर सूखे पत्ते की तरह कभी नहीं था। जो जैसी हवा बहे, उसी में उड़ जाता है, हवा बन्द होने पर धराशायी व्यर्थ और बेकाम। मैं अब तक तो सूखापत्ता ही रहा हूँ।"[44]

कमला प्रसाद पाण्डेय के अनुसार "आत्मालोचन के समय कृष्ण कुमार अपनी पुरानी जिंदगी को उन्मादपूर्ण मानता है। कभी सहनशक्ति का उन्माद है, तो कभी भावातिरेक का। उन्माद कभी भी सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया में पूरा साथ नहीं देता। कृष्ण कुमार अंततः अपने भीतर से मार्क्सवाद विचारों के पास पहुंचता है।"[45]

काले–उजले दिन

'काले–उजले दिन' आत्म कथात्मक शैली में लिखी गयी एक सशक्त औपन्यासिक रचना है। इसमें कथानायक स्वयं अपने विकास को दुहराता है। नायक के पिता शहर के मशहूर वकील थे। गांव में भी उनकी जमींदारी थी। नायक जब 5–6 वर्ष का था, तो उसकी माता का निधन हो जाता है। नायक के पिता अपनी पत्नी व पुत्र (नायक) को बहुत प्यार करते थे, किंतु पत्नी का निधन होने के पश्चात् उन्होंने कुछ दिनों बाद दूसरी शादी कर ली और नायक की विमाता आ गई। पहले तो विमाता नायक को अच्छी प्रकार से रखती थी, परन्तु जब उनका स्वयं अशोक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, तो वह नायक से उपेक्षित व्यवहार करने लगी।

विमाता द्वारा डांट व मार–पीट तथा पिता के उपेक्षित व्यवहार, तिरस्कार व प्यार के अभाव में नायक का मन कुंठा से भर जाता है और वह हीनत्व–बोध से ग्रसित हो जाता है।

वह कहता है – "स्कूल से आने पर जब मैं खाने के लिए जिद करता या पैसे के लिए हठ करता तो माँ मुझे डांटती थी, गालियां देती थी और मुझ पर हाथ छोड़ती थी। माताजी का दुर्व्यवहार बढ़ने लगा और पिताजी भी मुझ पर हाथ छोड़ने लगे। धीरे–धीरे मेरी आत्मा मरती गई और मेरे अन्दर एक हीनता भरती गई।"[46]

इन्हीं सब के चलते कुण्ठित नायक नवी कक्षा में फेल हो जाता है। वह अपनी मुक्ति के लिए घर छोड़ने का निश्चय करता है और एक दिन वह विमाता के ट्रंक का ताला तोड़कर सौ रूपये निकाल कर घर से भाग जाता है। उसका सम्पर्क वासुदेव नामक क्रान्तिकारी से होता है। वासुदेव सिंह नायक की विभिन्न प्रकार से परीक्षा लेता है, जिसमें वह सफल हो जाता है। वह वासुदेव के साथ मिलकर सेठ सूरजमल के यहां डकैती डालता है। इसके बाद पुलिस उनके पीछे पड़ जाती है, तब वह दूर के रिश्ते के बाबा के यहां शरण लेता है। दो वर्ष का समय बीतने के पश्चात् नायक के पिता एक पत्र के माध्यम से उसे वापिस बुलवा लेते है। नायक घर लौट आता है, किंतु यहां कुछ भी न बदला था बल्कि अब तो विमाता और पिता के द्वारा और भी अधिक लज्जित होना पड़ता था। घर का सारा काम उससे करवाया जाता। विमाता उसे डांटती ही रहती और गालियां देती। इसी बीच नायक का विवाह कांति से तय हो जाता है। दहेज के लालच के कारण माता–पिता का मूल स्वभाव बदल जाता है। वे अब उससे प्रेमपूर्वक बर्ताव करने लगते है।

कांति सीधी–सादी व आदर्श महिला थी। वह अत्यधिक सुंदर तो नहीं थी, लेकिन बुरी भी नहीं। उसका बाहरी साधारण सा रूप नायक को आकर्षित नहीं कर पाता, किंतु कांति से मिले आदर, श्रद्धा व त्याग के कारण वह उसकी इज्जत जरूर करता था। कांति की प्रेरणा से वह आगे की शिक्षा प्राप्त करता है और उसे नौकरी भी मिल जाती है।

नायक ने जीवन संगिनी के रूप में जिस स्त्री की कल्पना की थी, आर्थिक अभावों के दूर होते ही वह इच्छा उसमें बलवती होने लगी और उसका मन कांति से दूर भागने लगा। वह कल्पना में अपनी प्रेयसी के रूप में एक आधुनिक स्त्री से प्रेम करने लगा। कालान्तर में वह उसके ही साथ नौकरी करने वाली रजनी के प्रति आकर्षित हो जाता है। दोनों एक–दूसरे को चाहने लगते है। रजनी और नायक के बीच प्रेम प्रसंग के चलते कांति अपने प्रति लापरवाह हो जाती है और लंबी बीमारी का शिकार हो, अपनी एक बच्ची को छोड़कर परलोक सिधार जाती है।

नायक को बाद में पश्चाताप होता है, जब उसे यह ज्ञात होता है कि उसकी पत्नी रजनी व उसके बीच के संबंधो को जानती थी, परंतु उसने कभी उसका प्रतिकार नहीं

किया। कांति के द्वारा प्राणों का उत्सर्ग कर देने के पश्चात् नायक स्वयं को कांति का हत्यारा समझ घोर निराशा, अपमान व पीडा में डूब जाता है। वह सोचता है कि उसने कांति के साथ उपेक्षा का व्यवहार कर अन्याय किया है, वह उसका दोषी है। अंत में रजनी के संभालने से वह सहज हो जाता है और रजनी से विवाह कर लेता है।

आकाश पक्षी

'आकाश पक्षी' उपन्यास में सामन्ती लोगों की विकृत मनोदशा को उकेरा गया है। जिन्होंने आजादी मिलने के बाद रियासतों के विलीनीकरण उपरान्त भी अपने आपको सामंत माना और कर्म से वे लगातार मुंह मोड़ते रहे। इस उपन्यास का विस्तार किशोर बाला हेमवती द्वारा आत्मकथात्मक रूप से आगे बढ़ता है।

"वरिष्ठ कथाकार अमरकांत का यह उपन्यास एक निर्दोष और संवेदनशील लड़की की कथा है, जिसके ईद–गिर्द भारतीय सामंतवाद के अवशेषों की नगफनियां फैली हुई है। उनका कुंठाजनित अहंकार, हठधर्मिता और सर्वोच्चता का मिथ्या भाव उसकी सहज मानवीय इच्छाओं और आकांक्षाओं को बाधित करता है। भारतीय समाज से सामंतवाद के समाप्त होने के बावजूद अपने स्वर्णिम युगों का खुमार एक वर्ग–विशेष में लंबे समय तक बचा रहा और आज भी जहां तहां यह दिखाई पड़ जाता है। गुजरे जमानों की स्मृतियों के सहारे जीते ये लोग नए समाज के मूल्यों–मान्यताओं को जहां तक संभव हो, नकारते है और उनकी शिकार होती है, वे नई नस्लें जो जिंदगी और समाज को नए नजरियें से देखना, जानना और जीना चाहती है। इस उपन्यास की पंक्तियों में बिंधी व्यथा उन लोगों के लिए एक चेतावनी की तरह है, जो आज भी उन बीते युगों को जीने की कोशिश करते है।"[47]

एक रियासत के राजा के छोटे भाई 'बडे सरकार' की सामंती छिन जाने के पश्चात् भी उनका परिवार लखनऊ में आकर उसी पुरानी शान–शौकत से रहता है, जो रियासत के समय थी। 'बड़े साहब' की फिजूल खर्ची से संचित धन समाप्त होने लगता है। वे ठेका लेने की बात तो प्रतिदिन करते हैं, किन्तु स्वभाव से फिजूलखर्ची, काम न करना, नशा करना, डींगे मारना व जुंआ खेलने के शिकार है। पहले तो बड़े सरकार का परिवार अपनी उच्चता के दंभ में किसी से संबंध नहीं रखना चाहता, परन्तु इंजीनियर की पत्नी एक दिन बड़े सरकार के घर सौजन्य भेंट करने जाती है और धीरे–धीरे दोनों परिवरों में आपसी संबंध बन जाते हैं। बड़े सरकार जमींदारी छिन जाने के कारण कांग्रेस सरकार के पक्ष में नहीं है। इसीलिए वे इंजीनियर साहब से कहते है कि कांग्रेस सरकार नहीं चला पाएगी और रियासत फिर से उनके हाथों में होगी। वे दिखावे का जीवन व्यतीत करते है, जबकि सच्चाई यह है कि उनकी शान–शौकत से रहने के तरीके ने उनके परिवार की आर्थिक स्थिति को दीमक की तरह चाट डाला है। नौबत

यहां तक आ जाती है कि गहने व घर का सामान भी बेचने पड़ते है। इसके विपरीत इंजीनियर साहब का परिवार सुशिक्षित, खुले व आधुनिक विचारों से युक्त तथा झूठी मान्यताओं, दिखावे से बिल्कुल दूर था।

हेमा, रवि तथा अपने परिवार की तुलना करते हुए कहती है – "कितना फर्क उन दोनों में था। एक ओर मेरी मां थी, जो अशिक्षा, खोखली उच्चता, पिछड़ापन ओर सामन्ती मान्यताओं का प्रतिनिधित्व करती थी। दूसरी ओर इंजीनियर साहब की पत्नी आधुनिक मान्यताओं का प्रतिनिधित्व करती थी – शिक्षित, मिलनसार, आधुनिक और उन्मुक्त।"[48]

हेमा अपने परिवार के माहौल को बिल्कुल पसंद नहीं करती है। वह सभी बच्चों के साथ खेलना चाहती है। उनसे मिलना–जुलना चाहती है, चाहे वे किसी भी जाति के हो। वह घर के छोटे–बड़े कार्यों को स्वयं करना चाहती है, किन्तु घर के बड़े उसे यह कहकर रोक देते हैं कि तुम बड़े घर की बेटी हो, राजकुमारी हो तुम्हें यह सब काम अपने हाथ से करना शोभा नहीं देता। इस प्रकार हेमा की सहज मानवीय भावनाएं व आकांक्षाएं आहत होती है।

हेमा अपने पडौसी रवि से प्रेम करती है, रवि भी उससे प्रेम करता है। एक दिन हेमा की मां रवि और हेमा का वार्तालाप सुन लेती है। वह हेमा को पीटती है और रवि को भला–बुरा कहती है। रवि के पिता जब हेमा का हाथ अपने बेटे के लिए मांगते है, तो हेमा के पिता इंजीनियर साहब का अपमान करते है तथा जाति–पांति व ऊंच–नीच का हवाला देते हैं। रवि हेमा को हिम्मत से काम लेने तथा पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर उसका साथ देने की बात करता है, किन्तु हेमा के माता–पिता उसका विवाह अपने से दुगुने व्यक्ति कुंवर युवराज सिंह से कर देते हैं। हेमा अपने परिवार की आर्थिक स्थिति तथा दो छोटी बहनों के भविष्य के विषय में सोचकर हालात से समझौता कर लेती है।

'आकाश पक्षी' उपन्यास सामंती समाज की कुसंस्कृति का कड़ा विरोध करते उन लोगों के लिए एक प्रेरणा स्रोत का काम करता है, जो इस स्थिति से जूझ रहे हैं। साथ ही कथाकार ने भावी पीढ़ी के समक्ष प्रगतिशील दृष्टिकोण को रखने का प्रयास किया है। वस्तुतः उपन्यास में खोखले सामंती जीवन तथा भावी पीढ़ी के संघर्ष को यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत किया गया है।

सुन्नर पांडे की पतोह

'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास साधारण ग्रामीण नारी के जीवन संघर्ष की करूण गाथा है। यह उपन्यास स्त्री जीवन की विडम्बना एवं विवशता का चित्रण करता है कि समाज में परित्यक्ता अथवा विधवा स्त्री को किन–किन कठिनाईयों से गुज़रना पड़ता है। सुन्नर पांडे की पतोह घर के बाहर व भीतर अपने अस्तित्व व शील को बचाए रखने के लिए निरंतर

संघर्ष करती रहती है। उपन्यास के माध्यम से समाज की विसंगतियों एवं कुरूपताओं का उद्घाटन किया गया है।

सुन्नर पांडे की पतोह, राजलक्ष्मी उर्फ कतवरिया उपन्यास की केन्द्रीय पात्र है। राजलक्ष्मी अपने माता–पिता की इकलौती सन्तान थी। उसका लालन–पालन अत्यधिक लाड़–प्यार से हुआ था। बचपन में ही राजलक्ष्मी का विवाह सुन्नर पांडे के पुत्र झुल्लन पांडे से हो जाता है। विवाह पश्चात् वह सुन्नर पांडे की पतोह के नाम से पहचानी जाने लगती है। विवाह पश्चात् ससुराल में राजलक्ष्मी को सास–ससुर द्वारा परेशान किया जाता है। बेटा कहीं हाथ से न निकल जाए इसी डर से सास बेटे–बहू का मेल नहीं होने देती। पर किसी तरह जब दोनों का मिलन हो जाता है, तब राजलक्ष्मी को विभिन्न प्रकार की यातनाएं दी जाती है, इन्हीं सब के चलते राजलक्ष्मी की दो संतानों का निधन हो जाता है। झुल्लन पांडे तंग आकर घर छोड़कर भाग जाता है। पति के चले जाने के पश्चात् सौतेली सास उस पर लांछन लगाती है तथा विभिन्न प्रकार से यातनाएं देती है। वह सब कुछ चुपचाप सहन करती रहती है। इधर मायके में भी माँ–बाप का देहांत हो जाता है। राजलक्ष्मी सास–ससुर की यातनाओं से तंग आकर घर छोड़कर चली जाती है।

राजलक्ष्मी एक प्रतिव्रता स्त्री है। इस इच्छा से कि एक न एक दिन उसके पति अवश्य लौटकर आयेंगे। वह बड़े गर्व से माथे पर सिंदूर लगाती है। अब तो सिंदूर ही उसके पति का पर्याय बन गया है। आमतौर पर समाज का यह मानना होता है कि यदि कोई स्त्री परित्यक्ता अथवा विधवा है, भले ही उसमें दोष उसका न हो। फिर भी ऐसी स्त्री को बदचलन की दृष्टि से देखा जाता है। सुन्नर पांडे की पतोह को समाज के सभी वर्ग के पुरूषों में छल और कपट के दर्शन होते हैं। वह गांव से शहर आकर घरों में भोजन बनाने का काम करने लगती है। "अनेक तरह के लोगों के यहां उसने काम किया। कोई नेता, कोई अफसर, कोई व्यवसायी, कोई अध्यापक और कोई क्लर्क। हर जगह लगभग एक ही दृश्य था। जो कुछ ऊपर से दिखाई देता उसका दूसरा रूप भीतर देखने में आता। बाहर से जो सभ्य, प्रतिष्ठित और साफ–सुथरे नज़र आते वे भीतर बेहद चीखते–चिल्लाते दूसरे की बहू–बेटियों को अपने जाल में फंसाने की चालें चलते।"[49] अतः सुन्नर पांडे की पतोह ने अपने सतीत्व की रक्षा हेतु कईं जगहों से काम करना छोड़ा, जहां वह अपने आप को सुरक्षित महसूस नहीं करती थी और दूसरी जगह काम करने लगती, हर घर में औरतों की स्थिति दयनीय ही लगती।

अमरकांत ने प्रस्तुत उपन्यास में सुनरी की कथा के माध्यम से शोषित, पीड़ित नारी की व्यथा को उजागर किया है, वहीं सुशीला के माध्यम से कथाकार ने बदलते परिवेश की ओर इंगित किया है। जब सुशीला का विवाह उसके पिता पैंतालीस वर्षीय विधुर से करना चाहते हैं, तब सुशीला इसका कड़ा विरोध करती है। अंत में बेनी प्रसाद अपनी बेटी की इच्छाओं के

सामने झुक जाते हैं और उसका विवाह सुमेरचंद्र से कर देते हैं, जिससे सुशीला प्रेम करती है। उपन्यास में आए सभी पात्र कहीं न कहीं से सुन्नर पांडे की पतोह से जुड़ाव रखते हैं तथा उसके द्वारा किये गये उपकार से दबे हुए हैं। एक दिन सुन्नर पांडे की पतोह को यह सूचना मिलती है कि अब झुल्लन पांडे इस संसार में नहीं रहे तो उसे तेज बुखार आता है और अंत में वह प्राण त्याग देती है।

वस्तुतः अमरकांत ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से पुरूष वर्ग के दो मुंहपन और समाज में प्रचलित विकृतियों तथा अंधविश्वासों पर प्रहार किया है। साथ ही स्त्री समाज के वास्तविक समस्या की तरफ समाज का ध्यान खींचने का प्रयास किया है।

ग्राम सेविका

'ग्राम सेविका' उपन्यास भारतीय ग्रामीण परिवेश, भारतीय गांवो की गरीबी, अज्ञान, अंधविश्वास एवं शोषण की झलक प्रस्तुत करता है। स्वतंत्रता पश्चात् सरकार ने गांवों की स्थिति में सुधार तथा शिक्षा के प्रचार प्रसार हेतु ग्रामसेविकाओं की नियुक्तियां की। ये ग्राम सेविकाएं गांव–गांव जाकर अशिक्षित बच्चों व स्त्रियों को एक स्थान पर इकट्ठा कर शिक्षा देती थी। स्वतंत्रता के पश्चात् 1950 के दशक के समय इस प्रकार का कार्य कठिन था। यह उपन्यास नारी के संघर्ष की कथा है, जो गांव में शिक्षा के माध्यम से नई रोशनी उत्पन्न कर विकास की राह खोलती है।

'ग्राम सेविका' उपन्यास की नायिका दमयन्ती है। सारा कथानक उसी के इर्द–गिर्द घूमता है। बाल्यावस्था में ही उसकी मां का निधन हो जाता है। दमयन्ती पर घर की जिम्मेदारी आ जाती है। वह घर का सारा काम करती तथा स्कूल में भी मन लगाकर पढ़ती। इस बीच पड़ौस में रहने वाले अतुल से उसे प्यार हो जाता है। अतुल रूड़की में इंजीनियरिंग का छात्र था। वह भी दमयन्ती से प्रेम करता है, किंतु वह दब्बू किस्म का है। अपने दब्बूपन के कारण वह अपने प्रेम के विषय में माता–पिता को नहीं बता पाता और उसका विवाह किसी और से हो जाता है। अतुल उसकी भावनाओं से खिलवाड़ करता है। इसी बीच दमयन्ती के पिता की भी मृत्यु हो जाती है। दमयन्ती हाई स्कूल पास करके नौकरी के लिए आवेदन करती है। दमयन्ती को विशुनपुर गांव में ग्राम सेविका के पद पर नियुक्ति मिल जाती है।

दमयन्ती जब विशुनपुर गांव में पहुंचती है, तो उसे वहां के अंधविश्वास, निर्धनता तथा शोषण को देखकर घोर निराश होती है। वहां न तो विद्यालय था, न ही अस्पताल। शिक्षा के प्रति लोगों में अजीब धारणा विद्यमान थी। वे शिक्षा से घृणा करते थे। उनका मानना था कि शिक्षित हो उनके बच्चे उन्हें छोड़कर चले जायेंगे। इसके विपरीत दमयन्ती जब गांव–गांव जाकर शिक्षा का महत्त्व समझाने का प्रयास करती है, तो गांव की बुजुर्ग औरतें उसे संदेह की

दृष्टि से देखती है तथा उस पर लांछन लगाती है। दमयन्ती अत्यन्त धैर्य के साथ अपना कार्य करती है। वह गांव वालों से अत्यन्त मधुर स्वभाव रखती है तथा परेशानी में सभी का साथ देती है। वह जमुना के पुत्री की बीमारी का इलाज तथा उसकी देखभाल करती है। इस प्रकार वह गांव के अधिकतम लोगों का विश्वास जीत लेती है।

यहां दमयंती, जंगी, अहीर, हरचरण व जमुना आदि पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने सामाजिक प्रगतिशील चेतना का आह्वान किया है। सभी गांव वाले मिलकर गांव के सबसे प्रभुत्व सम्पन्न व्यक्ति प्रधानजी के प्रति विद्रोह कर देते हैं। हरचरण गांव वालों को समझाते हुए कहता है कि – "हमें शांति और धैर्य से काम लेना चाहिए। प्रधान हम लोगों से इसलिए नाराज है कि हम अपनी गरीबी और अज्ञानता को दूर करना चाहते है। उनको डर है कि अगर गांव के लोग तरक्की कर गए, तो वह शोषण कैसे कर सकेंगे। गरीबों का शोषण करके ही तो वे मोटे हुए है। वे समझते है कि वे डरा धमकाकर व मार–पीटकर जनता को दबा देंगे। लेकिन यह असंभव है। हमकों एक नया प्रधान चुनना चाहिए। वह प्रधान गरीबों का आदमी होगा। वह अपने नेतृत्व में पूरे गांव को तरक्की के रास्ते पर ले जाएगा। गांव के लोगों को अब अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। उनको पढ़ना–लिखना चाहिए।"[50]

प्रस्तुत उपन्यास में जहां ग्रामीण समस्याओं को उजागर किया गया है। वहीं उन समस्याओं से संघर्षरत होते हुए उनको दूर करने का मार्ग भी बताया गया है। साथ ही अशिक्षा तथा पिछड़ेपन के कारण गांवों में नारी की स्थिति तथा उसके शोषण का भी चित्रण किया है। उपन्यास में इन सभी समस्याओं का निराकरण शिक्षा के माध्यम से करने पर जोर दिया गया है।

बीच की दीवार

'बीच की दीवार' उपन्यास युवा वर्ग के मन की विचित्रताओं तथा अवसरवादिता को ध्यान में रखकर लिखी गई रचना है। उपन्यास की नायिका दीप्ति अत्यधिक लाड़–प्यार में पली–बढ़ी है। दीप्ति अत्यधिक जिद्दी स्वभाव की है। उसके कहने मात्र से ही उसके पिता उसकी हर इच्छा पूरी कर देते हैं। इस प्रकार अत्यधिक लाड़–प्यार के कारण दीप्ति घमण्डी, नखरैल, भावुक, काहिल तथा डरपोक हो जाती है। दीप्ति का भाई शंकर रेलवे में कर्मचाी था। शंकर के चार दोस्त अशोक, मनफूल, मोहन तथा कमल थे। ये चारों शंकर के यहां रोजाना गप्पबाजी करते, बहस करते तथा महफिले सजाते। शंकर स्वयं अच्छी बांसुरी बजा लेता था। अशोक कॉलेज में पढ़ता था। मनफूल वकील तथा मोहन शोध–छात्र था। इन चारों दोस्तों की नजरें दीप्ति पर ही लगी रहती तथा दीप्ति भी अपनी हरकतों से चारों को आकर्षित करने की कोशिश करती।

शंकर के सभी दोस्त अपने–अपने तरीके से दीप्ति को खुश करने की कोशिश करते है। दीप्ति सर्वप्रथम अशोक के प्रति आकर्षित हो जाती है, किन्तु सखी कांति व अशोक की नजदीकियों की वजह से वह अशोक से मन ही मन नाराज भी होती है। मनफूल की शादी लीला से हो चुकी है। इसके उपरान्त भी मनफूल दीप्ति को अपने प्रति आकर्षित करने में सफल होता है। एक दिन मनफूल की पत्नी लीला, दीप्ति और मनफूल को एक पार्क में एक–दूसरे को आंलिग्नबद्ध अवस्था में देख लेती है। लीला दीप्ति पर सेण्डिल से प्रहार करती है। इस घटना का दीप्ति पर असरदार प्रभाव पड़ता है। दीप्ति के स्वभाव में बदलाव आ जाता है। वह गम्भीर स्त्री के समान आचरण करने लगती है। इसी के चलते मोहन के मामा गोपाल बाबू की लड़की सुधा का विवाह तय हो जाता है।

गोपाल बाबू तथा दीप्ति के पिता मुन्नीलाल का मकान सटा हुआ था। मोहन के द्वारा यह प्रस्ताव रखने पर कि गोपाल बाबू दीवार के बीच एक दरवाजा बना दें, तो दोनों घरों को एक–दूसरे से जोड़ा जा सकेगा और विवाह के लिए पर्याप्त जगह का इंतजाम भी हो जायेगा। मुन्नीलाल भी इसके लिए सहर्ष स्वीकृति दे देते हैं। मोहन और दीप्ति शादी की तैयारी में काफी मेहनत करते हैं और इसी बीच दोनों की नज़दीकियां बढ़ जाती है। मोहन अवसर पाकर दीप्ति को अपने प्यार का इज़हार कर देता है। दीप्ति और मोहन दोनों विवाह के बंधन में बंधने का प्रण लेते हैं। अन्ततः आर्य समाज मे कॉलेज के प्राचार्य तथा मित्रों के सहयोग से दीप्ति और मोहन का विवाह हो जाता है।

वस्तुतः यह उपन्यास मध्यम वर्ग की बदलती हुई परिस्थितियों एवं मनः स्थितियों का विश्लेषण करने वाली एक विशेष कृति है। इसमें अमरकांत ने आज के जीवन के अर्न्तद्वन्द्वों व अर्न्तविरोधों की प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत की है। इस उपन्यास के केंद्र में एक ऐसी नारी है, जो आज के अवसरवादी जिंदगी के भंवर जाल में फंसकर संघर्ष करती है, आगे बढ़ती है और विकास की वांछित मंजिल प्राप्त करने में सफल होती है। पूरा उपन्यास जहां हमें आनंदित करता है, वहीं सामाजिक बदलाव के लिए आस्था व विश्वास भी प्रदान करता है।

कंटीली राह के फूल

'कंटीली के राह के फूल' उपन्यास अनूप, मधु तथा कामिनी के त्रिकोण प्रेम की कहानी है। उपन्यास में युवा मन के अर्न्तद्वन्द्वों अनूप की हीन भावना और उसकी प्रेरक स्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। अनूप गांव से शहर बी.ए. की पढ़ाई करने यूनिवर्सिटी आता है। वह बी.ए. प्रथमवर्ष का छात्र है। पढ़ने में उसका मन नहीं लगता, लेकिन वह एक अच्छा खिलाड़ी है। आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये इस उपन्यास का विकास स्वयं नायक अनूप के माध्यम से हुआ है।

अनूप का मित्र धीरेन्द्र उसे अपने घर पर जलसे में आमंत्रित करता है। धीरेन्द्र के घर पर अनूप की मुलाकात उसकी बहन कामिनी से होती है। कामिनी के प्रति वह आकर्षित हो जाता है। एक दिन कामिनी अनूप को यूविर्सिटी के कुछ छात्र–छात्राओं द्वारा मिलकर बनाई गई एक समिति में ले जाती है, जिसका नाम रखा गया है – 'कंटीली राह के फूल'। समिति के इस नाम का अर्थ है–कंटीली राह हमारा परिश्रम हमारी कर्मठता और ज्ञान के अन्वेषण की हमारी आकांक्षा उसी में हम खिल सकते है फूल की तरह। एक बात पर हम जोर देते है कि हर आदमी को समझना चाहिए कि वह साधारण मानव है। वह किसी से बड़ा नहीं है और अगर उसमें कोई गुण है तो वह समाज की धरोहर है। यानि इसका मतलब है कि समाज का विकास करने के लिए हर व्यक्ति को अपने गुणों का विकास करना चाहिए।"[51] इस समिति का उद्देश्य समाज के उपेक्षित, पीड़ित तथा आर्थिक रूप से कमजोर लोगों की समस्याओं को जानकर, बिना किसी सरकारी सहयोग के जितना संभव हो सके, उनकी मदद करना है। कामिनी इस समिति के कार्यों में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेती है। इसी दौरान अनूप की मुलाकात मधु से होती है। मधु अनूप की मकान मालिक की भतीजी है। मधु अत्यन्त धनवान परिवार में पली–बढ़ी है। मधु के लिए घूमना–फिरना, मस्ती, रोमांस, शान–शौकत यही जिंदगी है। अनूप उसके साथ घूमता–फिरता, फिल्म देखता, दोनों अधिकतम समय साथ में व्यतीत करते। इस तरह अनूप व मधु दोनों एक–दूसरे से आकर्षित हो जाते हैं।

एक ओर कामिनी में जहां गंभीरता, शिष्टता और स्पष्टता है, वहीं दूसरी ओर मधु अल्हड़, उच्छृखंल तथा फैशन परस्ती में उलझी है। कामिनी साहसी है तथा आगे बढ़ने की इच्छा रखती है, जबकि मधु में स्वार्थ, संकीर्णता और दुर्बलता है। दोनों में तीन और छह का संबंध है। अनूप कामिनी से प्रेम करता है और मधु से उसे मोह है, लेकिन अपने शर्मीले और दब्बू स्वभाव के कारण वह दोनों पर ही प्रेम प्रकट करने में असफल रहता है। कामिनी अनूप को हृदय से प्रेम करती है, उसके प्रेम में दिखावा और वासना नहीं है। मधु भी अनूप को प्रेम करती है, लेकिन उसके प्रेम में स्वार्थ, दिखावा, मांसलता तथा वासना है। अनूप सब कुछ जानते हुए भी अपने फैलाये विचारों व अर्न्तद्वन्द्वों में फंसा रहता है। अन्ततः अनूप अपनी मंजिल कामिनी को पाने में सफल होता है।

इस प्रकार से प्रस्तुत उपन्यास में कथाकार युवा मन के अर्न्तद्वन्द्वों में झांकता हुआ, पुरूष वर्ग की हीन भावना को टटोलता है तथा अनेक बार कही गई त्रिकोणीय प्रेम कथा को एक नए ढंग से एक नई वैचारिक पृष्ठभूमि के साथ पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस लघु उपन्यास में "कथ्य के स्तर पर किशोरमन की रांमोटिक यथार्थता और जिंगदी में बार–बार छूट गए संदर्भों की एक विशिष्ट पहचान है।"[52]

लहरें

'लहरें' उपन्यास पुरूष समाज द्वारा स्त्रियों पर किये गये अत्याचार व अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने तथा संघर्षरत स्त्रियों के आन्दोलित मन की कथा है। स्त्रियों के स्वावलम्बन बनने और समाज में पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त हो यह परिवर्तन तभी संभव है, जब स्त्रियां एक जुट होकर इसके विरूद्ध एक संगठन बनाए। पुरूष वर्ग को भी अपने अधिकारिक रवैये और दकियानूसी विचारों में परिवर्तन करना चाहिए। समाज को यह मानना चाहिए कि स्त्री–पुरूष एक–दूसरे के पूरक है। वे बनावट व प्रकृति से भिन्न होते हुए भी परस्पर सहयोगी है।

लहरें उपन्यास एक अनपढ़, कुरूप, गंवार स्त्री के रूप में बच्ची देवी के शोषण की कथा है। बच्ची देवी का विवाह पढ़े–लिखे नौकरी पेशा पुरूष श्यामा प्रसाद से कर दिया जाता है। श्यामा प्रसाद को विवाह के पश्चात् इस सच्चाई का पता चलता है कि बच्ची देवी अनपढ़ तथा बदसूरत है, तो वह उसके पिता से नाराज हो बच्ची देवी, घर और गांव को छोड़कर शहर में रहने लगता है। एक दिन उसे पिता का पत्र मिलता है, जिसमें लिखा होता है कि वह अपनी अंतिम सांस ले रहें है और वे अब बच्ची देवी का ख्याल नहीं रख सकते। अतः वह अपनी पत्नी को साथ ले जाए। श्याम प्रसाद, बच्ची देवी को शहर ले आता है।

श्यामा प्रसाद जिस मोहल्ले में रहता था, उसे वहां रहते अभी दस माह ही हुए थे। इतने कम समय में ही वह मुहल्ले की स्त्रियों में चर्चा का विषय बन जाता है। घर के कार्यों से निवृत्त हो स्त्रियां फुर्सत के समय गपशप किया करती। इन दिनों श्यामा प्रसाद अपनी हरकतों के कारण उनके वार्तालाप का विषय बना हुआ था। बच्ची देवी के शहर आने पर सभी स्त्रियाँ उससे मिलने के लिए आतुर होती है। जब वे बच्ची देवी से मिलती है, तो वह सोचती है कि गांव की अशिक्षित नारी आज भी शोषित है और उसके साथ अन्याय हो रहा है। श्यामा प्रसाद बच्ची देवी को हर समय डांटता रहता है। मोहल्ले की स्त्रियां सुमित्रा, सरोज बाला तथा विमला के सम्पर्क में आने पर बच्ची देवी के स्वभाव में परिवर्तन होने लगता है। वह अब घर को व्यवस्थित रखने लगती है तथा सिलाई इत्यादि का कार्य भी सीख लेती है। उसे अक्षर ज्ञान तो था ही सुमित्रा इत्यादि की मदद से वह पढ़ना–लिखना भी सीख जाती है, किंतु अहंकारी व दकियानुसी विचारों के श्यामा प्रसाद को अपनी पत्नी का यह बदला रूप बिल्कुल भी पंसद नहीं आता है और वह अपनी पत्नी को घर से निकाल देता है।

बच्ची देवी साहस करके मोहल्ले की अन्य स्त्रियों को बुला लाती है, किंतु जब मोहल्ले की सभी स्त्रियां बच्ची देवी को लेकर श्यामा प्रसाद के यहां पहुंचती है तब वह श्यामा प्रसाद को अचेतावस्था में देखकर डर जाती है। श्यामा प्रसाद बिस्तर पर पड़ा होता है उसे कोई होश–हवास नहीं रहता। डॉक्टर को बुलाया जाता है। स्त्रियों की मंडली के चंदे के पैसे से ही

डॉक्टर की फीस दी जाती है और दवाईयां मंगवाई जाती है। बच्ची देवी द्वारा उसकी सेवा करने से वह जल्द ही ठीक हो जाता है। श्यामा प्रसाद को अपनी गलती का एहसास हो जाता है। अंततः नारी के प्रति उसका दृष्टिकोण भी बदल जाता है। उपन्यास के अंत में बच्ची देवी आशंकित होती है तथा उसके मन में यह डर बना रहता है कि कहीं श्यामा प्रसाद उस पर फिर जुल्म न करने लगे।

इस प्रकार 'लहरें' उपन्यास कस्बाई और ग्रामीण स्त्रियों के संघर्ष, जाग्रति तथा संगठन की जरूरत को रेखांकित करता है। साथ ही स्त्री–पुरूष संबंधो के यथार्थ को चित्रित करता है। वस्तुतः "नारी–पुरूष संबंधों के अनेक रूप एवं आयाम है जिन पर लेखक लोग लिखते ही रहते है। यह एक रचनात्मक कृति है और इसमें नारी–पुरूष सम्बन्धों के कुछ रूप तथा नारी सम्मान के आंदोलन मन की एक झलक प्रतिबिम्बित है।"[53]

बिदा की रात

'बिदा की रात' में अनेक छोटे–छोटे प्रसंग उपस्थित है। इस उपन्यास में स्वातंत्र्योपरांत राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति का वर्णन किया गया है। साथ ही गरीबी, शोषण व नारी की दयनीय स्थिति का भी चित्रण किया गया है। उपन्यास तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में सुल्ताना बेगम के अतीत को दर्शाया गया है। दूसरे भाग में सुल्ताना बेगम के साथ–साथ मुनीर अहमद तथा देश की राजनीति के विषय में वर्णन है। तीसरे भाग में सुल्ताना बेगम और युसुफ के संबंधों को उजागर किया गया है।

सुल्ताना बेगम लकड़ी की टाल पर दूकान पर बैठी युसुफ का इंतजार कर रही है। इंतजार करते–करते सुल्ताना अपने अतीत में खो जाती है। वह तीन बहन और एक भाई में सबसे बड़ी थी। आठवीं कक्षा के बाद उसकी पढ़ाई छुड़ा दी जाती है तथा मां मेहताब बेगम के द्वारा खाना बनाना, सिलाई–कड़ाई करना इत्यादि तरह–तरह के हुनर सिखाए जाते है। सुल्ताना बेगम का विवाह जाफ़रा बाजार के रहने वाले मुनीर अहमद से होता है, जो एंड्रयू कॉलेज में टीचर थे। उनके कई हिंदू–मुस्लिम दोस्त थे। अमृत लाल उनके बचपन का दोस्त था इसके अलावा नसीर इकबाल और महाशय पाण्डे बाद के दोस्त थे। मुनीर अहमद काफी सुलझे हुए और खुशमिजाज इंसान थे। मुनीर अहमद सुल्ताना बेगम को अपने परिवार के विषय में विस्तार से बताते है। वह अपनी बड़ी बहन नईमा, पिता हाजी अब्दुल अजीज और गुरूशरण शर्मा के बीच गहरी दोस्ती थी लेकिन बंटवारे के बाद दोनों में मतभेद हो जाते है। किस प्रकार उनका परिवार पाकिस्तान में बस जाने को विवश हो जाता है। इत्यादि सभी घटनाओं का विस्तार से वर्णन करते हैं।

इस प्रकार सुल्ताना बेगम अतीत की पुरानी स्मृतियों में खोयी रहती है और सुबह से शाम हो जाती है। युसूफ अभी भी घर नहीं लौटा था। उसका बी.ए. का परिणाम आने वाला था। युसुफ जब घर आया तो वह बहुत खुश था। वह प्रथम श्रेणी से पास हुआ था। वह सुल्ताना बेगम को अपने पास होने के साथ–साथ सुरैया के बारे में बताता है, जिसे वह पंसद करता है। सुल्ताना बेगम युसुफ को सुरैया से दूर रहने को कहती है। युसूफ के बार–बार पूछने पर इसका कारण वह युसुफ का हिंदू होना बताती है। वह कहती है कि एक बार वह अपनी बहन फरजाना के यहां वाराणसी गई थी। वहां हिंदू–मुस्लिम सभी के परिवार थे। वे सभी काफी प्रेम से रहते थे। लेकिन एक दिन मजहबी जुलुस में हिंदू परिवार का हरिदार सिंह मारा जाता है। यह सुन उसकी पत्नी जहर खा लेती है और अपने नवजात बच्चे को सुल्ताना बेगम को सौंप देती है। जब युसुफ को पता चलता है कि वह हिंदू है, तो वह घर छोड़कर चला जाता है।

उपन्यास में सुल्ताना बेगम को जाति व मजहब से ऊंचा बताया गया है। वह अपने वचन को बड़ी ईमानदारी से निभाती है। वह युसुफ का लालन–पालन अपने बच्चे की तरह करती है। सचमुच सुल्ताना बेगम धर्म व जाति से ऊपर उठकर इंसानियत की मिसाल कायम करती है, जो इंसान का सबसे बड़ा गुण व धर्म है।

पराई डाल का पंछी

प्रस्तुत उपन्यास निम्न–मध्यवर्गीय नवयुवकों के चरित्र का एक प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है, जिसमें नवयुवकों के मानसिक स्थितियों, आकांक्षाओं, कुंठाओं, विकृतियों, दुष्टता तथा स्वार्थपरता का चित्रण हुआ है। वस्तुतः उक्त उपन्यास का नायक दीपक अपने आपको ऊंचा प्रदर्शित करने के लिए झूठ बोलता है तथा अधूरी कामनाओं के साथ जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। दीपक पढ़–लिखकर बड़ा आदमी बनना चाहता था तथा यूनिवर्सिटी में पढ़ने वाली लड़की से ही शादी करना चाहता था। उसकी ये दोनों ही इच्छाएं पूरी नहीं हो पाती। वह यूनिवर्सिटी की अधूरी शिक्षा प्राप्त कर सामान्य लिपिक की नौकरी करता है। उसका विवाह भी गांव की सामान्य परिवार की अहिल्या से हो जाता है। यद्यपि अहिल्या अन्यतम् सुंदरी है, किन्तु उसमें पढ़ी–लिखी लड़कियों के समान फैशन परस्ती नहीं है।

अहिल्या एक पतिव्रता नारी है। वह सुन्दर व सुशील है। वह घर के सभी कार्यों में प्रवीण है। सारा घर व बच्चों को वह अकेले ही सम्भालती है। पति के घर देर से आने पर वह चिंतित होती है। उसका सारा उपक्रम सिर्फ पति की सेवा करना तथा उसे खुश करने के लिए ही रहता है, जबकि दीपक एक गैर जिम्मेदार व्यक्ति है। वह केवल अपने शरीर के सुख के विषय में ही सोचता है। वह अपने मित्रों के यहां सजधज कर जाता है तथा उनकी पत्नियों से सम्पर्क बढ़ाता है। वहां जाकर वह अपनी पत्नी तथा उनके पतियों की आलोचना करता है। दीपक

के मित्र आनंद की बेटी के जन्मदिन पर जब वह आनंद के घर जाता है, तो वहां विश्वनाथ तिवारी जो दीपक की हरकतों से पूर्व में ही परिचित था, सभी के सामने दीपक का भांडा फोड़ देता है।

विश्वनाथ तिवारी दीपक से कहता है कि – "मैने तो सोच लिया था कि तुमसे कोई बात न करूंगा, किन्तु तुम्हरा ढोंग मुझसे बरदाशत न हुआ। जिसकी पत्नी सुंदर और जवान तुमने देखी उस पर तुमने मित्र बनाने की कृपा की। जहां तुमने देखा कि तुम्हारी फलानी भाभी पतिव्रता है या उसका पति कड़े मिजाज़ का है कि तुम उसके दुश्मन हुए। मुश्किल तो यह है कि तुम अपने को बहुत काबिल और खूबसूरत तथा दूसरों को बेवकूफ और उनकी पत्नियों को व्याभिचारिणी समझते हो। तुम जहां जाते हो, किसी घर में, किसी समारोह में, ट्रेन में कहीं भी, वहां तुम इस तलाश में रहते हो कि कोई खूबसूरत स्त्री या लड़की मिले, जिससे तुम प्यार कर सकते। नहीं, नहीं, तुम नहीं वह तुमसे प्यार कर सकती। लेकिन मित्र, सच मानों, तुम प्यार नहीं व्यभिचार के भूखे हो।"[54] दीपक की समस्त विकृतियों को वह सबके सामने रख देता है।

दीपक यह सब सुनकर भी नहीं बदलता। उसका विकृत मन पड़ोस में रहने वाली रेखा जो कि यूनिवर्सिटी में पड़ती थी को प्राप्त करने में ही लगा रहता है। इसके लिए वह कई प्रकार की योजनाएं बनाता है। कभी वह अपनी पत्नी को आनंद की पत्नी निर्मला के यहां छोड़ आता है, तो कभी अहिल्या को नैहर भेज देता है। इस प्रकार वह रेखा को फांसने में कामयाब होता है और अपनी वासना को शांत करता है। अहिल्या को दीपक और रेखा पर शक हो जाता है। वह निर्मला को इस विषय में बताती है, निर्मला अहिल्या को सचेत रहने और इस समस्या से डटकर मुकाबला करने को कहती है। अहिल्या अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो जाती है। वह रेखा को अपने घर आने से मना कर देती है तथा दीपक को भी वह फटकारती है।

एक रात अहिल्या दीपक व रेखा को साथ में देखकर शोर मचा देती है। इस पर दीपक, रेखा को चरित्रहीन बताकर अहिल्या को मना लेता है। रेखा, दीपक के इस छल को समझ जाती है और वह दीपक को फटकार लगाते हुए अपने से दूर रहने को कहती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि यह उपन्यास दीपक जैसे पुरूषों की कमजोरियों को उभारने में भले ही सफल हुआ हो, लेकिन यह स्त्री समाज के अनेकानेक दुःख दर्द को भी सामने लाता है। साथ ही एक स्वस्थ व संतुलित दाम्पत्य जीवन की ओर भी संकेत करता है।

इन्हीं हथियारों से

प्रस्तुत उपन्यास अमरकांत की रचनाओं में सबसे वृहत् एवं गंभीर है। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि पर

लिखा उतरप्रदेश के एक छोटे जनपद बलिया की कहानी है। सन् 1942 में 'भारत छोड़ो' जन आंदोलन के दौरान बलिया में कुछ समय के लिए ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया था। गांवो में पंचायत सरकारे कायम हुई थी। जन साधरण पर गांधी जी का अभूतपूर्व प्रभाव था। स्वाधीनता आंदोलन की गाथा को प्रकट करने वाला यह उपन्यास ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जिन लोगों ने मिलकर आजादी में अपना योगदान दिया वह साधारण तबके के लोग थे।

अमरकांत ने आम आदमी की सक्रिय भागीदारी तथा उसकी पृष्ठभूमि को भी पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास अनेक पात्रों तथा कथाओं से भरा है। इसमें किसी एक पात्र को व्यापक नायक मान लेना और उसी धारा में रचना का निर्माण करना अन्य पात्रों के साथ अन्याय होगा। प्रस्तुत उपन्यास के सभी पात्र अपने आप में विशिष्ट है। अमरकांत स्वयं प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में कहते है कि—"यह ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है, बल्कि उस आंदोलन से जुड़े व्यक्तियों के निजी अनुभवों, ऐतिहासिक घटनाओं तथा बयालिस से स्वतंत्रता प्राप्ति तक के समय की एक यथार्थवादी परिकल्पना है। वस्तुतः बयालिस के बहाने, एक कल्पित कथा द्वारा इस ऐतिहासिक जमाने का स्मरण किया गया है, जब देश की जनता में स्वाधीनता के लिए विदेशी हुकूमत के विरूद्ध बगावत का झंड़ा उठाते हुए जबरदस्त संघर्ष किया, अनगिनत कुर्बानियां दी और भयंकर दमन का सामना किया।"[55]

नायक विहिन प्रस्तुत उपन्यास में कई पात्र है, जिन्हें स्वतंत्रता सैनानी नहीं कहा जा सकता अर्थात् वे कहीं से भी लड़ाकू सैनिक नहीं दिखाई देते। यथा इन पात्रों में नीलेश छात्र है, गोवर्द्धन व्यापारी, सदाशयव्रत पूर्व पहलवान—डाकू, नम्रता जमींदार की बेटी, भगजोगनी फल—विक्रेता की पत्नी, रमाशंकर साधारण कार्यकता, हरचरण मजदूर, गोपालराम दलित, ढेला वैश्या पुत्री है। ये सभी साधारण वर्ग के लोग है तथा सम्पन्न वर्ग द्वारा सताये, अनेक समस्याओं से दबे हुए दिखाई देते है, किन्तु उन्हें आशा है कि आजादी मिलने पर उनकी हालत बेहतर होगी। इसलिए अपनी—अपनी क्षमतानुसार सभी आजादी की लड़ाई में सहयोग करते है। वस्तुतः प्रस्तुत उपन्यास का नायक बलिया को माना जा सकता है।

अरूण प्रकाश के शब्दों में — "इतने नायकों वाले इस उपन्यास का महानयक है — बलिया। वर्तमान पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक पिछड़ा जिला, कुलीन लोग इस जनपद को सांस्कृतिक पिछड़ेपन का प्रतीत मानते है। लेकिन बलिया वैसा प्रतिवादी प्रतिरोधी और साहसी जनपद है, जो जीवन की कोमलताओं और राग—रंग से भी समृद्ध है। देश के कईं जाग्रत जनपदों की तरह ही भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान बलिया में भी आजाद सरकार का गठन हुआ था। सिद्धान्तकार चाहे तो इस उपन्यास को स्थानीय इतिहास का निम्नवर्गीय प्रसंग कह ले पर यह है 'फैक्ट' से प्रेरित 'फिक्शन' ही और वह भी एक स्वाधीनता सेनानी की कलम से रचा हुआ।"[56]

वस्तुतः उपन्यास में जितने भी महानायकों के नाम आए है जैसे–गांधी, जवाहर लाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, मौलाना आजाद, भगत सिंह, जय प्रकाश नारायण लोहिया आदि की सिर्फ सूचनाएं भर ही प्रस्तुत की गई है।

कथालोचक वेदप्रकाश ने प्रस्तुत उपन्यास के विषय में कहा है कि – "इस उपन्यास में निराशा और मोह भंग नहीं, जीवन में भरपूर आस्था, उत्साह तथा भविष्य की एक कल्पना है, जिसका आधार है साधारण जनता का ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध संयुक्त प्रतिरोध। इस कृति में आशा और आस्था के पीछे स्वाधीनता आंदोलन है, जबकि कहानियों की पृष्ठभूमि में स्वातंत्र्योत्तर भारत की विसंगत जीवन–स्थितियां है, लेकिन यह उपन्यास बताता है कि लेखक के पात्र हमेशा ऐसे निराश और दयनीय नहीं थे। उन्होंने अंग्रेजीराज जैसे भयंकर तूफान का उत्साह से सामना किया है। मामूली नजर आने वाले लोगों ने प्राणों का मोह त्यागकर हंसते–हंसते अपना बलिदान किया है।"[57]

वस्तुतः अमरकांत के प्रस्तुत उपन्यास में वे उस गौरवशाली अतीत के चित्रण और विश्लेषण को लेकर उपस्थित हुए है, जो भविष्य का पाथेय हो सकता है। उपन्यास के साधारण से दिखने वाले पात्रों में जीवन के प्रति आशा, उत्साह, जिजीविषा है तथा समस्याओं के विरूद्ध संघर्षरत व साहसी दिखाई देते है। कथाकार का मानना है कि अपने इन्हीं गुणों रूपी हथियारों से जनता बड़ी लड़ाई जीत लेगी, यही विश्वास उपन्यास का बीज सूत्र है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विमर्श से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि अमरकांत का व्यक्तित्व विभिन्नताओं से परिपूर्ण है। बाल्यकाल से ही उनमें एक साहित्यकार, पत्रकार, गायक तथा स्वतंत्रता सैनानी के रूप में बहुमुखी व्यक्तित्व की जड़े जम चुकी थी। अन्ततः समाज में उन्होंने अपनी पहचान एक साहित्यकार के रूप स्थापित की। वे एक यथार्थवादी लेखक थे, उनका साहित्य भविष्य में झांकने की क्षमता रखता है।

अमरकांत का जीवन संघर्ष का पर्याय ही है। उनके जीवन वृत्त को देखने से स्पष्ट होता है कि उनके जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव, आर्थिक विपन्नता, पारिवारिक दायित्व तथा स्वास्थ्य का असहयोग निरंतर उन्हें परेशान करते रहे, किंतु उनका लेखन कार्य न तो शिथिल हुआ न ही बाधित। वे निरंतर अपनी लेखनी के माध्यम से साहित्यिक जगत् को समृद्ध बनाते हुए समाज को मानवीय संवेदना तथा दायित्वों का भान यथार्थ धरातल पर कराते है।

सन्दर्भ सूची

1. अमरकांत एक मूल्यांकन, रवीद्रं कालिया, पृ. 11
2. अमरकांत एक मूल्यांकन, रवीद्रं कालिया, पृ. 11
3. हंस, अप्रेल 1932, पृ. 40
4. शरत्–शरत् समग्र पंचम खण्ड, पृ. 771
5. कलम का सिपाही, अमृत राय, पृ. 122
6. इलाहाबाद : कहानीकार अमरकांत–वृत्तचित्र से, शोध आलेख और निर्देशक (संजय जोशी), निर्माता–साहित्य अकादमी, 2006
7. इलाहाबाद : कहानीकार अमरकांत–वृत्तचित्र से, शोध आलेख और निर्देशक (संजय जोशी), निर्माता–साहित्य अकादमी, 2006
8. अमर उजाला, इलाहाबाद, बुधवार, 21 सितम्बर 2011
9. इलाहाबाद : कहानीकार अमरकांत–वृत्तचित्र से, शोध आलेख और निर्देशक (संजय जोशी), निर्माता–साहित्य अकादमी, 2006
10. अमर उजाला, इलाहाबाद, बुधवार, 21 सितम्बर 2011
11. अमर उजाला, इलाहाबाद, बुधवार, 21 सितम्बर 2011
12. दर्शन कोश, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1980
13. अमरकांत, वर्ष–1, रवीन्द्र कालिया, पृ. 29
14. History of the freedom movement in India, Trarachand, Vol. I, P. 273
15. India's struggle for independence, Bipin Chandra, P. 38-40
16. सत्याग्रह मीमांसा, रंगनाथ दिवाकर, प्रथम संस्करण, पृ. 52
17. गांधी साहित्य, भाग–5, पृ. 157–159
18. इलाहाबाद : कहानीकार अमरकांत–वृत्तचित्र से, शोध आलेख और निर्देशक (संजय जोशी), निर्माता–साहित्य अकादमी, 2006
19. इलाहाबाद : कहानीकार अमरकांत–वृत्तचित्र से, शोध आलेख और निर्देशक (संजय जोशी), निर्माता–साहित्य अकादमी, 2006

20. इलाहाबाद : कहानीकार अमरकांत–वृत्तचित्र से, शोध आलेख और निर्देशक (संजय जोशी), निर्माता–साहित्य अकादमी, 2006
21. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ. 8
22. इलाहाबाद : कहानीकार अमरकांत–वृत्तचित्र से, शोध आलेख और निर्देशक (संजय जोशी), निर्माता–साहित्य अकादमी, 2006
23. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ. 77
24. Renascent India, Zacharia, P. 17
25. आत्मने पद, स.ही.वा. अज्ञेय, पृ. 167
26. इलाहाबाद : कहानीकार अमरकांत–वृत्तचित्र से, शोध आलेख और निर्देशक (संजय जोशी), निर्माता–साहित्य अकादमी, 2006
27. इलाहाबाद : कहानीकार अमरकांत–वृत्तचित्र से, शोध आलेख और निर्देशक (संजय जोशी), निर्माता–साहित्य अकादमी, 2006
28. कथाकार अमरकांत, विजय कुमार, पृ. 31
29. The Novel and the people, Ralpha fox, p. 20
30. साहित्य संदेश : उपन्यास अंक, अक्टूबर, पृ. 42
31. हिंदी साहित्य का इतिहास, आ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 536
32. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ. 40
33. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 16
34. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचंद, पृ. 70
35. The Novel and the people, Ralpha Fox, p. 81-82
36. साहित्य का साथी, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 83
37. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ. 58
38. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ. 58
39. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ. 58
40. अमरकांत, वर्ष–1, पृ. 298
41. सूखापत्ता, अमरकांत, अपनी बात से

42. कुछ यादें—कुछ बाते, अमरकांत, पृ. 130

43. अमरकांत एक मूल्यांकन, रवीद्रं कालिया, पृ. 301

44. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 202

45. अमरकांत एक मूल्यांकन, रवीद्रं कालिया, पृ. 294

46. काले—उजले दिन, अमरकांत, पृ. 10

47. आकाश पक्षी, अमरकांत, कवर पृष्ठ से

48. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 238

49. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 147—148

50. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 185

51. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 45

52. आधुनिक संदर्भ में आज के हिंदी उपन्यास, डॉ. अतुलवीर अरोड़ा, पृ. 199

53. लहरें, अमरकांत, कादम्बिनी, अक्टूबर—2005, पृ. 120

54. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 56—57

55. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, लेखक की ओर से

56. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, कवर पृष्ठ से

57. भारतीय लेखक वेदप्रकाश, सं. भीमसेन त्यागी, पृ. 48—49

द्वितीय अध्याय

यथार्थवादः स्वरूप एवं विकास

द्वितीय अध्याय

यथार्थवादः स्वरूप एवं विकास

भूमिका

साहित्यकार हमारा मार्ग–द्रष्टा, अगुआ तथा अधिनायक होता है। वह हमारे अंदर मनुष्यत्व को जगाता है, हममें संवेदनाओं के प्राण फूंकता है, हमारी धमनियों में दया, प्रेम, करूणा, सहिष्णुता, सौहार्द, सद्भावनाएं रूपी रूधिर के कण प्रवाहित करता है। वह हमारी कूप मंडूक धारणा को खण्डित कर, व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। साहित्यकार युग द्रष्टा होता है। अपने काल में हो रहे विभिन्न प्रकार के निर्माण, विर्निर्माण, प्रथाओं, कुप्रथाओं, रूढ़ियों तथा परम्पराओं इत्यादि पर उसकी पैनी दृष्टि रहती है। अपने विषय का चुनाव सृजनकर्ता अपने निकटवर्ती वातावरण में घटित घटनाओं से ही करता है। साहित्यकार इन घटनाओं का वर्णन यदि ज्यों का त्यों अपने साहित्य में करता है, तो वह अतियथार्थवाद की संज्ञा में आता है। अतियथार्थवाद में जीवन के कटु सत्य को प्रस्तुत किया जाता है। हमें समाज के भोथरे रूप के दर्शन होते है। यह कुंठित रूप हमें निराशा की ओर ले जाता है, किंतु साहित्यकार का उद्देश्य जीवन के नग्न या भद्दे रूप को प्रकट करना नहीं है। उसका कार्य तो समाज को सत्यता से अवगत कराना है।

साहित्यकार अपनी रचना में समाज के दोनों पहलुओं अच्छा–बुरा, सुंदर–कुरूप, प्रेम–ईर्ष्या, रीति–कुरीति इत्यादि के रंग के मिश्रण को प्रस्तुत कर समाज को एक नवीन सुदृष्टि प्रदान करता है। भक्तिकाल में कबीर ने अपने व्यंग्यपरक दोहों के माध्यम से समाज को यथार्थपरक सुधारक दृष्टि प्रदान करने का प्रयास किया था। वहीं प्रेमचंद ने अपने समाज में हो रहे सामंती अत्याचारों तथा छूआछूत को एक आदर्श मिश्रित यथार्थ के रूप में प्रस्तुत किया।

साहित्यकार का अपना परिवेश जिस प्रकार का होता है यथा – भ्रष्टाचार पूर्ण, अज्ञान और अशिक्षा के बीच पनपते हुए अन्धविश्वास और रूढ़ियाँ जो कि संपूर्ण समाज पर एक कलंक के रूप में है, छल–कपट, दंभ, स्वार्थ, अनैतिकता, छूआ–छूत तथा अमानवीय कृत्यों से परिपूर्ण हो, वैश्वीकरण तथा औद्योगीकरण के युग में मनुष्य एकदम निरीह अथवा असमर्थ बन गया हो, इन सब परिस्थितियों का आंकलन कर सच्चा व ईमानदार यथार्थवादी लेखक अपने साहित्य में चित्रण करता है। क्योंकि सच्चा यथार्थवादी लेखक समाज की इन विरूपताओं से पलायन न कर, इन विकृतियों को कुरेदकर अपनी रचनाओं का विषय बना, समाज को इन विकृतियों का सामना करने का साहस व नई दृष्टि प्रदान करता है।

यथार्थवादी साहित्यकार जीवन तथा समाज की विरूपताओं को समाज के सामने बड़ी कलात्मक विधि से प्रस्तुत करता है। साहित्य की गरिमा को बनाए रखते हुए वह समाज को अपना संदेश देने में भी सफल होता है। यथार्थवाद अपने आप में एक व्यापक विषय है इसे जानने के लिए इसके स्वरूप से परिचित होना नितान्त आवश्यक है।

2.1 यथार्थवाद का पारिभाषिक स्वरूप व प्रकृति

यथार्थ : अर्थ व परिभाषा

'यथार्थवाद' शब्द अंग्रेजी के (Realism) का हिंदी अनुवाद है, जिसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा की 'Res' धातु से हुई है। जिसका तात्पर्य है – वस्तु। इस प्रकार Realism का अशरक्षः अनुवाद हुआ वस्तुवाद।

कजामिन यथार्थवाद को पद्धति न मानते हुए, विचारधारा मानते है। इस संबंध में वे लिखते है – Realism in art is not a method but a tendency."[1]

विश्व साहित्यकोश के अनुसार –

"Traditionally the term 'Realism' refers to the philosophical doctrin that universals exist Independently of ...... this doctrin, First worked out by ploto (**Republic, dnx**)"[2]

जॉर्जल्यूकाक्स यथार्थवादी साहित्य में समाज का यथावत् चित्रण मानते है।

The Realism that the author must honestly record without fear or favour everything he sees around him."[3]

फ्लोबेर "वस्तुगत दृष्टिकोण और जीवन के सामान्य पक्षों के महत्वपूर्ण उद्घाटन को यथार्थवाद की प्रमुख विशिष्टता मानते है।"[4]

उपर्युक्त विचारों के आधार पर यथार्थवाद का अर्थ साहित्य में एक सच्चे यथार्थवादी साहित्यकार का बिना किसी भय और पक्षपात के समाज में जो कुछ भी वह अपने इर्द–गिर्द अनुभव करता है, उसका यथावत् चित्रण करना ही यथार्थवाद है। यथार्थवाद जगत को मिथ्या कहने वाली भावना का विरोधी स्वर है। वस्तु को वास्तविक अथवा यथार्थ मानने के कारण ही इस विचारधारा को वास्तववाद अथवा यथार्थवाद की संज्ञा दी जाती है।

व्युत्पत्ति–"यथार्थ" शब्द 'यत्' अव्यय से 'प्रकार' अर्थ में 'थाल' प्रत्यय होकर निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है – जिस ढंग से, जिस नीति से या जैसे अर्थात् जो वस्तु जैसी हो, उसे उसी अर्थ में ग्रहण करना।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में यथार्थ शब्द की विशुद्ध एवं वैज्ञानिक व्याख्याा प्रस्तुत की गई है। उसी आधार पर हम यथार्थ को विवेचित करने का प्रयास करेंगे।

स्व. द्वारिका प्रसाद शर्मा तथा **पण्डित तारणीश झा** व्याकरण वेदान्ताचार्य ने यथार्थ शब्द को इस प्रकार स्पष्ट किया है – "यथा (अव्यय) (यद्+थाल) जिस प्रकार जैसे ज्यों तथा बाधित, बांधते। उदाहरणार्थ बाधित शब्द कष्ट दे रहे है।

तर्थ – (वि) सत्य, सही, बिल्कुल ठीक। किसी वस्तु का विस्तृत वर्णन ब्यौरेवार या विगत वर्णन (अव्यय) ठीक तौर से उचित रीति से ज्यों का त्यों।"[5]

श्री जयशंकर जोशी ने हलायुध कोश में 'यथार्थ' को इस प्रकार वर्णित किया है – "यथार्थ वर्णः पुयथार्थ यथावृत्त वर्णयति (यथार्थ + वर्ण + अच्) इसके अनुसार वृत्त अर्थात् स्थिति के अनुसार वर्णन करना ही यथार्थ है।"[6]

भट्टाचार्य श्री तारक नाथ तर्क वाचस्पति ने अपने सम्पादित ग्रन्थ 'वाचस्पत्यम्' में लिखा है – "यथार्थ अव्यय अर्थमति क्रमय अव्ययी। सत्यतायाम् अर्थस्या व्यभिचारे सत्य स्वरूपे। अर्थ अद्य च सत्येति। अर्थात् जो अर्थ के अनुसार है, वही यथार्थ है।"[7]

राजा राधाकान्त देव ने अपने ग्रन्थ 'शब्द–कल्पद्रुम' में 'यथार्थ' की व्याख्या करते हुए लिखा है – "व्य की यथातथम् इत्यमर अर्थात् स्थिति के अनुसार वर्णन करना ही यथार्थ है।"[8]

उपर्युक्त व्युत्पत्तियों में विद्वानों ने सत्य की यथातथ्यता वास्तविकता को ही विशेष रूप से अंकित किया है। जिसके अनुसार संसार की वस्तुएं यथार्थ है। यथार्थवाद वस्तु के अस्तित्व संबंधी विचारों के प्रति एक दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्यक्ष एवं इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान ही सत्य है। अतः जो कुछ भी द्रष्टव्य है, वही सत्य है।

विभिन्न पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने यथार्थ के विषय में अपने–अपने मत पकट किये हैं। सर्वप्रथम भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से यथार्थ को समझने का प्रयास करते हैं।

भारतीय विद्वानों के विचार

प्रेमचन्द – "यथार्थवाद में हमारी दुर्बलताओं, हमारी विशेषताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्रण है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है। हमको चारों ओर बुराई ही बुराई नजर आने लगती है। यह सही है कि संसार में व्याप्त बुराईयों का चित्रण भी यथार्थवाद में होता है, परन्तु जीवन की अन्य वास्तविकताओं का भी वर्णन यथार्थवाद में होता है, जो जीवन में केवल निराशा ही नहीं भरता,

अपितु उसके द्वारा प्रेरणा भी ग्रहण करता है। अतः यथार्थवाद जीवन में निराशा ही नहीं, आशा का सुखद संचार भी करता है।"[9] यहां प्रेमचन्द ने यथार्थवाद के वस्तुतत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए उसका सम्बन्ध समाज की वास्तविक परिस्थितियों से स्थापित किया है। उनका मानना है कि समाज की विरूपताओं को यथातथ्य प्रस्तुत करने से ही समाज में इनके वास्तविक रूप को देखा जा सकता है, जिससे कि उनका समाधान किया जा सके। अतः जीवन में आशा का संचार किया जा सके। इस प्रकार यथार्थ का अर्थ नकारात्मक न हो कर सकारात्मक है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी – "यथार्थवाद का मूल सिद्धांत है वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना, न तो उसको कल्पना के विचित्र रंगों से अनुरंजित करना और न किसी धार्मिक या नैतिक आदर्श के लिए उसे कांट–छांट कर उपस्थित करना।"[10]

प्रस्तुत परिभाषा में यथार्थ के वास्तविक स्वरूप का चित्रण किया गया है, तथापि साहित्य में सत्यता को दर्शाने हेतु किंचित कल्पना का आश्रय तो लेना ही पड़ता है, किन्तु नैतिकता और आदर्श के लिए यथार्थ को फेर–बदलकर प्रस्तुत करना यथार्थ के साथ अन्याय करना है। हाँ यथार्थ में आदर्श की किंचित झलक दर्शाकर उसे प्रस्तुत किया जा सकता है।

डॉ. नगेन्द्र – "यथार्थवाद से तात्पर्य उस दृष्टिकोण से है, जिसमें कलाकार अपने व्यक्तित्व को यथासम्भव तटस्थ रखते हुए वस्तु को जैसी वह है, वैसी ही देखता है और चित्रित करता है अर्थात् यथार्थवाद वह विचारधारा है, जिसमें कलाकार या साहित्यकार विवेच्य वस्तु का उसी रूप में वर्णन करता है, जैसी वह उसे देखता है।"[11]

यह परिभाषा भी यथार्थवाद के वस्तुगत तथ्य को ही इंगित करती है, जिसमें साहित्यकार को तो तटस्थ रखा गया है, किंतु साहित्य में घटना को उद्देश्यपूर्ण बनाने हेतु साहित्यकार द्वारा अपने विचारों का मिश्रण करना आवश्यक है।

डॉ. रामअवध द्विवेदी – "यथार्थ निरूपण केवल इसी आकांक्षा से किया जाता है कि समाज की विरोधी शक्तियों के अन्तर्द्वन्द्व का समुचित परिज्ञान हो सके और उसके फलस्वरूप समाज के दलित वर्ग का उत्थान और सामाजिक न्यास की प्रतिस्थापना सम्भव हो सके।"[12]

प्रस्तुत परिभाषा समाज विरोधी शक्तियों का ज्ञान तथा दलित वर्ग के उत्थान व सामाजिक न्यास की प्रतिस्थापना पर बल देती है, जो कि एक सीमित दृष्टिकोण है। यथार्थपरक साहित्य में समाज में व्याप्त अच्छाई–बुराई, नैतिक–अनैतिक, पाप–पुण्य, सभी का चित्रण समान रूप से होता है। इससे समाज में दलित वर्ग का उत्थान व सामाजिक न्यास की प्रतिस्थापना हो ही यह सम्भव नहीं है, किंतु एक सकारात्मक दृष्टि अवश्य प्राप्त होती है।

डॉ. रांगेय राघव – "वही यथार्थवाद श्रेष्ठ है, जो संकुचित सीमाओं के अन्तर्विरोधी को प्रकट करके मनुष्य को कुत्सित मनोवृत्ति से उबारकर उसे व्यापकत्व के आकाश को देखने की दौड़ में धरती को भुला नहीं देता है।"[13]

प्रस्तुत परिभाषा यथार्थवाद के सही अर्थ को व्यक्त करती है। वस्तुतः साहित्यकार अपने साहित्य में विचारों को प्रकट करते समय उसकी सत्यता तथा स्पष्टता को ध्यान में रखते हुए समाज की कुरीतियों से मनुष्य को उबारने का प्रयास करता है, किन्तु उसे पूर्णतः कल्पनालोक में नहीं ले जाता।

गुलाबराय – ने यथार्थ के व्यापक स्वरूप को परिभाषित करते हुए कहा है – यथार्थ वह है, जो नित्य प्रति हमारे सामने घटता है। उसमें पाप–पुण्य, धूप–छाँव और सुख–दुःख मिश्रित रहता है। यह सामान्य भाव भूमि के समतल रहकर वर्तमान की वास्तविकता में सीमाबद्ध रहता है। स्वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए परिदेश की वस्तु है, जो उसकी पहुंच के बाहर है। भविष्य उसके लिए कल्पना का खेल है। वह संसार के हाहाकार तथा करूण क्रंदन का यथातथ्य वर्णन करता है। वह कठोर सत्य को कहने में नहीं हिचकिचाता। वह वास्तविकता के नाते संसार में पाप और बुराई का विजयघोष करने में संकुचित नहीं होता। वह संसार की कलुष कालिमा पर भव्य आवरण नहीं डालना चाहता। वह स्वर्ण को भी कालिमामय मिट्टी के कणों से मिश्रित ही देखना चाहता है। वह उसे तपा–गला कर और उसमें चमक उत्पन्न कर लोगों को चकाचौध में नहीं डालना चाहता।"[14]

शिवकुमार मिश्र – "ज्ञान के ज्ञात पदार्थो में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। पदार्थ का जैसा स्वरूप है, उसका उसी रूप में ज्ञान होता है।"[15]

यथार्थ की वस्तुगत यथातथ्यता पर बल दिया गया है। साहित्यकार द्वारा अनुभूत यथार्थ ही साहित्यगत यथार्थ का विषय होता है।

उपर्युक्त भारतीय विद्वानों के मतों के सार स्वरूप कहा जा सकता है कि किसी वस्तु, तत्त्व अथवा पदार्थ की यथार्थ अनुभूति जो कि वास्तविक जगत् में प्रत्यक्ष एन्द्रिय भूत हो उसका यथातथ्य वर्णन अथवा निरूपण ही यथार्थ है।

पाश्चात्य विद्वानों के मत

हावर्ड फास्ट – "यथार्थवाद ही वह साहित्यिक संश्लेषण है जो चुनाव और सृजन के द्वारा यथार्थ के बारे में पाठक की समझ को बढ़ाता है।"[16]

यहां यथार्थ एक साहित्यिक दृष्टा के रूप में है, जो स्वयं चिन्तन को समाज पर आरोपित करता है, जो सम्भव नहीं है। वस्तुतः वह तो समाज की सच्चाई को ज्यों का त्यों वर्णन करता है।

मैक्सिम गोर्कि – "यथार्थवाद लोगों तथा जीवन स्थितियों का सत्य तथा यथातथ्य प्रस्तुतीकरण है।"[17] जीवन के अच्छे–बुरे, पाप–पुण्य तथा सुख–दुःख का निर्धारण ज्यों का त्यों यथार्थ में किया जाता है। लेखक को वस्तुगत यथार्थ का निरीक्षण वस्तुपरक दृष्टि से करना चाहिए।

जार्ज जे.बेकर – "यथार्थवाद को कला के साथ जोड़ते हुए उसे कला के एक सूत्र के रूप में प्रस्तावित किया है।"[18]

साहित्य में कला के माध्यम से मानव जीवन के यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति सम्भव है। अतः उपर्युक्त परिभाषा यथार्थ, कला व समाज के मध्य घनिष्ठ संबंध की ओर इंगित करती है।

डेमियन ग्रान्ट – "आप यथार्थवाद में कल्पना की अपेक्षा सृजनकर्ता को विशेष महत्त्व देते है।"[19]

यथार्थ, कल्पना तथा सृजनकर्ता तीनों भिन्न–भिन्न चीजें है, किन्तु आपस में इसमें संबंध देखा जाता है। साहित्य में सृजन के लिए कल्पना का सहारा लिया जाता है तथा साहित्य की उत्कृष्टता हेतु यथार्थ व कल्पना दोनों का ही मिश्रत रूप में होना नितान्त आवश्यक है। वस्तुतः "यथार्थवाद सत्य को उजागर करने वाली कला है, और वह उसे ईमानदारी तथा सम्पूर्ण वस्तुपरकता के साथ उजागर करती है।"[20]

इस प्रकार उपर्युक्त भारतीय तथा पाशचात्य विद्वानों ने यथार्थ के विषय में अपने–अपने मत स्वानुभूति व ज्ञान के आधार पर प्रकट किये है। वस्तुतः सभी विचारकों ने यथार्थ को मानव के सामाजिक संबंधों का स्वतंत्र चित्रण सम्पूर्णता के साथ करने का माध्यम माना है।

यथार्थवाद की प्रकृति

मानव अनुकरण के माध्यम से सीखता है। यह सम्पूर्ण समाज उसके सीखने व अनुकरण करने का अनुभवगम्य स्थल है। समाज में उसके इर्द–गिर्द जितने भी वस्तुगत तत्व है, सभी से वह प्रभावित हो स्वानुभूतिपूर्ण अभिव्यक्ति प्रकट करता है। इसी प्रकार उसके सीखने का क्रम निरंतर विकसित होता रहता है। मनुष्य वस्तुगत सत्यता को जानते हुए अनुभव ग्रहण करता है। अतः यथार्थवाद अपनी प्रकृति में नकारात्मक न होकर सकारात्मक, कलात्मक और सृजनात्मक होता है। प्रत्येक मनुष्य सम्पूर्ण जगत् के सत्य को उसके वास्तविक रूप में ही देखना व भोगना चाहता है। संसार में जो भी दिखाई देता है, वह यथार्थ है। मनुष्य प्रत्येक वस्तु को अलग–अलग ढंग से अनुभव करता है। इसलिए सभी का दृष्टिकोण यथार्थ के विषय में भिन्न–भिन्न प्रकृति का है। भौतिकवादी यथार्थ को स्थूल रूप में देखता व स्वीकार करता है। दर्शनवादी यथार्थ के सूक्ष्म रूप को ही मानता है और उसके प्रत्येक पहलू का अध्ययन करता है। इस प्रकार यथार्थवादी

साहित्यकार वस्तुगत तत्त्व को देखकर अपनी संवेदनाओं से सामंजस्य स्थापित कर अपनी कलात्मकता के माध्यम से स्वानुभूति को ही साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

इस संबंध में शिव कुमार मिश्र ने लिखा है – "यथार्थवादी रचनकार इस अनन्त रूपात्मक जगत तथा उसके समूचे विस्तार को पैनी नजरों से देखता है, व्यापक सामाजिक जीवन में प्रविष्ट हो नाना प्रकार की स्थितियों तथा चरित्रों से साक्षात्कार करता है, अनुभवों की एक मूल्यवान समष्टि का स्वामी बनता है, किन्तु सारी बातों को 'फोटोग्राफिक' शैली में ज्यों–का–त्यों प्रस्तुत नहीं कर देता। सारी घटनाओं तथा पात्रों को, सामाजिक जीवन से प्राप्त अपने यथार्थ अनुभवों की खराद पर चढ़ाता है, उन्हें तराशता है, नुकीला बनाता है और अपनी कृति के अंतर्गत उनकी कलात्मक नियोजना करता है।"[21]

उपर्युक्त विचार समाज के कटु यथार्थ की ओर इंगित करता है। समाज में व्याप्त बुराईयाँ जो कि अपने बेडोल आौर विकृत रूप में होती है। साहित्यकार उन्हें अपनी स्वानुभूति की खराद पर चढ़ाकर उन्हें सुडोल और चिकना बनाता है। वह सभी घटनाओं व पात्रों को उनकी बुराईयों के साथ–साथ उनकी अच्छाई तथा सुधारात्मक दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत करता है।

"फोटोग्राफिक" शैली जहां एक पत्र के माध्यम से वस्तुस्थिति का चित्र प्रस्तुत करती है, वहां यथार्थवादी शैली द्वारा प्रस्तुत चित्रों के पीछे एक सचेतन प्राणी का योग होता है। 'फोटोग्राफिक' शैली के माध्यम से वस्तु जगत के यांत्रिक प्रतिबिम्ब ही उभरते हैं, जबकि यथार्थवादी कलाशैली का चुनाव भी करती है। वह सतह के ऊपर की दृश्यावली को ही अंकित न कर सतह के भीतर दबी शक्तियों का रूप भी उभारती है।"[22]

लुकाच का मानना है – "हमारी आदिम वृत्तियाँ स्वच्छन्द साहित्य को जन्म देती है। जीवन के यथार्थ बोध को ग्रहण करने वाले चेतन मन का प्राधान्य यथार्थवादी साहित्य को और जब सद्–असद् वृत्तियों को निरूपित करने वाले चेतन मन का प्राबल्य होता है, तो अभिजात साहित्य की उत्पत्ति होती है।"[23]

लियोट्रास्की का विचार – "एकमेव यथार्थवाद ही उभरते हुए नए जीवन को स्वीकार्य है। नए कलाकार को उन सभी पद्धतियों और तरीकों की जरूरत होगी जो जिंदगी को आत्मसात करने के लिए कुछ नए उपकरण भी चाहिए। निश्चित रूप से वह किसी कलात्मक बहु–दर्शनवाद को अस्वीकार करेगा, क्योंकि कलागत एकता की सृष्टि एक सक्रिय विश्व–दृष्टिकोण तथा जीवन संबंधी दृष्टिकेण के द्वारा ही संभव है।"[24]

वस्तुतः लियोस्ट्रास्की का दृष्टिकोण यथार्थवाद के प्रति सकारात्मक व उपयोगितावादी है। वह यथार्थवाद को जीवन–दर्शन मानते है। साथ ही लुकाच का मानना है कि

साहित्य का अभिजात या स्वच्छंदतापरक होना हमारी आदिम वृत्तियों से जुड़ा हुआ है। अतः हमारी वृत्तियां ही साहित्य की प्रकृति का निर्धारण करती है।

डॉ. त्रिभुवन सिंह ने यथार्थ के रचनात्मक पक्ष का उद्घाटन करते हुए कहा है कि – "यथार्थवाद का एकमात्र लक्ष्य वस्तु जगत् की स्थितियों को समक्ष रखते हुए सुन्दर से सुन्दरम् स्थितियों की ओर समाज को उन्मुख करना है।"[25]

अधिकांश भारतीय तथा पश्चिमी लेखक यथार्थवाद की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए उसे एकदम वस्तुनिष्ठ, तथ्यमूलक, वस्तुगत तथा नितांत लेखक की निजी अनुभूतियों तथा मान्यताओं से विच्छिन्न तथा वस्तुगत तत्त्व के एक–एक ब्यौरे को ज्यों का त्यों अंकित करने वाला मानते है, किंतु यदि सत्य को बिना लेखक की स्वानुभूति, रचनात्मकता तथा कलात्मक दृष्टि को ही प्रस्तुत किया जाए तो पाठक के सामने उसकी जो आकृति आएगी वह विरूप होगी।

वस्तुतः यथार्थवादी दृष्टि व्यापक होती है। वह पूरे घटनाक्रम को उसके दोनों पहलुओं को देखने का प्रयास करती है। वह परिदृश्य में निहित समाज की विषमताओं तथा उसके दूरागत कारणों के साथ–साथ सुधारात्मक दृष्टिकोण तथा उसके दूरगामी परिणामों को भी देखने का सामर्थ्य रखती है।

निष्कर्षतः यथार्थवाद की प्रकृति के निर्धारण में रचनाकार का दृष्टिकोण ही उत्तरदायी है। सच्चा यथार्थवादी लेखक प्रथमतः समाज में व्याप्त विषमताओं का अध्ययन करता है, तथ्यों के संकलन पश्चात् वह उन्हें अनुभव के माध्यम से अपनी सृजनात्मक तथा कलात्मक दृष्टि से तौलता है। सत्य को बनाये रखने के लिए वह घटना तथा पात्रों को उनके यथावत् रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, किन्तु इससे पूर्व वह अपने मन में उन घटनाओं तथा पात्रों का एक आयाम स्थापित कर लेता है। तत्पश्चात् रचनाकार अपने भावों तथा संवेदनाओं का पुट उसमें मिश्रित करता है, क्योंकि संवेदनाहीन रचना का निर्माण करना उसी प्रकार असंभव है, जिस प्रकार बिना चेतना के जीवन निर्माण करना। संवेदना यथार्थवादी साहित्य में प्राणतत्त्व का कार्य करती है। साहित्यकार द्वारा यथार्थ को स्वानुभूति से रीझने–बुझने के पश्चात् वह पाठक जगत में यथार्थ की अभिव्यक्ति करता है।

यथार्थ के निकटवर्ती संदर्भ

यथार्थ से ही मिलते–जुलते कुछ शब्द है, जो किसी न किसी रूप में एक–दूसरे से जुड़े हुए प्रतीत होते है। ये सभी किसी न किसी तरह एक–दूसरे को प्रेरित तथा प्रभावित करते हुए प्रतीत होते हैं। यथार्थ के ये निकटवर्ती सन्दर्भ कई बार एक ही रूपरेखा को प्रदर्शित करते दिखाई देते हैं। अपने मूलरूप में ये संदर्भ एक–दूसरे से किस प्रकार अन्तर्सम्बन्ध

रखते है तथा इनके अलगाव की क्या स्थिति है? इन सब का विश्लेषण हम निम्न निकटवर्ती संदर्भों के माध्यम से करेंगे।

वास्तविकता

यथार्थ के निकटवर्ती संदर्भ में सर्वप्रथम जो नाम सामने आता है, वह है वास्तविकता। वास्तविकता के कईं अर्थ है जैसे – हकीकत, असल, मूल, असलयत अर्थात् जो अस्तित्व में हो। यथार्थ का अर्थ जो जैसा हो उसी रूप में स्वीकार करता है। दोनों में अन्तर्सम्बन्ध के साथ–साथ सूक्ष्म अन्तर भी देखने को मिलता है।

"यथार्थ और वास्तविकता में मुख्य अंतर यह है कि यथार्थ में उचित और न्यायसंगत होने का भाव प्रधान है और उसका अर्थ है जैसा होना चाहिए वैसा, परन्तु वास्तविकता मुख्यतः इस भाव का सूचक है कि किसी चीज या बात का प्रस्तुत या वर्तमान रूप क्या अथवा कैसा है।"[26]

वास्तविकता अपने मूल रूप में वास्तविक, अपरिवर्तित तथा अविकृत होती है। उसमें गत्यात्मकता तथा परिवर्तन की संभावना नगण्य होती है। यथार्थ में वास्तविक स्थितियों को ग्रहण करके उनको घोषित करने के उपरांत अभिव्यक्ति होती है।

वास्तविकता एक दिक् सापेक्ष बोध है, जो विभिन्न कारणों से व्यक्तिशः पृथक्–पृथक् हो सकती है, जबकि यथार्थ काल विशेष के तथ्य को संवेदनात्मक दृष्टि से पोषित करता है। इस संदर्भ में डॉ. जयसिंह 'नीरद' ने लिखा है – "हम यथार्थ को काल की प्रवाहमानता और उसकी सापेक्षता से अर्जित एक संवेदनात्मक दृष्टि के रूप में प्राप्त करते हैं।"[27]

वस्तुतः मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है और इसी कारण वह अन्य प्राणियों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ है। मनुष्य की यही विचार शक्ति किसी दिक् और काल में बंधी हुई नहीं है। वह जिस वस्तु के सम्पर्क में आता है। उसकी सत्यता की खोज वह निरंतर करता रहता है। अपनी रचनाशीलता में वह काल विशेष को बांधने की क्षमता रखता है। मनुष्य जिस दिक् को अपने दृष्टिकोण से देखता है, उसे प्रमाणित करने के लिए जिन तर्कों का वह सहारा लेता है, उन तर्को को अंतत वह सत्य मान लेता है, जिसे हम वास्तविकता कहते है।

सत्य

सत्य एक भाव है, जो निश्छलता, पवित्रता और अहिंसा का प्रतीक है।

महाभारत के उद्योग पर्व में सत्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई है – "सत्यं सत्येन दृश्यते अर्थात् सत्य का दर्शन सत्य से ही होता है।"[28]

एल्विस प्रेस्ले – "सच सूरज की तरह है, आप उस पर कुछ देर के लिए पर्दा डाल सकते हैं, पर वह कहीं जाने वाला नहीं।"[29]

विंस्टन चर्चिल – "सत्य अकाट्य है। दोष इस पर हमला कर सकता है, अज्ञानता इसका उपहास उड़ा सकती है, लेकिन अंत में सत्य ही रहता है।"[30]

मार्क ट्वैन – इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं कि सच कल्पना से अनोखा है, कल्पना का कोई अर्थ होना चाहिए।"[31]

महात्मा गांधी – "सत्य बिना लोगों के समर्थन के भी खड़ा रहता है, वह आत्मनिर्भर है।"[32]

डॉ. त्रिभुवन सिंह – "जो कुछ है, वह सत्य है। जो कुछ हम देखते है या सुनते है, जिसका अनुकरण या अनुमान करते है, जिसकी कल्पना करते हैं, जिसे बुद्धि से जानते है अथवा जिसका हमें आभास होता है, वह सब है, इसलिए सत्य है।"[33]

डॉ. लक्ष्मीकांत वर्मा – "सत्य यह पृथ्वी है, सत्य में ग्रह–उपग्रह है, सत्य इस धरती की सीमाएं है, सत्य जीवन की विकासशील प्रवृत्ति है, सत्य मनुष्य का संघर्ष है और इसी संघर्ष में रत मानव गीत, प्रगीत, जय–पराजय, अश्रु, स्वेद, सफलता ये सब यथार्थ के गुण है, जीवन के लक्षण है।"[34]

उपरोक्त सभी परिभाषाएं जीवन और व्यक्ति में चारों ओर के व्याप्त सभी तत्त्वों को सत्य मानकर उसका विश्लेषण करती है। यह सभी तत्त्व यथार्थवाद के महत्वपूर्ण तथ्य है, किन्तु यही यथार्थवाद नहीं है। यथार्थवाद परिवेश में व्याप्त पदार्थों का ज्यों का त्यों चित्रण न कर उसमें कलात्मकता तथा सृजनात्मकता का मिश्रण कर अभिव्यक्त होता है। इस विषय में हावर्ड फास्ट ने लिखा है – "यथार्थवाद ही वह साहित्यिक संश्लेषण है, जो चुनाव और सृजन के द्वारा यथार्थ का वर्णन करता है।"[35]

सत्य बुद्धि की उपज नहीं है, वह जीवन की वास्तविकता की देन है, अपनी बोधेन्द्रियों द्वारा हम उसे प्राप्त करते हैं। अतः यथार्थवाद सत्य को आधार रूप में स्वीकार करता है।

यथातथ्यता

यह धारणा कि यथार्थवादी कला मात्र तथ्यपरक है और तथ्यों के संग्रह पर ही विश्वास करती है। यथार्थवाद के संबंध में प्रस्तुत धारणा एक भ्रम मात्र है। कुछ पश्चिमी विचारकों ने यथातथ्यता अथवा तथ्य संग्रहण पर बल दिया है।

एक पश्चिमी विचारक का कथन है कि–"जिस प्रकार विज्ञान विश्व की परिभाषा यांत्रिक शब्दावली में करता है, उसी प्रकार यथार्थवाद का लक्ष्य है, हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभूत जगत् का यथातथ्य वर्णन करना।"[36] इसी संदर्भ मे बाल्जक पर अपनी पुस्तक में एमिल फागे लिखते है–"यथार्थवादी कला का तात्पर्य है जीवन और जगत् को यथातथ्य और निष्पक्ष भाव से देखना और उसी प्रकार उसका चित्रण करना।"[37]

"यथार्थवाद निश्चित रूप से सत्य के प्रति उत्कट आग्रह रखता है। वास्तविकता का सत्य चित्रण उसकी आधारभूत विशेषता है। वह तथ्यों का भी आग्रही है, किन्तु सत्य का, वास्तविकता के सत्य चित्रण का, तथ्यों के प्रति आग्रह का यह अर्थ कदापि नहीं है कि कृति के निर्माण से चिन्तन तथा कला के धरातल पर यथार्थवादी रचनाकार की अपनी कोई सक्रियता नहीं होती। यथार्थवादी रचनाकार तथ्यों को महत्त्वपूर्ण मानता है, किन्तु तथ्य संकलन पर विश्वास नहीं रखता। वह समाचार पत्र का संवाददाता नहीं है कि बिना किसी विचार के भावात्मक या वैचारिक लगाव के वह तथ्यों को ज्यों का त्यों समाचार पत्र में प्रस्तुत कर दे। वह सत्य का जिज्ञासु और शोधकर्ता अवश्य है, किन्तु निरपेक्ष और नीरस सत्य का नहीं। सत्य के लिए सापेक्ष वस्तु है।"[38]

"यथार्थवाद के महान् सृष्टाओं – बाल्जक, तोल्स्तोय, गोर्की, शोलोखोव, प्रेमचन्द आदि का अपना कृतित्व भी इस कथन की पुष्ट करता है कि यथार्थवाद रचनाकार कोरी यथातथ्यता पर विश्वास नहीं करता, कि सत्य सिद्ध होते हुए भी वह सत्य को अपनी कला और वैज्ञानिक विवेक की संगति में ही प्रस्तुत करता है, कि वह विधाता की सृष्टि का यथावत् अनुकरण और चित्रण न कर, अपनी कृति में उसकी पुनर्रचना करता है, कि चिंतन और कला, अनुभव और अभिव्यक्ति, हर धरातल पर वह एक सजग रचनकार की सक्रिय भूमिका निभाता है।"[39]

"जाहिर है कि कोरी यथातथ्यता, अपने निजी विचारों तथा निर्णयों के प्रति कठोर असंपृक्ति, सत्य का निरपेक्ष और विवेकशून्य आग्रह तथा कला की फोटो या दर्पण जैसी धारणा ही 'यथार्थवाद' का सत्य होती, तो हमें न तो 'आलोचनात्मक यथार्थवाद की वे महत्तम उपलब्धियाँ प्राप्त होती है, जिनमें पूंजीवादी व्यवस्था के अतिवादों के चक्र में पिसती कोटि–कोटि सामान्य जनता के प्रति रचनाकारों की अकृत्रिम संवेदनाएं व्यक्त हुई है।"[40]

"यथार्थवाद की शैली यथातथ्यपरक फोटोग्राफिक शैली नहीं है। यथार्थवादी रचनाकार की दृष्टि की एक विशेषता यह भी होती है कि वह बाह्य जीवन की सतह तक ही सीमित नहीं रहती, वरन् उसके भीतर प्रविष्ट होकर उस यथार्थ या सत्य को भी सामने लाती है, जो वर्तमान के यथार्थ से उद्‌भुत होता हुआ आगत का यथार्थ और आगत का सत्य है। वह अतीत को भी अपनी परिधि में खींचती है और इस प्रकार जिस सत्य की प्रतिष्ठा करती है। वह अतीत,

वर्तमान तथा आगत की समष्टि होता है त्रिआयामी होता है। दूसरी ओर सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि दर्पण में वस्तुओं का स्थित प्रतिबिम्ब या उनका जड़ीभूत रूप ही उभरता है, जबकि सच्चे यथार्थवादी रचनाकार की दृष्टि वस्तुओं, स्थितियों, घटनाओं और पात्रों को उनके विकासशील रूप में देखती और प्रस्तुत करती है।"[41]

वस्तुतः यह सही है कि सच्ची यथार्थवादी दृष्टि वस्तुनिष्ठ होती है, किंतु वह मात्र संकल्पनात्मक अथवा यथार्थवादी नहीं होती। यथार्थवादी रचनाकार सच्चे अर्थों में रचनकार तभी है, जब वह व्यापक सामाजिक जीवन से प्राप्त अनुभवों, स्थितियों तथा पात्रों के आधार पर सत्य के प्रति ईमानदार होते हुए एक नये दृष्टिकोण के साथ नयी सृष्टि करता है तथा एक नयी रचना को जन्म देता है। अतः यथातथ्यता हुबहू नकल है तथा यथार्थ में सृजनकर्ता अपनी कलात्मक दृष्टि के माध्यम से सत्य का उजागर करता है। वह सक्षम रूप में अपनी ज्ञानेद्रियों के माध्यम से अनुभवों की समष्टि प्राप्त कर इन्द्रिय बोध भाव या विचार को अपनी रचनात्मकता के सहारे उसकी अभिव्यक्ति करता है।

विरूपता

यथार्थवाद के विषय में एक भ्रांति प्रचलित है कि "वह जीवन के कुरूप, घिनौने तथा वीभत्स पक्षों को प्रश्रय देता है कि उमसें अधम और गर्हित कोटि के पात्रों की प्रमुखता होती है।"[42] यह मान्यता यथार्थ के एकांगी स्वरूप को प्रदर्शित करती है। वस्तुतः प्रकृतिवादी विचारक तथा कुछ पाश्चात्य व भारतीय यथार्थवादी रचनाकारों की छुटपुट कृतियों को दृष्टिगत रखकर ही यथार्थवाद पर यह आरोप लगाना कि वह सत्य की विरूपता को प्रदर्शित करता है न्याय संगत न होगा।

यथार्थवाद के विषय में सत्यता इसके बिल्कुल विपरीत है। यथार्थवादी साहित्य में निश्चित रूप में समाज के दोनों पक्षों का उद्‌घाटन किया है। जिसके एक पक्ष में समाज का कुरूप, धिनौना व दुर्बल पक्ष आता है, तो दूसरे पक्ष में सुन्दर, श्रेष्ठ व सबल पक्ष। जब यथार्थ में सौन्दर्य का चित्रण भी इसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार उसकी विरूपता का। तो केवल उसके घिनौने रूप को ही दृष्टिगत रखते हुए यथार्थ को विरूपता कहना कहां तक उचित है? यथार्थवादी रचनाकार जीवन के प्रति व्यापक दृष्टिकोण रखता है, अतः वह दोनों पक्षों को सम्मिलित रूप से साहित्य में स्थान देता है। यदि वह रचनाकार सत्य का आग्रही है तो उसे जीवन की कुरूपता की ओर भी दृष्टिपात करना ही होगा। यदि एक बार को मान भी ले कि यथार्थवाद में विरूपता का विशेष रूप से चित्रण किया गया है तो इसके लिए कहना होगा कि – "यथार्थवादी साहित्य में निश्चित रूप से समाज तथा जीवन के कुरूप तथा घिनौने पक्षों को चित्रित किया गया है। किन्तु कोई भी कलाकृति यदि वह समाज अथवा जीवन संदर्भता रखती है

और कोई भी रचनाकार यदि वह जीवन को उसकी समग्रता और यथार्थता में प्रस्तुत करने का दावा करता है, तो निश्चित ही उसे जीवन के कुरूप और विभत्स पक्ष से आँखे मिलानी पड़ेगी। यदि वह सत्य का आग्रही है, तो उसे गंदगी की ओर भी दृष्टिपात करना होगा। जीवन में सब कुछ श्रेष्ठ और सुंदर ही नहीं होता, कुरूप और घिनौना भी होता है, यही वह सचमुच मानव जीवन है।"[43]

यथार्थवादी रचनाकारों के इसके चित्रण का एकमात्र उद्देश्य समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा विरूपताओं को सबके सामने लाना था ताकि समाज में इसके प्रति जाग्रति हो और समाज इन विरूपताओं तथा असंगतियों से मुक्त हो सके। अतः यथार्थवादी लेखकों ने इस विरूपता से अपनी आंखे मूंद लेने की बजाए उसे कुरेदना आवश्यक समझा। यदि साहित्यकार द्वारा इन पहलुओं से अपनी नज़र हटा ली जाती तो भी कटु सत्य को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता। अतः यथार्थ के वीभत्स रूप को यदि प्रस्तुत नहीं किया गया तो निश्चित ही सौंदर्य का महत्त्व कम हो जायेगा। इसी सन्दर्भ में बाल्जक ने लिखा है – "जनता हमसे सुंदर चित्रों की मांग करती है, किन्तु उनके नमूने इस समाज व्यवस्था में है कहां? आपके घिनौने वस्त्र, आपकी अपरिपक्वता और असफल क्रांतियां आपका बातूनी पूँजीपति, आपका मृत धर्म, आपकी निष्कृट शक्ति, बिना सिंहासन के आपके बादशाह, ये सब क्या इतने काव्यात्मक है कि इनका चित्रण किया जाये। हम अधिक से अधिक इनका मखौल उड़ा सकते हैं?"[44]

अतः यथार्थवादी लेखकों ने इस गन्दगी से मुंह छिपाने अथवा ढकने के बजाय उसे कुरेदना उचित समझा। यही बाल्जक ने किया, यही तोलस्तोय ने किया और यही प्रेमचन्द ने। यथार्थवादी साहित्य मनुष्य को निराशावादी तथा नियतिवादी भी नहीं बनाता, अपितु मनुष्य को उसके परिवेश से परिचित कराता हुआ उसे गन्दगी तथा विरूपता के प्रति सचेत करता है ताकि वह विरूपता के उन्मूलन के लिए सनद्ध हो सके। समाजवादी यथार्थ का समूचा रचना–संसार मनुष्य की उदात्तता से भरा हुआ है, जिसमें जीवन के विरूप मूल्यों को उभारकर उसके उन्मूलन का प्रक्रम किया जाता है। सामाजिक मूल्यों को स्थापित करने वाला उक्त यथार्थ मनुष्य की उदात्त जीवन मूल्यों के प्रति आस्था का प्रमाण है।

यथार्थवाद के तत्त्व

यथार्थवाद के निकटवर्ती संदर्भों को जानने के पश्चात् हम उसकी संरचना के आधारभूत तत्त्वों पर विचार करेंगे कि वे कौन–कौन से घटक है, जिनसे मिलकर यथार्थवाद आकार और अन्विति को प्राप्त करता है। यह तत्त्व पृथक् रूप से यथार्थवाद को आकार देने में समक्ष नहीं है, अपितु अपनी समग्रता में ही इससे यथार्थवाद की अवधारणा आकार ग्रहण करती है। यथार्थवाद के प्रमुख घटक तत्त्व निम्न है –

यथार्थ

यथार्थवाद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्त्व है, यथार्थ। क्योंकि यह यथार्थवाद की आधार भूमि है। यथार्थ जीवन की सच्ची अनुभूति है। "जो कुछ भी हमारे परिवेश में विद्यमान है वह सब यथार्थ है। मनुष्य अपने परिवेश में विद्यमान सभी वस्तुगत तत्त्वों को अपने मूल रूप में देखना चाहता है। इसलिए हम देखते है कि साहित्य में भी समसामाजिक वास्वविक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया जाता है।"[45] परंतु यहां यह भी द्रष्टव्य है कि "यथार्थ मात्र वही नहीं है, जो कि हमारे समक्ष अथवा चारों ओर विद्यमान है। वह भी उतना ही जीवित यथार्थ है, जिसे कि वर्तमान के गर्भ से, उसकी ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक परिणति के रूप में सामने लाता है।"[46]

साहित्य में सभी युगों में यथार्थ की परम्परा देखी जाती रही है। यथार्थ का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि पृथ्वी की उत्पत्ति। साहित्य में इसके दर्शन पाश्चात्य साहित्य की देन मानी जा सकती है। इस विषय में रतन भटनाकर ने लिखा है – "साहित्य के सभी युगों में यथार्थ की परम्परा रही है और ग्रीक प्रहसनों में, निम्न वर्गीय चरित्रों के अंकन में, देशकाल चित्रण में अथवा सामान्य अनुभूति का जीवंत विवरण प्रस्तुत हुआ है। शैक्सपीयर, वेनजॉनसन, स्मालेर और वर्डसवर्थ में चारित्रिक वास्तविकता अथवा युग–चित्रण की भूमि पर यथार्थ का भूरि–भूरि उपयोग हुआ है।"[47]

इससे स्पष्ट है कि यथार्थ का अस्तित्व अत्यन्त पुराना है तथा विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों ने अपने साहित्य में इसे स्थान दिया है। वाद के रूप में यथार्थ की प्रतिस्थापना बहुत बाद में हुई है। वस्तुतः यथार्थ, यथार्थवाद का मूल और अनिवार्य तत्त्व है। इसके बिना यथार्थवाद की संकल्पना ही सम्भव नहीं है। जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है, पर इसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है। अतः दोनों में तात्विक दृष्टि से पार्थक्य है। यथार्थवाद हृदय की वस्तु है और यथार्थ उसका मूल स्रोत है।

वैज्ञानिक बोध

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है। ज्ञान का आचरण से आत्मसात करना ही विज्ञान है। (ज्ञाता + कर्ता + विज्ञाता)[48] जिसकी दृष्टियां निम्न बतायी जा सकती है–केवल विश्वास पर किसी बात को स्वीकार करने में संदेह, निरीक्षण–परीक्षण की जिज्ञासा, नवीन ज्ञान का स्वागत आदि। इस दृष्टि से यह कहा जाएगा कि विज्ञान को मनुष्य के समग्र विकास का माध्यम बनना चाहिए। विज्ञान की प्रगति के साथ–साथ साहित्य भी गतिमान है। विज्ञान की दृष्टि

व्यक्तिगत नहीं, सार्वभौमिक है। विज्ञान ने मनुष्य के जीवन में क्रांति उपस्थित कर उसे आधुनिक बनाया है। यथार्थवाद का दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य वैज्ञानिक बोध है, क्योंकि सहित्य जगत में जो यथार्थ है उसका परीक्षण उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि हम अपने खाने–पीने की वस्तुओं का परीक्षण करते है अर्थात् उन्हें जांच–परख कर उपयोग में लेते हैं।

इस सन्दर्भ में **डॉ. त्रिभुवन सिंह** ने कहा है – "यों तो जीवन सर्वदा से ही प्रायः एक ही प्रकार चला आ रहा है, परन्तु उसे निकट से देखने की दृष्टि विज्ञान ने ही पहले–पहल दी। पानी हम सदा से ही पीते रहे और उसका प्रयास यही रहा है कि स्वच्छ और निर्मल जलपान करें। प्रसिद्ध भी है – 'पानी पीजे छानकर' परंतु आज कपड़े से छानकर भी पानी स्वच्छ नहीं हो पाता है। हाँ, स्थूल चर्म चक्षुओं से चाहे वह जितना भी स्वच्छ से स्वच्छ जान पड़े। कारण यह है कि हमें विज्ञान ने लघु वीक्षण द्वारा दिखला दिया है कि स्वच्छ से स्वच्छ जल में भी कीटाणुओं की संख्या गणनातीत हुआ करती है। यह लघु वीक्षण यथार्थ दृष्टि है।"[49]

कुछ लोगों का सोचना है कि वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पन्न साहित्यकार का साहित्य नीरस, स्थूल एवं यांत्रिक हो जाता है जबकि ऐसा सोचना सर्वथा निरर्थक है। वैज्ञानिक यथार्थ बोध से युक्त साहित्यकार सूक्ष्म दृष्टि सम्पन्न हो जाता है। इस दृष्टि से सम्पन्न लेखक या कवि को जीवन के सत्य को जानने के लिए इस मानसिक प्रक्रिया से गुजरना ही पड़ता है। अतः आधुनिक साहित्यकार साहित्य सृजन के लिए वैज्ञानिक बोध अथवा वस्तुगत दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल देता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अभिप्राय – "उस सहिष्णु और उदार मनोवृत्ति से है, जो जीवन को किसी पूर्वाग्रह से पंगु करके नहीं देखती बल्कि उसके प्रति एक बहुमुखी सतर्कता बरतती है। कलाकार या वैज्ञानिक के लिए जीवन में कुछ भी अग्राह्य नहीं है, उसका क्षेत्र किसी वाद या सिद्धांत विशेष या संकुचित दायरा न होकर वह संपूर्ण मानव परिस्थिति है, जो उसके लिए एक अनिवार्य वातावरण बनाती है और जिसे उसका जिज्ञासु स्वभाव बराबर सोचता विचारता रहता है।"[50]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि विज्ञान आधुनिक युग में तथ्यपरक तथा प्रामाणिक दृष्टिकोण परिचायक है। जहाँ विज्ञान ने दुनियां को नई–नई खोजे प्रदान की है। वही समाज में मानव जीवन के विविध मूल्यों को भी प्रभावित किया है।

स्वचेतना

स्वचेतना को आत्मचेतना भी कहा जाता है। यह यथार्थवाद का अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है। स्वचेतना से तात्पर्य है 'आत्मानुभूति से संबंध रखने वाला ज्ञान' अथवा 'व्यक्ति की आन्तरिक चेतना' स्वचेतना के लिए कईं अन्य शब्दों का भी प्रयोग किया जा सकता है, जैसे – ज्ञान, ज्ञानमूलक मनोवृत्ति, बुद्धि, स्मृति, याद, जागरूकता, समझ, होश–हवास आदि।

आत्मचेतना, चेतना की वह अवस्था है, जिसमें जीवों को अपने अस्तित्व तथा कर्मों का ज्ञान रहे। व्यक्ति का यह आत्मबोध ही स्वचेतना कहलाता है।

डॉ. जय सिंह नीरद के विचार से स्वचेतना से आशय है कि व्यक्ति का जीवन और परिवेश के विषय में यथार्थ परक दृष्टिकोण। यद्यपि उसका केन्द्र व्यक्ति होता है, किन्तु उसका प्रसार समाज के रेशे–रेशे में होता है। इस रूप में स्वचेतना, आत्मनिष्ठ व्यक्ति और परिवेशगत समाज धर्मिता को जोड़ने वाली कड़ी है .... विशेष रूप से साहित्य के सन्दर्भ में।"[51]

साहित्यकार अपने चारों ओर के परिवेश से घटनाओं तथा पात्रों का चयन कर अपनी संवेदनात्मक दृष्टि से उनका पोषण करता है। तत्पश्चात् आत्मानुभूति विवेक तथा तर्कबुद्धि के आधार पर विचार कर तब कहीं जाकर कोई कृति हमारे सामने प्रस्तुत होती है। यथार्थ स्वचेतना साहित्य में प्राण तत्त्व का कार्य करता है। तभी तो वह यथार्थवादी रचना कालजयी रचना कहलाती है। नैमीचन्द जैन के शब्दों में – "आधुनिक साहित्य का उद्देश्य है, चेतना के सीमान्त का विस्तार या संघनीकरण, संवेदना की व्यापकता या गहनता, ग्रहणशीलता की परिपुष्टि या उसकी प्रखरता की स्थिति को यथावत् बनाये रखने की प्रकृति को चुनौती देकर मानसिक विक्षोभ और अरक्षा की चेतना का उभार।"[52] साहित्यकार अपनी रचना में जो संवेदना के तत्त्व डालता है, जैसे कि सुख–दुःख, पाप–पुण्य, करूणा, प्रेम, भय, इत्यादि की अनुभूति चेतना के कारण ही होती है।

वस्तुतः चेतना मानव–मस्तिष्क में प्रवाहमान वह शक्ति है, जो मनुष्य को निरंतर चैतन्य प्रदान करती है। यथार्थवादी साहित्य में चेतना अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्त्व है, क्योंकि इसके अभाव में साहित्य गतिविहीन हो जायेगा। चेतना ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक त्रिविध स्वरूपा है। चेतना का गति नामक गुण ही उसके परिवर्तन का कारण है। साहित्य में यह चैतन्यता ही उसे आनंदित बनाती है। यह चैतन्यता ही साहित्यकार को अपने आसपास के परिवेश के प्रति जागरूक बनती है। जो साहित्यकार परिवेश के प्रति जितना सजग तथा जागरूक होगा उसका साहित्य भी उतना ही अधिक संवेदनशील एवं प्रभावकारी होगा। चैतन्यता का यह गुण यथार्थवादी साहित्य को स्थायित्वता के साथ–साथ गतिमान भी बनाता है, जिससे रचना युगातीत पाठकों को आकर्षित एवं प्रभावित करती है।

संवेदनशीलता

संवेदनशीलता को भावुकता तथा सहृदयता नामों से भी अभिहित किया जा सकता है, किंतु यहां भावुकता से तात्पर्य यह नहीं है कि आपने किसी को दुःख में रोता हुआ देखा तो आप भी रोने लगे। संवेदना में भावुकता से अर्थ है कि आपने किसी को दुःख में रोते हुए देखा, तो आप उसके रोने के कारण को जाने तथा उसके दुःख को महसूस करे। किसी भी चीजों

का अनुभव करना संवेदनशीलता कहलाता है। रोगी के रोग को जानने के लिए उसके प्रति संवेदनशील होना आवश्यक है। इस प्रकार मानव संवेदना को मानव सह्रदयता का परिचायक कहा जा सकता है। संवेदनशीलता को मानव ह्रदय का आभूषण भी माना जाता है। संवेदनशील अनुभूति किसी भी वस्तु के ज्ञान का आधार है। सच कहें तो जिस रचना में साहित्यकार की संवेदनशीलता जितनी तीव्र और सघन होती है, वह रचना उतनी ही स्थायी होती है। साहित्य में संवेदनशीलता के महत्व को प्रतिपादित करते हुए श्री हरदयाल ने लिखा है कि–"साहित्यकार एक सामान्य आदमी की तुलना में अधिक संवेदनशील उर्जावान और अधिक बुद्धि प्रवण होता है। इसी अर्थ में यह सामान्य व्यक्ति से थोड़ा अलग हटा हुआ, थोड़ा विशिष्ट व्यक्ति होता है। उसकी विशिष्टता का अर्थ श्रेष्ठता नहीं है, लेकिन भिन्नता अवश्य है। किसी भी साहित्य के विभिन्न आंदोलनों एवं प्रवृत्तियों का मूल मनुष्य की संघर्षशीलता एवं परिवर्तन कामना की उपर्युक्त प्रवृत्तियों में खोजा जा सकता है। वह व्यक्ति की रचना होने पर भी वह पूरी जाति के संघर्ष और परिवर्तन कामना को प्रतिबिम्बित करता है, जिसका वह साहित्य होता है।"[53]

संवेदना पर प्रकाश डालते हुए लक्ष्मी नारायण लाल जी लिखते है – "वर्तमान संवेदनशीलता अनुभूतियां आज की रचना में मात्र आन्तरिक प्रस्फुटन से विकसित नहीं होती, उनका एक बाह्य स्तर भी है। वह बाह्य स्तर आज के जीवन के उस सत्य से सम्बद्ध है, जिसमें समस्त मानव की अन्तर्वेदना हमारी संवेदना से सम्बद्ध होकर व्यक्त होती है। युग की प्रवृत्ति उस समष्टि के सुख–दुःख, राग–अनुराग, अभिशाप और वरदान से हमारे वैयक्तिक जीवन को सम्बद्ध करती है और हम उससे संचालित और प्रभावित होते है। हमारी विचार शक्ति, धारणा शक्ति, अनुभूति के स्तर व्यापक एवं विराट मानव की भवितव्यता के प्रति उन्मुख होती है। उससे द्रवित और प्रभावित होती है। मानव व्यक्तित्व की यह सामूहिक वेदना, देशकाल की सीमा से अपने–अपने रूपों के माध्यम से व्यक्त होती है।"[54]

इस प्रकार रचनाकार अपने स्वानुभूत अनुभवों तथा संवेदनात्मक दृष्टि के आधार पर अपने निजी अनुभवों को सार्वजनिक बनाने में सक्षम होता है। विद्वानों ने यथार्थववाद में संवेदनशीलता के तत्त्व को महत्वपूर्ण बताया है। इसके अभाव में रचनाकार अपनी कृति का सम्यक् रूप से सृजन नही कर सकता है, क्योंकि रचनाकार जो भी अभिव्यक्ति अपनी कृति में करता है, वह सभी उसके आस–पास से उठाई हुई चीजें ही होती है। अतः संवेदनशीलता यथार्थवाद का अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्त्व है।

दृष्टिकोण की व्यापकता

सामान्यतः दृष्टिकोण का अर्थ किसी बात या विषय को किसी खास पहलू से देखने, विचारने का ढंग, वृत्ति या नज़रिया से लिया जा सकता है, किंतु साहित्य में दृष्टिकोण की

व्यापकता से आशय जीवन के विविध रूपों से है। इसमें जहां एक ओर अच्छाई, पुण्य, प्रेम, सद्भाव इत्यादि गुण देखने को मिलते है, तो दसूरी ओर बुराई, पाप, नफरत, ईर्ष्या, द्वेष, कटुता इत्यादि भाव भी दिखाई देता है। यथार्थवादी दृष्टिकोण इन सभी विकासोन्मुख भावों को समझने, उनका अध्ययन करने तथा उन्हें स्वीकार करने की प्रेरणा देता है।

श्री लक्ष्मीकांत वर्मा ने इस संबध में लिखा है कि – "हम अपने चारों ओर के व्यापक जीवन को देखे, मिट्टी, धूल, कीच–काई के यथार्थ को मानवीय संदर्भ में समझे और उनको मानवीय अभिव्यक्तियों के माध्यम से उपलब्धियों की समग्रता से सम्बद्ध करें।"[55] डॉ. शिवकुमार मिश्र दृष्टिकोण की व्यापकता के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए कहते है कि–"रचनाकारों का यथार्थ–बोध गहरी युग–सन्दर्भता से अनुप्रामाणित है और उसके अन्तर्गत समाज, मनुष्य तथा जीवन का बहिरंग ही नहीं, उसका अंतरंग भी गहराई, तीखेपन तथा परिपूर्णता के साथ मूर्त हुआ है। रचनाकारों का यह तीखा तथा परिष्कृत यथार्थ बोध अब भी किसी सुनिश्चित 'वाद' या आंदोलन का अंग नहीं रहा, जो कि रचना के स्तर पर नए–नए आयामों का स्पर्श किया।"[56]

इस प्रकार यथार्थवादी साहित्यकार के लिए केवल वही चीज महत्वपूर्ण नहीं है, जो कि उसे प्रत्यक्षतः दिखाई देती है। वह उस वस्तु के अन्तरंग व बहिरंग दोनों पक्षों का अध्ययन करता है। यथार्थवादी साहित्यकार अपनी व्यापक दृष्टि के माध्यम से ही जगत के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर सकता है। साहित्यकार सामाजिक, मनौवैज्ञानिक ऐतिहासिक इत्यादि सभी विचारधाराओं को अपने साहित्य में स्थान देता है। उसकी व्यापकता का यही फलक उसे समसामयिक परिवेश से जोड़ता है। उसका साहित्य नवीन सन्दर्भो को छूता हुआ पाठकों के मन–मस्तिष्क पर एक चमत्कारिक प्रभाव छोड़ता है।

2.2 यथार्थवादः उद्भव व विकास

पश्चिम जीवन तथा साहित्य में यथार्थवाद का उद्भव व विकास

"यथार्थवाद का उद्भव 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। इसके पूर्व साहित्य में इसकी स्थिति एक वाद अथवा आंदोलन के रूप में न होकर चित्रण को अधिक पूर्ण वातावरण को अधिक सजीव तथा रचनाशीलता को अधिक सार्थक और स्वाभाविक बनाने वाली एक सहज नैसर्गिक रूझान के रूप में थी। सभ्यता के उषाकाल में जबकि आदिमानव ने गुफाओं में चित्र उकेरे, उसने यथार्थ के प्रति अपनी इस सहज स्वाभाविक रूझान का ही परिचय दिया है। कालान्तर में प्राचीन युग की कॉमेडी में, समाज के निम्न वर्गों का चित्रण करते हुए भी रचनाकारों ने यथार्थ के प्रति इसी स्वाभाविक रूझान को स्पष्ट किया है। ज्यों–ज्यों सभ्यता का विकास होता गया, रचनाकारों की यथार्थ के प्रति यह स्वाभाविक अभिरूचि अधिक कलात्मक तथा परिष्कृत रूप में सामने आती रही।"[57]

वस्तुतः यथार्थवाद पाश्चात्य संस्कृति, आविष्कारों तथा औद्योगिक क्रांति की देन है। यथार्थवाद के उदय के संकेत 16 वीं शताब्दी से देखे जा सकते हैं। 16 वीं शताब्दी को आविष्कारों का प्रारंभिक काल भी माना जा सकता है। बारूद और समुद्री कम्पास के निर्माण ने यूरोपिय देशों को शक्तिशाली बनाने के साथ–साथ उनकी विचार धारा में भी परिवर्तन किया। यहीं से मनुष्य के ज्ञान में अभिवृद्धि हुई। उसने चर्च के आप्त कथनों तथा जादूगरी को नकारना शुरू किया। अब मानव अपनी समस्याओं के लिए प्राकृतिक नियमों, गणित और सही माप की सहायता लेने लगा। 16 वीं शताब्दी में पृथ्वी के घूर्णन की स्थिति, सूर्य की परिक्रमा, नाणियों में रक्त संचार की प्रक्रिया, गुरूत्वाकर्षण का सिद्धांत इत्यादि कईं आविष्कारों ने सत्य को खोजने में सहायता की। सदी की परिचर्चा करें तो 17वीं, 18वीं तथा 19वीं शताब्दियां भी अपने–अपने आविष्कारों को लेकर काफी चर्चित है।

इतिहास में 1760 से 1830 ई. की अवधि को औद्योगिक क्रांति का काल कहा जाता है। यदि इसे 'मशीनी युग' कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वाष्प इंजन के निर्माण ने उद्योगों को काफी प्रभावित किया। जिससे कि वस्त्र, कोयला, लोहा उद्योग तथा यातायात के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। इस प्रकार औद्योगिक क्रांति से बड़ी–बड़ी मशीनों का निर्माण हुआ और छोटे–छोटे कारीगरों की शिल्प शालाएं नष्ट होने लगी। मशीनीकरण ने पूंजीपति वर्ग के हाथों में मजदूरों के शोषण का अपूर्व अवसर प्रदान किया। फलस्वरूप श्रमिक संघ की भावना का जन्म हुआ और पूंजीपति वर्ग तथा निम्न वर्ग में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इन सब बातों का प्रभाव साहित्य में भी देखा जाता है। 18 वीं शताब्दी से पूर्व के दार्शनिक लेखक देकार्ते तथा बेकन ने अस्तित्व तथा विचार की अभिजात्य एकता का प्रतिपादन किया। इन दोनों ही दार्शनिकों ने "प्रारम्भिक यथार्थपरक साहित्य तथा कला में यथार्थ तत्त्वों – यथा जीवन, समाज तथा अध्ययन करने का प्रयास, समाज तथा जीवन के विकास के साथ जटिल हो रहे और उलझ रहे मानवीय संबंधों को समझने तथा असंगतियों को पकड़ने और मनुष्य के बाह्य तथा आंतरिक जीवन में उनके प्रभाव के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले संघर्ष के प्रति उन्मुखता, आदि पर चिंतन किया।"[58]

18वीं शताब्दी में फ्रांस की राज्यक्रांति के परिणामस्वरूप सामन्तवादी समाजव्यवस्था का वैचारिक और आर्थिक ढांचा पूरी तरह से ध्वस्त हो गया था। सामंतवादी व्यवस्था का ढांचा चरमरा गया था, जिसके कारण स्वंच्छदतावाद (रोमांटिसिज्म) का जन्म हुआ। राज्यक्रांति का वर्णन रिचर्डसन, डेफो, स्मालेट, स्टील आदि रचनाकारों की रचनाओं में देखा जा सकता है। रोमांटिसिज्म की अभिव्यक्ति शैली, कीट्स, वर्डसवर्थ तथा कॉलरिज जैसे कवियों में देखी जा सकती है। "19 वीं शताब्दी को समूचे मानव इतिहास को क्रांतिकारी मोड़ देने का श्रेय प्राप्त है। इस शताब्दी में ज्ञान तथा विज्ञान के क्षेत्र में अद्भुत युगान्तर उपस्थित हुआ, जिसने परम्परा से चले आते हुए चिन्तन तथा मार्ग की दिशा बदल दी। हीरोल, फायरबाख, मार्क्स तथा

एंगेल्स जैसे दार्शनिक चिन्तन के मनीषियों के अतिरिक्त न्यूटन तथा डारविन जैसे वैज्ञानिकों की क्रांतिकारी दार्शनिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक निष्पत्तियाँ इसी शताब्दी में सामने आयी। पूंजीवाद अपने सारे अन्तर्विरोधों और असंगतियों को उजागर करता हुआ इसी शताब्दी के अन्त में एक ह्रासशील शक्ति के रूप में पहचाना गया। संसार तथा समाज के विकास नियमों की क्रांतिकारी तथा वैज्ञानिक समझ इसी शताब्दी में प्रारम्भ हुई, जिसने मार्क्सवादी विचार दर्शन में अपना चरम उत्कर्ष प्राप्त किया।"[59]

"यथार्थवाद को नये सन्दर्भों से युक्त करने तथा उसे वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का सर्वाधिक श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को दिया जा सकता है तो वह कार्लमार्क्स है। मार्क्स ने आधुनिक समाज की बनावट का, उसके विकास के मूल में कार्यरत शक्तियों और प्रवृत्तियों का, मनुष्य और मनुष्य, मनुष्य और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का अत्यन्त वैज्ञानिक और गंभीर अध्ययन किया। 1847 में मार्क्स और एंजेल्स का प्रसिद्ध साम्यवादी घोषणा पत्र (मेनिफेस्टो) जारी हुआ जो आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद का आधार बना। इस घोषणा पत्र में यह विचार प्रस्तुत किया गया कि समस्त समाज का इतिहास, चाहे वह अतीत का इतिहास हो या वर्तमान का, वर्ग–संघर्ष का इतिहास है। मार्क्स के अनुसार धनी वर्ग और निर्धन वर्ग, स्वामी और दास, मालिक और मजदूर का सतत् संघर्ष ही इतिहास का मूल तथ्य है। दुनियां के सारे आंदोलन, समस्त परिवर्तन, युद्ध और प्रमुख घटनाएं इसी वर्ग संघर्ष के परिणाम है।"[60]

वस्तुतः डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत ने समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, आधुनिक मनोविज्ञान आदि सामाजिक विद्वानों को प्रभावित किया, जिसके फलस्वरूप यथार्थवादी विचारधारा के विकास को नयी दिशा और नये आयाम प्राप्त हुए। यथार्थवादी आंदोलन के विकास में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुए मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों का भी योगदान है। "फ्रायड ने मनोविश्लेषण का आविष्कार किया। 'साइकोएनालिसिस' (मनोविश्लेषण) पद का प्रथम प्रयोग फ्रायड ने 1896 ई. में किया। उनकी क्रांतिकारी पुस्तक 'द इण्टरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम्स' जिसने सदियों से प्रचलित अंधविश्वासों, मान्यताओं और भ्रमों को समूल झकझोर दिया, 1900 ई. में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में फ्रायड ने बताया कि यथार्थ के दो प्रकार है, मानसिक यथार्थ और वास्तविक यथार्थ। यदि वास्तविक यथार्थ अति कठोर या अति हताशाजनक है, तो मनोकल्पनाएँ या फंतासियाँ अधिक शक्तिशाली हो जाती है और मनुष्य मनोवैज्ञानिक यथार्थ में इस प्रकार जीने लगता है मानो वह वास्तविक यथार्थ हो। इस प्रकार फ्रायड ने मनोवैज्ञानिक यथार्थ की शक्ति की पहचान करायी। उसने स्वप्नों, मनुष्यों के आन्तरिक जीवन और बचपन में ही मनुष्य में काम भावना के आरम्भ हो जाने की सच्चाई का उद्घाटन किया।"[61]

साहित्यिक आंदोलन के रूप में 'यथार्थवाद' का उदय फ्रांस में 1830—40 ई. में हुआ और उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह यूरोपिय साहित्य की निश्चित प्रवृत्ति बन गया। "यथार्थवाद का आलोचनात्मक संसर्ग फ्रांस के यथार्थवादी सम्प्रदाय के साथ शुरू हुआ। प्रकट रूप से इस शताब्दी का पहली बार प्रयोग सौन्दर्यवादी निरूपण के रूप में नव क्लासिकल चित्रकला के आदर्शवादी स्वरूप के विरूद्ध मानवीय सत्य वास्तविकता का बोध कराने के लिए प्रसिद्ध कलाकार रैम्बरा द्वारा किया गया। बाद में सन् 1856 ई. में दुरान्ती द्वारा सम्पादित 'रियलिस्में' पत्रिका में यथार्थवाद का प्रयोग विशिष साहित्यिक शब्द के रूप में प्रतिष्ठित किया गया।"[62] इससे स्पष्ट होता है कि यथार्थवाद शब्द का प्रयोग आरम्भ में कईं अर्थों में प्रयुक्त किया गया था।

"ज्ञान की अनन्त पिपासा और सत्य के प्रति अकृत्रिम निष्ठा 19वीं शताब्दी के यथार्थवादी लेखकों की आधार भूत विशेषता मानी जा सकती है। ये वे लेखक थे, जिन्होंने पूंजीवाद की असंगतियों के उद्घाटन तथा जीवन सत्यों की खोज और उनके चित्रण के सिलसिले में बुर्जुआ समाज के प्रति निमर्म आलोचना का रूख ग्रहण किया। यही कारण है कि यथार्थवाद के इतिहास में उनके यथार्थवाद को आलोचनात्मक यथार्थवाद (क्रिटिकल रियलिज्म) के नाम से अभिहित किया गया है। बाल्जक, स्टेंढल, थैकरे, डिकेंस, गोगल, दास्तोवस्की, कुछ अंशों तक फ्लाबेयर, टाइम हार्डी, तोल्स्तोय, मोपासा, जॉर्ज इलियट, जॉर्ज मेरेडिथ, सेमुअल बटलर, विक्टर ह्यूगो आदि के नाम है, जिन्हें 19वीं शती के आलोचनात्मक यथार्थवाद को उपलब्धियों के शिखर तक जाने का श्रेय प्राप्त है।"[63]

बीसवीं शताब्दी को सक्रांति की शताब्दी भी माना जा सकता है। इस शताब्दी में सामंतवादी तथा पूंजीवादी सभ्यता का दमन होने के साथ—साथ नयी समाजवादी व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ। "जॉज बर्नार्ड शॉ, अनातोले फ्रांस, रोमारोलां, तुर्गनेव, चेखव, अर्नेस्ट हेमिग्वे आदि के नाम बीसवीं शताब्दी के आलोचनात्मक यथार्थवाद ने उग्र होते हुए पूंजीवादी अन्तर्विरोधों का अपनी कृतियों में चित्रण किया। वर्ग—संघर्ष और उसके परिणाम भी उनकी कृतियों के विषय बने, साथ ही समाजवादी विचार दर्शन के उद्भव के साथ जिस नयी समझ का आविर्भाव हुआ, उसे भी उन्होंने अपनी कृतियों में प्रत्यक्ष किया। कुल मिलाकर आलोचनात्मक यथार्थ का ऐतिहासिक प्रदेय, बीसवीं शताब्दी में भी कुछ अत्यन्त सार्थक उपलब्धियों के साथ सामने आया।"[64]

अतः योरोप यथार्थवाद के उद्भव एवं विकास का प्रमुख केन्द्र माना जाता है। यथार्थवाद का जन्म सन् 1830 ई. की फ्रांसीसी क्रांति के बाद हुआ था। साहित्य में यथार्थवाद का जन्म वैज्ञानिक आविष्कारों और वैज्ञानिक चिन्तन के साथ विकसित हुआ।

भारतीय जीवन तथा साहित्य में यथार्थवाद का उद्भव एवं विकास

भारत में यथार्थवाद के उदय की परिस्थितियों का कारण वही है, जो पश्चिम में यथार्थवाद के उदय की थी। यथार्थवाद का उद्‌भव ज्ञान, विज्ञान तथा औद्योगीकरण की ही देन कहा जा सकता है। भारत तथा हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी उन्हीं की आधारभूत सक्रियता है। पश्चिम के कईं आविष्कारों तथा क्रांतियों के परिणामस्वरूप भारत में भी इनका प्रभाव देख गया। डार्विन का विकासवाद का सिद्धांत, फ्रायड का मनोविश्लेषण सिद्धांत, कार्लमार्क्स का घोषणा पत्र, रूसी क्रांति, फ्रांस की क्रांति इत्यादि का भारतीयों पर प्रभाव देखा जा सकता है।

भारत में सदियों से मध्यकालीन धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताओं में दबी–कुचली मानवता तथा भारतीय जीवन को विकास की नई दिशा प्रदान करने के फलस्वरूप धार्मिक, सामाजिक तथा वैचारिक आंदोलनों का जन्म हुआ। अतः 19वीं शताब्दी को विद्रोह की शताब्दी कहा जाता है। डॉ. चंडीप्रसाद जोशी के शब्दों में – "19वीं शताब्दी विद्रोह का युग है। मध्ययुगीन विचारधारा तथा सांस्कृतिक रूपों का खण्डान किया गया और नयी विचारधाराओं ने जन्म लिया। व्यक्ति के जीवन दृष्टिकोण में महान् परिवर्तन आया। जीवन के प्रति सोचने का ढंग ही बदल गया। नयी मान्यताओं ने जन्म लिया जिनका विकास तथा जिनके मूल्यांकन की प्रक्रिया बीसवीं शताब्दी में भी चलती रही। भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना तथा सामंती शासन व्यवस्था के समाप्त होने पर व्यक्ति तथा राज्य के पारस्परिक सम्बन्ध का आधार बदल गया। इसके अतिरिक्त यूरोपीय विचारधाराओं का प्रचार, अंग्रेजों के रहन–सहन का प्रभाव तथा ईसाई मिशनरियों का हिन्दू धर्म पर प्रहार अन्य ऐसे कारण थे कि उन्होंने नवीन चेतना को और भी गतिशील बना दिया। ...... वस्तुतः तथ्य यह है कि आधुनिक यूरोप के निर्माण में जो तथ्य सहायक हुए, वही आधुनिक भारत के निर्माण का कारण है। ये कारण थे : औद्योगिक क्रांति, सामंती व्यवस्था का विनाश तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रधानता। यूरोप से भारतीय व्यापार के आदान–प्रदान के सम्बन्ध होने के कारण नयी सभ्यता तथा संस्कृति के यह बीज तत्त्व भारत आते और अंग्रेजो के बिना भी भारत का जन्म होता, यह स्वीकार करना ही होगा कि यह ऐतिहासिक परिवर्तन के लिए विभिन्न क्रांतिकारी तत्त्वों की अपेक्षा होती है, जो सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित कर सके। औद्योगिक सभ्यता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा यूरोपीय भौतिकवादी संस्कृति ऐसे ही क्रांतिकारी तत्त्व थे, जिनका भारतीय सामंतवादी सभ्यता, विश्वासमूलक दृष्टिकोण तथा धार्मिक–आध्यात्मिक संस्कृति से संघर्ष हुआ। इस संघर्ष ने नवीन विचारधारा को जन्म दिया।"[65]

वस्तुतः नवीन आविष्कारों ने भारतीय जनमानस को प्रभावित किया, जिससे उनके दृष्टिकोण में बदलाव आया। उन्होंने पुरानी रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों पर विश्वास करना काफी हद तक कम कर दिया। पढ़े–लिखे बुद्धिजीवि वर्ग ने परलोकवादी विचारधारा को त्याग दिया। अब साहित्य का विषय परलोक गमन, आत्मा तथा मोक्ष न होकर आम जनता के दुःख–दर्द तथा उनसे जुड़े विषय होने लगे। साथ ही अंग्रेजों की दमनकारी नीति के खिलाफ भारतीय

जन–मानस में क्रांति की भावना बलवती हो गयी। गांधी, नेहरू, तिलक, पटेल इत्यादि जनवादी राष्ट्रीय नेताओं ने राष्ट्रीय आंदोलनों को नए आयाम प्रदान किए। विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, राजाराम मोहनराय इत्यादि समाज सुधारकों ने अपने समाज सुधारक आंदोलन से जनता को प्रभावित किया, जिसके फलस्वरूप लोगों में धर्माऽम्बर तथा रूढ़ियों के प्रति जागरूकता आई।

सन् 1917 में रूस में लेनिन के नेतृत्व में महान् समाजवादी क्रांति के फलस्वरूप भारतवर्ष ही नहीं, अपितु पूरे विश्व में शोषित–पीड़ित मानवता के समक्ष सर्वतोन्मुखी मुक्ति के द्वारा खुल गये। इसके पश्चात् कई आंदोलन अपने शिखर पर आ गये और समाज के शोषित वर्ग कईं प्रकार से अपनी मुक्त की लड़ाई लड़ने लगे। किसान आंदोलन मजदूर आंदोलन, अंहिसात्मक आंदोलन तथा कई क्रांतियां भड़क उठी। भारत में राष्ट्रीय आंदोलन की विविध गतिविधियाँ इस ओर संकेत करती है कि भारत की जनता साम्राज्यवाद के साथ–साथ देशी सामंतवाद तथा पूंजीवाद की जड़ों को भी सदा–सदा के लिए नष्ट कर देना चाहती थी। उस समय देश की गरीबी पराकाष्ठा पर थी।

"साम्राज्यवाद सामंतवाद और पूंजीवाद के तिहरे शोषणचक्र से पीड़ित जनता, बावजूद अपनी विपन्नता के निर्णायक लड़ाई लड़ने के लिए कटिबद्ध थी। इस जनता को राजनीतिक नेताओं के अतिरिक्त देश के प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग से भी सहयोग तथा समर्थन प्राप्त हुए।"[66] नोबल पुरस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ टैगोर रूस तथा पूर्वी यूरोप का दौरा करने के बाद उन्होंने अपने पक्षों के माध्यम से समाजवादी चेतना का प्रचार–प्रसार किया। देश के बुद्धिजीवि वर्ग साहित्यकारों, कवियों तथा विचारकों ने रूसी क्रांति का पत्र–पत्रिकाओं में जिक्र किया। 'जागरण' पत्रिका के संपादकों में जहां श्री संपूर्णानंद आचार्य नरेन्द्र देव जैसे प्रसिद्ध समाजवादी के नाम आते है, वहीं हंस पत्रिका विशुद्ध रूप से प्रेमचंद की समाजवादी आकांक्षाओं का प्रतिफल थी। 'जागरण' पत्र में प्रेमचंद ने लिखा है – "संसार में जितना अन्याय और अत्याचार है, जितना द्वेष और मालिन्य है, जितनी मूर्खता और अज्ञानता है, उसका मूल रहस्य यही विष की गांठ है। जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा, तब तक मानव समाज का उद्वार नही हो सकता।"[67] प्रेमचंद के ये वक्तव्य इस तथ्य को प्रमाणित करते है कि सन् 1936 तक देश में मार्क्सवादी समाजवादी विचार दूर तक प्रसारित हो चुके थे। वस्तुतः "साहित्यिक गतिरोध, जड़ता तथ पस्ती को दूर करने तथा समाज और साहित्य को एक स्वस्थ और प्रशस्त सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने हेतु 'प्रगतिशील लेखक संघ' नामक एक अखिल भारतीय संस्था का जन्म इस परिवर्तन की पहली मुखर अभिव्यक्ति था। 'प्रगतिशील लेखक संघ' के नेतृत्व में हिंदी भाषी प्रदेशों में ही नहीं, समूचे देश में एक नये प्रगतिशल आन्दोन की शुरूआत हुई, इसे भारतीय साहित्य में यथार्थवादी समाजवादी चेतना के प्रचार और प्रसार का पहला संगठित प्रयास मानना चाहिए।"[68]

भारतेन्दु बाबू के आगमन के साथ ही आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रारम्भ हुआ, जिसमें यथार्थवादी साहित्य का आगाज देखा जा सकता है। उन्होंने हमारे साहित्य में उस आधुनिक चेतना का वपन किया जो कालांतर में नये रूपों में हमारे सामने आई। "उनमें राजभक्ति भी है और देशभक्ति भी, उनमें राजनीतिक ढंग की शृंगार प्रियता के प्रति भी मोह है और निश्छल भक्ति तथा आत्मनिवेदन भी, उनमें शहरी आदर्शवादिता भी है और प्रखर यथार्थ बोध भी उनमें प्राचीन संस्कृति धर्म तथा जाति के प्रति उत्कट आसक्ति भी है, तथा नये ज्ञान–विज्ञान के प्रति उनमें जितना लगाव है, रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों के प्रति उतनी ही वितृष्णा भी है।"[69] इनकी चिन्तना को हम भारतेन्दु बाबू की निम्नलिखित पंक्तियों में बड़े स्पष्ट रूप में देख सकते है –

"अंगरेज–राज सुख साज सजे, सब भारी,
पै धन विदेस चलि जात यहैं अति ख्वारी।।"

यथार्थवादी साहित्य के दर्शन कविता, नाटक तथा उपन्यास इत्यादि कई विधाओं में देखे जा सकते है, किन्तु उपन्यास यथार्थ के चित्रण का सशक्त माध्यम रहा है। सन् 1936 ई. में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्ष पद से सम्बोधित करते हुए प्रेमचन्द ने कविता को नये विषय और आयाम देने के सन्दर्भ में कहा था – "हमारे लिए कविता के वे भाव निरर्थक है, जिनसे हमारे हृदयों पर नैराशय छा जाये। हमें उस कला की आवश्यकता है, जिससे कर्म का सन्देश हो। हमारे पथ में अहंवाद तथा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रधानता देना वह वस्तु है, जो हमें जड़ता, पतन और लापरवाही की ओर ले जाती है और ऐसी कला की आवश्यकता हमारे लिए न व्यक्ति के रूप में उपयोगी होती है, न समुदाय के रूप में। हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो। जो हमें गति, संघर्ष और बैचेनी पैदा करें, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[70] वैसे कविता में यथार्थ की अभिव्यक्ति, विशेष रूप से, एपिक काव्य अर्थात् आख्यानपरक और दीर्घ कविताओं में ही अधिक सशक्त और समग्र रूप से की जा सकती है। वस्तुतः प्रगतिशील कविता में यथार्थ का व्यापक चित्रण प्रस्तुत हुआ है। सामाजिक जीवन बहुआयामी यथार्थ को जिन रचनाकारों ने एक नयी और जीवंत तेजस्विता प्रदान की उनमें केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन त्रिलोचन शास्त्री, शिवमंगल सिंह सुमन, शील इत्यादि कई कवियों के नाम लिए जा सकते है। इन कवियों ने "मार्क्सवादी समजवादी चेतना के राष्ट्रीय जीवन–स्थितियों के संदर्भ में प्रेरणाा स्रोत के रूप में अपनाते हुए कविता के जिस रूप को संवारा, उसकी केंद्रीय पहचान उसकी इस विशेषता के नाते की गयी कविता में पहली बार सामाजिक जीवन के बहुआयामी यथार्थ के स्वर सघन और गम्भीर बनकर गूंजे।

इसके पश्चात् **'तारसप्तक'** के प्रकाशन के साथ ही 'प्रयोगवाद' नामक काव्यान्दोलन विमर्श के केन्द्र में आया। इसके सीमित संवेदनात्मक जगत में यथार्थ के लिए कोई जगह नहीं थी। उनका सारा प्रकम केवल व्यक्ति तथा उसकी कुठांओं की अभिव्यक्ति करना ही था। उसका काव्य समाज की व्यापक समस्याओं से हटकर व्यक्तिनिष्ठ की परिधि में आ गया। **'प्रयोगवाद'** के उपरांत कविता के परिदृश्य में 'नयी कविता' का उदय हुआ। इस धारा के कवियों ने सामाजिक जीवन के यथार्थ को उसकी अनेक भंगिमाओं के साथ चित्रित किया। जिनमें गिरिजा कुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना तथा रघुवीर सहाय के नाम लिये जा सकते है। इन कवियों ने कविता की यथार्थवादी परम्परा के विकास में एक बड़ा योगदान दिया। आजादी से मोह भंग होने के पश्चात् भविष्य की आंशकाओं से ग्रस्त युवा वर्ग की तीक्ष्ण प्रतिक्रिया स्वरूप साठोत्तरी कविता का जन्म हुआ। धूमिल, लीलाधर जगूडी, सौमित्र मोहन जैसे कवियों ने कविता से अपने आवेग व आवेश मूलक प्रतिक्रियाओं के नाते युवा वर्ग के बीच अपना खासा प्रभाव छोड़ा, किंतु वे यथार्थ को संरक्षण प्रदान करने में असमर्थ रहे।

वस्तुतः यथार्थ का अस्तित्व मुक्तिबोध जैसे कवियों की सोच और संवेदना में ही रहा है। सन् साठ के बाद के रचनाकारों ने उसे पाल–पोस कर समृद्ध जरूर बनाया। केदारनाथ सिंह से लेकर एकदम नयी पीढ़ी के रचनाकारों ने यथार्थ जीवन की विसंगतियों को उकेरा तथा उसे विपथित होने से बचाया। समकालीन कविता के गर्भ में प्रगतिशील आन्दोलन कवियों की सोच तथा आक्रोश को देखा जा सकता है। कविता के माध्यम से यथार्थ का चित्रण कथासाहित्य की अपेक्षा सहज नहीं कहा जा सकता। गद्य की कई विधाओं में यथार्थ की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। जैसे – नाटक, कहानी, जीवनी, आत्मकथा, एकांकी, संस्मरण, निबंध इत्यादि में, किन्तु यथार्थ की अभिव्यक्ति उपन्यास में अधिक सशक्त रूप में हुई है। उपन्यास को आधुनिक युग की देन माना गया है। यथार्थ के साथ इसका अत्यन्त घनिष्ठ और अंतरंग सम्बन्ध है। इन सभी का विस्तृत वर्ण यहां करना संभव नहीं है।

इस प्रकार यथार्थवाद के उद्‌भव व विकास का क्रम पश्चिमी आंदोलन, क्रांतियां तथा औद्योगीकरण की देन है, जिसने भारत में यथार्थ के बीज बोने का कार्य किया है।

यथार्थवाद विकास के चरण

कलात्मक और रचना आंदोलन के रूप में यथार्थवाद के विकास के दो आयाम ही मुख्य रूप से सामने आये है, जिन्हें मार्क्सवादी आलोचकों ने 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' और 'समाजवादी यथार्थवाद' की संज्ञा दी है। प्रकृतिवादी दृष्टिकोण से भिन्न समाज व जीवन को सच्चाई व वास्तविकता के साथ देखने तथा परखने वाली साहित्य दृष्टि को साहित्यकारों ने

'आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य' तथा उसमें निहित दृष्टि को आलोचनात्मक यथार्थ दृष्टि के नाम से जाना जाता है।

वस्तुतः ये नाम मार्क्सवादी साहित्यकारों के द्वारा ही दिये गये है। मार्क्स और एंगिल्स का मानना था कि समाज के यथार्थ और संघर्ष को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। 19वीं शताब्दी के पूंजीवादी व्यवस्था से आक्रांत जनता का यथार्थ चित्रण जितनी अधिक सच्चाई के साथ उस समय के साहित्य में उभर कर सामने आया। मार्क्स एंगेल्स ने उसकी अत्यधिक प्रशंसा की है। जिन उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में समाज की वास्तविकता का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया है। उनके विषय में मार्क्स ने लिखा है कि – "इन उपन्यासकारों ने अपने समाज का तथा राजनीति का जितना सत्य विवरण अपनी कृतियों में प्रस्तुत किया है, वह उस युग के सारे राजनीतिज्ञ, नीतिवादी तथा प्रचारक भी मिलजुलकर दुनियां के सामने नहीं ला सके है।"[71]

पूंजीवादी समाज के आक्रांत रूप तथा उसके अंतर्विरोधी चरित्र, शोषण की नीति इत्यादि की परतों को खोलकर प्रस्तुत करने वाले इन महान रचनाकारों के साहित्य को ही मार्क्सवादी समीक्षकों ने 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' कहा है।

आलोचनात्मक यथार्थवाद

आलोचनात्मक यथार्थवाद सर्वप्रथम बाल्जाक तथ स्तेन्दल के उपन्यासों में दिखाई देता है। उन्होंने सामन्तवादी तथा बुजुआ वर्ग के अन्तर्विरोधों को जिस दृष्टिकोण के साथ उभारा उसे आलोचनात्मक दृष्टि कहा गया। इन उपन्यासकारों की सहानुभूति तो सामंतवादी अभिजात वर्ग के साथ थी फिर भी इन साहित्यकारों ने बुजुआवर्ग के पतन का चित्रण किया है। इन्होंने बुजुआवर्ग की धनलिप्सा तथा अमानवीयता का यथार्थ चित्रण किया है। इस सम्बन्ध में अर्न्स्ट फिशट ने लिखा है – "आलोचनात्मक यथार्थवाद पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ अकेले अहं, रोमानी विद्रोह तथा बुर्जुआ मूल्यों के प्रति एक ऐसे विलक्षण अस्वीकार का फल है, जिसमें अभिजात तथा गंवारू या सामान्य दोनों प्रकार की मानसिकता घुली–मिली है।"[72]

पूंजीवादी युग में शोषित वर्ग अपने मालिक के लिए मनुष्य की परिधि में न आकर एक वस्तु के समान था, जिससे जब चाहे जितना उपयोग लिया जा सकता था, जब चाहे किसी भी मोल उसे वस्तु के समान बेच दिया जा सकता था। समाज के शोषित वर्ग की इस दशा के अन्तर्विरोध के रूप में जो संत्रास, पीड़ा, घुटन, अकेलेपन तथा ऊब उत्पन्न हुई, उसे ही साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों में यथार्थ के रूप में जगह दी।

बाल्जाक के युग को सामंतवाद के ह्रास का युग माना जाता है। वह आलोचनात्मक यथार्थवाद का महान् लेखक था। उसने अपनी पुस्तक 'लोस्ट इल्यूजन' में टूटती

हुई सांमती व्यवस्था तथा विकासशील पूंजीवाद व्यवस्था के शोषक रूप तथा उसके प्रति मोह भंग का यथार्थ व सजीव चित्रण किया है। एंगेल्स ने बाल्जाक के विषय में कहा है – "जो ज्ञान मुझे बाल्जाक के उपन्यास के माध्यम से प्राप्त हुआ है, वह उस युग के समस्त पेशेवर इतिहासकार, अर्थशास्त्री तथा सांख्यिकीयविद् मिलकर भी नहीं दे सके।"[73] फ्लाबेयर अत्यधिक भावुक, संवेदनशील और ईमानदार लेखक था। उसने पूंजीवादी सभ्यता की विकृतियों को अपनी कृतियों में ही नहीं, मित्रों को लिखे गये अपने पत्रों में भी उसने अपने अन्तर्निहित आक्रोश को बिना किसी लाग–लपेट के व्यक्त किया है। स्टेढ़ाल, गोगोल वाल्टर स्कॉट, टॉमसमान, गोन्कार्ट बन्धु, मोपासां, रोम्यारोलां, टॉल्सटॉय इत्यादि आलोचनात्मक यथार्थवाद के अप्रतिम रचनाकार है।

"टॉलस्टॉय की रचना – 'युद्ध और शांति' विश्व साहित्य में उपन्यास की विथा की महाकाव्यात्मक विशेषताओं से युक्त श्रेष्ठ रचना है। रूसी समाज में टूटती सामंती व्यवस्था और पूंजीवादी समाज की अन्तर्विरोधी नीतियां, चर्च तथा सेना का दमन, किसान और मजदूरों की स्थिति का यह उपन्यास जीवंत दस्तावेज तथा इतिहास है। यही कारण है कि लेनिन ने टॉलस्टॉय के कृतित्व को 'रूसी क्रांति का दर्पण' कह कर अत्यधिक प्रशंसा की है।"[74] इतना ही नहीं बाल्जाक का 'कामेडी हयूमेन' उपन्यास की श्रृंखला आलोचनात्मक यथार्थवाद को उसकी चिर स्मरणीय देन है। रोम्यारोलां का 'ज्यॉ क्रिस्तोफ' भी यथार्थ के धरातल पर लिखा गया 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' की ही उपलब्धि है।

वस्तुतः जो कार्य फ्रांसीसी साहित्य मे बाल्जाक ओर स्तेन्दल, फ्लाबेयर, इत्यादि ने अपने उपन्यासों द्वारा किया, वही कार्य प्रेमचन्द ने हिंदी में अपने उपन्यासों द्वारा किया। प्रेमचंद के समय एक ओर सामंत और जमींदार बहुसंख्यक भारतीय किसानों, मजदूरों व कारीगरों का शोषण कर रहे थे, तो दूसरी ओर पूंजीवादी–उपनिवेशवादी विदेशी, शासक अंग्रेज तरह–तरह के कर लगाकर तथा अपनी औपनिवेशिक नीतियों के माध्यम से इनका शोषण कर रहे थे। इनका शोषण करने वाले धर्माऽम्बरों में लिप्त पुरोहित वर्ग भी था, जो कि भोली–भाली जनता को अपने कर्मकाण्डों के द्वारा ठग रहा था। इन सभी शोषक वर्गों में पीड़ित स्त्रियां भी थी और अछूत भी। ये दोनों ही वर्ग अपना प्रतिकार लेने में शारीरिक व मानसिक रूप से दुर्बल ही थे, क्योंकि इनकी मानसिकता में सदियों से उच्च वर्ग की गुलामी करने का भाव इस तरह कूट–कूट कर भर दिया गया था कि वे इनका प्रतिकार ही नहीं कर सकते। ऐसी शोषित जनता को जगाने का कार्य प्रेमचंद ने अपने निबंधों, उपन्यासों, कहानियों व भाषणों के माध्यम से किया। प्रेमचंद की आलोचनात्मक दृष्टि वस्तुतः आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है। उन्होंने अपने उपन्यासों में शोषित वर्गों की समस्याओं के साथ–साथ उनके समाधान को भी प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद के परवर्ती उपन्यासकारों में भी आलोचनात्मक दृष्टि देखी गयी है, किन्तु आलोचनात्मक यथार्थवाद का उद्भव पश्चिम की देन है, जिसने साहित्य जगत में अपनी व्यापक आलोचनात्मक वस्तुपरक तथा

तटस्थ दृष्टिकोण से अपनी एक अलग पहचान बनाई है। समग्रतः आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपलब्धियों का क्षेत्र न केवल व्यापक है, वह बहुआयामी भी है।

समाजवादी यथार्थवाद

आलोचनात्मक यथार्थवाद का महत्व इस संदर्भ में अत्यधिक है कि उसके द्वारा समाजवादी यथार्थवाद जैसे वैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित रचना आंदोलन के विकास के लिए रास्ता निर्मित हुआ। "सोवियत लेखकों की सन् 1934 ई. में हुई पहली कांग्रेस में मैक्सिम गोर्की ने सर्वप्रथम 'समाजवादी यथार्थवाद' का नाम लेते हुए उसके चरित्र पर प्रकाश डाला।"[75] सन् 1917 ई. में रूसी क्रांति के फलस्वरूप जिस नये समाज की स्थापना हुई। उसे समझने और चित्रित करने के लिए एक नई कला की आवश्यकता महसूस हुई, जिसकी अभिव्यक्ति यथार्थवादी धरातल के परिप्रेक्ष्य में चिंतन व मनन द्वारा ही संभव थी। मैक्सिम गोर्की, फादयेव, मायोकोस्की, कास्तेंतिन फेदिन, अलेक्सी तोलस्तोय, इलिया एहरेनबुर्ग, शोलोखोव, निकोलाई, आस्त्रावस्की आदि नाम इस वाद के लेखकों के रूप में लिए जा सकते है।

"समाजवादी यथार्थवाद की मान्यता है कि लेखक समाज विकास की द्वन्द्वात्मक भूमिका को अपनाकर ही यथार्थ चित्रण की ओर अग्रसर हो। प्रसिद्ध मार्क्सवादी समीक्षक शल्फ फाक्स ने अंग्रेज उपन्यासकार की फील्डिंग का संदर्भ लेते हुए समाजवादी यथार्थ के चित्रणकर्ता के लिए कहा है कि–"उसे निरे वर्णन या आत्मगत विश्लेषण से नहीं बल्कि परिवर्तन से, कार्य कारण संबंध से, संकट और द्वन्द्व से सरोकार रखना चाहिए। उसकी दृष्टि में इतना पैनापन होना चाहिए कि समाज में चलने वाले विरोधी शक्तियों के संघर्ष को, उसकी सही भूमिका और परिप्रेक्ष्य में देख सके, उनकी मूल असंगतियों तथा उनके भीतर निहित अन्तर्विरोधो को पहचान सके, अपने चिन्तन की समस्त वस्तुओं के सार को तेजी तथा समझदारी से पकड़ सके।"[76] इसीलिए मार्क्स, एंगेल्स तथा लेनिन ने दुनियां के तमाम लेखकों की तुलना में शेक्सपीयर, बाल्जक तथा टॉलस्टाय को अधिक सजग लेखक के रूप में बताया है। क्योंकि "ये वे लेखक है जिन्हें जमाने की नब्ज का पता था, जो हर किस्म की रोमानी भावुकता और स्वप्नजीविता से अलग वस्तुगत यथार्थ से सीधे आंखे मिलाने वाले थे।"[77]

"समाजवादी यथार्थवादी लेखक वस्तुगत यथार्थ का समग्रता में चित्रण करते हुए समाज में वर्ग–संघर्ष की भूमिका को स्पष्ट करता है और इस संघर्ष को नवीन 'समाजवादी भविष्य' से युक्त समाजवादी समाज की प्राप्ति के लिए संघर्षमय परिस्थितियों और सक्रिय पात्रों का निर्माण करते हुए प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार समाजवादी यथार्थवाद बोरिस सुचकोव के शब्दों में – "ऐसे लोगों की कला है जो इतिहास के निर्माण की चेतना को ध्यान रखते हुए शोषण के विरूद्ध स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष करते है या विजय प्राप्त करते है।"[78] यथार्थवाद के

विषय में विभिन दृष्टिकोण प्रचलित है। जिनमें यथार्थवाद, प्रकृतिवाद, तथा आलोचनात्मक यथार्थवाद से कई बातों में भिन्न है। उदाहरण के लिए – "प्रकृतिवादी किसी गरीब मुहल्ले की निर्धनता का चित्र प्रस्तुत करन के लिए वहां की झोपड़ियो, गलियों, नालियों और घरों के भीतरी दृश्यों का, अर्ध नग्न पात्रों और भूख से बिलबिलाते बच्चों का ब्यौरेवार वर्णन करेगा, जबकि यथार्थवादी दस पैसे पाकर खुशी से नाच उठने वाले बच्चे या मिठाई के लिए दिये गये पैसों से चिमटा खरीद लाने वाले बच्चे को देखकर विह्ल हो जाने वाली बूढ़ी मां या दादी के आंसुओं का अंकन करके ही सन्तोष करेगा।"[79]

वस्तुतः यथार्थवाद का कार्य बाहरी पक्ष के साथ–साथ जीवन के अन्तल की गहराईयों में छिपे सत्य को बाहर निकालना है। समाजवादी यथार्थवाद वस्तुगत स्थूल वैज्ञानिक चिन्तन है, जो कि समाज के हितों से प्रेरित है। वह इतिहास को बदलने वाली चेतना से ओतप्रोत एक कलात्मक रचनात्मक पद्धति है, इसलिए वह आलोचनात्मक यथार्थवाद से कई बातों से भिन्न प्रकृति का है तथा उसका एक विकसित रूप है। लुकाच ने इस संदर्भ में कहा है – "समाजवाद यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद से महज इस कारण भिन्न नहीं है कि वह एक ठोस समाजवाद की स्थापना के लिए संघर्षरत शक्तियों का चित्रण करने के लिए उस परिप्रेक्ष्य का इस्तेमाल व्यक्ति के रूप में भीतर से (फ्रॉम द इनसाइड) करता है। उसके लिए समाजवादी समाज पूंजीवादी समाज से जुड़ा न रहकर अपने में एक स्वतंत्र सत्ता है या आलोचनात्मक यथार्थवाद की भांति पूंजीवादी उलझनों से मुक्ति पाने का शरणस्थल न होकर उसके जीवन की सच्चाई है।"[80]

आलोचनात्मक यथार्थवाद तथा समाजवादी यथार्थवाद दोनों में एक अलगाव देखा जा सकता है, लेकिन शिल्प की दृष्टि से दोनों में समानता भी दिखाई देती है। यथार्थ के प्रति गहरी निष्ठा दोनों ही आंदोलनों में समान रूप से दृष्टिगत होती है। अतः दृष्टि संबंधी भिन्नता के अलावा दोनों में काफी समानता है।

निष्कर्षतः "समाजवादी यथार्थवाद, यथार्थवादी चिंतन तथा यथार्थवादी कला की वह जींवत धारणा है, जो एक ओर उस प्रकृतिवादी से भिन्न है, जो मनुष्य को मूलतः आदिम वृत्तियों से अनुशासित तथा परिचालित मानते हुए उसके अब तक के समूचे बौद्धिक और भावात्मक विकास की अवमानना करता है। उसकी एकदम एकांगी तस्वीर पेश करता है, दूसरी ओर आलोचनात्मक यथार्थवाद से विशिष्ट है, जो अपनी जीवंत कला वस्तुगत यथार्थ के ईमानदार चित्रण, उसकी अमानवीय भूमिका के प्रति कड़ा आलोचनात्मक रूख अपनाने एवं जनसामान्य के प्रति संवेदनशील होने के बावजूद समाजवादी यथार्थवाद की उस क्रांतिकारी रचनात्मक समझ से शून्य है, जो वर्तमान के विकृत यथार्थ को बदलने का न केवल रास्ता सुझाता है, उस परिवर्तन को उसकी सारी घटनाओं के साथ मूर्त भी करती है।"[81]

2.3 यथार्थ और यथार्थवाद

यथार्थ और यथार्थवाद को स्थूल रूप से देखने पर दोनों एक ही दिखाई देते है, परन्तु दोनों में तात्विक दृष्टि से असादृश्यता है। यथार्थवाद दो शब्दों मे मिलकर बना है यथार्थ+वाद। यथार्थ का सामान्य अर्थ है, जो जैसा है और वाद का अर्थ है सिद्धांत, विचारपूर्ण कथन, अनुकरण, करना या उसी मार्ग पर चलना। वाद एक ऐसा प्रत्यय है, जो किसी शब्द के साथ जुड़ने पर उसके अर्थ को परिवर्तित कर उसे एक विशेष धारा की ओर मोड़ देता है। वह एक विशिष्ट प्रकार की विचारधारा का अर्थ प्रकट करता है। जैसे –आदर्शवाद, साम्यवाद, अवसरवादिता इत्यादि। इस प्रकार यथार्थवाद का अर्थ हुआ जो वस्तु जैसी है, उसका उसी रूप में वर्णन करना। जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति यथार्थवाद है।

इस विषय में हावर्ड फास्ट का मत है – "यथार्थवाद निर्माण में निर्माता की मौलिक कृति है, उसमें कृतिकार को रचनात्मक शक्ति का चमत्कार दिखाई पड़ता है। वह प्रस्तुत सत्य को ज्यों–का–त्यों नहीं चित्रित कर देता, बल्कि अपनी व्यक्तिगत रूचि के अनुसार वस्तु–जगत के दृश्यों को फिर से नये सिरे से सजाता है। ऐसा करने में वह अपनी अनुभूतियों तथा व्यक्तिगत रूचियों का सहारा लेता है। यही कारण है कि एक ही वस्तु का चित्रण विभिन्न लेखक भिन्न–भिन्न ढंग से करते है। इस प्रकार वस्तु जगत के सत्य और भाव–जगत के सत्य में अन्तर दिखाई पड़ता है। साहित्य का सत्य वस्तु जगत के सत्य से सदैव कुछ न कुछ भिन्न रहेगा। यदि हम यथार्थवादी साहित्य को वस्तु जगत का तद्वत् चित्र मान लें तो भी चित्र और मूल में स्पष्ट अन्तर रहता ही है।"[82] पं. नंददुलारे वाजपेयी का मानना है–"यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक् सत्ता का समर्थक है। वह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का संबंध प्रत्यक्ष वस्तुजगत से है।"[83]

उक्त दोनों परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि यथार्थ में ज्यों का त्यों वर्णन किया जाता है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति यथार्थवाद में कलात्मक तथा रचनात्मक ढंग से ही की जाती है। यथार्थवाद में साहित्यकार अपने अनुभवगत विचारों को पाठक वर्ग के समक्ष अपनी रूचि के अनुसार कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। यथार्थवाद व्यापक रूप में समाज की वस्तुगत सत्यता को प्रकट करने का माध्यम है, जिसमें जीवन के विविध पक्ष एक साथ दिखाई देते हैं।

वस्तुतः "जीवन तथा मानव व्यक्तित्व को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने का दावा करने वाला 'यथार्थवाद' उन सारे विषयों को अपनी परिधि में लेता है, जिनका जीवन से अथवा मनुष्य से संबंध है। बाह्य जीवन की वे सभी वस्तुएं जो मनुष्य के मन में सौंदर्य की संवेदना उत्पन्न करती है 'यथार्थवाद' का विषय बन सकती है और उसके विविध कलारूपों में बनी भी है।

यथार्थवाद की सार्थकता मनुष्य के पूरे व्यक्तित्व को साकार करने में है और इसके अंतर्गत उसकी कोमल संवेदनाएं निजी प्रेम प्रसंग भी आते हैं। 'यथार्थवाद' में पूरा अवकाश है। परूष और कोमल ये दोनों मिलकर जीवन को समग्रता देते हैं और यही मानव व्यक्तित्व में भी निहित है। यथार्थवाद कथा साहित्य के अंतर्गत मनुष्य तथा जीवन की ये कोमल संवेदनाएं अथवा विशिष्ट प्रसंग, व्यापक चित्रण का अंग बनकर आए है।"[84]

अतः यथार्थवाद व्यक्ति ही नहीं बल्कि पूरे समाज के बाह्य और आन्तरिक दोनों पक्षों का चित्रण करता है। समाज की बुराईयों के साथ–साथ उसके अच्छे पक्ष को भी साहित्य जगत में उसी सत्यता के साथ प्रस्तुत करता है, जिसमें कि पाठक तथा समाज का हित निहित है। समाज के असंगत पक्षों का चित्रण यथार्थवाद में इस उद्देश्य से ही किया जाता है कि पाठक का दृष्टिकोण व्यापक हो और वह सामाजिक समस्याओं का निदान करने में सक्षम हो सके।

2.4 उपन्यास साहित्य और यथार्थ का अन्तर्संबंध

उपन्यास को मूलतः आधुनिक युग की देन माना गया है। उपन्यास का यथार्थ के साथ अत्यन्त घनिष्ठ एवं अंतरंग संबंध है। उपन्यास को महाकाव्य का स्थानापन्न भी माना गया है। उपन्यास गद्य की विधा है और महाकाव्य पद्य की विधा। विद्वानों का मानना है कि आधुनिक वैज्ञानिक युग में हमारा सामाजिक जीवन तथा हमारे पारिवारिक संबंध अत्यधिक जटिल व शिथिल होते जा रहे है, इसकी अभिव्यक्ति मात्र गद्य की भाषा द्वारा ही संभव है।

"अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर 19वीं शताब्दी के अन्त तक वैज्ञानिक आविष्कारों के विस्फेट तथा वैचारिक क्रांति के फलस्वरूप समकालीन जीवन में जो व्यापक, क्रांतिकारी और दूरगामी परिवर्तन हुए उन्हें साहित्य में अभिव्यक्ति करने की चुनौती यथार्थवाद ने ओर विशेष रूप से उपन्यास ने स्वीकार की। सच तो यह है कि उपन्यास का जन्म ही इन नयी परिस्थितियों के साथ इनकी अभिव्यक्ति के अनिवार्य माध्यम के रूप में हुआ।"[85]

उपन्यास साहित्य विचार प्रधान गद्य की विधा है। इसका स्वरूप लोकभाषा, जनसामान्य के बोलचाल की भाषा के करीब होता है। उपन्यास में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों, पात्रों और घटनाओं का यथार्थपरक चित्रण व्यापक फलक पर सम्भव है। यही कारण है कि उपन्यास और नाटक जैसी गद्य विधाओं ने जन सामान्य को अपनी और आकर्षित करने में सर्वाधिक सफलता अर्जित की है। औद्योगिक प्रगति व नये–नये आविष्कारों के साथ–साथ उपन्यास की आकृति में भी परिवर्तन हुए वह अब केवल मनोरंजन प्रदान करने का साधन ही नहीं रहा, बल्कि शिक्षा तथा उपदेश प्रदान करने का माध्यम भी बना।

वस्तुतः यथार्थ को एक ऐसा माध्यम चाहिए था, जिसके द्वारा वह अपनी अभिव्यक्ति व्यापक स्तर पर कर सके, जिसमें पात्र अच्छे हो या बुरे, दृश्य कुरूप हो अथवा सुन्दर,

घटनाएं मानवीय हो या अमानवीय उसकी अभिव्यक्ति बेहद ही सरल भाषा में की जा सके, जिसका मात्र उपन्यास ही सशक्त माध्यम था। इसके लिए "शैम्पफ्लूएरी" ने 'ले रियलिज्मि' मे कोर्बेट के दृष्टिकोण को साहित्य में लागू करते हुए सुझाव दिया कि उपन्यास में आपवादिक चरित्र वाले या भीमाकार नायकों को छोड़कर आम आदमी का चित्रण किया जाना चाहिए तथा उसे जीवन के प्रति, चाहे व सुन्द हो या कुरूप, सदाचार से भरा हो या कदाचार से, ईमानदार होना चाहिए और उसकी भाषा सरल–सादी होनी चाहिए। आलोचकों के अनुसार पेशे के रूप में पत्रकारिता के उदय ने सूक्ष्म निरीक्षण, शैली की उन्मुक्तता और व्यापक महाकाव्यीय चित्रांकन को प्रेरित किया है।"[86]

यथार्थवाद वर्ग–चरित्र युक्त प्रतिनिधि पात्रों का सृजन करता है। वह युगीन समाज की समस्याओं के अनुरूप ही घटनाओं व वातावरण का निर्माण कर उनका कलात्मक पुनसृजन करता है। इन सबका माध्यम गद्य की विधा उपन्यास है, क्योंकि उपन्यास ही वह स्थान प्रदान करता है, जिसमें एक साथ कईं घटनाएं, कई पात्र विभिन्न प्रकार के वातावरण में अपनी समस्याओं के साथ उपस्थित होते हैं। वह एक साथ एक–दूसरे से जुड़े हुए अपनी–अपनी कथाओं को कहते है, जिसमें वह अपने जीवन को भोगते तथा संघर्ष करते दिखाये जाते है। वह एक ऐसा फलक है जहां समस्या भी है और उसके निराकरण के चिह्न भी उसी में छिपे है।

उन्नीसवीं शताब्दी के सभी महान् रचनाकारों ने इस विधा को अपनाया है, जिनमें मूलतः बाल्जाक स्टेढ़ाल, डिकन्स, स्कॉट गोगोल, टॉलस्टॉय आदि के नाम लिये जा सकते है। हिंदी उपन्यास में यथार्थवाद के पुरोधा प्रेमचंद माने जाते हैं। प्रेमचंद से पूर्व यथार्थ अपने शैशव काल में था। प्रेमचंद ही एक मात्र ऐसे कथाकार थे, जिन्होंने इसे यौवन प्रदान किया। प्रेमचंद के परवर्ती कथाकारों में से कुछ ने इसे संवारा और कईं कथाकारों ने अपने–अपने ढंग से इसका मनोवैज्ञानिक, ऐतिहसिक, आंचलिक यथार्थ इत्यादि के धरातल पर किया। यथार्थवादी लेखक के लिए कल्पना अत्यधिक महत्वपूर्ण और उसकी सृजनात्मकता का अंग होती है। 'कल्पना' के द्वारा ही यथार्थववादी लेखक बाह्य जगत के यथार्थ को अपनी अनुभूतियों के रूप में संचित करता है और कला के रूप में पुनः एक नवीन यथार्थ का सृजन करता है। अतः कल्पना और यथार्थ उपन्यास साहित्य सृजन प्रक्रिया के अनिवार्य अंग है। यथार्थ और उपन्यास साहित्य का अत्यन्त गहरा संबंध है।

2.5 यथार्थ उपन्यास साहित्य की विशेषताएं

हिंदी साहित्य में अपने समय के समाज और उनसे जुड़ी समस्याओं को ज्यों का त्यों रचनात्मकता के साथ प्रस्तुत करने वाले यथार्थवादी रचनाकारों का साहित्य आज भी लगभग सभी वर्ग के पाठकों पर अपनी प्रभावी अमिट छाप छोड़ने में सक्षम है। इन साहित्यकारों

ने अपने–अपने समाज के निचले वर्ग से जुड़ी समस्याओं को करीब से देखा तथा भोगा था। यथार्थवाद वह फलक है, जिसके माध्यम से रचनाकार अत्यधिक सहज तरीके से सत्य को समाज से अवगत करा सकता है। यथार्थवाद अपनी कुछ विशिष्टताओं के कारण रचनाकारों के बीच अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। यथार्थ उपन्यास साहित्य की विशेषताओं में यथार्थ तथा उपन्यास की विशेषताएं सम्मिलित है। चूंकि उपन्यास यथार्थ की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। इसलिए दोनों की विशेषताओं में समानता होने के कारण इनकी सम्मिलित रूप में व्याख्या की जा सकती है।

यथार्थ उपन्यास साहित्य की विशेषताएं निम्नलिखित है –

- यथार्थ उपन्यास साहित्य में जीवन के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति के साथ–साथ मानवीय जीवन के भूत, वर्तमान और भविष्य का अपने अनुभव के आधार पर संपूर्ण रूप प्रस्तुत किया जाता है।
- यथार्थवादी उपन्यास में रचना प्रक्रिया यांत्रिक न होकर जीवंत होती है। इस संदर्भ में हावर्ड फास्ट का विचार है – "लेखक के लिए यह आवश्यक है कि वह कलाकृति के अतंर्गत यथार्थ का यांत्रिक विधि से चित्रण न करके उसी जीवंत सृजन प्रक्रिया के आधार पर करे, जो जीवन के विशाल कैनवास से प्रभावशाली छवियों का आंकन कर कलाकृति को सार्थक बनाती है। प्रकृति का यथातथ्य चित्रण यथार्थवादी कला नहीं, आवश्यक तथा विवेकपूर्ण चयन ही कलाकृति तथा यथार्थवादी रचना प्रक्रिया का प्राण है।"[87]
- यथार्थ उपन्यास साहित्य का उद्देश्य सामाजिक संबंधों की द्वन्द्वात्मकता को उनकी वस्तुनिष्ठ परिस्थितियों में चित्रित करना और समझना है।
- यथार्थ उपन्यास साहित्य कल्पना का कींचित मात्र ही सहारा लेता है। वस्तुगत यथार्थ की पुनर्संरचना के लिए कल्पना एक शक्ति के रूप में कार्य करती है।
- यथार्थवादी साहित्य में रूप और वस्तु तत्व की एकता की चर्चा करते हुए हावर्ड फास्ट ने लिखा है–"वस्तु तत्त्व से पृथक् रूप तत्त्व का अस्तित्व उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार भीतरी मनुष्य के अभाव में उसका बाह्य न तो जीवित रह सकता है और न साँसे ले सकता है।"[88]
- यथार्थवादी उपन्यास साहित्य में लेखक की जीवन दृष्टि और उसकी विचारधारा अत्यधिक सहज होती है।
- यथार्थ उपन्यास साहित्य में एक काल विशेष के सामाजिक जीवन की संस्कृति के दर्शन स्पष्ट रूप में होते है साथ ही उस युग विशेष की राजनीति, धार्मिक, आर्थिक परिवेश तथा

सम्पूर्ण इतिहास की झांकी प्रस्तुत की जाती है। अतः यथार्थ उपन्यास साहित्य किसी भी युग को जानने का एक सरल व सटीक माध्यम है।

इस संदर्भ में **शिवकुमार मिश्र** ने लिखा है – "शुरू से लेकर बीसवीं सदी के अन्तिम छोर तक हिंदी उपन्यास का मुख्य प्रवाह यथार्थ की धरती से ही जुड़ा रहा है। सामाजिक जीवन के इस यथार्थ को चित्रित करने के नजरिए भले ही अलग हो, किन्तु यथार्थ को दरकिनार करके कथाकार आगे नहीं बढ़े है। पूरी सदी के उद्वेलन–वे राजनीतिक आयाम के हो या उनका संबंध सामाजिक जीवन हो, सदी के उपन्यासों में पूरी विशदता और पूरी गहराई में चित्रित हुए हैं। सामाजिक जीवन का कोई भी महत्वपूर्ण पहलू कथा परिदृश्य से अलग नहीं हुआ है। समाज के हर वर्ग की जिदंगी, अपने संपूर्ण वैविध्य में उसमें मूर्त हुई है। सामाजिक वस्तविकता के साथ व्यक्ति मन के यथार्थ को भी खंगाला गया है। यदि कोई पूरी सदी के राजनीतिक–सामाजिक जीवन के उद्वेलनों को जानना चाहे तो उपन्यासों के माध्यम से उन्हें उनकी संपूर्णता में जाना जा सकता है।"[89]

2.6 अमरकांत और यथार्थवाद

प्रेमचंद की यथार्थवादी धारा के कथाकार अमरकांत स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनका ध्येय मनोरंजन हेतु साहित्य सृजन कर अर्थोपार्जन करना नहीं था। उनका जुड़ाव अपने देश, समाज तथा निचले तबके के सामान्य वर्गों से रहा है। अपने साहित्य में उन्होंने नायक को आदर्श का जामा पहनाकर उसे देवतुल्य अथवा महान् बनाने की अपेक्षा उसकी हीनता, कुंठा असमर्थता, अंतर्विरोधो अथवा मनःस्थितियों का सच्चाई के साथ यथार्थ धरातल पर चित्रण किया है। उन्होंने भारतीय समाज के उन लोगों की समस्याओं और आर्थिक विषमताओं को अपने कथा साहित्य में स्थान दिया है, जो समाज द्वारा दबे कुचले है। साथ ही उन्होंने युवा मन की आशा–आंकाक्षाओं तथा जीवन यथार्थ को अपनी पूरी संवेदना के साथ प्रस्तुत कर आज के सामाजिक परिवेश से पहचान करवाने की चेष्टा की है।

अमरकांत के उपन्यास साहित्य की मुख्य विशेषता है उनका यथार्थ दृष्टिकोण। जिसके माध्यम से उन्होंने समाज में घटने वाली रोजमर्रा की समस्याओं को जानने–समझने तथा प्रस्तुत करने का प्रयास अपने उपन्यास साहित्य में किया है। आजादी के बाद के भारत की अनेक समस्याओं का चित्रण उनके साहित्य में दृष्टिगत होता है। स्वतंत्रता पश्चात् भारत–विघटन की घटना हो या लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति की योजना। अंततः देशवासियों का मन पीड़ा व अलगांव से भर उठता है। अंग्रेजी दास्यता को भोगने के पश्चात् आम जनता का अपनी नयी सरकार के प्रति आशान्वित होना तथा स्वर्णिम सपने बुनना एक आम बात थी, किन्तु जल्द ही नेताओं की स्वार्थ सिद्धि तथा कर्मचारियों की अफसरशाही तथा चाटुकारिता को देख लोगों का

सरकार के प्रति मोह भंग हुआ। औद्योगीकरण ने शहरीकरण को बढ़ावा दिया। अतः नौकरी की तलाश में गांव के लोग शहर की ओर उन्मुख होने लगे। फलस्वरूप संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ। शहरीकरण और बाजारवाद ने हमें भौतिकवादी बना दिया, जिसके चलते आर्थिक आवश्यकताएं बढ़ जाने के फलस्वरूप परिवार में स्त्री–पुरुष दोनों का कमाना आवश्यक हो गया। इस नई सोच ने समाज की नई जीवन दृष्टि को विकसित किया। शहरों की आबादी बढ़ने लगी और शहरी जीवन में तनाव बढ़ता गया। इस तनाव ने परिवार के आधार स्तम्भ पति–पत्नी के रिश्ते को पाटने का कार्य किया। आर्थिक स्वावलंबन के कारण महिलाओं में सामाजिक स्तर पर बराबरी और स्वातंत्र्य का भाव जाग्रत हुआ। शिक्षा के प्रचार–प्रसार के फलस्वरूप शिक्षित लोगों की संख्या में वृद्धि हुई ,जिसके कारण बेरोजगारी, शोषण और अलगाव की स्थिति बनने लगी।

वस्तुतः अमरकांत का जुड़ाव शहरी मध्यवर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग की आशा–आकांक्षाओं से जुड़ा हुआ था। वे स्वयं भी समाज के इसी वर्ग से थे तथा इस वर्ग की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं से परिचित होने के कारण एक बैचेनी का अनुभव उनके साहित्य में देखने को मिलता है। उनके उपन्यासों में इसी वर्ग के जीवानुभवों, विसंगतयों और जिजीविषाओं का प्रभावशाली चित्रण यथार्थ के व्यापक फलक पर हुआ है। समाज की विभिन्न समस्याओं के चित्रण हेतु उपन्यास को एक सशक्त माध्यम भी माना गया है। अमरकांत के अधिकांश उपन्यास युवा–वर्ग के व्यक्तित्व विकास में आने वाली बाधाओं को मद्देनजर रखते हुए लिखे गये है, जिनमें समस्याओं से लड़ने तथा उनके निराकरण हेतु सुझाव भी प्रेषित है।

"अमरकांत के उपन्यासों में जिंदगी के विकास का सूत्र मिलता है, जिसे वे उलट–पुलट कर खरापन प्रदान करते है। 'सूखा–पत्ता' में कृष्ण कुमार और उर्मिला 'ग्रामसेविका' में दमयंती और हरचरण, 'कंटीली राह के फूल' में अनूप और कामिनी, 'काले उजले दिन' में नायक और रजनी, 'दीवार ओर आंगन" (बीच की दीवार) में दीप्ति और मोहन की तलाश के संदर्भ अलग–अलग नहीं है। एक ही आदमी विभिन्न परिस्थितियों में उलझकर बाहर आता है। जिंदगी मनोविज्ञान की इस बात से सहमत है कि मनुष्य की कुंठाए सहयोग के लिए उनसे उभरे लोगों का चुनाव करती है। एक कुंठा एक आदमी के मेल से साफ होती है, तो दूसरी के लिए दूसरा आ जाता है। व्यक्तियों का जिंदगी में आना–जाना व दोस्ती का बनना–बिगड़ना व्यक्तित्व के विकास की जरूरी शर्त है।"[90]

'सूखा–पत्ता' उपन्यास के माध्यम से अमरकान्त ने निम्न मध्यवर्गीय किशोरों के अपरिपक्व मन की यथार्थ अभिव्यक्ति की है। "इस उपन्यास में कृष्ण कुमार के जरिए उसकी किशोर मानसिक विकृतियों और किसी हद तक इसी के ब्याज से अपरिपक्व राष्ट्रीय मानस की कमजोरियों का आकंलन प्रस्तुत किया है।"[91]

'सूखा पत्ता' उपन्यास का नायक और उसके जीवन का प्रारम्भिक काल वस्तुतः अमरकांत का ही प्रारम्भिक काल है। उन्होंने अपनी किशोरावस्था में जिस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी निभायी उसका अनुभूत सार ही सूखापत्ता के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत है। इस प्रकार अमरकांत के द्वारा भोगा हुआ यथार्थ ही उन्होंने अपने उपन्यास में अभिव्यक्त किया है।

'ग्राम सेविका' उपन्यास में स्वातंत्र्योपरांत सरकार द्वारा चलाए गये शैक्षिक अभियानों की चर्चा की गई है। साथ ही ग्रामीण समाज में व्याप्त रूढ़ियों व कुरीतियों तथा अशिक्षा का यथार्थ वर्णन किया गया है। अमरकान्त ने उस समय की ग्रामीण परिस्थितियों तथा समाज में नारी की स्थिति का यथावत् वर्णन प्रस्तुत किया है। अमरकांत के उपन्यासों में पुरूष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों की अभिव्यक्ति अधिक सशक्त रूप में हुई है। उनके नारी विषयक पात्र अधिक साहसी, योग्य, स्वाभिमानी तथा सहनशील दिखाई देते है। उनके उपन्यास के नारी पात्र अत्यधिक संघर्षशील है। भारतीय स्त्री के आंदोलित मन की झलक उनके 'ग्रामसेविका' उपन्यास की संघर्षशील दमयंती, 'काले–उजले–दिन' उपन्यास की सहनशील कांति, 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास की कर्मठ व पतिव्रता नारी राजलक्ष्मी, 'आकाशपक्षी' उपन्यास की उदारमना हेमा तथा 'लहरे' उपन्यास की भोली–भाली बच्ची देवी आदि में दिखाई देती है।

अमरकांत के उपन्यास 'इन्ही हथियारों से' में सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' का यथार्थ वर्णन है। प्रस्तुत उपन्यास में समाज के सभी समुदाय के लोग यथा स्कूलों में पढ़ने वाले किशोर, मजदूर, दलित, मुसलमान व्यापारी, वैश्याऐं, डाकू इत्यादि सभी का अंग्रेजों के प्रति विद्रोह व आक्रोश व्याप्त है। यह उत्तरप्रदेश के एक छोटे जनपद बलिया पर केद्रिंत स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखित एक यथार्थ गाथा को अभिव्यक्त करता है। 'सुन्नर पांडे की पतोह' में राजलक्ष्मी के साथ बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक जो भी दुराचरण हुए वह समाज की मानसिक विकलांगता को इंगित करते है। राजलक्ष्मी जैसी परित्यक्ता नारी के जीवन–संघर्ष और अस्तित्व को लेकर समाज से प्रश्न करता यह उपन्यास कि जो नारी इस संसार की अमूल्य निधि है, जो समाज को बहुत कुछ देती है, उसी समाज में नारी को अपने अस्तित्व व चरित्र की रक्षा हेतु संघर्ष करना पड़ता है। अशिक्षित ग्रामीण नारी के लिए तो यह कार्य और भी विकट है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में नारी की कोमल संवेदनाओं तथा उसके संघर्ष का यथार्थ चित्रण उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है।

'कंटीली राह के फूल' उपन्यास एक त्रिकोण प्रेम की कथा है, जिसमें युवा मन की असमंजसता तथा अपरिपक्वता के बीच फंसे अनूप की मानसिक स्थिति का वर्णन किया गया है। अनूप मधु के सौदर्य पर मोहित है, किंतु मधु में बाह्ययाऽम्बर तथा वासना का खुला सौंदर्यीकरण है, तो दूसरी ओर कामिनी का सादगी भरा गंभीर, समझदार, सम्मानपूर्ण सौम्य चेहरा

है, जिसमें वासना का हल्का संस्पर्श है तथा प्रेम भीतर तक अपनी जड़े जमाए हुए है। मधु और कामिनी के बीच अनूप की द्वन्द्वात्मक स्थिति का यथार्थ चित्रण अमरकांत ने आज के युवा को लक्षित कर किया है।

'बीच की दीवार' में दीप्ति को केंद्रीय भूमिका में तथा मनफूल अशोक, कमल तथा मनमोहन को उसके इर्द–गिर्द दीप्ति का शारीरिक सुख तथा प्रेम पाने के लक्ष्य से किया है। दीप्ति के मन में अशोक, मनफूल, कमल इत्यादि के सन्निकट से शारीरिक भोग की आकांक्षा पैदा होती है, जो बाद में मोहन के प्रेम से विचारवान क्षेत्र में परिलक्षित हो जाती है। प्रस्तुत उपन्यास में युवा मन की प्रेम विषयक हलचलों तथा प्रेम के कई कोणों को प्रकट करते हुए प्रेम की परिपक्वता का यथार्थ वर्णन हुआ है।

'काले उजले–दिन' के नायक का बचपन विमाता की ईर्ष्या और पिता की क्रूरता के बीच गुजरा है। इस प्रकार बचपन से ही माता–पिता की उपेक्षा के कारण और प्यार का अभाव कुंठा बन जाता है और उसके अधूरे चरित्र का निर्माण होता है। पत्नी कांति से मिले आदर, श्रद्धा तथा जीवन के उत्सर्ग से भी वह तुष्ठ नहीं हो पाता और उसका मन प्यार के लिए तड़पता है, जो प्रेयसी रजनी के प्रेम को पाकर तुष्ट होता है। नायक का संघर्ष मानसिक धरातल में ही नही, अपितु यथार्थ की जमीन में झेला गया है।

'आकाश पक्षी' उपन्यास सामन्ती विचारधारा तथा अकर्मण्यता को लक्षित कर लिखा गया है, जिसमें राजसी ठाठ–बाठ, वर्ण्यभेद, दलितों का शोषण तथा नारी मन की कोमल भावनाएं, बेमेल विवाह, सामन्ती यथार्थ चित्रण अंकित है। 'पराई डाल का पंछी' उपन्यास में पुरूषों द्वारा शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों स्त्रियों का शोषण कितनी चालाकी के साथ किया जाता है। इस यथार्थ से पाठकों को अवगत कराया गया है। दीपक द्वारा अपनी अनपढ़ पत्नी का शोषण इसलिए किया जाता है, क्योंकि वह आधुनिक नहीं थी। वही रेखा का शोषण वह इस आधार पर करता है कि आधुनिक पढ़ी–लिखी औरतों का चरित्र सही नहीं होता। इस प्रकार अमरकांत ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज की अनेक विसंगतियों, रूढ़ियों तथा कुंठाओं इत्यादि का चित्रण यथार्थ रूप में किया है।

निष्कर्ष

यथार्थवाद जीवन तथा समाज की समस्याओं का वास्तविक तथा प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत करता है। साहित्य में विशेष रूप से उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति सशक्त रूप में देखी जा सकती है। यथार्थवाद आधुनिक तथा लोकप्रिय वस्तुओं का चयन करता है। यथार्थवाद में सामान्य जीवन की ध्वनि एवं दृश्य प्रस्तुत किये जाते हैं। अमरकांत ने अपने उपन्यासों में भी सामान्य वर्ग के लोगों को पात्रता प्रदान की है। उनके राजनीतिक, सांस्कृतिक,

सामाजिक तथा आर्थिक पक्षों को अमरकांत ने अपनी यथार्थ लेखनी का विषय बनाया है। अमरकांत ने निम्न वर्ग के लोगों की संवेदना को यथार्थ के माध्यम से पाठक वर्ग के समक्ष रखने का प्रयास किया है।

वस्तुतः अमरकांत ने भारतीय समाज के निचले तबके की विभिन्न समस्याओं, विसंगतियों, आर्थिक विषमताओं व विवशताओं को प्रामाणिक ढंग से अपने साहित्य में स्थान देकर समाज की यथार्थ स्थिति से पाठक वर्ग की पहचान कराने का प्रयास किया है। उन्होंने वर्तमान में आर्थिक समस्या, अलगाव की स्थिति, असफल प्रेम युवा मन के अन्तर्द्वन्द्व की मनःस्थिति इत्यादि का सच्चाई के साथ चित्रण किया है। अमरकांत ने अपने कथा साहित्य में पति—पत्नी के संबंध, प्रेम प्रसंग, आपसी विश्वास तथा टूटते रिश्तों का मनोविज्ञान और अन्तर्जगत के अन्तर्गत प्रेम, सौहार्द द्वेष, ईर्ष्या, अन्तर्द्वन्द्व, जिजीविषा इत्यादि का प्रभावशाली व यथार्थ चित्रण किया है।

सन्दर्भ सूची

1. A History of English Literature, Cazamian, P. 78
2. Dictionary of world literature, P. 470
3. Study in European Realism, George Lurace, P. 25
4. पाश्चात्य समीक्षा : सिद्धांत और वाद, डॉ. सत्यदेव मिश्र, पृ. 273
5. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, द्वारिका प्रसाद शर्मा, तारणीश वेदान्ताचार्य, पृ. 950
6. हलायुध कोश, जयशंकर जोशी, पृ. 548
7. वाचस्पत्यम्, भट्टाचार्य श्री तारकनाथ तर्क वाचस्पति, पृ. 477
8. शब्द कल्पद्रुम, राजा राधाकान्त देव, पृ. 12
9. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ. 49
10. हिंदी साहित्य का आदिकाल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 27
11. विचार और विवेचन, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 97
12. कल्पना और यथार्थ, (लेख), समालोचना (मासिक), डॉ. रामअवध द्विवेदी, पृ. 35
13. काव्य, यथार्थ और प्रगति, डॉ. रांगेय राघव, पृ. 78
14. काव्य के रूप, डॉ. गुलाबराय, पृ. 188
15. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 17
16. साहित्य और यथार्थ, हावर्ड फास्ट, पृ. 17
17. ऑन लिटरेचर, मैक्सिम गोर्की, पृ. 32
18. Document of modern literary Realism, George J. Baker, P. 36
19. Realism, Domain Grant, P. 15
20. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 30
21. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 31
22. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 32

23. लिटरेचर एण्ड साइक्लॉजी, लुकाच, एस.एफ.एल., पृ. 99–100

24. द मॉडर्न ट्रेडिशन, लियो ट्रास्की, पृ. 34

25. हिंदी उपन्यास और यथार्थ, प्रथम खण्ड, डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृ.25

26. http://shabdkosh.raftarr.in

27. दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता, डॉ. जयसिंह 'नीरद', पृ. 16

28. उद्योग पर्व महाभारत, 1327

29. www.Nagichetna.com

30. www.Nagichetna.com

31. www.Nagichetna.com

32. www.Nagichetna.com

33. हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृ. 69

34. नयी कविता के प्रतिमान, डॉ. लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ. 104

35. साहित्य और यथार्थ, हावर्ड फास्ट, पृ. 17

36. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 228

37. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 228

38. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 228

39. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 229

40. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 229

41. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 230

42. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 223

43. साहित्य और सामाजिक मूल्य, डॉ. हरदयाल,

44. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 238

45. हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृ. 39

46. दर्शन साहित्य और समाज, यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 41

47. यथार्थ की विभिन्न–भूमिया (समालोचक) मासिक, डॉ. रामरतन भटनगर, पृ. 62–63

48. आत्मज्ञान, अणि–विज्ञान, विनोबा, तीसरी आवृत्ति 1979, पृ. 74

49. हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद (कृष्णलाल की भूमिका से), डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृ. 4

50. तीसरा सप्तक, कुंवर नारायण, पृ. 248

51. दिनकर के काव्य में परम्परा एवं आधुनिकता, डॉ. जयसिंह 'नीरद', पृ. 41

52. बदलते परिदृश्य, नेमीचंद जैन, पृ. 48

53. साहित्य और सामाजिक मूल्य, डॉ. हरदयाल, पृ. 27

54. नयी कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ. 103

55. नयी कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ. 103

56. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, आमुख से उद्घृत, पृ. 3

57. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, आमुख से उद्घृत, पृ. 3

58. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 37

59. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 41

60. आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद, सत्यकाम, पृ. 31

61. आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद, सत्यकाम, पृ. 33

62. छायावाद में यथार्थ तत्त्व, डॉ. छोटाराम कुम्हार, पृ. 15

63. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 46

64. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 48

65. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 170

66. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 181

67. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 183

68. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 183

69. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 188

70. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 192

71. छायावाद में यथार्थ तत्त्व, छोटाराम कुमार, पृ. 25

72. छायावाद में यथार्थ तत्त्व, छोटाराम कुमार, पृ. 25

73. छायावाद में यथार्थ तत्त्व, छोटाराम कुमार, पृ. 26

74. छायावाद में यथार्थ तत्त्व, छोटाराम कुमार, पृ. 25

75. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 66

76. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 67

77. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 77

78. छायावाद में यथार्थ तत्त्व, छोटाराम कुम्हार, पृ. 27

79. आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद, सत्यकाम, पृ. 48

80. छायावाद में यथार्थ तत्त्व, छोटाराम कुम्हार, पृ. 28

81. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 80

82. हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृ. 81

83. हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृ. 82

84. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 241

85. आलोचनात्मक यथार्थवाद का सैद्धांतिक अध्ययन, सत्यकाम, पृ. 36

86. आलोचनात्मक यथार्थवाद का सैद्धांतिक अध्ययन, सत्यकाम, पृ. 37

87. छायावाद में यथार्थ तत्त्व, छोटाराम कुम्हार, पृ. 18

88. छायावाद में यथार्थ तत्त्व, छोटाराम कुम्हार, पृ. 19

89. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 211

90. अमरकांत एक मूल्यांकन, रवीद्रं कालिया, पृ. 293

91. अमरकांत का कथा साहित्य, बहादुर सिंह परमार, पृ.133

तृतीय अध्याय

हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद का विकास

तृतीय अध्याय
हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद का विकास

भूमिका

हिन्दी साहित्य में उपन्यास का वास्तविक स्वरूप सर्वप्रथम प्रेमचंद के उपन्यासों में ही दिखाई देता है। प्रेमचंद पूर्व के उपन्यासों में विषय और उद्देश्य की दृष्टि से वैविध्य अधिक है, किन्तु वे सभी उपन्यास की वास्तविक गरिमा प्राप्त करने में असमर्थ है। प्रेमचन्द ने उपन्यास साहित्य को एक नई सोच व दिशा दी और उसे उत्कर्ष के शिखर पर पहुँचाया।

जहां तक पश्चिम के साहित्य की बात है, तो वहां उपन्यास साहित्य का विकास 17वीं शताब्दी से ही प्रारम्भ हो गया था, या यों कहा जाए कि पश्चिम का साहित्य भारतीय हिंदी साहित्य से काफी समृद्ध था तो गलत न होगा। इसका कारण वहां की नई सोच, आविष्कार, क्रांतियां तथा पूंजीवादी व औपनिवेशिक नीतियां थी। हिंदी साहित्य में उपन्यास का विकास 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से होने लगा था, किन्तु प्रेमचंद पूर्व के उपन्यासों में पश्चिम उपन्यासों की मूल छवि नहीं थी, वे भारत में प्रचलित आख्यायिकाओं या कथाओं के प्रभाव से नहीं उबर सके थे। उनके अनुसार उपन्यास मात्र मनोरंजन अथवा सुधार का साधन मात्र था।

वस्तुतः "उपन्यास एक हल्की–फुल्की विधा नहीं है, जो सम्भव–असम्भव घटनाओं और चटकीले–भड़कीले प्रसंगों की अवतारणा करती चलने वाली कथा के माध्यम से पाठकों का मनोरंजन करे। उपन्यास की वास्तविक शक्ति महान् है। उसका उद्देश्य बड़ा है। उपन्यासकार के पास जीवन की दृष्टि होनी चाहिए। जीवन के यथार्थ का गहरा अनुभव होना चाहिए। सर्जनात्मक कल्पना की अपार शक्ति होनी चाहिए, विचार की गहनता होनी चाहिए और जीवन का विवेचन होना चाहिए।"[1] इस प्रकार उपन्यास यथार्थ पर अधिक अवलम्बित रहता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "यथार्थवाद एक कौशल है। कौशल इस अर्थ में कि यथार्थ को ही चित्रित करना साहित्य का उद्देश्य नहीं, उसका उद्देश्य तो उन वृहत्तर सत्यों की प्रतिष्ठा करना है, जो मानव को ऊँचा उठाते है, किन्तु वह इस सत्य की प्रतिष्ठा बाहरी यथार्थ का चित्र अंकित करते हुए करता है यानी इस बाहरी यथार्थ अंकन से वह पाठकों को विश्वास दिलाता है कि वह जो कुछ कह रहा है, उनके संसार की बात कह रहा है।"[2]

हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद के विकास को हम निम्न बिन्दु के माध्यम से समझ सकते है।

3.1 पूर्व प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद

प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों को मूलतः सुधारात्मक व मनोरंजन प्रदान करने वाला माना जा सकता है। इन उपन्यासों की सबसे प्रमुख विशेषता है, उनका घटना प्रधान होना। इन

उपन्यासों का उद्देश्य घटना चमत्कार का प्रदर्शन कर या तो मात्र मनोरंजन करना है या कोई उपदेश प्रस्तुत करना। इस प्रकार के उपन्यास जीवन यथार्थ से कम ही जुडे होते है। इन उपन्यासों के ढांचे पर टिप्पणी करते हुए रामदश मिश्र कहते है – "सनसनी पैदा करने वाली, कौतुहलवर्धन करने वाली या किसी विशेष सुधारवादी अंत तक पाठकों को पहुंचाने वाली घटनाओं को लेखक अपने ढंग से सजाता चलता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार के घटना नियोजन में कथानक का स्वाभाविक प्रवाह तथा पात्रों का सहज विकास सुरक्षित नहीं रह पाता। घटनाओं की सम्भाव्यता–असम्भव्यता पर भी लेखक का बहुत कम ध्यान रहता हैं।"[3] अतः इन चरित्रों में मानव की गहरी संवेदना जटिल भाव–बोध और चिंतन शक्ति को प्रभावित करने की क्षमता नहीं होती।

पूर्व प्रेमचंद युग में जासूसी, तिलस्मी, ऐयारी उपन्यासों की रचना मनोरंजन के उद्देश्य से हुई। साथ ही उपन्यास पुरानी दंत कथाओं पर आधारित होने के कारण कौतूहल व आश्चर्य से भरे हुए थे। इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना भी की गई, जिनमें सामाजिक प्रेमाख्यानों की भरमार भी देखने को मिलती है। इन उपन्यासों को उपयोगितावादी बनाने के लिए नीति–प्रधान, शिक्षाप्रद तथा सुधारवादी दृष्टिकोण का सहारा भी लिया गया, जिनका आधार संस्कृत साहित्य, दंत कथाएं, पंचतंत्र, हितोपदेश, रामायण, महाभारत, जातक–कथाएं, वीरगाथाओं, प्रेमगाथाओं और काव्यों को माना जा सकता है। पूर्व प्रेमचंद उपन्यासों में उपन्यास का स्वरूप तो पश्चिम से लिया गया है, किंतु उनमें परम्परागत कथा–साहित्य की प्रतिष्ठा अधिक थी।

हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा में पण्डित गौरीदत्त कृत 'देवरानी जेठानी की कहानी' हिंदी के प्रारम्भिक उपन्यासों में से एक है। इसका प्रकाशन 1870 में हुआ था। प्रस्तुत उपन्यास में शिक्षा के महत्त्व को दर्शाया गया है कि किस प्रकार पढ़–लिख लेने से कोई भी व्यक्ति कैसे शिष्टचार सीख जाता है। उपन्यास में बाल–विवाह के क्या–क्या परिणाम हो सकते है। इसकी भयावहता का उदघाटन किया गया है। उपन्यास में सामाजिक बुराईयों के साथ–साथ नवजागरण के प्रभाव से समाज में आये परिवर्तन को पढ़ी–लिखी छोटी बहू देवरानी के मुंह से किरपी के पुनर्विवाह की बात कहलवाकर समाज में स्त्री के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण को खण्डित किया है। साथ ही यहां पुरानी पीढ़ी के अनुकरणीय कर्मशीलता और लगन को सर्वसुख के माध्यम से देखा जा सकता है। उपन्यास को पढ़ने के पश्चात् ऐसा लगता है कि रचनाकार का उद्देश्य उस काल में स्त्रियों की दुर्दशा का चित्रण करना था। साथ ही तत्कालीन समाज में एक वर्ग को यथार्थ रूप में उतारने की कोशिश की गई है। नवजागरण के गत्यात्मक प्रभाव को दिखाकर लेखक नव समाज निर्माण हेतु स्त्री की मुक्ति की उद्घोषणा करता हुआ दिखाई देता

है। विशेषकर बाल–विवाह तथा विधवा–विवाह की दुर्दशा को चित्रित करना लेखक का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

उपन्यासों की श्रृंखला में विचारकों के मतों में विभिन्नता देखी जा सकती है। हिंदी के कतिपय आलोचक श्रद्धाराम फिल्लौरी रचित 'भाग्यवती' नामक उपन्यास को हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास मानते है। भाग्यवती का रचनाकाल 1877 ई. ठहरता है। वहीं लाला श्री निवास कृत 'परीक्षा गुरू' का रचनाकाल 1822 ई. माना जाता है। इस दृष्टि से हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरू' को माना जाना चाहिए। वैसे परीक्षा गुरू आधुनिक शिल्प के अधिक निकट है। अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लाला श्रीनिवास कृत 'परीक्षा गुरू' को ही हिंदी का अंग्रेजी ढंग पर लिखा हुआ प्रथम मौलिक उपन्यास माना है।

मनोरंजन के उद्देश्य से तिलस्मी, ऐयारी उपन्यासों की रचना की गई थी, जिनमें जादुई तत्त्वों का प्रयोग कर कौतुहल जनित घटनाओं का निर्माण किया जाता था। पाठक इन कौतूहल घटनाओं को देखकर अत्यन्त रोमांचित होता हुआ कथा–प्रवाह के साथ तेजी से बहता चलता है। अतः इन रचनाओं का मूल उद्देश्य पाठक को मनोरंजन प्रदान करना था। तिलस्मी व ऐयारी उपन्यासों में देवकीनंदन खत्री के चन्द्रकांता संतति और भूतनाथ सर्वाधिक ख्यात् उपन्यास है। कहा जाता है कि इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए बहुत से लोगों ने हिंदी सीखी। इन उपन्यासों का उद्देश्य पात्रों की अन्तर्वृत्ति का निरूपण, सामाजिक यथार्थ का अंकन और रस–संचार करना नहीं था। यहां पात्र अपना वैशिष्ट्य खोकर लेखक के अनुसार रंगमंच पर आते है तथा नाना प्रकार के कौतूहल पूर्ण दृश्यों व घटनाओं का निर्वहन कर पाठक का मनोरंजन करते है। कौतूहल इन रचनाओं का प्रमुख तत्त्व है। यह एक प्रेमकथा है। नौगढ़ के राजा वीरेन्द्रसिंह और विजयगढ़ की राजकुमारी चंद्रकान्ता का आपस में प्रेम है। क्रूरसिंह भी राजकुमारी को चाहता है। राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए वीरेन्द्र सिंह ओर क्रूर सिंह में संघर्ष होता है और यह संघर्ष ही वैचित्र्यपूर्ण घटनाओं की सृष्टि करता है। इस प्रेमकथा में मार्मिक अनुभूतियों के चित्रण का अभाव है, फिर भी लेखक ने प्रेम के आदर्श की रक्षा की है। यहां वीरेन्द्र सिंह व क्रूरसिंह दोनों ही नायिका चन्द्रकाता को प्राप्त करने के लिए 'कूटनीति' और 'चालाकी' से काम लेते है। दोनों ही पक्षों के ऐयार अपना तिलस्म रचते है। अतः "चार भागों में विभक्त कथानक में तिलस्म, ऐयारी, वचन–पालन, ऐयारों की नैतिकता, जंगल, किले, खंडहर खोहें, गुफाएं, युद्ध, हत्याएं, चमत्कारों की भीड़, आशा–निराशा के कल्पना प्रधान चित्र, अहं, वीरता, पौरूष, अकूत खजाने और चकित कर देने वाली शैली, वर्णनात्मकता भरपूर ढंग से मौजूद है। 'अरबी भाषा में तिलस्म का अर्थ होता है, ऐन्द्रजालिक रचना और ऐयार कहा जाता है उस व्यक्ति को जो हर प्रकार का छद्म जानते हो तथा वेश बदलकर काम निकालना जानता हो।"[4]

"इसी उपन्यास में हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों का उस काल का यथार्थ रूप भी दर्शाया गया है। दोनों समुदायों में आज जिस कट्टरता के दर्शन हो रहे है और जो भारत के विकास में बहुत बड़ी बाधा बनी हुई है उसके बीज उसी काल में विकसित होने शुरू हो गए थे, जिस काल में हिंदी उपन्यास पैरों चलने की तैयारी कर रहा था।"[5]

खत्री जी ने नरेन्द्र मोहिनी, वीर मोहिनी, काजर की कोठरी, अनूठी बेगम, कुसुम कुमारी, भूतनाथ प्रथम छह भाग इत्यादि उपन्यासों की भी रचना की। उनके सभी उपन्यासों की मूल कथा लगभग समान ही है। जिनमें राजकुमार व राजकुमारी का प्रणय और उनका कोई प्रतिद्वन्दी होता है। नए–नए तिलस्म खड़े किये जाते है, विलक्षण दाव–पेंच चलते है। दोनों ओर से ऐयार अपने करतब करते है। अन्त में राजकुमार और राजकुमारी का मिलन हो जाता है। खत्री जी का 11वीं सदी में रचित चंद्रकांता उपन्यास ही अत्यधिक प्रसिद्धि को प्राप्त रचना है।

यह सभी उपन्यास यथार्थ के धरातल पर खड़े न होकर वायवी मायाजाल और कौतूहल विषयक घटनाओं से बुने होते है, जिनका आधार खोखला होता है और वे पाठक को एक नई विस्मय जनक दुनियाँ में ले जाते है, जिसका उद्देश्य पाठक का मनोरंजन करना ही है। इसी श्रृंखला में किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'तिलस्मी शीशमहल' रामलाल वर्मा कृत 'पुतली महल' इत्यादि उपन्यासों की रचना शुद्ध मनोरंजन हेतु की गई थी।

जासूसी उपन्यासों मे भी अनेक पेचीदगीयों से भरी घटनाएं घटित होती है। पाठक वर्ग इन घटनाओं के जाल में उलझा हुआ असली बात को जानने के लिए बैचेन रहता है। चोरी, डकैती, खून, इत्यादि अनेक प्रकार के अपराधियों की खोज जासूसी उपन्यासों में की जाती है। अपराधी का पता लगाना अत्यधिक कठिन होता है। अतः अपराधी की खोज हेतु इन उपन्यासों में बुद्धि–कौशल और वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग होता है। अतः जासूसी उपन्यासों में घटनाओं का आधार समाज ही होता है कोई दूसरी दुनियाँ नहीं जैसा कि तिलस्मी उपन्यासों में था। इसलिए ये अधिक विश्वसनीय होते है। तथा इनका कथानक यथार्थ की भूमि पर रचा जाता है।

जासूसी उपन्यासों में गोपालराम गहमरी के मौलिक एवं अनुदित उपन्यासों की संख्या कदाचित सर्वाधिक है। इनके द्वारा 'जासूस' मासिक पत्रिका निकाली गई, जिसमें जासूसी उपन्यास और कहानियाँ प्रकाशित होती थी। इनके द्वारा 'अद्‌भुत लाश', 'सरकती लाश', 'खूनी कौन', 'बेगुनाह का खून', 'खूनी का भेद', 'अद्‌भुत खून', 'गुप्त भेद' 'जासूसी की भूल', 'बेकसूर की फांसी', इत्यादि जासूसी उपन्यास लिखे गये। इन उपन्यासों की रचना उन्होंने अंग्रेजी और बंगला के जासूसी उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात् की। सर्वप्रथम उन्होंने बंगला के एक जासूसी उपन्यास 'हीरार मूल्य शेयर धुली' का अनुवाद 'हीरे के मोल' नाम से प्रकाशित कराया। लोगों द्वारा इसे काफी पसंद किया गया। उन्होंने लिखा है कि "हीरे के मोल" का पसंद किया जाना

और बम्बई में महालक्ष्मी मंदिर में एक खूनी धोबी का, जो महन्त बन बैठा था, मेरी प्राइवेट मुखबिरी मे पकड़ा जाना, इन दोनों के प्रभाव से मेरी रूचि जासूसी उपन्यास लिखने में बढ़ी और तब से कोई एक सौ पचास छोटे–बड़े उपन्यास लिखे और अनुवाद किए।"[6]

वस्तुतः जासूसी उपन्यासों की रचना में घटनाओं की व्यवस्थित नियोजना और उनका पूर्वापर सम्बन्ध होना अति आवश्यक है। इस संबंध में गहमरीजी कहते है – "पहले जानने योग्य बात घटना की जवनिका में छिपा रखना और इधर–उधर की जो बे–सिलसिले और बेजोड़ हो, पहले कहना और घटना–पर– घटना का तुमार बांधकर असल भेद जानने के लिए पाठकों के हृदय में कौतूहल बढ़ाना और रहस्य पर रहस्य साज कर ऐसा उपन्यास गढ़ना कि पूरा पढ़े बिना स्वाद न मिले।"[7] उक्त कथ्य इस बात की ओर इंगित करता है कि गहमरी के उपन्यास भी यथार्थ से कोसो दूर कोरी मनोरंजकता लिए हुए थे। वैसे सत्य का रूप 'शुभ' स्वीकार करते हुए भी उन्होंने उसके यथार्थ रूप पर बल दिया है। उनका मानना है कि किसी रचना को पढ़कर यदि पाठक को उस पर विश्वास न हो तो वह कृति अधिक मूल्यवान नहीं है। उनका मानना है कि "जिसकों पढ़कर बालक के मन में यह भाव उपजे कि यह तो कोई गप्प है, ऐसा हो नहीं सकता, तब यह समझना चाहिए कि उपन्यासकार के सारे परिश्रम पर पानी फिर गया।"[8] किन्तु उपन्यासकार गहमरी जी की कथनी और करनी में वैमनस्य दिखाई देता है। एक ओर वह सत्य की आधार भूमि पर रचना करने की बात करते है, जिसमें यथार्थ का होना आवश्यक है वहीं दूसरी ओर उनके उपन्यास जासूसी प्रकार के है, जिनमें कल्पना का ही आधिक्य अधिक दिखाई देता है। ये उपन्यास उपदेश प्रधान कम व मनोरंजन प्रदान करने वाले अधिक जान पड़ते है।

लाला श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास, अयोध्या सिंह उपाध्याय, लज्जाराम शर्मा आदि ऐसे महत्वपूर्ण नाम है, जिन्होंने अपने उपन्यासों की रचना सामाजिक जीवन की सन्दर्भता में की है। तत्कालीन युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक संक्राति को नीति प्रधान शिक्षाप्रद व सुधारवादी उपन्यासों में पूरी तरह से अभिव्यक्ति मिली है। इन उपन्यासों में "समस्याओं को प्रस्तुत करने, पहचानने, विश्लेषित करने आदि बातों के बारे में उनका दृष्टिकोण यद्यपि सतही और स्थूल है, परन्तु इस बात का श्रेय उन्हें है कि वे समय की बदली हुई भूमिका के प्रति सजग तो थे ही ईमानदार भी थे।"[9] समय की इस सजगता को लाला श्रीर्निवास कृत 'परीक्षा गुरू' में देखा जा सकता है।

'परीक्षा गुरू' (1882) की कथा में दिखाया गया है कि रईस मनमोहन, मुंशी चुन्नीलाल और शंभूनाथ जैसे अवसरवादी चाटुकारों से घिरा एय्याशी में डूबा रहता है और अपनी झूठी शान दिखाने के लिए फिजूलखर्ची करता है। ऐसे चाटुकार अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु मिस्टर ब्राइट जैसे विदेशियों से मिलकर मदनमोहन जैसे रईसों को कंगाल बनाते है। स्वार्थ की यही

प्रवृत्ति पढ़े–लिखे बैजनाथ में भी दिखाई देती है। लेखकों ने तत्कालीन भारत की शिक्षा पद्धति और शिक्षितों की स्थिति पर गहरी चिन्ता प्रकट की है। यहां पाश्चात्य शिक्षा पद्धति व संस्कृति के यथार्थ का अंकन किया गया है कि किस प्रकार व्यक्ति अंग्रेजी पढ़ता है, विदेशी कपड़े पहनता है। उसका रहन–सहन भी पाश्चात्य है, लेकिन वह विदेशी कारीगरी और व्यापारिक उन्नति तथा उनके सद्‌गुणों का आचरण क्यों नहीं करते? इस प्रकार समकालीन परिवेश के यथार्थ को मूर्त कर भारतीय जीवन में उत्पन्न होने वाली विसंगतियों की चोट से एक प्रकाश पैदा करना ही उपन्यास का उद्देश्य है। इस विषय में रामदरश मिश्र कहते है – "जो बात सौ बार समझाने से समझ में नहीं आती वह एक बार भी परीक्षा से भली–भांति मन में बैठ जाती है और इस वास्ते लोग परीक्षा को गुरू मानते है।"[10] इस उदाहरण से स्पष्ट है कि लेखक ने परीक्षा से गुरू सिद्ध करने के लिए यह उपन्यास लिखा है। अतः 'देवरानी जेठानी' तथा 'परीक्षा गुरू' सामाजिक यथार्थ को इंगित करते है।

मेहता लज्जाराम शर्मा के लगभग बीस–बाईस उपन्यसों की चर्चा की जाती है। लेकिन ये उनके मौलिक उपन्यास नहीं कहे जा सकते। इनमें से कुछ अनुवाद स्वरूप है और कुछ जीवनियाँ मात्र है। इन उपन्यासों का उद्देश्य मनोरंजन तथा शिक्षण प्रदान करना है, किंतु मेहता जी का झुकाव शिक्षण की ओर अधिक दिखाई देता है–"जिन सुलेखकों को अपने उपन्यासों की रोचकता का अधिक गर्व है वे यदि ऐयारी, तिलस्मी और जासूसी रचना के साथ–साथ इस ओर ढ़ल पड़े तो मेरी समझ में हिन्दू समाज का अधिक उपकार कर सकते है, क्योंकि लोगों ने ऐसे–ऐसे उपन्यासों की रचना द्वारा पाठकों को अरूचि छुटाकर पोथियां पढ़ने का चटरस उनके मन में पैदा कर दिया।"[11]

मेहता जी का मानना है कि चरित्र सत्य पर गढ़े जाएं और घटना भी सुधारात्मक दृष्टि रखती हो। इस संबंध में वे कहते है "यद्यपि उपन्यास आजकल बिल्कुल कल्पित या ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर लिखे जाते है, परन्तु मैं मानता हूँ और बड़े–बड़े विद्वान् मानते है कि उपन्यास समाज का चित्र है और उपन्यास की जो कथा कल्पित मानी जाती है, वहीं समय पड़ने पर इतिहास बन जाती है। इसलिए उपन्यास ऐसे बनने चाहिए जिनसे प्रजा के सच्चे चरित्र का बोध हो उन्हें पढ़ने से पाठकों के चरित्र सुधरे और वे दुराचारों से छूटकर सदाचार में प्रवृत्त हो। केवल इतना ही नहीं वरन् मैं मानता हूँ कि आजकल के उपन्यास लेखक होनहार प्रजा के चरित्र का खाका खींच रहे है।"[12]

मेहता जी ने उपन्यासों की रचना समाज के यथार्थ को ध्यान में रखकर की है। उनका प्रथम उपन्यास 'धूर्त रसिकलाल' (1899) है तथा अन्य उपन्यास 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' (1899), 'हिन्दू गृहस्थ' (1904), 'आदर्श दम्पत्ति' (1904), 'बिगड़े का सुधार' (1907)

इत्यादि प्रमुख है। इन सभी उपन्यासों में सामाजिक जागरण का स्वर देखा जा सकता है। 'धूर्त रसिक लाल' में लेखक की दृष्टि सुधारवादी और तत्कालीन समाज के प्रति यथार्थवादी है।

लज्जाराम मेहता उपन्यास को तिलस्मी, ऐयारी व जादूगरी के मायाजाल से निकालकर समाजवादी यथार्थ के धरातल पर खींच लाने वाले आदर्शवादी यशस्वी साहित्यकार व पत्रकार थे। उनका उपन्यास 'धूर्त रसिकलाल' नवजागरण पूर्व आहट देता है। सोहनलाल के सधरने के साथ–साथ बहुत कुछ सामाजिक बुराईयाँ समाप्त हो जाती है। नगर में शैक्षिक एवं सांस्कृतिक पुनरूत्थान होता है। हिन्दू आदर्शवाद की यह मजबूत पकड़ अन्य हिंदी उपन्यासकार की पिछली रचना में नहीं मिलती है। 'धूर्त रसिक लाल' और उसके बाद के उपन्यास दरअसल सनातन धर्म के सुधारवादी सामाजिक जारण आंदोलन के प्रमुख प्रलेख कहे जा सकते है।"[13]

इस श्रृंखला में बालमुकुन्द गुप्त और किशोरीलाल गोस्वामी जैसे साहित्यकार भी थे, जो उस समय सनातन धर्म के प्रबल समर्थक बन सामाजिक जागरण का कार्य कर रहे थे।

श्रद्धाराम फिल्लौरी ने एक ही उपन्यास 'भाग्यवती' (1888) लिखा है, जिसमें लगभग दो दर्जन मुख्य एवं गौण पात्रों की भरमार है। फिल्लौरी जी ने अपने समाज के पुराने रूढ़िवादी विचारों का यथार्थ चित्रण किया। लेखक की यहां सुधारात्मक दृष्टि गोचर होती है। उन्होंने बाल विवाह, दहेज प्रथा, प्रदर्शन प्रियता तथा संयुक्त परिवार की समस्याओं को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। बाल–विवाह मूलतः समाज रूपी शरीर में एक कोढ़ के समान है, जो समय के साथ–साथ बढ़ता ही जाता है और भीषण रूप ले लेता है। बाल–विवाह के फलस्वरूप बाल–विधवाओं का बाहुल्य इस बात की पुष्टि करता है। भाग्यवती में नारी की दुर्दशा के चित्रण के साथ–साथ नारी शिक्षा, महत्ता, अस्तित्व तथा पुत्र को कन्या से अधिक महत्ता देना इत्यादि सभी जो भी समस्याएं मध्यमवर्गीय समाज में हो सकती है। उन सबका किसी न किसी रूप में चित्रण किया है।

किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यासों की संख्या लगभग पैंसठ मानी जाती है, जिनमें 'तरूण तपस्विनी', 'पुनर्जन्म या सौतिया डाह', 'माधवी', 'मदन मोहिनी', 'कुसुम कुमारी', 'स्वर्गीय कुसुम', 'चपल' व 'नव्य समाज', 'अंगूठी का नगीना', 'लीलावती', 'त्रिवेणी' या 'सौभाग्य श्रेणी' इत्यादि प्रमुख है, जिनमें सामाजिक समस्याओं का विशेष रूप में मध्यवर्गीय नारी जीवन की समस्याओं का चित्रण है। नारी को परम्परागत जीवन संस्कारों तथा पतिव्रत को धारण करने वाली बताते हुए पाश्चात्य संस्कृति का विरोध किया है। गोस्वामी जी ने सामाजिक उपन्यासों के साथ–साथ ऐतिहासिक व प्रेमाख्यानक उपन्यास भी लिखे है। ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना करते समय इन्होंने अतिशय कल्पना का सहारा लिया है, जिससे इतिहास की छवि धूमिल होती

दिखाई देती है। प्रेम उनके उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु है। वस्तुतः यथार्थ की झलक उनके समाजवादी उपन्यासों मे दृष्टिगत है।

बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान एक सुजान' (1892), 'नूतन ब्रह्मचारी' (1886), सुधारपरक समाजवादी यथार्थपरक रचनाएं है। अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' (1890) और 'अधखिला फूल' (1907) में समाज के मध्यवर्ग के विवाह तथा प्रेम की समस्या का वर्णन किया है। यह उपन्यास देश की कुरीतियों, बेमेल विवाह, झूठे धार्मिक आडम्बरों तथा कोरी मान्यताओं पर व्यंग्य करती है।

ब्रजनन्दन सहाय कृत 'सौन्दर्योपासक' (1911) 'लाल चीन' (1916), मन्नन द्विवेदी कृत 'रामलाल' (1888) इत्यादि कई ऐसे नामचीन नाम है, जो कि सामाजिक यथार्थ को अपने में समेटे है। इस युग में लिखे गये तिलस्म, जासूसी व ऐतिहासिक उपन्यासों में अभिप्रेत काल के समाज का यथार्थ–बोध प्राप्त नहीं होता। इस विषय में रामदरश मिश्र ने कहा है कि – "इनमें उस काल की जटिल सामाजिक स्थितियों, मानव–मन की आकांक्षाओं, प्रश्नों व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों का तो सूक्ष्म निरीक्षण प्राप्त नहीं होता, सामान्य ऐतिहासिक तथ्यों का निर्वाह भी लक्षित नहीं होता। कल्पना और इतिहास का समन्वय भी दृष्टिगत नहीं होता। अर्थात् ये उपन्यास न तो इतिहास का जीता–जागता चित्र ही उपस्थित कर पाते है ओर न ही ये सफल साहित्यिक कृति ही बन पाती है।"[14]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि पूर्व प्रेमचंद कालीन उपन्यासों में यथार्थ के दर्शन कम ही लक्षित होते है, किन्तु इस काल में समाज को दृष्टि में रखते हुए लिखे गये सुधारवादी उपन्यासों में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक यथार्थ कहीं–कहीं दिखाई अवश्य देता है। सामाजिक यथार्थ तो इस युग की विशिष्ट पहचान है। "इस युग के जिन लेखकों ने भी परम्परागत रूढ़ियों के विरोध में नए और प्रगतिशील विचारों का समर्थन किया है, वे अभ्यर्थना के पात्र है। यही लेखक और इनके द्वारा प्रस्तुत परम्परा का प्रगतिशील अंश है, जिसने आगे चलकर प्रेमचंद को हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में एक नया युग लाने की प्रेरणा दी। धार्मिक, नैतिक उपदेश वाक्यों से भरे हुए प्रेमचंद युग के इन उपन्यासों में यत्र–तत्र यथार्थ चित्रण के जो सजीव अंश है, आगे विकसित होने वाला यथार्थवाद निर्विवाद रूप से उन्हें प्रेरणा के रूप में आत्मसात किए हुए है।"[15]

3.2 प्रेमचन्द युगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद

यद्यपि हिंदी उपन्यास का उद्‌भव जब से हुआ है तभी से इसका संबंध यथार्थवाद से माना जाता रहा है। प्रेमचंद से पूर्व हिंदी उपन्यास में यथार्थवाद के बीज बोए जा चुके थे, किन्तु उपन्यास में यथार्थवाद के पोषण के लिए खाद–पानी डालने का कार्य प्रेमचंद ने

अपनी लेखनी के माध्यम से किया। वास्तव में हिंदी उपन्यास के सच्चे प्रतिष्ठापक प्रेमचंद को ही माना जाता है। उनका प्रथम उर्दू उपन्यास 'असरारे मुआविद उर्फ देवस्थान रहस्य' (1903) यह उपन्यास धारावाहिक के रूप में 'आवाज–ए–खल्क' नांमक साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाशित किया गया था। बाद में 1906 में इसे परिमार्जित कर 'हेमखुर्मा' 'ओ हम सवाब' नाम से प्रकाशित किया। इसे हिंदी में रूपांतरित कर 'प्रेमा' नाम से 1907 में प्रकाशित किया। 'बाजार–ए–हुस्न' (1916) का हिंदी रूपातंरण 'सेवासदन' (1917) नाम से किया गया। उनके अन्य उपन्यास 'गबन', 'निर्मला', 'रंगभमि', 'गोदान', 'प्रेमाश्रम', 'प्रतिज्ञा', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि', 'मंगलसूत्र' इत्यादि सभी में यथार्थ के दर्शन होते है।

वस्तुतः प्रेमचंद के काल तक आते–आते यथार्थवाद अपनी जड़े जमा चुका था। लेकिन प्रेमचन्द की आलोचक दृष्टि यथार्थवाद के साथ न्यायसंगत प्रतीत नहीं होती। उनका मानना है कि "यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ, नग्न रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का अच्छा उसके चरित्र अपनी कमजोरियां या खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करते है। .... यथार्थ हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र प्रस्तुत करता है और इस प्रकार यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।"[16] "इसलिए वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते है, जहां यथार्थ और आदर्श का समावेश हो। उसे आप 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कह सकते है। आदर्श को सजीव बनाने के लिए ही यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है।"[17]

उनके अनुसार "आदर्शवाद हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है, जिनके ह्रदय पवित्र होते है, जो स्वार्थ और वासना से रहित होते है, जो मधु प्रकृति के होते है .... रियलिज्म यदि हमारी आँखे खोल देता है, तो आइडियलिज्म हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान पर पहुंचा देता है। ...... उपन्यास की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि करना है, जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर ले।"[18]

वस्तुतः प्रेमचंद जिस यथार्थवाद का जिक्र करते है। वह यथार्थवाद का एक विशेष रूप प्रकृतिवाद या नेचरूलिज्म है, जिसे अनेक विचारक तो यथार्थवाद की संज्ञा भी नहीं देते। यथार्थवाद का असली रूप आलोचनात्मक यथार्थवाद व समाजवादी यथार्थवाद ही है, जिसमें जीवन के विविध पक्षों का सन्तुलित व वैज्ञानिक चित्रण होता है। प्रेमचंद की आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की विशेषताएं उसी प्रकार की है, जो समाजवादी यथार्थवाद की है। वे कहते है कि – "आदर्शवाद साहित्य को समाज का दर्पण मात्र नहीं मानता बल्कि दीपक मानता है, जिसका काम

प्रकाश फैलाना है। समाजवादी यथार्थवाद भी साहित्य के संबंध में यही धारणा रखता है।"[19] प्रेमचंद का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उनके उपन्यासों और कहानियों में 'समाजवादी यथार्थवाद' तथा 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' के रूप में सामने आता है।

प्रेमचंद का युग सामंती तथा पूंजीवादी युग था। विदेशियों का एकमात्र लक्ष्य था, देश का आर्थिक शोषण करना। देश का बहुत बड़ा जन समुदाय कृषि पर निर्भर था, जो कि अनेक प्रकार के शोषणों का शिकार था। अंग्रेजी सरकार कईं प्रकार के कृषि कर लगाकर उनका शोषण किया करती थी। इसके लिए उन्होंने जमींदारों तथा साहूकारों को अपना सहायक बना रखा था। इन शोषणकर्ताओं में पुरोहित वर्ग भी शामिल था। ये सभी प्रभुत्व सम्पन्न शक्तियां मिलकर निम्नवर्गीय किसानों और मजदूरों का शोषण करते थे।

इस समय नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। देश में हिन्दू और मुसलमानों के साम्प्रदायिक मतभेद व दंगे भड़क चुके थे, जिसे अंग्रेजों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु और हवा दे दी थी। समाज में अनेक प्रकार के रीति–रिवाजों, कुप्रथाएं, अशिक्षा, अंधविश्वास, सड़ी–गली मान्यताएं जन्म ले चुकी थी, जिन्होंने तत्कालीन सामाजिक परिवेश को कटु ओर विषाक्त बना दिया था। मध्यवर्ग की अपनी अलग नैतिक, आर्थिक और मूल्यगत समस्याएं थी। इन सभी समस्याओं का चित्रण प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में किया है, किंतु उन्होंने नग्न यथार्थवाद या प्रकृतिवादी की तरह भारतीय जीवन के गर्हित या नकारात्मक पक्षों का अंकन नहीं किया।

इस काल में भारतीय नारी की दशा अच्छी नहीं कही जा सकती। अंग्रेजों की दास्यता की शिकार जनता में स्त्री और पुरूष दोनों ही थे, किन्तु नारी तो दूसरी प्रकार की पराधीनता की शिकार थी। उस पर अनेक प्रकार के धार्मिक, आर्थिक तथा जातिगत बन्धन थे। समाज में उसका स्थान अधिकार–विहीन, पुरूषाश्रित तथा शोषित के रूप में ही था। नारी को कामेच्छा की पूर्ति, सन्तानोत्पत्ति तथा पति की सेवा करने वाली के रूप में ही देखा जाता था। बाल विवाह तथा देहज प्रथा ने तो उनके जीवन को नरकीय ही बना रखा था। उन्हें पढ़ने–लिखने की मनाही थी। विधवा तथा परित्यक्ता महिलाओं की स्थिति तो और भी ज्यादा शोचनीय थी। उनका सिर मुंडा दिया जाता रंगीन कपड़ों, गहनों तथा श्रृंगारिक वस्तुओं का प्रयोग उनके लिए निषेध था तथा उन्हें अनेक प्रकार की सामाजिक तथा पारिवारिक यातनाओं व उपेक्षाओं का शिकार होना पड़ता था। उनके पास आत्महत्या तथा वैश्यावृत्ति के अलावा कोई और उपाय नहीं रह गया था। समाज में स्त्रियों की ऐसी स्थिति सदियों से थी।

प्रेमचंद ने अपने काल की भारतीय नारी के यथार्थ को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके औपचारिक संसार की नारियां प्रायः सभी वर्गों और

संप्रदायों की है। प्रेमचंद ने अपने पहले हिंदी उपन्यास 'प्रेमा' (1907) विधवा विवाह की समस्याओं को केंद्र में रखकर लिखा है। "विधवा होते ही समाज के ठेकेदार स्त्री पर कहर ढाने लगते। वह कुछ करे या न करे लोगों की अंगुली उस पर उठने के लिए तैयार रहती। "विधवा पर दोषारोपण करना कितना आसान है। जनता को उसके विषय में नीची से नीची धारणा करते देर नहीं लगती, मानों दुर्वासना ही वैधव्य की स्वाभाविक वृत्ति है, मानों विधवा हो जाना मन की सारी दुर्वासनाओं, सारी दुर्बलताओं का उमड़ आना है।"[20]

'सेवासदन' (1918), 'निर्मला' (1927), 'गबन' (1930) मुख्यतः नारी जीवन से संबंधित उपन्यास है। सेवासदन और निर्मला में दहेज संबंधी समस्या का चित्रण किया गया है। कन्या के लिए सुयोग्य वर हेतु अत्यधिक दान–दहेज की आवश्यकता होती थी, जो माता–पिता दहेज की मोटी रकम देने में समर्थ न होते थे, वे अपनी कन्या का विवाह बूढ़ो, दरिद्र या विधुर से करने को विवश थे। वैश्यावृत्ति भी इस समय की एक बड़ी विकट समस्या थी, जिसके निराकरण के सुझाव प्रेमचंद ने 'सेवासदन', 'गबन', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 'गोदान' (1936) में वे नाटक मंडलिया खोलकर वैश्यावृत्ति तथा वैश्याओं की समस्याओं का समाधान पेश करते है। जहां एक ओर प्रेमचंद ने नारी की दुर्दशा का चित्रण किया है, वहीं दूसरी ओर नारी को विद्रोह करते तथा आंदोलन में भाग लेते हुए दिखाया गया है। उनके 'गोदान', 'रंगभूमि' (1925) 'कर्मभूमि' (1932) इत्यादि उपन्यासों में इसका यथार्थ चित्रण हुआ है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में समकालीन धार्मिक–साम्प्रदायिक यथार्थ का भी चित्रण हुआ है। उनके प्रथम उर्दू उपन्यास 'असरारे मुआविद उर्फ देवस्थान रहस्य' में प्रेमचंद ने मंदिरों के महन्तों, पण्डों के विलासमय कुत्सित जीवन का चित्रण किया है। "प्रेमा में भी प्रेमचंद ने एक गांव प्रसंग के रूप में मंदिरों और गंगा के घाटों पर होने वाले व्यभिचार का वर्णन किया है।"[21] "सेवासदन" में एक महन्त जमींदार, महन्त रामदास के धार्मिक आडम्बरों और धर्म के नाम पर मंदिरों और गंगा के घाटों पर होने वाले व्यभिचार का वर्णन किया है।"[22] गोदान के महन्त व पुरोहित, पुरोहित कम महाजन अधिक थे। कोई भी व्यक्ति एक बार को महाजन की रकम हजम कर भी ले, किन्तु महन्त अथवा पुरोहित की रकम पचाने वाला सीधा नरक ही जाता है। इसी धारणा से गोदान का होरी किसान इस मान्यता का शिकार होता है। कथाकार कहता है– "होरी के पेट में धर्म की क्रांति मची हुई थी, अगर ठाकुर या बनिये के रूपये होते तो उसे ज्यादा चिंता न होती, लेकिन ब्राह्मण के रूपये उसकी एक पाई भी दब गई ता हड्डी तोड़कर निकलेगी।"[23]

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में पारिवारिक विघटन के रूप में समाज के विकृत होते स्वरूप का यथार्थ चित्रण किया है। संयुक्त परिवार में विघटन का कारण जमीन–जायदाद, परिवार में पारस्परिक सहयोग की कमी, पीढ़ी का अन्तराल, धनलोलुपता, भौतिकवादिता इत्यादि

कई ऐसी प्रवृत्तियां थी, जिसके दुष्परिणाम शहरों में ही नहीं गांवों में भी देखे जा सकते हैं। 'गोदान' में भोला के परिवार के टूटने का कारण लड़कों की उत्तरदायित्त्व हीनता थी। "कामता और जंगी दोनों लड़कों को घर के काम–काज से कोई लेना देना नहीं था। गाय–भैंस का सारा काम भोला करता था। झुनियां उसका हाथ बंटाती थी फिर भी दोनों बहुएँ उसे जली–कटी सुनाती, जिस कारण घर में महाभारत मचा रहता। झुनियां के घर से चले जाने के पश्चात् भोला दूसरी स्त्री ले आया, जिससे स्थिति और बिगड़ गई। कामता की बहू और सौतेली सास में कतई नहीं बनी। फलस्वरूप बंटवारे की नौबत आ गई। विभाजन के समय मार–पीट की रीति का भी पालन किया गया।"[24]

"प्रेमाश्रम" (1922) में कुटिल बुद्धि ज्ञानशंकर को अपने पिता समान चाचा से ही अलग होकर तसल्ली नहीं हुई। वह जाति, बिरादरी की आड़ लेकर अपने बड़े भाई प्रेमशंकर और धर्मभीरू भाभी को अलग करने का षड़यंत्र रचता है, जिससे प्रेमशंकर निराश और भयभीत होकर वापिस विदेश चले जाएँ और उनको जायदाद में से हिस्सा नहीं देना पड़े। धन के लिए ज्ञानशंकर अपनी विधवा साली गायत्री देवी का चरित्र हनन करता है, जिसे देख उसकी सती साध्वी पत्नी विद्यावती आत्मघात कर लेती है। अंत में पुत्र द्वारा समस्त जमींदारी हकों को त्याग देने पर अपने परिवार से कटकर दुःख एवं नैराशय में डूबा ज्ञानशंकर ग्लानि वश आत्महत्या करता है।"[25]

इसी प्रकार 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'निर्मला' इत्यादि उपन्यासों में पारिवारिक विघटन का यथार्थ चित्रण किया गया है। अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि वैवाहिक कुरीतियां तथा अन्य अनेक कारणों से दाम्पत्य जीवन में दरार पड़ती है, जिससे परिवार में कलहपूर्ण स्थिति का उत्पन्न होना तथा कभी–कभी परिवार टूटने की नौबत आ जाती है।

बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में अंग्रेजी शासकों की 'फूट डालो और राज करो' नीति के फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमान बुर्जुआ सम्प्रदाय अपने राजीतिक और आर्थिक स्वार्थों के फलस्वरूप एक–दूसरे से अलग होने लगे। प्रेमचन्द के उपन्यास सेवासदन से लेकर गोदान तक में हिन्दू–मुस्लिम संबंधों को नाना कोणों से उठाया गया है। 'कायाकल्प' (1928) में दो मित्रों हिन्दू युवक यशोदानंदन और मुसलमान युवक महमूद के मैत्रीय संबंध और स्वयं सेवक दल के सदस्य के रूप में प्रस्तुत किए गए है। बाद में ये दोनों एक–दूसरे के मित्र रहते हुए अलग–अलग सम्प्रदायों के नेता बन जाते है। ये दोनों ही ब्रिटिश शासन की नीति के शिकार होकर दोनों सम्प्रदायों के सामूहिक हित की बात न सोचकर उनके अलग–अलग हितों की बात सोचने लगते है। फलतः दोनों ही अपने–अपने सम्प्रदायों के रूढ़िग्रस्त, अशिक्षित और अन्धविश्वासी लोगों को वहशीयत पर उतारने की कोशिश करते हैं। साम्प्रदायिक दंगों की आड़ में दोनों की

मैत्री भी जल जाती है। वस्तुतः कायाकल्प में साम्प्रदायिक दंगों का चित्रण अत्यधिक क्रूर है, वहीं प्रेमाश्रम और रंगभूमि में साम्प्रदायिक समस्या का चित्रण न के बराबर है।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में जमींदारों, महाजनों और सरकारी अमलों द्वारा किसानों के क्रूर, निर्लज्ज और अमानवीय शोषण का बहुत ही व्यापक, वैविध्यपूर्ण और दर्दनाक चित्रण किया है। 'सेवासदन' का महंत जमींदार न केवल जायज–नाजायज लगान वसूल करता है वरन् महाजनी भी करता है। सरकारी अधिकारी उसके सहायक है। वह यज्ञ करने के लिए सभी किसानों से हल पीछे पांच रूपया जबरदस्ती से वसूला करता है, जिसे न देने हेतु चेतू अहीर को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है।"[26]

'गोदान' का होरी और उसका परिवार भारतीय कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। बेलारी गांव के किसान, जमींदार व महाजन ही नहीं अपितु पुलिस के जुल्मों के भी शिकार है। प्रेमचंद ने शोषण के साथ–साथ उसके कारणों का चित्रण कर घटना को यथार्थ भूमि प्रदान की है। इन सभी शोषणों का मूल कारण वह ब्रिटिश सरकार की नीतियों को मानते है। महन्त, महाजन और पुलिस ये सभी तो उसके सहायक के रूप में कार्य करते है। गोदान का एक गौण पात्र रामसेवक कहता है–"थाना, पुलिस, कचहरी, अदालत सब हमारी रक्षा के लिए है, लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट ही लूट है। जो गरीब, बेबस है, उसकी गरदन काटने के लिए सभी तैयार रहते है। यहां तो जो किसान है, वह सबका नरम चारा है, पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दें तो गांव में रहना मुश्किल। जमींदार के चपरासी और कारिन्दों का पेट न भरे तो निबाह न हो। थानेदार और कांस्टेबल तो जैसे उसके दामाद है, जब उनका दौरा गांव में हो जाए, किसानों का धर्म है कि वह उसका आदर सत्कार करे, नजर–नयाज दे, नहीं तो एक रिपोर्ट में गांव का गांव बंध जाए। .... पादड़ी भी आ जाता है तो उसे रसद देना पड़ता है, नहीं शिकायत कर दे और जो कहो कि इतने महकमों और इतने अफसरों से किसान का कुछ उपकार होता हो तो नाम को नहीं।"[27]

'रंगभूमि' उपन्यास के नायक सूरदास के पास थोड़ी सी जमीन है। उपन्यास का एक पात्र जान सेवक सूरदास से जमीन खरीदकर उस पर सिगरेट का कारखाना स्थापित करना चाहता है, किन्तु सूरदास जमीन बेचना नहीं चाहता। इधर जानसेवक सरकार की सहायता से उसका अधिग्रहण कर लेता है और वहां सिगरेट का कारखाना बन जाता है। इस सम्पूर्ण कथा द्वारा प्रेमचंद ने भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद यथार्थ को उद्घाटित करने का प्रयास किया है।

वस्तुतः "धन व सम्पत्ति ने मनुष्य को अपना क्रीतदास बना लिया है। उसकी सारी मानसिक, आत्मिक और दैहिक शक्ति केवल सम्पत्ति के संचय में बीत जाती है। मरते दम भी हमें यही हसरत रहती है कि इस सम्पत्ति का क्या होगा? हम इस सम्पत्ति के लिए जीते है,

इसी के लिए मरते है। हम विद्वान बनते है सम्पत्ति के लिए, गेहुंए वस्त्र धारण करते है सम्पत्ति के लिए। घी में आलू मिलाकर हम क्यों बेचते है? दूध में पानी क्यों मिलाते है। भांति–भांति के वैज्ञानिक हिंसा यंत्र क्यों बनाते है? वैश्याएं क्यों बनती है और डाके क्यों पड़ते है? इसका एक मात्र कारण संपत्ति है। जब तक संपत्ति हीन समाज का संगठन न होगा, जब तक संपत्ति–व्यक्तिवाद का अन्त न होगा, संसार को शांति न मिलेगी।"[28]

प्रेमचंद ने अछूतों के छुआ–छूत की विकट समस्या और उसके निराकरण की अभिव्यक्ति अपने उपन्यास 'वरदान' में की है। 'वरदान' का नायक बालाजी जब पटना की अस्पृश्यता जाति पासी को प्रेरित कर एक मंदिर बनवाता है, तो निश्चय ही यहां मंदिर के निर्माण के पीछे किसी धर्म भावना का उत्कट आग्रह नहीं है, मंदिर निर्माण की प्रेरणा तो अन्यत्र है। हमारे समाज में जिनकों अछूत समझा जाता है, उनको मंदिर में भगवान् के पास जाने का आधिकार नहीं था। आर्य समाज के उदय के बाद अछूतों को भी धार्मिक जीवन व्यतीत करने का अधिकार देने का आंदोलन खड़ा हुआ। इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर बालाजी पासियों के लिए मंदिर का निर्माण कराता है और उसकी 'भारत सभा' जो एक तरह से 'आर्य मेघोद्धार सभा' का ही प्रतिरूप है, बड़ी धूम–धाम के साथ मंदिर निर्माण का उत्सव कराती है।"[29]

'गबन' को मध्यवर्ग के पारिवारिक यथार्थ को उद्घाटित करने वाला उपन्यास माना जाता है। रामनाथ जालपा, दयालनाथ, रमेशबाबू, दीनदयाल आदि के परिवार और मनोदशा के चित्रण के बाहर प्रेमचंद ने मध्यवर्ग की सम्पूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं नैतिक विचारधारा को प्रकट किया है। प्रेमचंद ने सन् 1930 के आंदोलन में भाग लेने वाले पात्रों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हुए यह दिखाया है कि देवीदीन जैसे अछूत वर्गों के बीच भी सविनय अवज्ञा आंदोलन एक नयी स्फूर्ति, आत्मत्याग, गौरव और संकल्प के साथ फैल रहा है। सन् 1930 के आंदोलन के यह पात्र गांधीवाद आदर्शों के पक्के अनुयायी है। मिसाल के लिए आंदोलनकारी देवीदीन ने कहा है–"जिस देश में हम रहते है, जिसका अन्न जल खाते है, उसके लिए इतना भी न करे तो जीने के लिए धिक्कार है। दो जवान बेटे इसी सुदेसी को भेंट कर चुका हूँ भैया। दोनों विदेसी कपड़े की दुकान पर तैनात थे। क्या मजाल कि कोई ग्राहक दुकान पर आ जाये। बाजार में सियार लौटने लगे। सबौ ने जाकर कमिशनर से फरियाद की। गौरी फौज ने उन पर घोड़े चढ़ा दिये। पर दोनों चट्टानों की तरह डटे खडे थे आखिर जब इस तरह कुछ बस नहीं चला तो सबों ने उसे पीटना शुरू किया। दोनों वीर डंडे खाते थे पर अपनी जगह से नहीं हिलते थे।"[30]

इस प्रकार उनके प्रारम्भिक उपन्यास 'प्रेमा' 'प्रतिज्ञा', 'वरदान' इत्यादि बहुत परिपक्व नहीं है, किन्तु वे सीधे, समाज की यथार्थ समस्याओं से सम्बन्ध रखते है। 'सेवासदन'

'निर्मला', 'प्रेमाश्रम' 'गबन', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' तक पहुँचते–पहुँचते उनकी रचनाशीलता निरन्तर उन्मेष की सूचना देती हुई अपनी प्रौढ़तम स्थिति तक पहुँचती है।

"मानव हित के उद्देश्यों से प्रेरित इनकी रचनाएं अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें दीन–हीन लाचार किसानों की दशा, सामाजिक बन्धनों में तड़पती नारी की वेदना, वर्ण व्यवस्था की कठोरता से संत्रस्त हरिजन की पड़ा का वर्णन यथार्थ के धरातल पर किया गया है। इन लाचार और विवश वर्गों के प्रति प्रेमचंद गहरी सहानुभूति रखते है। उन्हें आश्रय देना इन्हें अत्यन्त प्रिय है। वे साहित्य को बौद्धिक ऐयाशी या मनोरंजन का साधन मात्र न मानकर एक ऐसी सच्चाई मानते है, जो देश–भक्ति और राजनीति के पीछे न चलकर उसको मशाल दिखाती हुई चलती है।"[31]

'विश्वनाथ शर्मा कौशिक' को प्रेमचन्द परम्परा का ही कथाकार माना जाता है। प्रेमचंद के उपन्यास की समस्या जीवन यथार्थ की गहरी जटिलताओं से गुजरती है, जबकि कौशिकजी के उपन्यास में समस्याएं सरल रूप में आई है। इन उपन्यासों में न तो चरित्र और सामाजिक यथार्थ संबंधी गहराई है और न संशिलष्ट व्याप्ति ही।

'भिखारिणी' (1929) उपन्यास नारी शोषण की कथा है। नारी पुरूष के लिए कामेच्छा पूर्ति का साधन मात्र है। पुरूष के लिए प्रेम की कोई सीमा नहीं। प्रेम में सफलता मिलती हैं, तो बहुत अच्छा नहीं तो वह तो विवाह कर सुख से जीवनयापन करता है, किन्तु नारी प्रेम के विरह में अपना सारा भौतिक सुख लुटाकर विरह वेदना में जलती रहती है। प्रस्तुत उपन्यास में सामाजिक समस्या के नाम पर अमीर–गरीब और जातिगत भिन्नता को रखा गया है। दो भिन्न जाति के लोग एक–दूसरे को प्यार करते है, किन्तु जाति व पैसा दोनों के बीच सामाजिक बुराई के रूप में आ खड़े होते है। उपन्यास के पात्र नन्दराम ओर सोना घर छोड़कर भागने का साहसिक निर्णय लेते है, किन्तु इसके फलस्वरूप वे यहां–वहां भटकते है, कष्ट भोगते है। सोना मर जाती है तब बाप–बेटी को भिखारी बनना पड़ता है। दूसरी ओर रामनाथ और जस्सों के बीच जातिगत मित्रता के कारण उनका विवाह नहीं हो पाता। इस स्थिति में रामनाथ दूसरी जगह विवाह कर लेता है, किन्तु प्रेम में असफल होने के कारण सुख का अनुभव नहीं कर पाता और जस्सों तो फिर भिखारिणी ही बन जाती है।

"कौशिक जी का 'मां' उपन्यास भी अपने यथार्थ–बोध संरचना और प्रभाव में सामान्य ही है। भिखारिणी की तरह ही इसमें कोई चरित्र ऐसा नहीं है, जो बहुत संश्लिष्ट हो, जो लेखक की विशिष्ट चरित्र निर्माण क्षमता का प्रमाण देता हो, पात्र बहुत उपरली मानसिकता से गुजर जाते है। मां का चरित्र भी जीवंत नहीं बन पाया है। कुछ वेदना, कुछ सहन–शीलता, कुछ

विवेक के तत्त्वों से जिस मां की रचना की गई है। वह सामान्य ही है, कभी अपनी शक्ति से झकझोरती गहरे नहीं उतरती।"[32]

जयशंकर प्रसाद – अनेक विधाओं में लेखनी चलाने के बाद भी प्रसाद जी मूल रूप से कवि है। इनकी रचनात्मक शक्ति की मूल धूरी रोमानियत है। प्रसाद कहानी व उपन्यास लेखन में मूर्त वस्तु जगत की घटनाओं का चयन करते है। वे प्रेमचन्द के निकट दिखने वाले कथाकार है, क्योंकि वस्तु जगत की सारी मूर्तता और सक्रियता उनके कथासाहित्य को यथार्थवादी बना देती है। प्रसाद जी ने अपने निबंध 'काव्य–कला और निबंध' (1939) में यथार्थ संबंधी अपने विचार प्रस्तुत किये है। उनके अनुसार यथार्थ की विशेषता वेदना है। प्रसाद जी ने यथार्थ संबंधी अपने मत इस प्रकार प्रकट किये है।

(क) 'यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है साहित्य के माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण से अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावों का वास्तविक उल्लेख।"[33]

(ख) 'वेदना से प्रेरित होकर जन साधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न यथार्थवादी साहित्य करता है।"[34]

(ग) "वस्तुतः यथार्थवाद का मूलभाव वेदना है।"[35]

प्रसाद ने उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के रूप में जनजीवन की वेदना को चित्रित किया है। उनका 'कंकाल' (1930) उपन्यास शुद्ध यथार्थवादी है, जिसमें आदर्श का आरोपण न कर समाज की विषमता को तटस्थ भाव से चित्रित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में नारी शोषण को केन्द्र में रखा गया है। साथ ही धार्मिक स्थलों, हरिद्वार, काशी और वृंदावन जैसी पावन भूमि पर घटने वाले व्यभिचार तथा निरंजन, बाथम, मंगल, विजय, घंटी, लतिका, यमुना, गाला जैसे धर्म और समाज के मारे हुए, भटके तथा वर्ण संकरी अभिशाप से ग्रस्त पात्रों के माध्यम से तत्कालीन समाज की विसंगति को दर्शाया है। ये वे पात्र है, जो सत्य द्रष्टा होने का दम तो भरते है, किंतु अपनी सांसारिक अतृप्त वासना तथा दुर्बल चरित्र व मानसिकता से दबे हुए है। इन अनेक पात्रों में प्रेम संबंध आपस में उलझे हुए है। प्रणय सूत्र कईं–कई गांठे मारता चलता है और यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि कौन किससे प्रेम करता है और उसका प्रेम कब बदल जाएगा।

'कंकाल' में ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुतायत में है, जो पुरूषों के शोषण व अत्याचार की शिकार है। यह स्त्रियों, पतियों व पिताओं इत्यादि द्वारा अस्वीकृत हो जाती है तथा असुरक्षा और पाप की जिंदगी जीने के लिए छोड़ दी जाती है। वे यहां–वहां भटकती है। इस

प्रकार ये सभी सामाजिक विसंगतियां बहुत कुछ धार्मिक अंधविश्वासों और अत्याचारों का परिणाम है।

"तितली (1934) उपन्यास एक संघर्षशील भारतीय नारी की गाथा है, जो गांव से नगर के यथार्थ में संक्रमण करती हुई भारतीय और पश्चिम जीवन प्रवृत्तियों और संस्कृति की टकराहट में भारतीयता का गौरव गान करती है।"[36]

यह उपन्यास भारतीय दृष्टि और कृषि सभ्यता की गहरी पड़ताल करता हुआ दाम्पत्य जीवन की कुछ बुनियादी शक्तियों को उभारता है तथा पाश्चात्य संस्कृति व दाम्पत्य जीवन को इसके समानांतर रखता चलता है। कृषि यथार्थ से चलकर कथा पाश्चात्य संस्कृति को छूती हुई अनेक पात्रों के माध्यम से सामाजिक जन–जीवन की अनेक समस्याओं और घटनाओं का उद्घाटन करती है। उपन्यास की मुख्य पात्र अथवा नायिका 'तितली' के माध्यम से भारतीय पतिव्रता नारी के संघर्ष, त्याग व जिजीविषा का यथार्थ चित्रण हुआ है। उपन्यास के अन्य पात्र किसी न किसी रूप में उससे रस और शक्ति ग्रहण करते है तथा उपन्यास की नायिका संघर्ष पथ पर मार्ग खोजते हुए न जाने कितने लोगों को रास्ता दिखाती चलती है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' प्रकृतिवादी उपन्यासकार माने जाते है, क्योंकि उनके उपन्यासों में कुछ ऐसे दृश्य विद्यमान है, जो फूहड़ व अश्लील है, किन्तु ऐसे दृश्य उनके दो ही उपन्यासों में विद्यमान है, जिनमें कुछ चटक यौन के चित्र है। वे उपन्यास है, 'दिल्ली का दलाल' (1927) और 'बुधुआ की बेटी' (1928), किन्तु इन दोनों उपन्यासों में सामाजिक चेतना का स्वर मुखरित है। 'उग्र' उपन्यास को उपयोगितावादी रचना मानते है, वह केवल सौन्दर्य सृजन के लिए नहीं है। उनके अनुसार उपन्यास सामाजिक विषमता के यथार्थ को उद्घाटित करने का माध्यम है – "उपन्यास का उद्देश्य है समाज या समाज–विशेष की बुराईयो का विशेष वर्णन कर उचित उपचार के लिए एक्स–रे फोटों सामने रखना।"[37]

अतः जो भी फूहड़ दृश्य या अश्लीलता उनके उपन्यासों में चित्रित है। उसका उद्देश्य मात्र सामाजिक जन–जीवन की विषमताओं का उद्घाटन करना ही है। साथ ही समस्या को पहचानकर उसके निराकरण हेतु सुझाव भी प्रस्तुत किये है। 'चन्द हसीनों के खतूत' (1927) हिन्दू–मुसलमान युवक–युवती के प्रेम को सर्न्दभित कर लिखा गया साम्प्रदायिक अमानवीयता तथा रूढ़ियों को चित्रित करने और प्रेम को सत्य के रूप में स्थापित कर नई चेतना को उद्घाटित करने वाला उपन्यास है। उपन्यास में प्रेम की संवेदना का जीवन्त चित्रण हुआ है। 'बुधुआ की बेटी' में भंगी बुधुआ और अघोड़ी मनुष्यानन्द के माध्यम से अछूत समस्या तथा नारी जागरण की समस्या, पददलित रधिया के माध्यम से अछूतोद्धार तथा नारी जागरण की समस्या के सामाजिक व आर्थिक पहलुओं का अंकन किया है।

'शराबी' (1930) उपन्यास में शराब को सामाजिक व्यवस्था की कुरूपताओं, का फल और कारण माना है तथा उससे संबंधित पात्र, घटना तथा परिवेश का यथार्थ व प्रभावशाली उद्घाटन किया है साथ ही उसकी कुरूपताओं और अमानवीय परिस्थितियों को उजागर कर पाठक को शराब की मादकता के अन्धकार से निकालकर युक्ति की चेतना के प्रकाश में ले आता है।

वृंदावन लाल वर्मा को प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार होने का गौरव प्राप्त है। अपने ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति का रूप देने के लिए उन्होंने उपन्यास विद्या का चयन किया है। वे कहते है कि–"मैंने निश्चय किया कि उपन्यास लिखूंगा ऐसा जो इतिहास के राग–रेशे से सम्मत हो और उसके सन्दर्भ में हो। इतिहास के कंकाल में मांस और रक्त का संचार करने के लिए मुझको उपन्यास ही अच्छा साधन प्रतीत हुआ।"[38] वे उपन्यास के प्रयोजन के विषय में कहते है–"यदि हमारे अधिकांश उपन्यास लेखक किसी सामाजिक कृरूति को दूर करने के उद्देश्य से कमर कसकर पुस्तकें लिखें, तो हिंदी पढ़ने वालों का बड़ा उपकार हो।"[39] उपर्युक्त विवेचन के आधार पर वर्मा जी के उपन्यासों का उद्देश्य ऐतिहासिक सत्य की खोज कर अनेक सामाजिक भ्रांतियों का निराकरण करना है।

वृंदावन लाल वर्मा के सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करने वाले उपन्यास में 'लगन' (1927), 'संगम' (1927), 'प्रत्यागत' (1927), 'कुंडली चक्र' (1932), 'प्रेम की भेंट' (1928) प्रमुख है। 'लगन' में दहेज प्रथा की समस्या तथा उसके प्रभाव व निराकरण का मार्ग सुझाया है। वर व वधू के आपसी प्रेम तथा साहसी निर्णय से दोनों के मिलन को बताकर दहेज प्रथा पर चोट की गई है। 'संगम' में डाकू जीवन की समस्या तथा उसके माध्यम से ग्रामीण जीवन की विषमता को चित्रित किया गया है। 'प्रत्यागत' में सामाजिक, धार्मिक और साम्प्रदायिक विसंगतियों व कुरूपताओं का चित्रण है। 'कुडली चक्र' में ग्रामीण परिवेश में व्याप्त, अज्ञानता, अंधविश्वास, कुरीतियों आदि का चित्रण तथा अर्जित जैसे पात्रों के आदर्श प्रेम, त्याग, साहस और आत्मविश्वास का उद्घाटन कर आदर्श की स्थापना की गयी है। 'प्रेम की भेट' उपन्यास में मुख्य पात्र के रूप में सरस्वती, प्रेम, त्याग और विश्वास की प्रतिमूर्ति है, जो भारतीय स्त्री के उज्ज्वल पक्ष का चित्रण करती है। ग्रामीण जीवन की मूलभूत समस्याओं के बीच प्रेम के धुधंले पक्षों का चित्रण हुआ है, जो पारस्परिक द्वेष व ईर्ष्या से आहत होता चलता है।

निराला के "उपन्यास यथार्थ तथा आदर्श के मध्य का एक ऐसा मार्ग स्वीकार करते है, जो यथार्थ होते हुए भी घोर यथार्थवाद तथा अश्लीलता से रहित है और कल्याण तथा दिव्यता के आदर्श को सम्मुख रखते हुए भी आदर्श की कोरी कल्पना से अछूता है। तकनीक की दृष्टि से यथार्थ–चित्रण होते हुए भी प्रयोजन की दृष्टि से यह मार्ग आदर्शवादी है।"[40] इनके

'अप्सरा', 'अल्का', 'प्रभावति' व 'निरूपमा' सामाजिक यथार्थ का ऐसा चित्र प्रस्तुत करते है, जिसमें न तो घोर निराशा है, न आदर्शवादिता, न ही वो प्रकृतिवादी है। वे तो उत्तरदायित्व, स्वातंत्र्य, सार्वभौमिकता तथा यथार्थ के उज्जवल पक्षों से युक्त साहित्य की श्रेष्ठ रचनाएं है, जो साहित्य के महाप्राण कहलाने वाले विराट लेखक की लेखनी से निःसृत है।

'अप्सरा' उपन्यास एक सुन्दर, साहसी, स्त्री तथा उसकी कोमल भावनाओं, चारित्रिक दृढ़ता को चित्रित करता है। अपने व्यवसाय से उदासीन लड़की अपना हृदय एक कलाकार को दे देती है और अनेक दृष्चक्रों का सामना करती हुई अपने चरित्र को बनाए रखने में समर्थ होती है।

'अल्का' उपन्यास में निराला ने 'अवध' के किसानों और जनसाधारण के अभावग्रस्त और दयनीय जीवन का चित्रण किया है। "पृष्ठभूमि में स्वाधीनता आंदोलन का वह चरण है, जब पहले विश्व युद्ध के बाद गांधी जी ने आंदोलन की बागडोर अपने हाथों में ली थी। यही समय था जब शिक्षित और सम्पन्न समाज के लोग आंदोलन में कूदे, जिनमें वकील बैरिस्टर और पूंजीपति तबके के नेता मुख्य रूप से शामिल थे। इन लोगों की प्रतिबद्धता स्वतंत्रता आंदोलन से बेशक गहरी रही, लेकिन किसानों और मजदूरों की तकलीफों से इनका ज्यादा वास्ता नहीं था। कहा जा सकता है कि इनका मुख्य उद्देश्य अपने लिए आजादी हासिल करना था, इसलिए नेतृत्व का एक हिस्सा किसानों–मजदूरों के आंदोलन को उभरने देने के पक्ष में नहीं था। निरला ने इस उपन्यास में निहित वर्गीय स्वार्थ का स्पष्ट उल्लेख किया है। जमींदारों के विरूद्ध किसानों के विद्रोह का जैसा अंकन यहां निराला ने किया है वह अपनी यथार्थवादिता के नाते दुर्लभ है।"[41]

'प्रभावती' एक "ऐतिहसिक औपन्यासिक कृति है। इसका कथा फलक पृथ्वीराज–जयचंदकालीन राजाओं और सामंन्तों के पारस्परिक संघर्ष पर आधारित है। इस संघर्ष का कारण प्रायः विवाह और कन्यादान हुआ करता था। प्रभावती भी जो कि एक किलेदार की कुमारी है, एक ऐसे ही संघर्ष का केंद्र है। लेकिन इस स्वाभिमानी नारी चरित्र के पीछे निराला का उद्देश्य आधूनिक भारतीय नारियों के संघर्ष चेतना का विकास करना है। यही कारण है कि प्रभावती और यमुना जैसे नारी पात्र स्वयं खड्गहस्थ है और नैतिकता के लिए कोई भी बलिदान करने को सन्नद्ध है। वस्तुतः निरला के गहरी ऐतिहासिक यथार्थ बोध और कवि–कल्पना का अद्भुत मिश्रण उपन्यास में हुआ है।"[42]

'निराला' उपन्यास बंगाल में सामंती रूढ़ियों से विद्रोह और समाज सुधार को दृष्टि में रखकर लिखा गया है। नवशिक्षित युवक–युवतियां कृष्णकुमार, कमल, निरूपमा इत्यादि पात्र जनवादी चेतना से ओत–प्रोत है। प्रस्तुत उपन्यास में नारी जाति की मुक्ति का पथ प्रशस्त हुआ है।

राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह (राजाजी) यह स्वीकार करते है कि उनके कथानकों में प्रयुक्त घटनाएं व पात्र जीवन के यथार्थ से लिये गये है। "तो लीजिए, यह निरी कहानियां ही नहीं, जीवन की झांकियाँ भी है। न सही वैसी कल्पना की नक्काशी, न सही रस–रंग की पच्चीकारी, वास्तव की जीती–जागती बानगी तो है। सौ सुनार की एक लौहार की।"[43]

उनके उपन्यास 'राम रहीम' (1936) भारतीय तथा पश्चिम नारियों के रहन–सहन, संस्कृति व भोगविलास का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। इस तथ्य को समझने के लिए भूमिका में दिया गया, लेखकीय वक्तव्य बहुत उपयोगी है। "मैंने रोजमर्रे की एक दिलचस्प कहानी एक टेक लेकर धर्म और समाज के कच्चे चिट्ठे खोलकर रख देने की कोशिश की है। मैंने भारतवर्ष के इस युग के अत्याचार को, इस युग की पुकार को, दो जीती–जागती स्त्रियों के जीवन पर प्रस्फुटित करने का प्रयास किया है। यहां अध्यात्म के साए में श्रृंगार है, फैशन का दामन थामे दर्शन है। इसीलिए वास्तविकता की सादी जमीन पर नैतिकता की किनारी टंकी है–यथार्थवाद के मौसम में आदर्शवाद के छीटें है। दरअसल इस उपन्यास में बेला और बिजली नामक दो स्त्रियों के माध्यम से भारतीय नारी धर्मपरायणता, त्यागमयता, तज्जन्य यातना तथा पश्चिमी संस्कार में पली स्त्री की धर्म–विमुखता, भोग–प्रवृत्ति और मौजमस्ती का चित्रण कर दोनों की विरोधी मान्यताओं का उद्घाटन किया है और प्रकारान्तर से भारतीय समाज द्वारा अपनी ही धर्मपरायण स्त्रियों पर किए जाने वाले अत्याचारों का विधान कर उसे सावधान किया है। कहीं ऐसा न हो कि भारतीय स्त्रियां अपने ऊपर किए जाने वाले अत्याचारों से तंग आकर पश्चिमी ढंग का भोग–विलास युक्त तथा धर्मविरोधी जीवन अपना ले।"[44] सामाजिक यथार्थ की परम्परा में आने वाले अन्य उपन्यासों में कल्याणी (मन्नन द्विवेदी) लाल पंजा (दुर्गाप्रसाद खत्री) सखाराम (मदारी लाल गुप्त) हृदय की प्यास, अमर अभिलाषा अथवा बहते आंसू (चतुरसेन शास्त्री) विदा विजय (प्रताप नारायण श्रीवास्तव) मनोरमा (चंडीप्रसाद हृदयेश) गोद, अन्तिम आकांक्षा (सियारामशरण गुप्त) भाई, मन्दिरदीप, सत्याग्रह (ऋषभचरण जैन) इत्यादि प्रमुख है।

3.3 प्रेमचन्द्रोत्तर युगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद

प्रेमचन्द्रोत्तर युग में उपन्यास सामाजिक यथार्थ के धरातल पर उतने समर्थ नहीं थे, जितने कि प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि। प्रेमचंद की इसी सामाजिक दृष्टि के फलस्वरूप इन्होंने एक ओर तो सामाजिक जीवन के यथार्थ संबंधों, समस्याओं, असंगतियों व विषमताओं को उद्घाटित किया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने मनः सत्यों को व्यापक अभिव्यक्ति भी प्रदान की। प्रेमचंद परवर्ती कथाकारों ने समाज को केन्द्र में रखने के बजाय व्यक्ति को प्रमुखता देते हुए उपन्यास रचना को एक नई लीक पर ले जाने का प्रयास किया है। ये नये उपन्यास इतने व्यक्ति प्रधान हो उठे हैं कि आलोचकों ने इसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास एक नये नाम से ही अभिहित कर

दिया। इस प्रवृत्ति का चित्रण करने वाले अज्ञेय, जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी के कुछ उपन्यास सामने आए है, जो सामाजिक यथार्थ की प्रेमचंद की परम्परा से भिन्न प्रकार के उपन्यास है।

"प्रेमचन्द्रोत्तर सामाजिक उपन्यासों मे देखने की एक बात और भी है, वह यह कि इन उपन्यासों में अपेक्षाकृत मनोविज्ञान का एक गहरा स्तर उभरता दिखता है, क्योंकि जाने–अनजाने ये मनोविज्ञान के अवचेतनवाद से प्रभावित है। इसलिए इनमें मनोविज्ञान के सत्य के नए आलोक में लक्षित होने वाले पात्रों की टूटन, यौन कुंठा, तज्जन्य स्वप्न, चेतना प्रवाह, प्रकृतवाद, प्रतीकात्मकता आदि का भी प्रभाव कमोबेश रूप में उपलब्ध है। समाजवादी उपन्यासों में भी ये बातें दिखाई पड़ती है। अतः कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द्रोत्तर सामाजिक समाजवादी उपन्यास सामाजिक चेतना की दृष्टि से प्रेमचन्द की ही परम्परा में आते है, किन्तु कुछ बातें ऐसी है जो इन्हें अलग भी करती है।"[45]

जैनेन्द्र ने कथा–साहित्य को एक नई दृष्टि प्रदान कर उसे अर्थात् उपन्यास और कहानी को प्रेमचंद के प्रभावों से मुक्त किया। "जैनेन्द्र की दृष्टि सदैव समाज की तुलना में व्यक्ति केन्द्रित रही है और उनकी कृतियों में जिस यथार्थ का उद्घाटन हुआ है वह भी एक खास कोण से देखा गया व्यक्ति का यथार्थ ही है। उनकी रचनाओं पर महत्त्वपूर्ण न होकर वैयक्तिक स्तर पर भी विचारणीय है। सामाजिक परिवेश उनमें प्रसंगवश ही आया है। वे प्रधानतः व्यक्ति की मानस कथाएं ही है।"[46]

"जैनेन्द्र साहित्य में कामना लिप्सा, भय अथवा बन्धनों से मुक्त सत्य का आग्रह करते है, साहित्य में लिहाज न होगा, न भय ही, न प्रत्याशा। उसमें कामना न होगी सबकी ओर सबमें व्याप्त सत्य की। इसके अतिरिक्त किसी दम्भ और दर्प, किसी बल और अभियान का सम्मान वहां न हो सकेगा।"[47] इस प्रकार एक ओर जैनेन्द्र साहित्य में सत्य, सुन्दर, और शिव की कामना करते है, जो समाज के लिए स्वीकार्य भी है, वहीं दूसरी ओर जैनेन्द्र सामाजिक समस्याओं को असामाजिक एवं अव्यावहारिक दृष्टि से देखने के लिए प्रसिद्ध है। उनके 'परख' (1929) और 'सुनीता' (1936) उपन्यास इसके उदाहरण है। जैनेन्द्र के साहित्य में यथार्थ का पुट कम ही देखा जाता है, फिर भी उन्होंने अपने उपन्यास संबंधी सिद्धांतों में पात्रों व चरित्रों के विषय में यथार्थ का अधिक समर्थन किया है। अतः "जैनेन्द्र के साहित्य का व्यक्ति बहुत कुछ सामाजिक यथार्थ से निरपेक्ष एक विशिष्ट दायरे मे घूमता हुआ दिखाई पड़ता है। कथा की दुनियां व्यक्ति मन के भीतर अधिक चलती है बाहर कम। इसलिए घटना की स्थूलता, बहुलता और विविधता के स्थान पर उसकी सूक्ष्मता और स्वल्पता गृहीत होती है। सारा संघर्ष भीतरी होता है अर्थात् वह समाज के भीतर नहीं, व्यक्ति के मन के भीतर चलता है।"[48]

जैनेन्द्र का प्रथम उपन्यास परख हिंदी साहित्य में लिखित पहला मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी है। इसमें सत्यधन बिहारी और कट्टो के माध्यम से मानसिक द्वन्द्व का मनो–विश्लेषण किया गया है। सत्यधन आदर्शवादी होने का ढोंग मात्र करता है, वह समाज की कुरीतियों को दूर करने का दिखावा करता है। पर जब यथार्थ रूप में एक विधवा का हाथ थाम कर उससे विवाह करने को कहा जाता है, तब वह पीछे हट जाता है। वास्तव में वह एक धनलोलुप, आत्मभीरू तथा स्वार्थी प्रवृत्ति का व्यक्ति है। बिहारी तथा कट्टो का चरित्र त्याग व आदर्श से परिपूर्ण है। इसलिए बिहारी धन को महत्त्व न देकर कृषक का जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा करता है और कट्टो गाँव में बच्चियों को पढ़ाने का दायित्व उठाती है। अन्त में उनका विवाह हो जाता है। वस्तुतः यह समाज का कटु यथार्थ ही तो है कि समाज सुधारकों में अधिकतर वे लोग है, जो समाज की कुरीतियों को दूर करने की ढींगे तो हांकते है, लेकिन जब स्वयं कर्त्तव्य पालन का समय आता है, तो मुकर जाते है। अतः ऐसे लोगों की कथनी व करनी में सर्वथा अंतर देखा जाता है।

'सुनीता' उपन्यास में जैनेन्द्र ने सामाजिक यथार्थ की चिन्ता किये बगैर सुनीता, श्रीकांत, हरिहर पात्रों के माध्यम से कथा को पात्रों के बाहरी वातावरण में स्थान न देकर पात्रों के मनसिक विचारों में कथा को अधिक विस्तार दिया है। श्रीकांत सम्पन्न परिवार से संबंध रखता है तथा समस्त प्रकार के राग–द्वेंषों से मुक्त है, वहीं सुनीता भी एक पतिव्रता नारी के रूप में पाठक के सम्मुख प्रस्तुत है। हरिहर बाहरी रूप से तो स्वयं को क्रांतिकारी मानता है, किन्तु उसका अर्न्तमन अत्यन्त दुर्बल व वासनाओं से परिपूर्ण है। सम्भवतः वह एक कुंठा में जकड़ा है। श्रीकांत कहीं बाहर जाते समय सुनीता को आदेशित करता है कि वह मित्र हरिहर को प्रसन्न रखें। सुनीता हरिहर को प्रसन्न रखने का प्रयास करती है। हरिहर निकम्मा बनकर श्रीकांत के घर पर पड़ा रहता है और सुनीता पर अधिकार जमाता है। संपूर्ण उपन्यास की कथावस्तु कुछ अजीब है। यह कैसा यथार्थ है जो एक पति द्वारा अपनी पत्नी को हरिहर जैसे कुंठित मन वाले पुरूष की सेवा का आदेश देता है और यह कैसी पत्नी है जो हरिहर द्वारा सताये जाने पर भी स्वयं तंग होना जानती ही नहीं। हरिहर तो क्रांतिकारी न होकर एक खलनायक के रूप में ही सामने आता है। जैनेन्द्र ने जिस प्रकार के यथार्थ की संभावना को उपन्यास में चित्रित किया है वह समाज में नगण्य है किंतु असंभव नहीं।

जैनेन्द्र का 'त्यागपत्र' (1937) उपन्यास अपनी सांकेतिकता, संवेदनशीलता, एकांगिकता और जीवन्त यातना के कारण बहुत ही प्रभावशाली है। इस उपन्यास के पात्र एक विशेष प्रकार की व्यक्तिवादी भूख और लेखक के गूढ़ आरोपित दर्शन से परिचालित होते है। उपन्यास की नायिका मृणाल एक ऐसी ही पात्र है, जो समझदार है। समाज के गूढ़ रहस्य को

समझती है, लेकिन समाज द्वारा किये गये अपने प्रति अन्याय को वह सहन करती है। अपनी आत्मपीड़न में वह जीना चाहती है, उसे तोड़ना नहीं चाहती।

"त्यागपत्र का प्रमुख संदर्भ मनोवैज्ञानिक है, किन्तु उसका एक सामाजिक सन्दर्भ भी है। लेखक कहीं सीधे ढंग से, कहीं व्यंग्यात्मक ढंग से सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ भी उद्‌घाटित करता चलता है। यह बात और है कि वह उन विसंगतियों के प्रति विद्रोहात्मक रूख न अख्तियार करके उनके प्रति समर्पण का भाव रखता है, ताकि उसके यातनावादी दर्शन का निर्वाह हो सके। मृणाल की मां–बाप विहीनता की स्थिति, भाभी की निर्दयता, उस परिवार की स्त्री–पुरूष संबंधी मान्यताएँ, मृणाल का बेंत से पिटना, वृद्ध से विवाह, वृद्ध की सारी दकियानूस मानसिकता, पत्नी को पीटना, मृणाल का भाई के यहां आना, भाई–भाभी का उसके प्रति दकियानूस सोच, उसका अनिच्छा से फिर अवांछित पति के यहां लौटना, पतिव्रत निर्वाह के लिए पति से अपने पूर्व–सम्बन्धों की अभिव्यक्ति, उस दुहाजू द्वारा उस सत्य को बर्दाश्त न कर सकना और मृणाल को बेसहारा घर से निकाल देना, कोयलेवाले के साथ मृणाल का हो लेना, परिवार के रहते हुए भी कोयलेवाले का मृणाल पर आशिक होना, फिर कोयलेवाले के द्वारा मृणाल का परित्याग, प्रमोद की होने वाली ससुराल में संयोग से मृणाल का पहुंचना, वहां उसकी प्रशंसा होना, किन्तु असली भेद खुलते ही सारी प्रशंसा ढह जाना तथा प्रमोद की शादी टूट जाना, एक गरीब अभिशप्तबस्ती में मृणाल का पहुंचना, उस बस्ती के जीवन की वास्तविकता का विधान और ऐसे प्रसंग है, जो हमारी सामाजिक स्थिति और मानसिकता का उद्‌घाटन करते है। इसके अतिरिक्त लेखक प्रमोद के आत्मालोचक के माध्यम से सभ्य समाज की विसंगतियों को उकेरता है।"[49]

वस्तुतः जैनेन्द्र व प्रेमचन्द में अन्तर है, वह यह कि "प्रेमचन्द अपने परिवेश से निरन्तर जुड़ते चलने के कारण अपने अनुभवों का विस्तार करते गए और उन्होंने क्रमशः सशक्ततर उपन्यासों की रचना की, किन्तु जैनेन्द्र की अनुभव पूंजी बहुत थोड़ी थी। परिवेश से जुड़े न होने के कारण वह पूँजी विकसित होने के स्थान पर शुरू में ही चुक गई। बाद में सिवा अपने को दुहराने के और कोई उपाय शेष नहीं बचा। इसलिए नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहीं लिखा है कि प्रेमचन्द में जैनेन्द्र की अपेक्षा अधिक सर्जनात्मक सम्भावना थी।"[50]

'जयवर्धन' (1956) जैनेन्द्र के उपन्यासों में सर्वाधिक वृहत्तकाय है। डायरी शैली में लिखे गये इस उपन्यास में भारत की इक्कीसवीं सदी के राजनीतिक स्थिति का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। जयवर्धन का चरित्र इसमें एक शासन का है। उपन्यास में कईं पात्र डॉ. नाथ, एलिजाबेथ, आचार्य श्री और स्वामी जी हैं, जो कईं दलों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कईं विपक्षी दल भी है, जो एक–दूसरे पर राजनीतिक छींटाकशी करते नजर आते है। उपन्यास का एक पात्र

अमेरिकलन मिस्टर विलवर शेल्डन इस्टन है, जो अवकाश प्राप्त पत्रकार है। वह जयवर्धन के यहां अतिथि के रूप में है और मुम्बई में वह भारत की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सत्ता और अमेरिका की भौतिक सत्ता के तुलनात्मक अध्ययन एवं शोध के लिए आया हुआ है। जयवर्धन और इला की प्रणय कथा भी उपन्यास में वर्णित है। कुल मिलाकर उस समय की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक दशा का चित्रण है। 'सुखदा' उपन्यास मनोवैज्ञानिक कृति है। फ्लैश बैक पद्धति में लिखा यह उपन्यास पति–पत्नी के संबंधों के बीच किसी तीसरे के आ जाने पर दाम्पत्य जीवन में क्या विसंगतियां उत्पन्न होती है, उसका यथार्थ चित्रण करता है। यहां सुखदा उसके पति कान्त व लाल नामक व्यक्ति के मानसिक स्थितियों के चित्रण, मनोविश्लेषण एवं अन्तर्द्वन्द्वों पर आधारित एक विशिष्ट कृति है।

'इला चन्द्र जोशी' का नाम भी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में अग्रगण्य है। इन पर भी फ्रायड का प्रभाव परिलक्षित होता है, किंतु ये बात उन पर पूरी तरह लागू नहीं होती। उनके ऊपर पाश्चात्य लेखकों का प्रभाव अधिक रहा। उन्होंने रूसी उपन्यासकारों टॉलस्टॉय और दास्त्योवस्की के उपन्यासों का अध्ययन किया था। यही कारण है कि उनके उपन्यासों के पात्र अपने चरित्र से डिगते जरूर है, लेकिन उनके चरित्रों में सद्‌गुणों की भी कमी नहीं होती। वे असामाजिक कार्य भी करते है, लेकिन बाद में वे पश्चात्ताप भी करते है।

वस्तुतः यथार्थ के साथ सत्य को जोड़ देने से जिस साहित्य की सृष्टि होती है वह है प्रामाणिक सत्य। ऐसा साहित्य जिसमें सम्भावनाएं तथा सत्य सब कुछ सम्मिलित हो, तो वह जीवन का प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत करता है। वह सत्य की अनुभूति कराता है उसे झूठा नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार जोशी जी साहित्य के बाह्य जगत से अन्तर्जगत में प्रविष्ट हो यथार्थ व सत्य के सम्मिश्रण से व्यक्ति के आन्तरिक मन की परतों को खोलते चलते है। उनके सभी उपन्यास मनोवैज्ञानिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करते है।

'सन्यासी' का नायक नंदकिशोर अत्यन्त अंहकारी प्रवृत्ति का है। इस अहंकार की तृष्टि के लिए वह कईं स्त्रियों के जीवन को नष्ट करता है। वह जयन्ती के साथ भी इसलिए विवाह करता है कि वह शान्त, सच्चरित्र व तेजस्विनी नारी के गर्व को चूर–चूर कर सकने में समर्थ हो सकेगा। अन्त में भले ही वह अपने को सामाजिक अर्थ से जोड़ सन्यासी बन जाता है और नेता होकर जेल चला जाता है, लेकिन वास्तव में वह अपने जीवन काल में कुण्ठित ग्रन्थियों से ग्रसित प्रतीत होता है।

'प्रेत और छाया' उपन्यास का नायक पारसनाथ के बाह्य आचरण का कारण इडिपस ग्रंथि है। पारसनाथ को जब अपने पिता द्वारा यह बताया जाता है कि वह जारज संतान है, तो वह जीवन भर दुःखद मानसिक स्थिति का सामना करता है और वह समस्त स्त्री जाति में

अपनी माता के व्यभिचारिणी रूप को देखता है और कांची, मंजरी, नंदिनी जैसी सहृदय स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट करता है। पिता द्वारा यह बताये जाने पर कि उसने पूर्व में माता के संबंध में झूठ बोला था। तब वह पश्चात्ताप करता है और अंत में हीरा नामक स्त्री से विवाह कर लेता है। जैनेन्द्र ने मानसिक ग्रंथियों और विकृतियों से ग्रसित मानव अनुभूतियों का सजीव व यथार्थ चित्रण किया है।

'पर्दे की रानी' में निरंजना नामक एक वैश्या पुत्री पर मनमोहन और इन्द्रमोहन दोनों आकृष्ट हो जाते है। इन्द्रमोहन निरंजना से भोग करने के लिए अपनी पत्नी शीला की हत्या तक कर देता है। कालान्तर में निरंजना की घृणा के कारण इन्द्रमोहन भी आत्महत्या कर लेता है। प्रस्तुत उपन्यास में पुरूष की यौन–कुंठा ग्रस्त ग्रंथि का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है।

'निर्वासित' उपन्यास मध्यमवर्गीय व्यक्ति 'महीप' की यौन कुंठा को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। महीप उपन्यास में आई कई स्त्रियों रमा, सुषमा और नीलिमा आदि से प्रणय–निवेदन करता है, किन्तु वे सभी उसे गम्भीरता से नहीं लेती है और तब वह गांधीवादी बनकर लक्ष्मीनारायण सिंह को बचाने के लिए घायल हो जाता है और जेल में उसकी मृत्यु हो जाती है। साथ ही उपन्यास में कुछ सामाजिक समस्याओं और चेतनाओं को भी अभिव्यक्ति मिली है।

'जिप्सी' नामक उपन्यास में नारी के श्रमशील व तेजस्वी रूप का चित्रण हुआ है। "प्रस्तुत उपन्यास में अभिजातवर्गीय धनीव्यक्ति के व्यक्तित्व के अहंकार, भोग–लालसा तथा निम्न वर्ग की एक स्वतंत्र नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व–बोध, सुविधापूर्ण परवशता में उसकी मानसिक छटपटाहट, सहज ईर्ष्या, क्रोध, प्रतिशोध और तेज का जीवन्त चित्रण तो हुआ ही है साथ ही वर्गीय सत्यों के पारस्परिक वैषम्य और द्वन्द्व तथा श्रमशील सामाजिक संस्थाओं की सेवा, त्याग का भी सुंदर अंकन हुआ है। उपन्यास की परिणति सामाजिक सेवा तथा रचनात्मक कर्मों में व्यक्ति के अहं के विसर्जन से हुई है। इसमें आए हुए व्यक्ति अपने परिवेश के संस्कारों और सत्यों में बहुत मूर्त और सजीव है। मनिया का चरित्र तो बहुत ही जीवन्त है। वह जिप्सी थी और अन्त में भी वह जिप्सी ही बची अर्थात् स्वतंत्र। वह श्रमशील, नवचेतना सम्पन्न नारी के समस्त तेज और द्वन्द्व को व्यक्त करती है।"[51] अन्य उपन्यास लज्जा, मुक्तिपथ, जहाज का पंछी, सुबह के भूले, भूत का भविष्य, ऋतुचक्र इत्यादि है।

अज्ञेय मूलतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार है, किन्तु उनके पात्र व जीवन की अनुभूतियां जीवन से ही लिये गये है। उन्होंने अपने पात्रों का यथार्थ विश्लेषण मनोविज्ञान के माध्यम से किया है। उनके उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' (1941), 'अपने–अपने अजनबी' (1961),

'नदी के द्वीप' (1951) विस्तृत और वैविध्यपूर्ण जीवनानुभव को यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त करते है। उनकी रचनाओं में उनके जीवन के विभिन्न कालों की संवेदना अभिव्यक्त हुई है।

'शेखर एक जीवनी' में वस्तुतः शेखर, प्रेमचंद के गोदान के पात्र गोबर के चरित्र का स्वाभाविक विकास है। दोनों ही पात्र अपने अन्तर्मन की आवाज सुनते है। 'शेखर' दरअसल एक व्यक्ति के बनने की कहानी है, जो पढ़ा–लिखा और शिक्षित मनुष्य के साथ एक विचारवान व्यक्ति भी है। उसके अन्तर्मन की परतों की व्याख्या के माध्यम से अज्ञेय ने व्यक्ति स्वतंत्रता की अनुभूति और अभिव्यक्ति की एक मार्मिक यथार्थवादी अभिव्यक्ति की है।

"अपने–अपने अजनबी' मृत्यु के आतंक के बीच जीवन जीने की कला का यथार्थवादी दस्तावेज है। इस उपन्यास में सेल्मा ओर योके के माध्यम से अस्तित्ववाद की पश्चिमी निराशावादी व्याख्या में भारतीय आस्थावादी व्याख्या को जोड़ने का प्रयास किया है।

'नदी के द्वीप' उपन्यास के पात्र भुवन, रेखा, गौरा और चन्द्रमाधव की अपनी अलग–अलग भावनाएं उनके सुख–दुःखों का वर्णन है, जो युगीन यथार्थ को पूरी तरह स्पर्श नहीं करते। सभी एक–दूसरे में सम्भावनाओं को तलाशते है, लेकिन सभी के ह्रदय एक–दूसरे से खाली ही रह जाते है।

यशपाल ने 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'दिव्या' (1945), 'पार्टी कामरेड' (1946), 'अमिता' (1956), 'झूठासच'–भाग–1 (1958) भाग–2 (1960), 'मेरी–तेरी उसकी बात' (1974) 'दादा कामरेड' लेखक के जीवानुभवों का यथार्थ चित्रण है, जिसमें उनके क्रांतिकारी जीवन तथा क्रांतिकारियों की गतिविधियों का वर्णन हुआ है। 'देशद्रोह' भारत के सीमावर्ती देशों व सोवियत संघ की राजनीतिक स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। 'दिव्या' में सामाजिक, धार्मिक यथार्थ है, तो 'झूठ सच' और 'मेरी तेरी उसकी बात' में राजनीतिक यथार्थ परिलक्षित होता है। 'दादा कामरेड' और 'झूठा सच' उपन्यासों में मध्यमवर्ग के स्त्री–पुरूष संबंधों, विसंगतियों तथा कुंठाओं, भ्रष्टाचार तथा दिशा हीनता जैसे तत्त्वों का यथार्थ दस्तावेज परिलक्षित है। यशपाल का अंतिम उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' में भारत छोड़ो आंदोलन का भीषण चित्र उपस्थित है, साथ ही बुर्जुआ समाज के पतनशील जीवन–मूल्यों को दर्शाया गया है। 'दिव्या' उपन्यास में बौद्धकालीन भारत की पृष्ठभूमि में नारी–शोषण तथा दासों का जीवन चित्रण है। यह उपन्यास नारी–जीवन की समस्त त्रासदी को यथार्थ धरातल पर दर्शाता है।

'उपेन्द्रनाथ अश्क' अपने उपन्यासों को आलोचनात्मक यथार्थ की संज्ञा देते है। 'सितारों का खेल' उनका प्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास में मध्यमवर्गीय पारिवारिक जीवन की करूणा व वेदना का चित्रण है। नारी मनोविज्ञान का यथार्थ चित्रण उक्त उपन्यास की विशेषता है। 'गर्मराख' (1952) उपन्यास में महायुद्ध के पूर्व के लाहौर के मध्यमवर्गीय जीवन को प्रस्तुत

किया है। 'गिरती दीवारे' (1942) व्यक्ति की बहुविध कुण्ठा की दीवारों को गिरने की सांकेतिक प्रेरणा देता है। 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास 'गिरती दीवारे' उपन्यास की अगली कड़ी के रूप में सामने आता है। निम्न मध्यमवर्ग की सामाजिक, आर्थिक व राजनतिक विषमता तथा प्रेम–विवाह आदर्श प्रेम और कुण्ठा का स्वाभाविक व यथार्थ चित्रण उपन्यास में हुआ है। इस उपन्यास में मध्यमवर्ग व उच्चवर्ग की विषमताओं के साथ ही व्यक्तियों के स्वार्थी, असभ्यता, फूहड़पन, अश्लीलता, कुण्ठाएं तथा सामाजिक व आर्थिक व राजनीतिक विषमता का व्यापक रूप में चित्रण किया गया है।

'बांधों न नाव इस ठाव' उपन्यास 'गिरती दिवारे' की चौथी कड़ी है। यह उपन्यास पंजाब की पृष्ठभूमि पर लिखा गया सामाजिक रीति–रिवाजों, लोकगीतों, विवाहों तथा सामाजिक भावनाओं का व्यंग्यपूर्ण चित्रण है। इसमें तत्कालीन उच्च मध्य एवं निम्न मध्यमवर्ग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है। उनके अन्य उपन्यास 'निमिषा' 'छोटे–बड़े लोग', 'पलटती धारा', 'एक रात का नरक', 'पत्थर अल पत्थर' इत्यादि उपन्यासों में समाज के निम्न मध्यमवर्ग की अनेक समस्याओं का यथार्थ अंकन है। वस्तुतः 'अश्क' पंजाब के नगर–कूचों व गलियों के सामाजिक जीवन के यथार्थ कथाकार है। उनका सम्पूर्ण रचना संसार उनके अपने अनुभवों एवं अनुभूतियों की मौलिक सृष्टि है।

भगवती चरण वर्मा के 'चित्रलेखा' (1934), 'तीन वर्ष' (1936), 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' (1948), 'आखिरी दांव' (1950), 'सामर्थ्य और सीमा' (1962), रेखा (1964) उपन्यास आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक समस्याओं पर आधारित है। 'भूले बिसरे चित्र' (1959) एक सामाजिक उपन्यास है। जिसमें एक मध्यमवर्गीय कायस्थ परिवार के माध्यम से लेखक ने पीढ़ी दर पीढ़ी परिवर्तित होते हुए सामाजिक परिवेश तथा नये उभरते हुए जीवन–मूल्यों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें संयुक्त परिवार की टूटन तथा संबंधों के बनते–बिगड़ते कारणों व परिस्थितियों का यथार्थ अंकन हुआ है। 'सबहि नचावत राम गोसाई' (1970) यह एक यथार्थवादी कृति है, जिसमें स्वाधीनता के कुछ वर्षों से लेकर आज तक के भारत के जीवन यथार्थ की तथा धनपतियों, नेताओं और गुंडो की मिली–जुली शक्तियों से आक्रान्त और बरबाद होते भारतवर्ष की तस्वीर खींचने का प्रयास किया गया है।

रांगेय राघव प्रगतिशील लेखक है। उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना से वहां की संस्कृति में रूढ़िवाद से संघर्ष करती प्रगतिशील चेतना को व्यक्त किया है। उनके उपन्यास 'घरौंदा' (1946), 'विषाद मठ' (1946), 'मुर्दों का टीला' (1948), 'बोलते खण्डहर' (1955), 'आखिरी आवाज' (1962) जीवन इतिहास की गाथा कहते है। 'मुर्दों का टीला' उपन्यास मोहन जोदड़ो की संस्कृति और सभ्यता को आधार बनाकर लिखा गया ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

वहां की संस्कृति में दास–दासियों के साथ किस प्रकार पशुवत् व्यवहार किया जाता था, उसका यथार्थ चित्रण अंकित है। लेखक ने चरित्रों के निर्माण में तत्कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए आधुनिक मनोविज्ञान का सम्यक् उपयोग किया है। उनका साहित्य संसार मनोरंजन के साथ–साथ आत्मतुष्टि, ज्ञानवर्धन व उपयोगितावादी है। उनका मानना है कि–"साहित्य रचना का उद्देश्य है, मानव के यथार्थ सत्य में छिपे आत्मा के सौन्दर्य को खोजकर भाव के माध्यम से विचार से समन्वय करके प्रस्तुत करना। इस उद्देश्य को साहित्यकार तभी प्राप्त कर सकता है, जब वह युग के प्रति ईमानदार हो और बहुजन हिताय में ही अपना समर्पण करें।"[52]

अमृतलाल नागर के अधिकतम उपन्यासों में लखनऊ के शहर व गलियों का जिक्र हुआ है। ऐसा लगता है कि जैसे लखनऊ उनके उपन्यासों में जीवन्त हो उठा है। उनका उपन्यास 'बूंद और समुद्र' (1956) इसका प्रमाण है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन की विसंगतियों, समस्याओं और समाज व व्यक्ति संबंधों को व्यक्त करने के लिए लेखक ने लखनऊ के एक मोहल्ले को कथा भूमि बनाया है। इस दृष्टि से यह आचंलिक उपन्यास की श्रेणी में भी आता है। इस उपन्यास के संबंध में लेखक का कथन है – "यह उपन्यास देश में मध्यमवर्गीय नगरीय समाज का गुण–दोष भरा चित्र ज्यों का त्यों आंकने का यथामति यथासाध्य प्रयत्न है।"[53] इनके अन्य उपन्यास 'अमृत और विष' (1966), 'नाच्यौ बहुत गोपाल' (1978), 'अग्निगर्भा' (1983) इत्यादि उपन्यासों में मध्यमवर्गीय व्यक्ति केन्द्र में है। इनके उपन्यासों में जीवन यथार्थ का गहरा व सशक्त चित्र अंकित है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की पृष्ठभूमि मुख्य रूप से ऐतिहासिक है। उनके उपन्यासों में राजनैतिक यथार्थ की अभिव्यक्ति 'बाण भट्ट की आत्मकथा' (1946) ' चारूचंद्र लेख' (1963), 'पुनर्नवा' (1973), 'अनामदास का पोथा' (1976) उपन्यासों में हुई है, जिसमें राष्ट्रहित की चेतना मुखरित है। 'बाणभट्ट' की आत्मकथा' उपन्यास द्विवेदी जी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। यह आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें हर्षकालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है। नायिका निउनिया के माध्यम से प्रेम का उदात्तीकरण दिखाया गया है। 'चारूचद्र लेख' में राजा सातवाहन तथा चन्द्रलेखा की कथा वर्णित है। 12वीं–13वीं शती के सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्थिति का चित्रण उक्त उपन्यास में वर्णित है। 'पुनर्नवा' उपन्यास में वर्ण व्यवस्था एवं नारी के शोषण का चित्रण है। 'अनामदास का पोथा' में औपनिषदिक युग के परिवेश एवं जीवन पद्धति का यथार्थ चित्रण वर्णित है। सामाजिक दृष्टि से इनके उपन्यासों में नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। उस समय नारी अपमानित व उपेक्षित थी। उसे गणिका, परिचारिका, नर्तकी, देवदासी आदि बनाने के लिए पुरूष की विलासी प्रवृत्ति उत्तरदायी थी। जातिगत संकीर्णता तथा धर्माडम्बर व संस्कृति विहिन समाज का यथार्थ चित्रण उनके उपन्यासों की विशेषता है।

निष्कर्षतः प्रेमचंद परवर्ती उपन्यासकारों में राहुल सांस्कृत्यायन, मन्मथ लाल गुप्त आदि के नाम भी लिये जाते है। प्रेमचन्द की आदर्शात्मक यथार्थवादी परम्परा को यथार्थ के धरातल पर लाने का कार्य उक्त सभी उपन्यासकारों ने किया है। प्रेमचंद के बाद मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा प्रवाहित हुई, पर ऐसा नहीं है कि जिन कथाकारों ने समाजवादी या पारिवारिक सन्दर्भ में जीवन के यथार्थ को खोजा वे अधिक जीवन्त है तथा मनोवैज्ञानिक व ऐतिहासिक उपन्यास उदासीन। इस युग में सामाजिक चेतना की अनुभूति के दर्शन ऐतिहासिक उपन्यासों में भी देखे जा सकते है। 'दिव्या', 'मुर्दों का टीला', 'सिने सेनापति' आदि उपन्यास अपने समय की समस्याओं का चित्रण करते है। अतः इन उपन्यासों में एक शक्ति व ऊर्जा है। प्रेमचंद ने जिस आदर्श यथार्थ के बीज अपने साहित्य में बोये थे। इस युग के कथाकारों ने उसे सिंचित करने का कार्य अवश्य किया है।

3.4 समकालीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद

समकालीन शब्द अंग्रेजी के Contemporary का समानार्थी शब्द है, जिसका अर्थ है अपने समय का यानि की समसामयिक। समकालीन शब्द समय विशेष को सूचित करता है दूसरा इसका अर्थ अपने समय के साथ के सरोकार से है। अर्थात् इसका अर्थ हुआ काल के सम या साथ चलने वाला। इसका व्यापक अर्थ है समय सीमा को पार करके हर समय के साथ चलने की क्षमता रखने वाला मतलब क्लासिक। जैसे साहित्य के सन्दर्भ में गोदान हर प्रकार से प्रासंगिक साहित्य है समकालीन। इसी प्रकार रामायण, महाभारत, कबीर की उक्तियां, गांधी, मार्क्स, टैगोर इत्यादि इसलिए प्रासंगिक है, क्योंकि इनका जीवन–व्यक्तित्व एवं जीवन दृष्टि समय सीमित नहीं।

"समकालीन एक जीवन भी है जिसका मूल स्वर प्रतिरोध है। समकालीन साहित्य में समकालीनता का मतलब अपने समय की असंगतियों को समझना और उस समझ के साथ ही उसके प्रति प्रतिरोध जाहिर करना है।"[54] वस्तुतः "समकालीनता एक ठहरी हुई गतिहीन और जड़ स्थिति नहीं है, बल्कि ठहराव, गतिहीनता और जड़ता को सहती और निर्ममता से तोड़ने वाली गतिमान ऐतिहासिक प्रक्रिया और चेतना है।"[55]

समकालीनता का एक इतिहस रहा है इसके पीछे कईं घटनाएं है, जो काल के गर्भ में छिपी है। स्वातंत्र्यपूर्व व स्वतंत्र्य उपरान्त की अनेकानेक घटनाओं से समकालीनता का जन्म हुआ है। रूसी क्रांति, मार्क्स का समाजवादी विचार, ब्रिटिश सत्ता का खोखला राजतंत्र, गांधी व नेहरू की क्रांतियां, कईं सुधार आंदोलन, प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्ध तथा हिरोशिमा व नागासाकी की भीषण त्रासदी, नक्सलवादी आंदोलन, देश में राजनीतिक आंदोलन, भोपाल गैस त्रासदी, सामंतवादिता, पूंजीवादी व औपनिवेशिक अवधारणा, बाजारवाद तथा भूमण्डलीकरण के दौरे से

उदारीकरण की शुरूआत ने दुनियां में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में उथल–पुथल मचा दी। परिणामस्वरूप उपभोक्तावाद और उपभोगवादी संस्कृति ने हमें अर्थ व्यवस्था का अंग बना दिया। हमारा एकमात्र ध्येय धन की प्राप्ति करना बन गया। रोजगार की प्राप्ति के लिए व्यक्ति गांवों को छोड़कर शहरों में जाने लगा। संयुक्त परिवारों में विघटन की स्थिति ने जन्म लिया। यह विघटन आज एकल परिवारों में भी दिखाई देने लगा है। आज स्त्री–पुरूष में भी अलगाव की स्थिति देखी जा सकती है। फलस्वरूप संवेदनहीनता, कुंठा तथा कईं मानसिक विषमताओं ने समाज को अपना ग्रास बना लिया। इसके अलावा साम्प्रदायिक समस्या, सामाजिक कुरीतियां, विस्थापितों के यथार्थ, स्त्रीयों की समस्या आदि कईं समस्याओं ने मानव जन–जीवन को प्रभावित किया है। समकालीन साहित्य में उपर्युक्त सभी समस्याओं के प्रति विद्रोही स्वर दिखाई देता है। इसलिए वर्तमान समाज के बहु–आयामी यथार्थ को समकालीन उपन्यास साहित्य ने व्यापक फलक पर अभिव्यक्ति प्रदान की है।

वस्तुतः "हिंदी का समकालीन साहित्य अपने समय की समस्याओं और चुनौतियों के साथ संघर्ष करते हुए अपने सामाजिक सरोकार को प्रमाणित करने वाला साहित्य है। यह साहित्य अपने समय के यथार्थ का अनावरण करता है। साथ ही उन मानव विरोधी यथार्थों के खिलाफ प्रतिरोध जाहिर करता है, जो मनुष्य को मानवोचित्त जीवन जीने के अधिकार से वंचित रखता है। समकालीनता से तात्पर्य साठोत्तर भारतीय परिवेश से है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मोह भंग और निराशा का चित्रण समकालीन उपन्यास साहित्य में हुआ है।"[56]

सामान्य तौर पर देखा जाए तो पाठक अपने वर्तमान में जीता है अतः समकालीनता उसकी कमजोरी भी है और उसकी आवश्यकता भी। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में केवल समकालीनता को स्थान देकर अपने परवर्ती लेखकों के लिए मार्ग सरल कर दिया था। डॉ. देवराज का मानना है कि "पाठक की तृप्ति प्राचीन साहित्य से नहीं होती, वह नवीन तथा समकालीन साहित्य के लिए क्षुधित रहता है।"[57]

प्रसिद्ध दर्शन वेत्ता, कवि, समालोचक और चिन्तक डॉ. देवराज ने 'पथ की खोज' (1951), 'बाहर–भीतर' (1954), 'रोड़े और पत्थर' (1958) 'अजय की डायरी' (1969), 'मैं वे और आप' (1969), 'दोहरी आग की लपट' (1973) 'दूसरा सूत्र' (1978) इत्यादि उपन्यासों की रचना की है।

'अजय की डायरी' डायरी शैली में रचित एक व्यक्तिवादी उपन्यास है। यह एक वैचारिक कृति है। उपन्यास का नायक 'भारतीय समाज में स्त्रियों का स्थान' विषय पर अनुसंधान कार्य करने वाला अनुसंधित्मु है। उसका विवाह शीला से उसकी इच्छा से हुआ है। वह शिक्षिता और सुन्दर है। उपन्यास के अन्य पात्र डॉ. द्विवेदी की पुत्री दीपिका व उसकी सखी

हेमलता है। अजय को कशमीर में अपनी शिक्षा संस्थान के प्रतिनिधि के रूप में भारतीय शिक्षा सम्मेलन में सम्मिलित होना पड़ता है। वहां दीपिका, हेमा व अजय का मित्र पाण्डे उसके साथ थे। अजय का हेमा के प्रति आकर्षण बढ़ जाता है। इसके पश्चात् अजय का अमरीका प्रवास, हेमा का इंजीनियर से विवाह, अजय का भारत लौटना, शीला का एबार्शन आदि इस उपन्यास की मुख्य घटनाएं है। डॉ. देवराज ने उक्त उपन्यास में प्रेम को व्यक्तिवादी धरातल पर स्थापित किया है। अजय व्यक्तिवादी विचारधारा पर विश्वास करता है। उक्त उपन्यास में लेखक की व्यक्तिवादी विचारधारा अभिव्यक्त हुई है।

'पथ की खोज' में चन्द्रनाथ प्रमुख पात्र के रूप में तथा अन्य सुशीला, साधना, नरेन्द्र, आशा, योगेन्द्र आदि गौण पात्र है। इस उपन्यास का उद्देश्य चन्द्रनाथ व साधना के प्रेम का उदात्तीकरण करके नये पथ की खोज करना है। उपन्यास में व्यक्ति की कुंठा, निराशा और जड़ता तथा यौन प्रवृत्तियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसे व्यक्तिपरक, मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास भी कहा जा सकता है।

'बाहर—भीतर' उपन्यास नायक किशोर राजन तथा उसकी मौसेरी भाभी सुमित्रा के बीच के संबंधों पर आधारित है। यह एक लघु उपन्यास है। राजन का सुमित्रा से मिलना और उसके व्यक्तित्व से अभिभूत होना, राजन का भाभी को चूमना, हरिकृष्ण भैया का बीमार पड़ना आदि इस उपन्यास की प्रमुख घटनाएं है। यह सामान्य नारी की अनमेल विवाह से उत्पन्न बाहर—भीतर की वेदना का परिणाम है। साथ ही किशोर मन की अतृप्त यौन वासना और भाभी की वेदना का यथार्थ चित्रण है।

धर्मवीर भारती का साहित्य और समकालीनता के संदर्भ में विचार है कि — "किसी भी युग का महान् प्रतिभाशाली कलाकार अपने युग की ज्वलंत समस्याओं की उपेक्षा कर ही नहीं सकता।"[58] इस प्रकार अपने युग की समस्याओं को उद्घाटित करने वाला कालजयी साहित्य ही समकालीन है। धर्मवीर भारती ने दो उपन्यास लिखे — 'गुनाहों का देवता' (1949), सूरज का सातवां घोड़ा (1952)।

'गुनाहों का देवता' एक आदर्शवादी प्रेम कहानी है। नायक चन्दर सुधा से प्रेम करता है। लेकिन भिन्न जातियों का होने के कारण वह अपने प्रेम को अभिव्यक्त नहीं करता। सुधा भी चन्दर को चाहती है। सुधा के प्रेम में नाकाम होने पर चन्दर पम्मी की शरण में आ जाता है। पम्मी उसे सुधारने के लिए उसे प्रेम करने लगती है, किन्तु दोनों का आदर्श प्रेम एक दिन खण्डित हो जाता है। पम्मी उसे छोड़कर चली जाती हे। इधर सुधा का गर्भपात होने तथा खून अधिक बहने से मौत हो जाती है। सुधा की अन्तिम इच्छा के कारण उसके पिता चन्दर का विवाह

उनकी बहन की लड़की से कर देते है। इस प्रकार 'गुनाहों का देवता' आदर्श प्रेम के यथार्थ के धरातल पर आकर चकनाचूर हो जाने की कथा है।

'सूरज का सातवां घोड़ा' इसमें मुल्ला सात दोपहरों की कथा कहता है, जिनमें प्रेम संबंधों के माध्यम से हमारे समग्र जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है। समाज में व्यक्तियों के बनते–बिगड़ते संबंध, आर्थिक संघर्ष, निराशा, अनाचार, कटुता, नैतिक विश्रृंखला छाई हुई है। संबंध अप्रीतिकर व विसंगतिपूर्ण हो गये है। एक ओर महेसर, दलाल, चमन, रामधन आदि है, जो धूर्त है और सुखी है, दूसरी और तन्ना, सत्ती आदि है, जो बेबसी के शिकार है। जमुना, लिली आदि पात्र प्रेम संबंधों की जटिलता और उसकी अर्थ सम्बद्धता को व्यक्त करते हुए भावुकता का मजाक उड़ाते से लगते है।

लेखक ने निम्न मध्यमवर्ग के इस अप्रीतिकर, टूटे हुए, विश्रृंखलित जीवन का सही चित्र उपस्थित किया है। "सूरज का रथ सदा आगे बढ़ रहा है। किन्तु उसके छः घोड़े काफी क्षत–विक्षत हो गए है, केवल एक घोड़ा–सातवां घोड़ा ऐसा है, जिसके पंख अब भी साबित है। वह घोड़ा है भविष्य का घोडा, तन्ना, जमुना और सत्ती के निष्पाप बच्चों का घोड़ा जिनकी जिंदगी हमारी जिंदगी से अधिक अमन–चैन की होगी। .... वही सातवां घोड़ा हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आंकलन भेजता है।"[59] इस प्रकार भारती जी ने उक्त दोनों उपन्यासों के माध्यम से स्त्री–पुरूष सम्बन्धों की पड़ताल सामाजिक यथार्थ धरातल पर करने का प्रयास किया है।

स्वातंत्र्योपरांत लेखकों में 'अमृत राय' अपना एक विशिष्ट स्थान रखते है। यूं तो इन्होंने लेखन कार्य की शुरूआत स्वतंत्रता से पूर्व ही कर दी थी, लेकिन उनका प्रथम उपन्यास 'बीज' (1952) स्वतंत्रता उपरांत ही प्रकाशित हुआ। इस प्रकार उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा उन्हें स्वतंत्रता उपरान्त ही मिली। अमृतराय ने सामाजिकता के उसी तत्त्व को साहित्य में स्वीकार करने का आग्रह किया है, जो अपने समय से ऊपर उठकर सर्वयुगीन बनने की संभावनाओं से परिपूर्ण हो। साहित्य में यथार्थवाद के विषय में उनका मानना है कि "साहित्य में जीवन की तथ्यपरक अनुकृति प्रस्तुत करना यथार्थवाद का लक्ष्य नहीं हैं, उसका लक्ष्य तो सत्य की खोज करना और उस खोज को अभिव्यक्ति प्रदान करना है।"[60]

कथाकार ने सात उपन्यासों की रचना की है। उनका प्रथम उपन्यास 'बीज' (1952) आजादी के कुछ वर्षो पूर्व और बाद की कथा है। अनेक पात्रों के माध्यम से आजादी मिलने के बाद के भारत की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिति का वर्णन किया गया है। लेखक ने दिखलाया है कि आजादी के बाद भी लोगों के दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं है, आज भी दलितों व नारियों का शोषण होता है। इस प्रकार अमीर–गरीब का फांसला और बढ़ा है।

'नागफनी का देश' (1952) में वैवाहिक संबंधों तथा प्रेम त्रिकोण के यथार्थ का चित्रण अंकित है। 'हाथी के दांत' (1953) व्यंग्यपरक उपन्यास है। जिस प्रकार हाथी के दिखाने और खाने के दांतों में अंतर होता है, उसी प्रकार ऐसे सामन्तों पर करारा व्यंग्य किया गया है, जो स्वतंत्रता पूर्व अंग्रेजों की चाटुकारिता तथा दलितों पर अत्याचार करते थे, वही अब खादी पहनकर नेता बन गये है। देश की गरीब व भूखी जनता की यातनाओं तथा दर्द से जिनका कोई रिश्ता नहीं रहा। इस प्रकार पूंजीपतियों तथा सामंतों की ह्रदयहीनता का यथार्थ चित्रण उपन्यास में हुआ है। राहुल साकृंत्यायन ने इसे "एक कलाकृति और हमारे सामाजिक जीवन के विकृत रूपाकार का यथार्थ चित्रण" माना है। 'सुख–दुःख (1969) उपन्यास में उनके दिवगंत युवा पुत्र की स्मृतियां है। अमृतराय का अपना अठारह वर्षीय पुत्र रक्त कैंसर के कारण काल–कवलित हो गया था। अतः यह उपन्यास अपनी सच्चाई और तात्कालिकता के कारण उल्लेखनीय है। 'जंगल' (1969) में जंगल की सामाजिक–चिन्ता के दर्शन होते हैं। जंगल के अपने नियम व कानून है इसके साथ छेड़–छाड़ करना प्रकृति के विरूद्ध है, किंतु इसके बावजूद यहां हर आदमी द्वारा अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु जंगल को नुकसान पहुंचाया जा रहा है। 'धुंआ' (1976) उपन्यास अपने आप में वृहद् उद्देश्य, असंख्य पात्र, घटनाएं, सैद्धान्तिक बहसें और व्यावहारिक समस्याएं लेकर लिखा गया है। उपन्यास में मध्यमवर्ग, क्रांतिकारी युवा, आदर्शवादी व आशावादी अनेक पात्र समाज का आइना है। इनके माध्यम से रचनाकार ने उजले व धुंधले दोनों पक्षों को दिखलाने का प्रयास किया है।

नरेश मेहता का वास्तविक नाम पूर्णशंकर मेहता था। उनकी काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर नरसिंहगढ़ की राजमाता ने उन्हें 'नरेश' नाम से संबोधित किया। तभी से वह नरेश मेहता के नाम से पहचाने जाने लगे। मेहता जी ने कुल सात उपन्यासों की रचना की। जिनमें से उनका प्रथम उपन्यास 'डूबते–मस्तूल' (1954) फ्लैश बैक पद्धति में रचित है। रंजना नामक आधुनिक स्त्री अपनी संपूर्ण जीवनगाथा एक अजनबी को अपने मुख से कहती है। कथा का उद्देश्य एक स्त्री के भटकावग्रस्त, कुंठामय, करूण जीवन का यथार्थ चित्रण करना है। रंजना अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आती है, लेकिन वह जिसके भी करीब जाती है, वही उससे दूर चला जाता है। प्रस्तुत उपन्यास एकांकी जीवन की पीड़ा, टूटन व उद्देश्यहीनता को चित्रित करता है। वस्तुतः यथार्थ यही है कि आज का मानव अकेलेपन का जीवनयापन करने के लिए विवश है।

'यह पथ बन्धु था' (1962) उपन्यास एक आदर्शवादी, स्वाभिमानी व ईमानदार युवक श्रीधर की पराजय, थकान व टूटन की कथा है। साथ ही भारतीय मध्यमवर्गीय नारी के रूप में सरस्वती, गुणवन्ती तथा सामन्तवर्गीय इन्दु की करूण गाथा का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। 'दो एकांत' (1964) उपन्यास में शिक्षित मध्यमवर्गीय दम्पत्ति विवेक और वानीरा के माध्यम से मध्यमवर्गीय दम्पत्ति के प्रेम, तनाव व अकेलेपन के कटु यथार्थ का अंकन है। अन्त में वह कथा के मूल विषय 'दो एकांत' की तरह हो जाते है। दोनों के मन में पीड़ा है, लेकिन वह पीड़ा वे दोनों

एक–दूसरे को बता भी नहीं सकते और घुटते रहते है। यह उपन्यास आधुनिक युग में दम्पत्ति में आपसी टकराहट व अहं की भावना को चित्रित करता है। उपन्यास यह दिखलाता है कि समय के व्यतीत होने पर किस प्रकार संयुक्त परिवार धीरे–धीरे एकल परिवारों में बिखर गये तथा समाज का वृहदरूप व्यक्ति के लघु रूप में सिमट कर रह गया है। इनके अन्य उपन्यास–नदी यशस्वी, प्रथम फाल्गुन है।

निर्मला वर्मा यह एक मस्तमौला कथाकार के रूप में जाने जाते है। रोजमर्रा की घटनाओं, मानवीय आदतों, कमियों व खूबियों इत्यादि को उन्होंने अपन कथा–साहित्य में स्थान दिया है। इस प्रकार वे निराशा में भी आनंदित रहने वाले कथाकार है। उनके उपन्यासों में 'वे दिन' (1958), 'लाल टिन की छत' (1974), 'एक चिथड़ा सुख' (1979), 'रात का रिपोर्टर' (1989) तथा 'अंतिम अरण्य' (2000) प्रमुख है।

'वे दिन' उपन्यास में विदेशी भूमि (चेकोस्लोवकिया) पर लिखे गये उपन्यास के पात्र आधे देसी और आधे यूरोपियन है। कहानी कहने वाले तथा जर्मन महिला रायना की रिलेशनशिप, उनके बीच पनपते संबंध और उसके खत्म होने की दास्तान के साथ–साथ, दूसरे विश्वयुद्ध के बाद तत्कालीन यूरोप की स्थिति, और लोगों की मानसिकता का गहरा परिचय कराता है। रायना पति–परित्यक्ता नारी है। वस्तुतः यूरोपियन जीवन के अकेलेपन, निरर्थकता तथा विसंगति का यथार्थ चित्रण करना उपन्यासकार का उद्देश्य है।

'लाल टीन की छत' काया नामक किशोरी की कथा है। जिसका बचपन तो पीछे छूट चूका है और आने वाला कल अनेक संकेतों और रहस्यों से भरा पड़ा है। इस उपन्यास में आत्मा का अकेलापन तो है साथ ही देह की अपनी निजी और नंगी सच्चाईयों के साथ अकेले होने की यातना भी।"[61]

'एक चिथड़ा सुख' उपन्यास में लेखक ने मध्यमवर्गीय जीवन–स्थितियों के बीच बिट्टी, इरा, नित्ती भाई और डैरी जैसे पात्रों के माध्यम से जिंदगी के मर्मान्तक सूनेपन को बड़ी कलात्मकता के साथ दिल्ली के पथ–चौराहों समेत प्रस्तुत किया है। इन पात्रों में पारस्परिक संबंधों के बावजूद सबकी अपनी–अपनी दुनियां है। पात्रों के अकेलेपन और दुःख का मार्मिक व यथार्थ अंकन किया गया है। 'रात का रिपोर्टर' आपातकाल के दिनों को लेकर लिखा गया हिंदी में पहला उपन्यास है। नायक रिशी एक रिपोर्टर है जिसका आन्तरिक संकट उसके बाहरी सामाजिक यथार्थ से उपजा है। हालात ने उसे अस्वस्थ और शंकालु बना दिया है। वह अपने डर से ही डरा हुआ है। आज की राजनीतिक विसंगतियों का शिकार रिशी के मानसिक द्वन्द्व और संकट का यथार्थ चित्रण उपन्यास में दिखाया गया है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यवस्था का परस्पर विरोध और उसके अपने तनाव आज के युग की सबसे बड़ी और मुख्य समस्या है। और

जब भी इनके संबंध बिगड़ते है आपातकाल की स्थिति का जन्म होता है। इसी बीच रिश्तों की बुनावट के उलझे तारों में सिसकती जिंदगी का यथार्थ ब्यौरा कथाकार ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

'अंतिम अरण्य' "प्राचीन भारतीय कथा शैली का एक नया रूपान्तर है। हर अध्याय अपने आप में बेजोड़ तथा स्वतंत्र है। उपन्यास का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि हर कथा उपन्यास की अन्दरूनी संरचना में वह अपने से पूर्व के अध्याय से निकलता और आगामी अध्ययन को अपने में समेटता प्रतीत होता है। यह तीन भागों में विभक्त है। इस उपन्यास में मृत्यु की प्रतीक्षा में जीवन का और मृत्यु के बाद तर्पण के माध्यम से जीव का दुर्लभ विवेचन प्रस्तुत है।"[62]

विष्णु प्रभाकर का नायिका प्रधान उपन्यास 'कोई तो' (1980) मध्यमवर्गीय यौन नैतिकता का प्रश्न पाठक वर्ग के सामने रखता है। उपन्यास में अनेक चरित्र, घटनाएं, सूचनाएं व बहसों के बावजूद एक जीवतंता परिलक्षित होती है। मध्यमवर्गीय नैतिकता के नीचे दबी यौन भावना का सर्वाधिक शिकार नारी को बताया गया है। उसके द्वारा कल्पित एक गलती ही उसके जीवन को सामाजिक उपेक्षा, आत्मग्लानि और सतत यातना से भर देती है। वर्तिका अपने पिता के मुसलमान साथी बेटे के साथ परीक्षा की फीस जमा कराने के लिए देहरादून से ग्वालियर के लिए रवाना होती है। हिंदू समाज जब एक हिंदू लड़की को मुसलमान लड़के के साथ देखता है, तो वह षड्यंत्रपूर्वक दोनों को रास्ते में ही अलग कर देते है। नाबालिग होने के कारण वर्तिका को कचहरी व मातृमंदिर के चक्कर लगाने पड़ते है। अंततः उसके माथे पर चिपका दिया जाता है कि वह मुसलमान लड़के के साथ भाग रही थी। वर्तिका के सानिध्य में कईं पुरूष आते है, लेकिन सत्य जानने पर कोई उससे शादी करना नहीं चाहता। अतंतः वह नारायण नामक एक अनाथ और नाजायज संतान रहे एक व्यक्ति से शादी कर लेती है। लगता है दोनों का दर्द ही उनके मिलन में सहायक है। उपन्यास में समाज और पुरूष से प्रताड़ित कईं औरतों की व्यथा–कथा है। जिसमें यौन पिपासु व नकली नैतिकता के आतंक से बरबाद कईं औरतों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत है। उच्चवर्गीय लड़के से शादी करने के बाद बरबाद की गई चन्दा तथा गुंडों द्वारा आहत कुन्तल की शारीरिक व मानसिक व्यथा की गहराई को प्रस्तुत करती एक अन्य कथा भी इसमें सम्मिलित है, जो समाज के कुरूप स्वरूप का यथार्थ बड़े ही मार्मिक रूप में समाज के सामने रखता है।

निष्कर्षतः हिंदी उपन्यास में यथार्थवाद की विकास यात्रा की पहल हिंदी के प्रथम उपन्यास परीक्षा गुरू में सामाजिक यथार्थ और पुनर्जागरण की चेतना और मूल्य में ध्वनित हुई थी, इसी परम्परा में कईं उपन्यास लिखे गये है। इस काल में मनोरंजन प्रधान, तिलस्मी, ऐयारी और जासूसी उपन्यासों की प्रधानता रही। तत्पश्चात् प्रेमचंद ने आदर्शोन्मुख यथार्थ को

शिखर पर पहुंचाया। उन्होंने एक ओर तो समाज की समस्याओं और उसके बाह्यजगत को उभारा तो दूसरी और समाज के अन्तर्जगत के संदर्भ में मानव—मन की पड़ताल की। समाजवादी उपन्यासकारों ने सामाजिक यथार्थ को मार्क्सवादी दृष्टि से देखा। कई उपन्यासकारों ने मानववादी दृष्टि को केन्द्र में रखकर भी रचनाएं की है।

"प्रेमचंद के बाद मनोवैज्ञानिक उपन्यास की एक धारा प्रवाहित हुई, जिसका बल सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा मन के यथार्थ पर था, किंतु ध्यान देने की बात है कि मन समाज से निरपेक्ष वस्तु नहीं है इसलिए जिन उपन्यासों की सामाजिक या पारिवारिक सन्दर्भ में व्यक्तियों की पहचान की उनमें अत्यधिक जीवन्तता और शक्ति है, जहां ऐसा नहीं है, वहां उपन्यास अपनी सारी कोशिशों के बाद ठण्डा पड़ गया है। जैनेन्द्र का इस क्षेत्र में विशिष्ट महत्त्व है। उनके प्रारंभिक उपन्यासों सुनीता और त्यागपत्र में एक ताजगी और जीवन्तता है, क्योंकि वहां अनुभव की प्रधानता है।"[63] सही भी है अनुभवगम्य होने के कारण ही जैनेन्द्र का साहित्य यथार्थ की कोटि में आता है। मनोवैज्ञानिक अथवा दार्शनिक चिंतन से प्रेरित साहित्य में उदासीनता देखी जा सकती है, किन्तु जहां वे परिवेश से जुड़ते है, तो जीवन्त हो उठते है। अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी' सामाजिक संदर्भो के रूप में जीवन्त और उदात्त है तथा उसकी मानसिकता परिवेश में ही रूप ग्रहण करती है। समाज के कई संदर्भों को अपने में समेटे यह उपन्यास वेदना और शक्ति प्राप्त करता है। जबकि 'अपने—अपने अजनबी' परिवेश की जीवन्तता खोकर प्रभावहीन बन गया है।

स्वातंत्र्योपरांत कई छोटे—बड़े उपन्यास यथार्थभूमि पर सृजित हुए है। इनका सृजन क्षेत्र समाज व व्यक्ति के बाह्य जगत से कहीं अधिक अन्तर्जगत रहा है। वस्तुतः मानव मन की असंगतियों, विषमताओं, कुंठाओं तथा अकेलेपन की पीड़ा को यथार्थ रूप में इन साहित्यों में स्थान मिला है। ये उपन्यास प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में मनुष्य को विषम परिस्थितियों में संघर्ष की शक्ति तथा जिजीविषा प्रदान करते है। इन उपन्यासों में समस्याओं के चित्रण के साथ—साथ उनका समाधान भी खोजने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ

1. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 14
2. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 13
3. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 16
4. उपन्यासों के सरोकार, डॉ. ई. विजयलक्ष्मी, पृ. 31–32
5. उपन्यासों के सरोकार, डॉ. ई. विजयलक्ष्मी, पृ. 33
6. महाकाव्यात्मक उपन्यास की अवधारणा और हिंदी उपन्यास, चित्रलेखा शुक्ल, पृ. 41
7. महाकाव्यात्मक उपन्यास की अवधारणा और हिंदी उपन्यास, चित्रलेखा शुक्ल, पृ. 42
8. हिंदी उपन्यास : सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 12
9. महाकाव्यात्मक उपन्यास की अवधारणा और हिंदी उपन्यास, चित्रलेखा शुक्ल, पृ. 42
10. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 23
11. हिंदी उपन्यास : सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 19
12. हिंदी उपन्यास : सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 23
13. सामाजिक जागरण के पुरोधा उपन्यासकार, लज्जाराम मेहता, RSAU:dr.org. udaipur राजस्थान साहित्य अकादमी से
14. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 22
15. महाकाव्यात्मक उपन्यास की अवधारणा और हिंदी उपन्यास, चित्रलेखा शुक्ल, पृ. 44
16. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ. 58
17. कुछ विचार, प्रेमचंद, पृ. 58
18. उपन्यास विविध प्रसंग, अमृतराय, पृ. 35
19. आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद, सत्यकाम, पृ. 59
20. उपन्यासों के सरोकार, डॉ. ई. विजयलक्ष्मी, पृ. 37
21. आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद, सत्यकाम, पृ. 150
22. आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद, सत्यकाम, पृ. 150
23. गोदान, प्रेमचंद, पृ. 223

24. गोदान, प्रेमचंद, पृ. 24

25. प्रेमचंद एवं समकालीन भारतीय उपन्यासकार, डॉ. कलावती प्रकाश, पृ. 178

26. सेवासदन, प्रेमचंद, प्रथम परिच्छेद

27. गोदान, प्रेमचंद, पृ. 335

28. हिंदी नवजागरण के अग्रदूत (प्रेमचंद) प्रतिनिधि संकलन, संपादक खगेंद्र ठाकुर, प्रधान संपादक नामवर सिंह

29. वरदान, प्रेमचंद, पृ. 110

30. गबन, प्रेमचंद, पृ. 210

31. उपन्यासों के सरोकार, डॉ. ई. विलयलक्ष्मी, पृ. 35

32. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 60

33. काव्य–कला और निबंध, जयशंकर प्रसाद, पृ. 118

34. काव्य–कला और निबंध, जयशंकर प्रसाद, पृ. 120

35. काव्य–कला और निबंध, जयशंकर प्रसाद, पृ. 121

36. महाकाव्यात्मक उपन्यास की अवधारणा और हिंदी उपन्यास, चित्रलेखा शुक्ल, पृ. 60

37. हिंदी उपन्यासः सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 111

38. हिंदी उपन्यास सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 69

39. हिंदी उपन्यास सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 65

40. हिंदी उपन्यास सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 81

41. अलका, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, https://www.pastass.org, 2004

42. प्रभावती उपन्यास, निराला, rajkamalprakashan.com

43. हिंदी उपन्यास सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 101

44. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 61

45. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 78

46. महाकाव्यात्मक उपन्यास की अवधारणा और हिंदी उपन्यास, पृ. 60

47. हिंदी उपन्यास सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 129

48. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 92

49. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 97

50. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 92

51. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 107

52. हिंदी उपन्यास सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 19

53. बूंद और समुद्र, अमृतलाल नागर, भूमिका से

54. समकालीन हिंदी उपन्यास, एन. मोहन, पृ. 9

55. समकालीन हिंदी उपन्यास, एन. मोहन, पृ. 21

56. समकालीन हिंदी उपन्यास, एन. मोहन, पृ. 22–23

57. हिंदी उपन्यासः सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 233

58. हिंदी उपन्यासः सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 242

59. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 154

60. हिंदी उपन्यासः सृजन और सिद्धांत, नरेन्द्र कोहली, पृ. 250

61. लाल टीन की छत, निर्मल वर्मा, googleweblight.com

62. अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा, www.pustak.com

63. हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, पृ. 263

चतुर्थ अध्याय

अमरकांत और उनके समकालीन उपन्यासकारों में यथार्थवाद

चतुर्थ अध्याय
अमरकांत और उनके समकालीन उपन्यासकारों में यथार्थवाद

भूमिका

अमरकांत एक सम्भावनाशील रचनाकार है। उनकी रचनाएं मानव–मूल्यों का संरक्षण करती है। उन्होंने सामाजिक जन–जीवन के चित्रण को यथार्थ अभिव्यक्ति प्रदान की है। उन्होंने अपने परिवेश के यथार्थ को अन्तरतल से अनुभूत कर समकालीन समाज के जन–जीवन को अपने साहित्य का प्रमुख विषय बनाया है। मध्यवर्गीय तनावों, अभावों, अन्तर्विरोधों एवं संक्रमण की स्थितियों को यथार्थ के व्यापक स्तर पर उभारा है। अमरकांत के समकालीन लेखकों में भी सामाजिक जन–जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। उनके समकालीन उपन्यासकारों में मुख्य रूप से हम कमलेश्वर, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव, विष्णु प्रभाकर, भीष्म साहनी इत्यादि रचनाकारों और अमरकांत के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेंगे।

4.1 कमलेश्वर

कहानी, उपन्यास, पत्रकारिता, स्तम्भ–लेख, फिल्म–पटकथा जैसी अनेक विधाओं में अपनी कलम का लोहा मनवाने वाले कथाकार कमलेश्वर का नाम हिंदी साहित्य में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। इनका जन्म 6 जनवरी 1932 को उत्तरप्रदेश के मैनपुरी जिले में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। इनकी माता का नाम रामकुंवर व पिता का नाम जगदम्बा प्रसाद था। कमलेश्वर की रचनात्मकता के कईं रंग हमें देखने को मिलते है। वे साहित्य के साथ टी.वी. व पत्रकारिता से भी जुड़े रहे है। कहानी रचना में तो वे सिद्धहस्त थे, उनके विषय में कहा गया है–"नयी कहानी आंदोलन की कोई उपलब्धि हो न हो, इतना जरूर है, उसने कहानी को साहित्य की केन्द्रीय विधा के रूप में स्थापित कर दिखाया था। साहित्य में कहानी की तूती बोलती थी। जैनेन्द्र कुमार तक परेशान हो उठे थे कि आखिर क्या हो गया है जो कहानी की इतनी अधिक चर्चा हो रही है। राकेश, कमलेश्वर और यादव नयी कहानी के राजकुमार थे, जिन्होंने कहानी के शंहशाहों को धूल चटाकर सिंहासन पर कब्जा कर लिया था, लग रहा था कि वे किसी बिजनेस इन्स्टीट्यूट से मार्केटिंग का डिप्लोमा हासिल करके कथा क्षेत्र में उतरे हैं, समय–समय पर तीनों किसी न किसी महत्त्वपूर्ण कहानी पत्रिका के सम्पादक रहे। इसके अलावा अन्य अनेक पत्रिकाओं का भी वे रिमोट कंट्रोल से सम्पादन करते रहे।"[1]

वस्तुतः नयी कहानी का उदय पुरानी कहानी के विरोध में हुआ है। "उनकी प्रथम कहानी संग्रह 'राजा निरबसिया' और 'कस्बे का आदमी' पूर्ववर्ती कथा परम्परा से मुक्त नहीं

है। 'खोई हुई दिशाएं' में लेखक की दृष्टि अधिक परिष्कृत और परिमार्जित है। 'जिन्दा मुर्दे' में संकलित कहानियां राजनीतिक पृष्ठभूमि पर मानवीय सम्बन्धों की विभीषिका को रेखांकित करती है। 'मांस का दरिया' में मानव मन के आन्तरिक यथार्थ का उद्‌घाटन हुआ है। 'बयान' में निम्नवर्गीय मनुष्य अपनी पीड़ाओं एवं व्यथाओं को लेकर उपस्थित हुआ है।"[2]

कमलेश्वर न केवल कहानी, पत्रकारिता, आलोचना, चलचित्र, दूरदर्शन, नाट्य रूपांतरण इत्यादि रूप में सफल रहे, अपितु इनके सोद्देश्यपूर्ण उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियां' से लेकर 'कितने पाकिस्तान' तक की सफल यात्रा ने इन्हें कालजयी कथाकार के रूप में स्थापित कर दिया। कमलेश्वर के उपन्यास जमीनी सतह से उठायी गई किसी न किसी समस्या की ओर संकेत करते है फिर वह समस्या आर्थिक हो, सामाजिक हो, धार्मिक हो या राजनैतिक या फिर कस्बाई हो, शहरी हो, महानगरीय हो या वैश्विक। प्रमुख रूप से उनके उपन्यास गरीब, मध्यमवर्गीय, शोषित, पीड़ित, आम आदमी के सवालों को अपने उपन्यसों में उठाते है।

एक सड़क सत्तावन गलियां (1957) में लेखक ने सरनाम सिंह, रंगीले बसिरी, कमला, शिवराज, बाजा मास्टर सभी मध्यमवर्गीय चरित्रों के जरिये कस्बाई आदमी के यथार्थ को व्यक्त किया है। कस्बों का जीवन उन लोगों की अच्छाईयों–बुराईयों, प्रेम–हिंसा, दोस्ती, दुशमनी इत्यादि का यथार्थ चित्रण उपन्यास में हुआ है। सन् 1998–99 में श्री प्रेम कपूर ने इस पर फिल्म भी बनाई – 'बदनाम बस्ती' नाम से। गांव–कस्बे की पीठिका पर सामान्य व्यक्ति के जीवन–संघर्ष को उक्त उपन्यास में अभिव्यक्ति मिली है।

'डाक–बंगला' (1959) उपन्यास नारी जीवन की त्रासदी का यथार्थ दस्तावेज है। उपन्यास में पुरूष प्रधान समाज में नारी की स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। उपन्यास की नायिका 'इरा' आर्थिक अभाव और परिस्थिति वश बत्रा सोलंकी और डॉक्टर के साथ शारीरिक संबंध रखने के लिए विवश होती है। 'लौटे हुए मुसाफिर' (1961) देश के विभाजन को लेकर लिखा गया कमलेश्वर का यह प्रथम उपन्यास है। नफरत की आग के बीच में भी मानवीय गुणों को लेखक ने 'नशीबन' के माध्यम से उभारा है। उनका चरित्र धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर सच्चे इंसान का दर्शन कराता है। विभाजन कालीन स्थितियों, बंटवारे की भीषणता, खून–खराबे को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है। इसमें निम्न वर्ग और शहरी जिंदगी का चित्रण किया गया है। वस्तुतः यह देश का दुर्भाग्य ही है कि वे लोग जो आजादी की लड़ाई में साथ–साथ लड़े थे, वे बटंवारे से एक–दूसरे के दुश्मन हो गये। देश विभाजन की घटना के माध्यम से लेखक ने मानवीय–मूल्यों को स्थापित किया है।

'समुद्र में खोया आदमी' (1967) शहरी मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक अभावों की वजह से खिन्न–भिन्न होती हुई जिदंगी की कथा है। उपन्यास में नगरीकरण की भयावहता, महंगाई, आर्थिक दबावों की असहनीयता, अंतर्जातीय विवाह, लड़कियों का नौकरी करना, प्रशासन की निष्क्रियता आदि को स्पष्ट करने की कोशिश की है। आजादी के पश्चात् किस प्रकार हमारे पारिवारिक जीवन मूल्यों का क्षरण हुआ है, उसका यथार्थ चित्रण उपन्यास में किया गया है।

'काली आंधी' (1974) राजकीय दावपेंचों का यथार्थ चित्रण है। इसके माध्यम से दाम्पत्य जीवन में बाधक राजनीति पर प्रकाश डाला गया है। लेखक ने व्यक्ति के आन्तरिक संघर्ष और घटनाओं को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है। इस उपन्यास पर फिल्म भी बन चुकी है जिसका नाम 'आंधी' है।

आगामी अतीत (1976) में लेखक ने कस्बे में वेश्याओं की जिंदगी के यथार्थ को 'चांदनी' के माध्यम से बहुत ही सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया हैं। इस उपन्यास को 'मौसम' नाम से भी फिल्माया गया है। आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ और उपेक्षित वर्ग अभाव से ग्रस्त जिंदगी किस तरह बिता रहा है। इसका स्वाभाविक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। 'तीसरा आदमी' (1976) शहरी परिवेश, आर्थिक, कठिनाईयां और विषाक्त दाम्पत्य जीवन का यथार्थ चित्रण है। नरेश अपनी पत्नी चित्रा के दूर के रिश्ते के छोटे भाई सुमंत के साथ दिल्ली में रहता है। निवास का एक ही कमरा चित्रा और सुमंत को नज़दीक ला देता है। चित्रा की स्त्री सुलभ आंकाक्षा और नरेश के सामर्थ्यहीन अधूरे व्यक्तित्व के बीच द्वन्द्व और संघर्ष ही वह कारण है, जो दोनों को अन्ततः एक दूसरे से अलग कर देता है। वस्तुतः पति–पत्नी के अलगाव का कारण यहां तीसरा आदमी सुमंत नहीं बल्कि वह आर्थिक संकट है, जो पति–पत्नी के बीच भावात्मक दूरियाँ पैदा करता है और फिर धीरे–धीरे शारीरिक दूरियाँ। प्रस्तुत उपन्यास मानव मूल्यों की टूटन तथा पीड़ा को व्यक्त करता है।

कथाकार कमलेश्वर का अन्य उपन्यास 'वही बात' (1980) सफलता की अन्धी–चाह में दाम्पत्य जीवन के टूटने–बिखरने का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। दाम्पत्य संबंधों के परिवर्तित होते मूल्यों को दर्शाता यह उपन्यास आधुनिक बोध, तलाक और पुनर्विवाह के नये सामाजिक मूल्यों से उदित होता है और अपना वृत्त अकेलेपन से पूरा करता है।

'सुबह, दोपहर, शाम' (1982) में शान्ता के माध्यम से राष्ट्र प्रेम की चेतना को जागृत करने का प्रयास किया गया है। यह एक पराधीन भारतीय परिवेश की कहानी है। उस समय के समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवेश का चित्रण इसमें किया गया है। "इस उपन्यास की संवेदना साम्राज्यवाद के उतार और क्रांति के उभार पर टिकी हुई है। अंग्रेजों का शासन साम्राज्यवाद का प्रतीक है। बीच–बीच में तर्क बुद्धि के उदय की

अभिव्यक्ति से यथार्थ बोध को भी उभारा गया है। एक सामान्य ग्रामीण नारी के माध्यम से राष्ट्र–प्रेम की चेतना को जागृत करने का सफल प्रयत्न किया गया है। इसमें लेखक की राष्ट्रीय अस्मिता का परोक्ष रूप में दर्शन होता है।"[3]

'रेगिस्तान' (1988) में विश्वनाथ के चरित्र के माध्यम से भाषा–समस्या का प्रश्न उठाया है। वस्तुतः यह यथार्थ ही है कि देश की सेवा करने वाले वह क्रांतिकारी हो या हिंदी भाषा को प्रतिष्ठित करने वाले हिंदी सेवी। स्वातंत्र्योपरांत उन्हें इस योग्य नहीं समझा गया कि वे देश–निर्माण के फैसले में दखल दे सकें। इसके विपरीत देश की भागडोर ऐसे नेताओं के हाथ में दे दी गई, जो जनता के हित में न सोच केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति करने में लगे थे।

'कितने पाकिस्तान' (2000) में वैश्यावृत्ति, बलात्कार, राजनीतिक, अपराधिकरण की समस्याएं साम्प्रदायिक समस्या, साम्प्रदायिक, धार्मिक, अंधविश्वास व बाह्य आडम्बरों की समस्या, आर्थिक समस्या इत्यादि समस्याओं को उजागर किया गया है। यह उपन्यास समय सीमा के दायरे को लांघकर विस्तृत फलक पर लिखा गया है। इस सन्दर्भ में कन्हैयालाल नन्दन ने ठीक ही कहा है – "यह फलक इतना व्यापक है कि कारगिल युद्ध के प्रकरण से जुड़कर सदियां सामने खड़ी हो जाती है। आर्यो का भारत आगमन, सिन्धु घाटी सभ्यता, यूनानी, बेबीलोनियन, मेसोपोटामियन सुमेर अक्कारी सभ्यताएँ अनेक नियमों का उल्या करते हुए उपन्यास की कथा वस्तु में इस तरह गूंथकर प्रस्तुत है, जैसे इतिहास में वर्णित सदियां एक मोहल्ले की बाशिंदा हों। कमलेश्वर जी उन मोहल्ले की गलियों में इस तरह भ्रमण करते है जैसे सुबह कोई 'मार्निंग वाक' के लिए निकले ओर बगल वाले घर में दस्तक देता हुआ अपनी बात कह कर आगे बढ़ जाये। वर्तमान धार्मिक उन्माद, वैमनस्य, विवेकहीनता, युद्ध लोलुपता आदि पर यह उपन्यास एक प्रश्न चिन्ह है। मैत्री, शान्ति और सद्भाव के आशा भरे संदेश के साथ यह उपन्यास समाप्त होता है।"[4]

निष्कर्षतः कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में शोषित–पीड़ित मध्यमवर्गीय संवेदना को सर्वाधिक रूप से अभिव्यक्त किया है। उनके उपन्यासों में अनमेल विवाह, वैश्यावृत्ति, बलात्कार, नारी शोषण, राजनीतिःदाम्पत्य जीवन में बाधक, राजनीतिक दाव–पेंच, धार्मिक–आर्थिक व साम्प्रदायिक ग्रामीण व शहरी जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

4.2 मन्नू भंडारी

हिंदी की सुप्रसिद्ध कथाकार मन्नू भंडारी का जन्म 3 अप्रेल 1931 को मध्यप्रदेश के मंदसौर जिले के भानपुरा गांव में हुआ था। इनके बचपन का नाम महेन्द्र कुमारी था, किन्तु लेखन में इन्होंने मन्नू नाम का चयन किया। इन्हें लेखन का संस्कार अपने पिता सुखसम्पतराय से विरासत में मिला। वे एक स्वतंत्रता सैनानी, सामाजिक कार्यकर्ता, पहली इंग्लिश

टू हिंदी और इंग्लिश टू मराठी डिक्शनरी के निर्माता भी थे। आपने एम.ए. तक की शिक्षा प्राप्त की तथा दिल्ली के मीरांग हाउस में अध्यापिका रही। मन्नू भंडारी को कहानी व उपन्यास दोनों में महारथ हासिल है। 2008 में लेखिका मन्नू भंडारी को 'के.के. बिडला फाउण्डेशन' की तरफ से उनकी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' के लिए व्यास सम्मान प्राप्त हुआ।

'एक प्लेट सैलाब' (1962) 'मै हार गई' (1957) 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'यही सच है' (1966), 'त्रिशंकु' और 'आंखों देखा झूठ' उनके महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह है। इनकी कहानियों में नारी मन के आवेश, भाव–प्रवाह और वेग का मनोवैज्ञानिक अंकन हुआ है। 'यही सच है' एक प्रेम कहानी है। नारी के मानस में उठे हुए प्रेम और उससे संबंधित भावों व विचारों की जैसी यथार्थ व सटीक व्यंजना इस कहानी में हुई है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। 'क्षय' कहानी स्त्री की उस मनोदशा का चित्रण करती है, जिसमें वो अपने को पुरूष के समकक्ष होने के लिए प्रयत्नरत है तथा पुराने संस्कारों और नई बदलती आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों के बीच नारी अपने परिवार से, पुरूष से संबंध विच्छेदों के बीच अकेली जीती जा रही है। 'ईसा के घर का इंसान' में धर्मचारियों के छद्म रूप को उजागर किया गया है।

उनका उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' (1962) राजेन्द्र यादव के साथ लिखा गया, जिसके पुरूष पात्र अमर का संवाद राजेन्द्र यादव जी ने लिखा है तथा आमला व रंजना स्त्री पात्रों के संवाद मन्नु भंडारी द्वारा लिखे गये है। यह पढ़े–लिखे आधुनिक लोगों की एक दुखांत प्रेम कथा है।

'आपका बंटी' (1971) तलाकशुदा पति–पत्नी की समस्या को बच्चे को केन्द्र में रखकर उठाया गया प्रश्न है। बच्चे की मानसिकता, उलझन और अनिश्चितता को उपन्यास में दर्शाया गया है। साथ ही इसमें नारी के दर्द, पीड़ा और व्यथा, आक्रोश इत्यादि का यथार्थ चित्रण हुआ है। आधुनिक जीवन की संक्रमणता में मानवीय भावनात्मक के गहरे बिम्ब इसमें उभरे है। 'महाभोज' (1979) में नौकरीशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार के बीच आम आदमी की पीड़ा और दर्द की गहराई को उद्घाटित किया गया है। इस उपन्यास पर आधारित नाटक अत्यधिक लोकप्रिय हुआ था। 'स्वामी' में नारी के स्वाभिमान तथा प्रेम व दाम्पत्य जीवन की समस्या को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया गया है। 'यही सच है' रचना पर 'रजनीगंधा' फिल्म बनी, जिसे 1974 में बेस्ट फिल्म का 'फिल्म फेयर अवार्ड' भी मिला। इनका लोकप्रिय नाटक 'बिना दीवारों का घर' तथा पटकथाओं में रजनी, निर्मला, स्वामी व दर्पण शामिल है।

मन्नू भंडारी आजादी के बाद भारत की मुख्य लेखिकाओं में से एक थी। उनके लेख लैंगिक असमानता, वर्गीय असमानता व आर्थिक असमानता पर आधारित होते थे। लेखिका नारी व उसकी पीड़ा से जुड़ी समस्याओं को अपने लेखों के माध्यम से उजागर किया करती थी।

नैतिक, मानसिक व आर्थिक रूप से हो रहे अत्याचारों से पीड़ित नारी की दशा का चित्रण उन्होंने अपनी कहानियों व उपन्यासों में किया है। इनके महिला पात्र काफी मजबूत व साहसी होती थी। इनके द्वारा लिखित रचनाएं व कविताएं काफी प्रभावशाली होती थी। समाज में हो रही घटनाओं का वर्णन वे अपने लेखों व कविताओं में करती थी। इसीलिए समसामयिक होने के कारण वह पाठक वर्ग में पसंद किये जाते थे। उनका 'आपका बंटी' उपन्यास काफी प्रशंसनीय रहा। साधारण इंसान के संघर्ष और मेहनत की कथा को उन्होंने बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया था। उनकी कहानी व उपन्यासों के पात्र आस–पास के जन–जीवन से लिये गये है तथा घटनाएं उनके अनुभवों का प्रतिफल है। उनके उपन्यास जीवन के यथार्थ की सफल अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते है।

लेखिका को सर्वश्रेष्ठ फिल्म पुरस्कार से सम्मानित किया गया साथ ही हिंदी अकदमी का शिखर सम्मान, बिहार सम्मान, भारतीय भाषा परिषद् कोलकाता, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, व्यास सम्मान और उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा पुरस्कृत भी किया गया।

4.3 मोहन राकेश

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी 1925 जंडी वाली गली (अमृतसर) पंजाब में हुआ था। इन्होंने संस्कृत में शास्त्री व एम.ए. की उपाधि तथा अंग्रेजी में बी.ए. व हिंदी में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की थी। अपने संपूर्ण जीवन काल में तथा अंतिम सांस तक वे लिखते रहे तथा साहित्य सेवा के पश्चात् 3 दिसम्बर 1972 को दिल्ली में उन्होंने अंतिम सांस ली। लेखन की प्रेरणा उन्हें अपने पिता से संस्कार रूप में मिली थी। उनकी प्रथम रचना 'भिक्षु' नामक कहानी थी, जो सन् 1946 में सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। साहित्यकार के रूप में पहचान उन्हें नाटकों से मिली। उनके नाटकों में तथा नाटकों के पात्रों में उनके व्यक्तिगत जीवन का प्रभाव लक्षित होता है। पत्नी सुशीला के साथ असफल विवाह की कटु अनुभूतियों का यथार्थ दस्तावेज उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे में' (1961) को माना जा सकता है। इसी प्रकार 'एक ओर जिंदगी' नामक कहानी उनके जीवन का आईना ही है। उनका बहुचर्चित नाटक आधे–अधूरे की पृष्ठभूमि भी उनके अपने जीवन का ही प्रतिबिम्ब है। परिवार का बिखराव और तनाव राकेश जैसे अनुभव करते रहे वैसा ही उनके इस नाटक में अभिव्यक्त हुआ है।

मोहन राकेश को मानवीय संबंधों का यथार्थ चितेरा कहा जाता है। राकेश के साहित्य में जीवन का जो रूप चित्रित हुआ है वह मात्र काल्पनिक न होकर उनके अनुभूत सत्य को अभिव्यक्त करने वाला है। मानवीय संबंधों के चित्रण में राकेश विरोधाभासों से लिप्त होकर भी कहीं न कहीं समन्वयवादी हो जाते है। राकेश के साहित्य में चित्रित मानवीय संबंधों को लेकर नेमीचंद जैन ने एक स्थान पर कहा है कि – "राकेश की रचनाओं में कहानी, उपन्यास, नाटक

सभी ने एक पूरे दौर के मानवीय संबंध और उनके संकटों को पकड़ने की कोशिश की है। विशेषकर बदलते हुए या टूटते हुए सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में निजी संबंधों की स्त्री–पुरूषों के रिश्तों की दरारों को उन्होंने बार–बार कईं तरह से पहचानने का प्रयास किया है।"[5] इस प्रकार टूटते परिवारों के कारणों को टटोलने का उनका प्रयास रहा है।

वस्तुतः पारिवारिक संबंध समाप्त होते जा रहे है। मानवीय संबंध अब आत्मिक न होकर, औपचारिकता का रूप ले चुके है। पुरानी पीढ़ी के प्रति नई पीढ़ी में उपेक्षा का भाव है। राकेश के उपन्यासों में व्यवस्था से बंधे रहने की विडम्बना और महानगरीय संत्रास की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। आज के बदलते परिवेश में मानवीय संबंधों की मधुरता और रागात्मकता में बिखराव देखा जा सकता है तथा इसका स्थान तनाव व कुंठा ने ले लिया है। मोहन राकेश के तीनों उपन्यास मध्यवर्गीय भावना से जुड़े हुए है। इनमें महानगरों में पनपते अकेलेपन, पीड़ा व कुंठा को प्रस्तुत किया गया है। आज स्त्री–पुरूषों के संबंध में बदलाव आया है। आज व्यक्ति अकेला जीवन जीने को मजबूर है।

उनके तीनों उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे में' (1961), 'न आने वाला कल' (1962) तथा 'अंतराल' (1972) मध्यवर्गीय संघर्षों, पीड़ा तथा कुंठा को प्रदर्शित करते है। मानवीय संबंधों के विधान से उत्पन्न आज के आदमी के जीवन की त्रासदी और अकेलेपन की पीड़ को लेखक ने अनुभव के धरातल पर यथातथ्य उकेरने का प्रयास किया है। उनका प्रथम उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे में' अकेलेपन, सत्रांस व अस्तित्व बोध को दर्शाता है। ऊब, खीझ, ईर्ष्या, बासीपन, एकरसता और घुटन इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। हरबंस, नीलिमा तथा मधुसूदन के माध्यम से एक ऐसे अभिजात वर्ग की झांकी प्रस्तुत की गई है, जो महानगरीय संत्रास, पीड़ा, अलगाव की अनुभूति, आज के युग की संवेदना तथा अतीत से कटकर जीने को मजबूर है। जीवन का अजनबीपन व खोखलापन हरबंस व उसकी पत्नी नीलिमा तथा मधुसूदन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने उच्च वर्ग के जीवन की ऊब, खीझ व घुटन को नयी भाव–भंगिमा से व्यक्त किया है। संक्षेप में – "अंधेरे बंद कमरे में' उपन्यास में दिल्ली के समसामयिक जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। इस उपन्यास का प्रत्येक पात्र एक कमरा है, अंधेरा और बंद कमरा, उद्देश्यहीन जीवन जीने को बाध्य। अंधेरे के आगे कोई मार्ग नहीं, हर पात्र लड़ झगड़कर संघर्ष कर अंततः उसी स्थिति में वहीं लौट आता है, जहां से उसने यात्रा प्रारंभ की थी। उसकी हर दौड़ अपने कमरे में ही सीमित रह जाती है।"[6]

'न आने वाला कल' में कईं पात्र है। जैसे–मनोज, शोभा, मि. टोनी, व्हिसलर, बुधवानी, पारकर, चैरी, डायना, मिसेज, एटकिन्स, फादर विल्सन इत्यादि। मुख्य पात्र मनोज और शोभा के आपसी संबंधों तथा तनाव को लेकर लिखा गया यह एक सार्थक लघु उपन्यास है।

मनोज सक्सेना शिमला कान्वेट स्कूल से अध्यापक के पद से त्यागपत्र दे देता है। शोभा की मनोज से दूसरी शादी है वह उसके प्रथम पति के साथ सात वर्ष रह चुकी है तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् वह मनोज से विवाह कर लेती है। मनोज एक ओर तो अपनी पत्नी शोभा से बचना चाहता है और दूसरी और पाठशाला से भी मुक्ति चाहता है। इसमें पहाड़ी मिशन स्कूल में एक जगह रहने पर भी उपन्यास के सभी पात्र अलग–अलग अनुभव करते है। वे कल की प्रतीक्षा करते है, जो नहीं आता। इस उपन्यास के संदर्भ में डॉ. परमानंद श्रीवास्तव ने कहा है "इस कहानी में श्यामा का अतीत है, जबकि श्यामा इसी सच से बचती आयी है। वह आज के निर्माण को कल पर डालना नहीं चाहती है, पर असलियत यह है कि 'आज' और 'कल' के बीच एक ऐसा अंतराल है जिसके संबंध में कुछ भी कहना कठिन है, क्योंकि 'अंतराल' में तो कुछ भी घट सकता है।"[7] अंतराल में भी अस्तित्ववादी विचारधारा को देखा जाता है। अंतराल का केंद्र बिदुं बम्बई है। इस कथा का पात्र प्रो. कुमार अपनी ही छात्र लता को चाहने लगता है। लता का विवाह कहीं ओर हो जाता है। प्रो. ने भी विवाह किया था, किंतु वह उस विवाह से संतुष्ट नहीं हो पाते। उपन्यास में कुमार श्यामा को चाहता है। देव श्यामा का पति है, जो मर चुका है, किंतु वह श्यामा की स्मृति में बार–बार लौटता है। श्यामा कुमार से जुड़ नहीं पाती और कुमार अंतर्मुखी हो जाता है। उसकी तृप्ति की तलाश और अधिक बढ़ जाती है। श्यामा और कुमार दोनों का अकेलापन उन्हें पास तों लाता है, पर उन्हें जोड़ नहीं पाता। संक्षेप में हम कह सकते है कि यह मोहन राकेश के अनुभूत साक्ष्यों में से एक है, जो एक स्त्री और पुरूष के संबंधों को उजागर करता है, पर लेखक अंत तक इन्हें मिला नहीं पाता। श्यामा और कुमार का अंतराल ज्यों–का–त्यों बना रहता है।

अतः मोहन राकेश ने अपने उपन्यासों में आधुनिक महानगरीय संत्रास, यांत्रिकता, समकालीन जीवन–संबंधों की कटुता, अजनबीपन आदि समस्याओं से गुजरते हुए व्यक्तियों को अपनी रचना का विषय बनाया है, जिनमें नारी–पुरूष संबंधों की भूमिका अहम है। आधुनिक जीवन की कटुता, विसंगति तथा विडम्बनाओं का यथार्थवादी चित्रण उनके उपन्यासों की सफलता का मूल रहस्य है।

4.4 विष्णु प्रभाकर

विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून 1912 को उत्तरप्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के गांव मीरपुर में हुआ था। इनके पिता दुर्गाप्रसाद धार्मिक विचारों वाले व्यक्ति थे तथा माता पढ़ी–लिखी महिला थी, जिन्होंने अपने समय में पर्दाप्रथा का विरोध किया था। उनकी पत्नी का नाम सुशीला था। इनकी आरंभिक शिक्षा मीरपुर में हुई। चतुर्थवर्गीय कर्मचारी की नौकरी के दौरान ही आगे की शिक्षा संस्कृत में प्रज्ञा और अंग्रेजी में बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। उन्होंने अपने लेखन

काल में कविता, उपन्यास, नाटक, कहानियां, बाल–साहित्य, आत्मकथा, जीवनी, एकांकी वृत्तान्त लिखे है। उन्हें प्रसिद्धि व पहचान 'आवारा मसीहा' जीवनी से मिली। बाद में उन्हें 'अर्द्धनारीश्वर' उपन्यास के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला। इसी उपन्यास के लिए उन्हें भारतीय ज्ञान पीठ का मूर्तिदेवी सम्मान तथा सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार मिले। उन्हें पद्म भूषण, पाब्लो नेरूदा सम्मान व शलाका पुरस्कार से भी नवाजा गया था।

प्रभाकर जी ने अनेक विधाओं में रचनाएं लिखने के साथ–साथ आकाशवाणी, दूरदर्शन, पत्र–पत्रिकाओं तथा प्रकाशन संबंधी मीडिया के प्रत्येक क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की। उनकी कृतियों का मुख्य भाव देशप्रेम, राष्ट्रवाद तथा सामाजिक विकास है। उन्होंने मात्र चौदह वर्ष की अवस्था में ही लेखन प्रारम्भ कर दिया था। वे पहले विष्णुदयाल, विष्णुगुप्त फिर विष्णुदत्त नाम से जाने गये तथा लेखन में प्रेमबंधु व विष्णु दोनों ही नामों का प्रयोग किया।

विष्णु प्रभाकर जी के उपन्यासों में 'निशिकांत' (1955), 'तट के बन्धन' (1955), 'स्वप्नमयी' (1956), 'दर्पण का व्यक्ति' (1968), 'कोई तो' (1980), 'अर्द्धनारीश्वर' (1994) प्रमुख है। इसके अतिरिक्त तीन लघु उपन्यासों को 'संकल्प' नाम दिया है। 'निशिकांत' विष्णु प्रभाकर जी का प्रथम उपन्यास है। उपन्यास का नायक निशिकान्त सरकारी नौकरी छोड़ स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेना चाहता है, किन्तु पारिवारिक जिम्मेदारियों व परिस्थितियों वश वह ऐसा नहीं कर पाता। निशिकान्त की इच्छा, आकांक्षा, छटपटाहट और विवशता की कहानी कहता उक्त उपन्यास तत्कालीन निम्न मध्यमवर्गीय युवक के आत्म संघर्ष की गाथा है। वस्तुतः साहित्यकार की प्रथम कृति अपने व्यक्तिगत जीवन संघर्षों के अनुभवजन्य यथार्थ का प्रामाणिक परिणाम है। 'तट के बन्धन' में स्त्री की पीड़ा, पारम्परिक विवाह की बेडियां तथा स्त्री–मुक्ति का स्वर मुखरित है। प्रस्तुत उपन्यास की मालती, नीलम, शीला एवं सरला विभिन्न स्तरों पर संघर्ष करती है। नीलम–डाकू प्रसंग, मालती–दहेज पीड़ा, शीला को उसका पति नहर में धकेल देता है। सरला को पति की हत्या में जबरन अपराधी बनाया जाता है। उक्त उपन्यास नारी की संघर्ष गाथा का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। उपन्यास के माध्यम से प्रभाकर जी यह संदेश देना चाहते है कि यदि नारियां अपनी शक्ति से भली–भांति परिचित होती है, तो वे हर किसी संकट का निड़रता के साथ सामना कर सकती है।

स्वप्नमयी – यह एक मां की कहानी है, जो स्वप्न तो देखती है, परन्तु उसे जी नहीं पाती। वह भोली है उसमें न तो साहस की कमी है न मेहनत की, किन्तु उसकी सादगी, उसका भोला मन इस प्रकार के चरित्र के लिए संसार में कोई जगह नहीं है। 'कोई तो' उपन्यास नारी प्रधान है। इसमें समाज और पुरूष से प्रताड़ित अनेक नारियों की व्यथा–कथा है और उसके माध्यम से पुरूष समाज के कुरूप चेहरे पर से नकाब हटाया गया है। यह उपन्यास मध्यमवर्गीय यौन नैतिकता का

सबसे बड़ा शिकार होती नारी की कथा को प्रस्तुत करता है। उपन्यास की नायिका वर्तिका अपने पिता के मुसलमान साथी के बेटे के साथ देहरादून से ग्वालियर के लिए परीक्षा की फीस जमा कराने के उद्देश्य से रवाना होती है। हिन्दू समाज एक हिन्दू लड़की को मुसलमान साथी के बेटे के साथ देखकर सनका खा जाता है और वर्तिका पर बदनामी की तख्ती चिपका दी जाती है कि वह मुसलमान लड़के के साथ भाग रही थी। इस घटना के पश्चात् उसे जीवन में कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। अंत में वह नारायण को अपने जीवन साथी के रूप में अपना लेती है, जो कि नाजायज संतान रहा है। इस कथा के अतिरिक्त कई कथाएं साथ–साथ चलती है और नारी पीड़ा के यथार्थ को अभिव्यक्ति मिलती है।

'अर्द्धनारीश्वर' में लेखक ने नर–नारी के यौन संबंधों पर सामाजिक व्यापकता में विचार किया है। उनकी नारियां स्वत्व चेतनापूर्ण, दायित्व शील, जागरूक, विचारशील और संतुलित है। उनका अपना व्यक्तित्व है। 'संकल्प' में नारी मुक्ति को गहराया गया है। उपन्यास विचारपूर्ण है। "क्षीण से कथानक द्वारा लेखक ने नारी की सहिष्णुता, परदुःख कातरता, आस्था, क्षमता आदि को गहराया है। उसे सामाजिकता की वाहक माना है। उसे शोषक से मुक्ति दिलाने का आह्वान किया है। लेखक की दृष्टि अत्यंत संतुलित रही है। उन्होंने नारी को उसकी सम्पूर्ण सामाजिकता में आंका है। उसकी अस्मिता को अर्थाया है।"[8]

4.5 राजेन्द्र यादव

नयी कहानी आंदोलन की त्रयी के प्रमुख कथाकार राजेन्द्र यादव का जन्म 28 अगस्त 1929 आगरा उ.प्र. में हुआ था। आपने 1951 ई. में आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा हिंदी साहित्य में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण की। हिंदी साहित्य की सुप्रसिद्ध हंस पत्रिका जिसकी स्थापन मुंशी प्रेमचंद ने 1930 ई. में की थी। उसका पुर्नप्रकाशन उन्होंने प्रेमचंद की जंयति के दिन 31 जुलाई 1986 को प्रारम्भ किया था। यह पत्रिका 1953 में बंद हो गई थी। आप सत्ताईस वर्षों तक हंस पत्रिका का संपादन करते रहे। 28 अक्टूबर 2013 को नई दिल्ली में 84 वर्ष की आयु में नयी कहानी आंदोलन के प्रमुख कथाकार राजेन्द्र यादव की कलम थम गयी और वे स्वर्गलोक को गमन कर गए। इनका विवाह सुपरिचित हिंदी लेखिका मन्नू भंडारी के साथ हुआ। उनकी एक बेटी भी है। उनका वैवाहिक जीवन बहुत लम्बा नहीं रहा और बाद में उन्होंने अलग–अलग रहने का फैसला किया।

राजेन्द्र यादव द्वारा हंस पत्रिका का पुर्नप्रकाशन करने का उद्देश्य उदीयमान रचनाकारों को स्थान देकर साहित्यकारों की खोज करना और उन्हें प्रसिद्धि दिलाना था। साहित्य के मुख्य पात्र 'हंस' के माध्यम से नेताओं, धर्म के ठेकेदारों और मठाधीशों की वे जमकर खबर लेते थे। उन्होंने साम्प्रदायिकता, पाखण्ड, प्रपंच और अंधविश्वास जैसे विषयों पर अपनी लेखनी

निडर होकर चलायी है। समाज के हाशिये पर रहे स्त्री और दलित, जो वर्षों से दबे–कुचले तबके से ताल्लुक रखते है, उनकी समस्याओं के समाधान के लिए स्त्री विमर्श व दलित विमर्श के विषय में चर्चा करके अपनी सशक्त अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। राजेन्द्र यादव ने अपनी पत्नी मन्नू भंडारी के साथ मिलकर अनूठी कृति के रूप में 'एक इंच मुस्कान' जैसे सशक्त उपन्यास की रचना की।

कथाकार राजेन्द्र यादव एक कहानीकार, अनुवादक, आलोचक व सम्पादक के साथ–साथ उपन्यासकार भी रहे हैं। उनके प्रमुख उपन्यास है – प्रेत बोलते हैं (1951) जो बाद मे सारा आकार (1959) नाम से प्रकाशित हुआ। उनके अन्य उपन्यास – उखड़े हुए लोग (1956), कुलटा (1958), शह और मात (1959), अनोखे अनजान पुल (1963), एक इंच मुस्कान (मन्नू भंडारी के साथ) 1963, मनविद्धा (1967) तथा एक था शैलेन्द्र (2007) प्रमुख है। उनका बहुचर्चित उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' को पर्याप्त प्रसिद्धि मिली। इसमें लेखक ने स्वातंत्र्योपरांत नेताओं में आयी चरित्र हीनता का पर्याप्त चित्रण किया है। उपन्यास का केन्द्र बिन्दु देशबंधु एक पूंजीवादी नेता है, जो अपने दुहरे व्यक्तित्व से आम जनता को ठगता है। वह आम जनता का नेता भैया है। उसकी कईं मिलें चलती है। मायादेवी को उसने रखैल बना रखा है। उसका बाहरी व्यक्तित्व अत्यंत शालीन है। वह उदार, धार्मिक, परोपकारी, समाजसेवी तथा गीता और गांधी का भक्त है, किन्तु यथार्थ में वह स्वार्थी, अवसरवादी, लम्पट, धूर्त, पाखंडी, क्रूर, व्यवसाय धर्मी तथा स्त्रियों की अस्मत खराब करने वाला हैं। वह माया देवी के पति की हत्या करवा देता है। एक दिन वह शराब पीकर मायादेवी की बेटी पद्मा के कमरे में भी घुस जाता है और पद्मा के साथ बलात्कार करना चाहता है। अन्त में पद्मा खिड़की से कूद जाती है। शरद और जया इस आत्महत्या से दुःखी होकर नेता भैया के आश्रम को छोड़ देते है। शरद नेता भैया के लिए भाषण तैयार करता था। सूरज छोटे–छोटे अपराध करके बड़ा आदमी बना है, किंतु मजदूरों के प्रति सहानुभूति रखता है। देशबंधु मजदूरों पर गोली चलवा देता है। उपन्यास में कांग्रेसी नेता के पतन तथा मार्क्सवादी आंदोलन के उदय को उभारा गया है। इसमें मध्यवर्ग की कुंठाओं का यथार्थ चित्रण है। लेखक का झुकाव प्रगतिशील विचारधारा की ओर है।

'कुलटा' में मध्यमवर्ग की कृत्रिम शहरी जिंदगी को उजागर किया गया है। इसमें ऑफिस में चलने वाले क्रियाकलापों क्लब, रेसकोर्स आदि मनोरंजन के साधनों और उनके कुपरिणामों को अभिव्यक्ति मिली है। पति–पत्नी के संबंधों की यथार्थ अभिव्यक्ति भी उपन्यास में देखने को मिलती है। कर्नल तेजपाल के अनुशासनबद्ध अभिजात में संवेदनशील पत्नी का दम घुटता है। यौन संबंधों के असंतुलन और सैनिक–जकडबंदी के बीच वह संगीत में अपनी मुक्ति तलाश करती है और फिर निहायत फटीचर वायलनिस्ट के साथ एक अनिश्चित भविष्य का चुनाव कर लेती है। इस प्रकार स्त्री द्वारा अपनी राह स्वयं चुन लेना, हमारा आधुनिक समाज मान्यता नहीं देता ओर उस स्त्री के लए इस जघन्य अपराध के लिए कोई क्षमा नहीं है। ऐसी स्थिति को

ही मिसेज तेजपाल द्वारा चुनौती दी जाती है। अतः वह पागल और कुलटा नहीं है तो क्या है? 'मंत्र–विद्ध' की सुरजीत ने सामंती घुटन से मुक्ति के लिए तारक के साथ जिंदगी के रूपाकार को गढ़ने के संघर्षों को नाम दिया है – प्यार। इस प्रकार 'कुलटा' ओर 'मंत्रविद्धा' उपन्यास की नारियां अपनी–अपनी मुक्ति का चयन करती है।

'शह और मात' उपन्यास में उदय और सुजाता की प्रेम कहानी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। 'सारा आकाश' (1959) पूर्व प्रकाशित 'प्रेत बोलते है' का संशोधित रूप है। आजादी के पचास वर्षों में 'सारा आकाश' ऐतिहासिक उपन्यास भी है और समकालीन भी। यह उपन्यास आज भारत की युवापीढ़ी की त्रासदी और भविष्य के सपने का नक्शा है। इसके संबंध में स्वयं यादव जी लिखते है – "सारा आकाश मुख्यतः निम्न मध्यमवर्गीय युवक के अस्तित्व के संघर्ष की कहानी है। आशाओं, महत्त्वाकांक्षाओं, आर्थिक, सामाजिक और सांसारिक सीमाओं के बीच चलते द्वन्द्व हारने–थकने और कोई रास्ता निकालने की बेचैनी की कहानी है।"[9] प्रस्तुत उपन्यास निम्न मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार की विसंगतियों को उजागर करने में सक्षम है। प्रभा को उपन्यास की नायिका कहा जा सकता है। प्रभा दसवीं कक्षा तक पढ़ी है तथा घर के समस्त कार्य जानती है। सुशिक्षित प्रभा गांव में जाकर स्त्रियों को पढ़ाना चाहती थी। आत्मरक्षा के लिए वह कराटें सिखना इत्यादि अन्य कईं कार्य करना चाहती थी, किंतु विवाह पश्चात् वह संयुक्त परिवार की नफरत व उपेक्षा को झेलती रहती है। विवाह पश्चात् की तकलीफों से वह हार नहीं मानती। समस्त संघर्षों से घिरे हुए वातावरण में भी प्रभा ही एक शक्ति है, जो जिजीविषा का संदेश देती है। उपन्यास का नायक समर आजाद भारत की नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। वह भी देश की सेवा करना चाहता है। एम.ए. तक पढ़ाई करके अच्छी नौकरी हासिल करना चाहता है। अपने इस कार्य में वह विवाह को एक बेकार कार्य तथा पत्नी को बोझ समझता है। समर का मानसिक अंर्तद्वंद्व स्वाभिमान और अहंकार उसे गृहस्थ सुख से वंचित कर देता है। इस प्रकार 'सारा आकाश' विघटन की कहानी है। समर न तो अच्छी नौकरी कर पाता है और न पढ़ाई वह पिता द्वारा निकाल दिया जाता है। वह आत्महत्या करना चाहता है, किन्तु वह विचार करता है कि अभी उसके सामने 'सारा आकाश' है। इधर प्रभा को सुंदर, शिक्षित व होनहार होने पर भी उसे पति के नकारा होने के कारण बेवजह घरवालों के तानों का शिकार होना पड़ता है। इस प्रकार समर व प्रभा को अपना अंधकारमय भविष्य आकाश की तरह खाली दिखाई देता है। अंत में दोनों का अकेलापन व निराशा उन्हें निकट ले आती है और करीब एक वर्ष पश्चात् वह बात करना प्रारम्भ कर देते है।

'अनदेखे अनजाने पुल' में एक कुरूप स्त्री की मानसिक गतिविधियों का उल्लेख है। यह 'निन्नी' की कहानी है। भरा–पुरा बड़ा परिवार। उसके जीवन में तीन पुरूष दर्शन, बैजल व समर आते है। दर्शन से हुआ मोहभंग, बैजल के चुम्बन की घटना, तथा समर से

हुआ अपमान आदि घटनाओं ने निन्नी के मन को तोड़ दिया था। अतः वह बीमार पड़ जाती है। इसी बीच दर्शन का आगमन और उसके द्वारा निन्नी को दिया गया आत्मीय चुम्बन उसकी मानसिकता को बदल देता है। इसके बाद निन्नी आगे पढ़ी, नौकरी भी पायी और देश– विदेश में नाम कमाया। अंततः वह एक सफल स्त्री बनी। राजेन्द्र यादव ने नारी मन का सफल व यथार्थ चित्रण अपने उपन्यासों में किया है।

'एक इंच मुस्कान' राजेन्द्र यादव व उनकी पत्नी लेखिका मन्नू भंडारी द्वारा संयुक्त रूप से लिखी गई रचना है। प्रस्तुत उपन्यास अमर और उसकी पत्नी रंजना व अमला जो कि एक परित्यक्ता नारी है के बीच की खींचतान की कहानी है। रंजना ने लेखक अमर को परिवार और अपने प्रति, प्रतिबद्ध रखना चाहा, किन्तु अमर न परिवार के प्रति सच्चा रहा न लेखन के प्रति। परिवार, पत्नी और लेखन उसे तीनों से पलायन करना पड़ा। उपन्यास का मूल स्वर व्यक्तिपरक चेतना की घोषणा करता है कि परिवार और समाज में रहते हुए व्यक्ति परिवार और समाज के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है। इस उपन्यास में पात्र कम व घटनाएं अधिक है। रंजना ने लेखक अमर से प्रेम विवाह किया है, किंतु फिर भी वह घुट–घुट कर जीती है। रंजना की आकांक्षा थी कि एक छोटा सा घर होता, जिसमें उसका पति उसके साथ प्रेम से रहता और रोज उसे घुमाने ले जाता, उसके साथ समय बिताता पर लेखक अमर उसे समय नहीं दे पाता है। इधर अमर अपनी कमाऊ पत्नी के सानिध्य में तथा कुछ सार्थक न लिख पाने के कारण अपने आप ही हीन और कुंठित महसूस करने लगता है। अमला अपनी जिंदगी के कड़वे सत्य से दूर भागती है, पर दूसरों को मार्गदर्शन देती है।

इस प्रकार उपन्यास के पात्र जीवन के चक्रव्यूह में पल–पल संघर्ष करते दिखते है। इस कथा का अंतिम सार है कि उपन्यास के सभी पात्र जो भी उनके जीवन में है उसे न तो जीते है न भोगते हैं, बल्कि एक अनोखे व अनजाने सुख के पीछे भागते रहते हैं। यह कटु यथार्थ आज की भौतिक व आधुनिक पीढ़ी पर सटीक बैठता है।

4.6 भीष्म साहनी

भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त 1915 को रावलपिंडी पाकिस्तान में हुआ था। इन्होंने गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. और पंजाब विश्वविद्यालय से पी.एच. डी. की। इन्होंने अंबाला कॉलेज, खालसा कॉलेज (अमृतसर) जाकिर हुसैन कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) में अध्यापन कार्य किया। आप विदेशी भाषा मास्कों में भाषा के अनुवादक भी रहे।

भीष्म साहनी को प्रेमचंद की परम्परा का अग्रणी लेखक माना जाता है। भीष्म साहनी हिंदी फिल्मों के जाने–माने अभिनेता बलराज साहनी के छोटे भाई थे। 1965 में 'तमस' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला तथा 1976 में इस पर फिल्म भी बनी। 1970 में एफ्रो

एशियन राइटर्स असोसिएशन लोटस अवार्ड तथा 1997 में भारत सरकार के पद्म भूषण अलंकार से विभूषित किया गया। वे एक सफल कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार तथा निबंध लेखक है। उनकी रचनाओं में दलित व शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति प्रकट होती है। अपनी रचनाओं में उन्होंने मध्यवर्ग के दोहरेपन, दिखावटीपन तथा आरामपरस्ती पर चोट करते हुए मध्यवर्ग की कुण्ठा का यथार्थ चित्रण किया है। उनके उपन्यासों में तमस सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास है। उनका प्रथम उपन्यास झरोखे (1967), तथा अन्य उपन्यास कडियां (1970), तमस (1973), बसंती (1980), मय्यादास की माड़ी (1988), कुंतो (1993), नीलू नीलीमा नीलोफर (2000) जय हिंद की सेना (2010) प्रमुख है।

'झरोखे' उपन्यास भीष्म साहनी जी का प्रथम उपन्यास है। कुछ आलोचक इसे भीष्म जी का आत्मकथात्मक यथार्थ भी मानते हैं। इस उपन्यास में मध्यमवर्ग का यथार्थ चित्रण हुआ है। उपन्यास में आर्य समाजी मध्यमवर्गीय हिंदू परिवार तथा उसके रीति–रिवाजों, पूजा–पाठ इत्यादि के वर्णन के साथ–साथ परम्परागत नैतिक बंधन तथा अनुशासन को चित्रित किया गया है। यह परिवार ऐसे मोहल्ले में है, जहां हिंदु–मुसलमानों के बीच द्वेष, धृणा, वैमनस्य की भावना है। भीष्म जी स्वयं भी मध्यवर्ग से है, अतः उन्हें मध्यवर्गीय हिंदू–मुसलमानों की कुण्ठाओं का सहज अनुमान है। वे जानते है कि इनकी कुंठाओं का निर्माण जातीय परम्पराओं के आधार पर हुआ है। ये कुंठाएं उनकी अपनी व्यक्तिगत कुठाएं नहीं है। स्त्रियों को सामान्य सामाजिक संबंधों से अलग रखा जाता है। इससे उनमें आत्मग्लानि आ जाती है। उनमें प्रस्थापित समाज से विद्रोह करने की निर्णय शक्ति भी नहीं है।

'कड़ियां' उपन्यास "दाम्पत्य जीवन की कड़ुवाहट और संस्कारगत ठहराव को प्रस्तुत करता है। महेन्द्र अपनी धर्मपरायण पत्नी प्रमिला से दाम्पत्य जीवन की ऊष्मा न पाकर बंगाली युवती सुषमा की ओर आकर्षित होता है। प्रमिला का विद्रोह दाम्पत्य जीवन को कटुता से भर देता है और महेन्द्र सुषमा के और अधिक निकट चला जाता है। प्रमिला की पड़ोसन सहेली सतवतं परिवार में सहजता लाने का उद्योग करती है। लेखक ने पुरूष और स्त्री के संबंधों में टूटती–जुड़ती कड़ियों के यथार्थ चित्र उभारे है।"[10]

'तमस' आजादी के पूर्व विभाजन को लेकर लिखा गया है। यह उपन्यास काल की दृष्टि से आजादी के पूर्व पांच दिनों की कहानी है। यह हिंदू–मुसलमान या सिक्ख के आपसी वैमनस्य और उसके तात्कालिक कारणों और उनके दूरगामी परिणामों को चित्रित करता है। बहरहाल जातिय दंगों का कारण कोई भी हो पर सर्वाधिक नुकसान सामान्य गरीब जनता का ही होता है। इस उपन्यास तथा साहनी जी की दो कहानियों को जोड़कर दूरदर्शन के लिए

धारावाहिक का निर्माण भी किया गया था। इसके पीछे साहनी जी का मानना था कि इतिहास को फिर से दोहराया न जाए इसी दृष्टि से यह धारावाहिक बनाया गया है।

'बंसती' इस उपन्यास में निम्न वर्गीय समुदाय का जीवन चित्रित है। दिल्ली में आकर बसे यह कुछ ऐसे लोगों की कहानी है, जो गांव में सूखा, अकाल और भूखमरी के कारण बेहाल जिंदगी को छोड़कर शहरो में भाग आए है। इन्हीं में से चौधरी नौवा अपनी चौदह साल की लड़की बसंती को साठ साल के लंगड़े दर्जी बुलाकीराय को विवाह की आड़ में बेचना चाहता है, किंतु बसंती अपने प्रेमी दीने के साथ भाग जाती है। दीनू पहले से ही शादी–शुदा और धोखेबाज है। वह बसंती को मात्र तीन रूपये में अपने दोस्त बगडू को बेच देता है। बाद में बेसहारा बसंती गर्भवती हो जाती है और लंगड़े बुलाकी के साथ ब्याही जाती है। अंत में बसंती अपने बच्चे के साथ फिर दीनू के पास भाग जाती है। यह उपन्यास स्त्री जाति के शोषण व उसकी पीड़ा का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है।

'मय्यादास की माड़ी'–यह एक हवेली और कस्बे की कहानी होने के साथ–साथ बदलते हुए युग और परिवेश की भी कहानी है। हवेली और कस्बे के जीवन परिवेश तथा मानसिकता का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत उपन्यास की विशेषता है।

'कुंतो' उपन्यास में जयदेव, कुंतो, सुषमा–गिरीश के आपसी संबंध, उनकी भावनाएं, आशाएं–आकाक्षाएं इत्यादि को देखा जा सकता है। उनके आपसी रिश्ते, घटना प्रवाह के उतार–चढ़ाव, सामाजिक सरोकार उपन्यास के विस्तृत फलक पर मानवीय संबंधो, संवेदनाओं के करवट लेते परिवेश और मानव नियती के बदलते रंगों की कहानी का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास किसी कालखण्ड का दस्तावेज न होकर मानव–जीवन का यथार्थ दस्तावेज प्रस्तुत करता है।

अमरकांत

अमरकांत मुख्यतः यथार्थवादी उपन्यासकार है। उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं को अपने साहित्य का विषय बनाया है। व्यंग्य उनके साहित्य में निम्न मध्य–वर्गीय समाज की असंगतियों, छद्‌म टुच्चेपन तथा झूठ का पर्दाफाश करने का माध्यम रहा है। उपेन्द्रनाथ अश्क का मानना है कि "उनके साहित्य का उद्देश्य वही है जो प्रेमचंद का था। समाज को वे भी बेहतर देखना चाहते हैं, इसीलिए तो उसकी बुराईयों, झूठ, छल–प्रपंच और रियाकारी का उद्‌घाटन करते हैं, कचोटते हुए व्यंग्य के माध्यम से।"[11] उनके साहित्य में यथार्थ की पकड़ बहुत गहरी है लेकिन अभिव्यक्ति अत्यन्त सरल है। उनकी वस्तु–योजना अत्यन्त सोद्देश्य व सप्रयोजन है तथा व्यंग्य उसे विशिष्टता प्रदान करता है। उनके

साहित्य में द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। उनके कथासाहित्य में मानवीय जिजीविषा, प्रगतिशील और जीवन की सच्चाईयों की समर्थता दृष्टिगत होती है।

कमला प्रसाद पाण्डेय का मानना है कि – "उपन्यासकार की हैसियत से अमरकांत में रोमांटिक एटीट्यूड अधिक दिखाई देता है गोकि वे रोमांस में डूबता नहीं। जहां प्रेम–करूणा, घृणा या ईर्ष्या की मनोवृत्तियों में उनके पात्र शरीक होते है, वहां ऐसा लगता है कि रचनाकार में बौद्धिक ठहराव आ गया है और उनकी रचना–प्रक्रिया उनकी स्थितियों में डूब जाना चाहती है। प्रेम के प्रसंगों में शरीर के तर्क से चेतना के तर्क का जो क्रमशः विकास मिलता है, उनमें कुछेक स्थल ऐसे होते है, जहां लेखक फैल जाता है। अपने आप से बेरूख होते या तटस्थ होने की वस्तुवादी प्रक्रिया छूटते–छूटते रह जाती है।"[12] पाण्डेय जी का ऐसा मानना कुछ उपन्यास को लेकर है। जैसे–'सूखापत्ता' उपन्यस का कृष्णकुमार उर्मिला से प्रेम करते हुए भी उससे अंतर्जातीय विवाह करने का साहस नहीं जुटा पाता। कृष्ण कुमार की यह असमर्थता नायक की कमजोरी जान पड़ती है।

वस्तुतः कृष्ण कुमार प्रारंभ में कायर, कमजोर व कम बोलने वाले चरित्र के रूप में सामने आता है, किंतु बाद में वह कायरता से लड़ता है। जीवन में अनेक घटनाओं के बीच संघर्ष करता हुआ कृष्णकुमार अंततः मार्क्सवादी विचारों के पास पहुंच जाता है। इस प्रकार अमरकांत के उपन्यास जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करते है।

स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में भारत की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक स्थिति तथा बदलते परिवेश का चित्रण अमरकांत ने बड़ी गहराई तथा समझ के साथ किया है। अमरकांत के समस्त उपन्यासों को उनकी समग्रता के साथ देखने पर ज्ञात होता है कि आम मध्य–वर्ग की समस्याओं यथा – जातिगत बंधन की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, एकाकीपन, कुंठा, संत्रास इत्यादि का वर्णन उनके साहित्य में देखने को मिलता है। "अमरकांत ने अपेक्षाकृत छोटे घेरे में अपने अनुभव की तमाम सपुंटितता से अपने को अभिव्यक्ति दी है और इसमें कहीं–कहीं वे अपने समकालीनों से आगे चले गए है।"[13] अश्क जी की यह विचारधारा अमरकांत के साहित्य पर सटीक ठहरती है।

अमरकांत का उपन्यास साहित्य वस्तुतः यथार्थ के धरातल पर उकेरा गया साहित्य है। उपन्यास में कईं पक्षों को एक साथ आयाम दिया जा सकता है इसलिए अमरकांत ने उपन्यास में गरीब–अमीर, शोषक–शोषित, छोटा–बड़ा, स्त्री–पुरूष, जवान–बूढ़ा तथा विशेष रूप से निचले तबके के लोगों का संघर्ष, व्यथा, द्वन्द्व तथा विसंगतियों को बड़ी ही ईमानदारी एवं सच्चाई के साथ यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। उपन्यास के माध्यम से बदलते परिवेश में आधुनिकता के सन्दर्भ में भारतीय तथा पाश्चात्य संस्कृति के मध्य उलझे हुए मध्यवर्गी मानव–मन

के द्वन्द्वों के साथ–साथ उपन्यासकार अमरकांत भावुकता से हटकर बदलते जीवन सन्दर्भों में खुले दिमाग से निम्न–मध्यवर्गीय जीवन की वास्तविकता को परख कर अपने अनुभवजन्य स्थितियों को यथार्थ के धरातल पर सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करते है। उन्होंने अपने उपन्यासों में रोचकता तथा सोद्देश्यता को स्थान दिया है। उनके पास कथा को पाठक वर्ग के समक्ष रखने का अपना एक विलक्षण व सकारात्मक नज़रिया है। अतः मात्र कथ्य की दृष्टि से ही नहीं उनका साहित्य शिल्प की दृष्टि से भी उपन्यास साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

उनके उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों में सामाजिक सम्बन्धों व जन विश्वासों को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम उपन्यास 'सूखापत्ता' में लेखक ने कृष्णकांत व उर्मिला के माध्यम से समाज के खोखले आदर्श व नैतिक विघटन का यथार्थ प्रस्तुत किया है। उपन्यास का नायक कृष्ण उर्मिला से प्रेम करता है और उससे विवाह करना चाहता है। पर दोनों परिवार के लोगों द्वारा सामाजिक मान–मर्यादा का हवाला देने तथा मान–सम्मान व प्रतिष्ठा को हानि होने की बात कहकर इस विवाह के लिए इंकार कर देते है। 'सूखा–पत्ता' उपन्यास का नायक जिस खोखले आदर्श की बात कहकर हेमा का त्याग करता है, वह उसका त्याग व आदर्श प्रेम न होकर वास्तविक रूप से नायक की दुर्बलता, कमजोरी तथा असाहस का परिचय देता है।

इसी प्रकार 'आकाश पक्षी' उपन्यास में हेमा व रवि का प्रेम जाति–पाति, सामाजिक मान–मर्यादा व प्रतिष्ठा की झूठी शान शौकत को भेंट चढ़ जाता है। हेमा की माँ रानी साहिबा जाति विषयक दृष्टांत तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की दुहाई देती है। अंत में रानी मां हेमा को अपने द्वारा तथा राजा साहब द्वारा आत्महत्या की धमकी देकर मना लिया जाता है।

'बिदा की रात' में नईमा का विवाह एक ऊंचे खान–दान में कर दिया जाता है। जहां नईमा की सास शबनम द्वारा उसे बार–बार बेइज्जत होना पड़ता है। इस प्रकार अमरकांत के उपन्यासों में समाज के खोखले रीति–रिवाज, आदर्श इत्यादि का यथार्थ चित्रण हुआ है।

समाज के बदलते परिदृश्य तथा सम्बन्धों की बनावट, टूटन तथा पीड़ा का यथार्थ चित्रण उनके उपन्यासों में दृष्टिगत होता है। अमरकांत के उपन्यासों में संयुक्त परिवार को एकल परिवारों में बदलते तथा इस स्थिति में भी जहां पति–पत्नी संयुक्त परिवार से अलग रहते है, उनके सम्बन्धों में तनाव व टूटन का दृश्य चित्रित किया है। इसका कारण पढ़े–लिखे वर्ग का अपनी अनपढ़ या कम पढ़ी–लिखी पत्नी के प्रति उपेक्षा भाव या इतर संबंधों का होना है।

'काले–उजले दिन' उपन्यास का नायक पत्नी कान्ति के रहन–सहन, स्वयं के प्रति लापरवाही तथा कोई भी शोक शृंगार न करना, पहनने–ओढ़ने, साफ–सफाई, खाने–पीने आदि में अरूचि रखना इत्यादि कईं कारणों से दूर हो जाता है तथा अपने ही ऑफिस में काम करने वाली रजनी से प्रेम करने लगता है। इस कारण पत्नी कान्ति को तनाव का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार 'लहरे' उपन्यास का नायक श्यामाप्रसाद अपनी पत्नी 'बच्ची देवी' के अनपढ़ होने तथा आधुनिक व फैशन परस्त न होने के कारण उसे पंसद नहीं करता है। वह शहर में अकेला रहकर मौज–मस्ती करता है। अतः बच्ची देवी को उपेक्षा, तनाव तथा अकेलेपन का सामना करना पड़ता है। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में नीलेश के फूफा जी (बेनीप्रसाद जी) को पहली पत्नी से कोई सन्तान न होने के कारण वह दूसरा विवाह करते हैं। जिसकी आयु केवल बारह वर्ष होती है। इस प्रकार अमरकांत के उपन्यास पति–पत्नी के आपसी संबंधों के विघटन की स्थिति, तनाव अलगाव, टूटन व पीड़ा तथा सामाजिक विसंगतियों का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं।

स्वातंत्र्योपरांत राजनीतिक गतिविधियों का चित्रण कथाकार अमरकांत ने अपने साहित्य में यदा–कदा किया है। अमरकांत स्वयं भी इन राजनीतिक गतिविधियों का हिस्सा रह चुके है। वह एक सफल लेखक होने से पूर्व बाल्यावस्था में स्वाधीनता संग्राम में हिस्सा ले चुके थे। वस्तुतः उनके अनुभवजन्य राजनैतिक संस्मरणों की कथा के रूप में अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों में अधिक सशक्त रूप में हुई है। 'सूखापत्ता' उपन्यास का नायक कृष्ण कुमार विदेशी शासन व्यवस्था में भारतीयों के राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक शोषण से भली–भांति अवगत है। कृष्ण व उसके साथियों द्वारा सेठ के यहां बोरे–चुराने का कारण स्पष्ट था कि वह ऐसे लोगों के खिलाफ था, जो सरकार को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुनाफा पहुंचाते थे।

उनका अन्य उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' राजनीतिक उथल–पुथल का विस्तृत व व्यापक फलक प्रस्तुत करता है। आम जनता का राजनीतिक गतिविधियों में बढ़–चढ़ कर भाग लेना उनकी राजनीतिक चेतना तथा स्वाधीनता प्रेम को दर्शाता है।

समाज के नवयुवकों व आम जनता का राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में भागीदारी तथा तत्कालीन समाज की राजनीतिक भागीदारी का यथावत व वास्तविक स्वरूप कथाकार ने प्रकट करने का प्रयास किया है।

लेखक का मानना है कि संस्कृति समाज का एक अभिन्न अंग है। अमरकांत जी ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन समाज के रीति–रिवाजों, वैवाहिक मान्यताओं, रहन–सहन, खान–पान, के साथ–साथ धार्मिक विद्रूपता, अंधविश्वासों, मान्यताओं व पाखण्ड़ों का विरोध खुलकर किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री पात्र संस्कृति की वाहक के रूप में प्रस्तुत हुई है।

'लहरें' उपन्यास की बच्ची देवी पति के द्वारा उपेक्षित होने पर भी अपने पति को अपना परमेश्वर मानती है।

'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में सुन्नर पांडे की पतोह सारी जिंदगी अपने पति के इंतजार में बिता देती है। उसे आशा है कि एक दिन उसका पति लौटकर जरूर आयेगा। उसकी आशा व विश्वास का प्रतीक उसके माथे का सिन्दूर है। सुन्नर पांडे की पतोह नाम से परिचित लक्ष्मी का चित्रण कर कथाकार ने तत्कालीन समाज तथा नारी–जीवन का यथार्थ चित्रण किया है।

अमरकांत ने अपने साहित्य में आर्थिक विषमताओं, संघर्षों तथा विपरीत परिस्थितियों का यथार्थ अंकन प्रस्तुत किया है। 'काले उजले दिन' का नायक आर्थिक परेशानियों को झेलता है। नायक विवाहोपरांत अपनी विमाता द्वारा कटु वचनों से मानसिक रूप से प्रताड़ित होता है, क्योंकि वह अर्थाधार पर पूर्ण रूप से अपने माता–पिता पर निर्भर था। घर में छोटी–छोटी जरूरतों के लिए उसे व उसकी पत्नी को अपमानित होना पड़ता था। नायक द्वारा पढ़ाई फिर से शुरू करने के लिए अपनी पत्नी के गहनों तक को बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता है। 'ग्रामसेविका' की नायिका दमयन्ती द्वारा ग्रामसेविका की नौकरी करना तथा सुन्नर पांडे की पतोह द्वारा घर–घर जाकर काम करना उनकी आर्थिक जरूरतों व विवशता को दर्शाता है। 'बिदा की रात' उपन्यास में सुल्ताना बेगम गरीबों की आर्थिक दशा को देखकर चिन्तित हो उठती है।

इस प्रकार अमरकांत के उपन्यास में आर्थिक संकट को प्रमुखता से विश्लेषित किया गया है। यों भी दरिद्रता को महान् दुःख की संज्ञा दी गई है। आम वर्ग की आर्थिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण लेखक ने स्वाभाविक रूप से किया है।

निष्कर्ष

अमरकांत जी के समकालीन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास साहित्य में समाज के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि विविध पक्षों का चित्रण किया है। उनकी रचनाओं में सामाजिक चेतना, राजनीतिक गतिविधियां, सांस्कृतिक विषमताएं तथा आर्थिक संघर्षों के साथ–साथ व्यक्ति और समाज के अस्तित्व इत्यादि पहलुओं का भी बहुआयामी चित्रण हुआ है। सभी साहित्यकारों ने अपने–अपने ढंग से इन विषयों पर अभिव्यक्ति की है। प्रत्येक साहित्यकार अपने साहित्य में समाज की विषमताओं तथा समस्याओं को अवश्य प्रस्तुत करता है। हां उन सभी की रचना करने की प्रवृत्ति या ढंग भिन्न हो सकता है। कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, फणीश्वरनाथ रेणु, मन्नू भंडारी, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती इत्यादि रचनाकारों ने अपने साहित्य में निम्न–मध्यम वर्ग की विभिन्न समस्याओं को उठाया है। समाज में अकेलेपन को झेलते लोगों, उनमें तनाव, टूटन व कसक को यथार्थ धरातल पर अंकित करने का प्रयास किया

है। साथ ही नारी की दयनीय व शोषित स्थिति का सभी कथाकारों ने यथार्थ चित्रण अपने साहित्य में किया है।

अमरकांत का रचना संसार उनके आस–पास के परिवेश से निर्मित है। अमरकांत के उपन्यासों में सामाजिक जन–जीवन की झांकी दृष्टिगत होती है। उसमें भी मुख्य रूप से मध्यमवर्गीय जीवन का चित्रण उनकी आर्थिक विषम परिस्थितियों को लक्ष्य बनाया गया है। उनके पात्र आर्थिक विषमताओं से टूटते नहीं है, बल्कि इसके विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए प्रयत्नरत रहते है। बार–बार असफल व निराश होने पर भी वे हार नहीं मानते। उन्होंने नारी चित्रण के साथ–साथ उसकी शिक्षा, प्रगति व जागरूकता का भी समर्थन किया है। नारी विषयक सम्बन्धी उनकी दृष्टि प्रगतिशील है।

उन्होंने समाज के सम्पन्न वर्ग हो या निम्न मध्यमवर्ग अर्थात् हर तबके के व्यक्ति के विषय में अपनी व्यंग्यार्थ दृष्टि अपनाई है। अमरकांत जैसी सपाट बयानी व्यंग्यात्मक दृष्टि उनके समकालीन कथाकारों में कम ही देखने को मिलती है। "उनके समकालीन कथाकार धर्मवीर भारती, रेणु, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा और कमलेश्वर आदि यदि एक और भाषा के गुलबूटे काढ़ रहे थे, कहानी में सांकेतिकता के नाम पर बिबों और प्रतीकों का कोष लुटा रहे थे तो दूसरी ओर पूरी की पूरी कहानी को स्त्री–पुरूष संबंधों के घेरे में कैद कर देने की साजिश रच रहे थे, तब अमरकांत अपने मध्यवर्गीय परिवेश की जिंदगी को उसी की अपनी, ऊपर से काफी कुछ रूखड सी लगने वाली भाषा में अभिव्यक्ति दे रहे थे।"[14]

संदर्भ

1. हंस, संपादक, राजेन्द्र यादव, अक्टूबर 1999
2. उपन्यासकार कमलेश्वरः संवेदना और शिल्प, डॉ. देशाणी महेन्द्र कुमार जे. पृ. 52
3. उपन्यासकार कमलेश्वर : संवेदना और शिल्प, डॉ. देशाणी महेन्द्र कुमार जे. पृ. 52
4. उपन्यासकार कमलेश्वर : संवेदना और शिल्प, डॉ. देशाणी महेन्द्र कुमार जे. पृ. 156
5. मोहन राकेश के उपन्यासों में चरित्र सृष्टि, डॉ. लक्ष्मण जे. वाणवी, पृ. 12
6. मोहन राकेश के उपन्यासों में चरित्र सृष्टि, डॉ. लक्ष्मण जे. वाणवी, पृ. 30
7. मोहन राकेश के उपन्यासों में चरित्र सृष्टि, डॉ. लक्ष्मण जे. वाणवी, पृ. 31
8. हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा, ब्रह्मस्वरूप शर्मा, पृ. 129
9. सारा आकाश, राजेंद्र यादव, पृ. 12
10. हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा, ब्रह्मस्वरूप शर्मा, पृ. 83
11. अमरकांत एक मूल्यांकन, रवीन्द्र कालिया, पृ. 272
12. अमरकांत एक मूल्यांकन, रवीन्द्र कालिया, पृ. 295–296
13. अमरकांत एक मूल्यांकन, रवीन्द्र कालिया, पृ. 288
14. अमरकांत एक मूल्यांकन, रवीन्द्र कालिया, पृ. 156

पंचम अध्याय

अमरकांत के उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति

पंचम अध्याय
अमरकांत के उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति

भूमिका

उपन्यास आधुनिक युग में जटिल यथार्थ के चित्रण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है। लेखक भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग द्वारा स्वातमूलक मानवीय संवेदना को यथार्थ धरातल पर उकेर कर रचनात्मकता को प्रकट करता है। विगत दो सौ वर्षों से यथार्थ की अभिव्यक्ति का केन्द्रीय साहित्य रूप उपन्यास रहा है। जीवन की नाना समस्याओं का उद्घाटन व उनकी यथार्थ अभिव्यक्ति उपन्यास में सहज देखी जा सकती है। उपन्यासकार एक सामाजिक प्राणी होता है। वह समाज के साथ सामंजस्य स्थापित कर सृजन कर्म करता है। आधुनिक युग में उपन्यास की लोकप्रियता का प्रमुख कारण यह भी है कि उपन्यासकार द्वारा जीवन में घटित होने वाली घटना का सूक्ष्म व यथार्थ चित्रण उपन्यास में सहज व व्यापक रूप से संभाव्य है।

वस्तुतः जीवन की असंगतियों के बीच तालमेल बैठाने की जद्दोजहद करने वाले अकरकांत के उपन्यास साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक यथार्थ स्पष्ट रूप से उभरा है। उन्होंने अपने उपन्यासों में बदले हुए परिवेश में संस्कार और आधुनिकता के मध्य उलझे हुए मध्यवर्गीय मानव मन के अर्न्तद्वन्द्व को बड़ी ईमानदारी एवं सच्चाई के साथ यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं भावुकता से हटकर बदले हुए जीवन संदर्भो में खुले दिमाग से निम्न–मध्यमवर्गीय जीवन की वास्तविकता को देखा, परखा और अनुभवजन्य स्थितियों को यथार्थ के धरातल पर पूरी सच्चाई और ईमानदारी के साथ अपने उपन्यास साहित्य में सशक्त अभिव्यक्ति दी है। उनके उपन्यास साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक यथार्थ के उजले व धूमिल पक्षों को देखा जा सकता है।

5.1 सामाजिक संदर्भ

"समाज शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया जाता है। यहां व्यक्ति के बीच पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर निर्मित व्यवस्था को समाज कहा गया है। जब असंख्य सामाजिक संबंधों का जाल अनेक रीतियों एवं सामाजिक मूल्यों द्वारा व्यवस्था में बदल जाता है तो उसे समाज कहते है।"[1]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। साहित्यकार भी समाज का ही एक अंश है और समाज में रहते हुए वह अनेक प्रकार के घात–प्रतिघातों को झेलता हुआ सामाजिक परिदृश्य प्रस्तुत करता है। समाज में घट रही घटनाओं व समस्याओं का यथार्थ चित्रण करना ही साहित्यकार का दायित्व है। यथार्थ जीवन की सच्ची अनुभूति है। समाज में व्याप्त बुराईयों,

रूढ़ियों, कुरूतियों इत्यादि का यथार्थ रूप में चित्रण करना ही सामाजिक यथार्थ का परिचायक है। सामाजिक यथार्थ की मान्यता है कि – "लेखक समाज विकस की द्वन्द्वात्मक भूमिका को अपनाकर ही यथार्थ चित्रण की ओर अग्रसार हो।"[2]

समाज की यथार्थपरक अनुभूति वैसे तो गद्य की सभी विधाओं में देखी जा सकती है, किन्तु उपन्यास इसकी अभिव्यक्ति को व्यापक फलक प्रस्तुत करता है। कहा भी गया है कि – "उपन्यास गद्य की एक विशिष्ट यथार्थ दृष्टि को प्रस्तुत करता है, जो उसी की पहुँच में है, काव्य, नाटक, चित्रकला अथवा संगीत द्वारा सम्भव नहीं है।"[3] "उपन्यास में वर्णित समाज भी मानव समाज होता है, सामान्य मानव की तरह ही उसके पात्र भी उस समाज में अंतःक्रियायें करते हैं, संबंधों की स्थापना करते हैं, विभिन्न घात–प्रतिघातों, संघर्षों का मुकाबला करते हैं। उपन्यास का सृष्टा सामाजिक प्राणी होता है और समाज से ही वह अनुभूतियां ग्रहण करता है। उपन्यास के अस्तित्व का मूल आधार जीवन का पुनर्सजन है। इस प्रकार उपन्यास मानव जीवन और सामाजिक संदर्भों की भावाभिव्यक्ति भी करता है।"[4]

अमरकांत हिंदी कथा सहित्य के ऐसे विशिष्ट रचनाकार है, जिन्होंने अपनी लेखनी से सामाजिक अस्मिता के व्यष्टि और समष्टि तत्त्वों को समायोजित करते हुए सामाजिक यथार्थ को रेखांकित किया है। अपने समकालीन रचनाकारों से उनकी सोच पृथक है। जहाँ एक ओर जैनेन्द्र का साहित्य सामाजिक यथार्थ का अंग न होकर व्यक्ति और व्यक्ति के जीवन का यथार्थ है, वहीं अमरकांत का साहित्य व्यक्ति को समाज से जुड़ने की प्रेरणा देता है। इधर इलाचंद जोशी पुरानी किस्सागाई की ही परम्परा में कथा सृजन करते दिखाई देते हैं। अज्ञेय के कथा–साहित्य में उनका बौद्धिक दृष्टिकोण, उनकी अध्ययन सम्पन्नता और मितभाषिता, अनुभव वैशिष्ट्य एक बौद्धिक अभिजात व्यक्ति को परिलक्षित करती है। वही यशपाल, अश्क जी एवं रांगेय राघव का कथा–संसार भी सामाजिक संवेदना से आपुरित है, किन्तु अमरकांत को प्रगतिशील रचनाकार की द्वन्द्वात्मक दृष्टि मिली थी। अतः अमरकांत ने प्रेमचंद की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए साधारण अंदाज में रचनाएं लिखी है। उनके उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी जीवन की विडंबनापूर्ण स्थिति तथा सामाजिक जन–जीवन की संवेदनात्मक गहराई देखी जा सकती है। उनके कथा–संसार में आज के जीवन का असंतुलन व सामाजिक विषमता परिलक्षित होती है। अमरकांत का उपन्यास साहित्य आज के सामाजिक परिदृश्य की विस्तृत झांकी प्रस्तुत करता है। निस्संदेह उनके उपन्यास साहित्य के भीतर से जीवन की यथार्थ धड़कनों को सुना और महसूस किया जा सकता है।

अमरकांत के उपन्यासों में रोजी–रोटी तथा प्रेम–कलह की समस्याओं से लेकर सामाजिक बुराईयों की समस्याओं का भी यथार्थ अंकन हुआ है। युगबोध व युग सत्य को

अमरकांत ने सदैव प्राथमिकता दी है। समाज के हर तबके के व्यक्ति की आस्थाएं–शंकाएं, आशाएं–निराशाएं आदि सब अपने यथार्थ रूप में उभरकर सामने आते है। उनकी रचनाएं मानव–मूल्यों के संरक्षण एवं सामाजिक नवनिर्माण के उत्कृष्ट आकांक्षा की रचनाएं है। उनका उपन्यास साहित्य कल्पना के वायवी वातावरण की संरचना नहीं करता, अपितु व्यावहारिक व वास्तविक जीवन से उसका सीधा संबंध है। मध्यवर्गीय तनावों, अन्तर्विरोधों एवं संक्रमण की स्थिति को संवेदना की गहराई से अनुभव कर उन्होंने अपने साहित्य का सृजन यथार्थ के व्यापक स्तर पर किया है।

अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में सामाजिक बुराईयों यथा, छूआ–छूत, जातिगत व्यवस्था, अनैतिक संबंधों, पारिवारिक संबंधों, मान–मर्यादा, मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों तथा नारी की दयनीय स्थिति पर दृष्टिपात किया है। उन्होंने समाज के धुंधले पक्ष के साथ–साथ समाज के उजले पक्ष को भी अपने साहित्य में स्थान दिया है। इसी के साथ उनके उपन्यास साहित्य की नारी समाज में अपनी दिशाओं को खोजती दिखाई देती है। वह अपने प्रति हो रहे शोषण से मुकाबला करती है तथा समाज में अपनी पहचान स्थापित करती है। अमरकांत के उपन्यास साहित्य में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का अध्ययन हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं।

सामाजिक मान–मर्यादा

आधुनिक युग में सभ्य समाज का प्रत्येक व्यक्ति, अर्थ के साथ–साथ अपने मान–सम्मान, सामाजिक परम्पराओं, मर्यादाओं तथा प्रतिष्ठा के प्रति विशेष रूप से सचेत दिखाई देता है। समाज का हर वर्ग यह चाहता है कि समाज में उसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाए। इसके लिए वह हर कार्य समाज के दायरे में रहकर करने का प्रयास करता है, जिससे कि उसकी प्रतिष्ठा धूमिल न होने पाए। वैसे तो इसकी भूख समाज के हर वर्ग में देखने को मिलती है, लेकिन मध्यवर्ग में इसकी भूख सर्वाधिक होती है। इस वर्ग का व्यक्ति सामाजिक परम्पराओं, रूढ़ियों, खोखली एवं सड़ी गली मान्यताओं एवं धारणाओं से घिरा रहता है। वह चाहकर भी इन सड़ी–गली मान्यताओं, परम्पराओं, धारणाओं, रूढ़ियों एवं वर्जनाओं की श्रृंखला को तोड़ नहीं पाता। अपनी झूठी प्रतिष्ठा को बचाने के लिए वह अपने सुखों का गला घोंटता है और पुरानी खोखली परम्पराओं को आजीवन ढोता रहता है, चाहे इसका कोई भी परिणाम क्यों न हो। अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में मान–मर्यादा, इज्जत व प्रतिष्ठा का खोखला यथार्थ अपने उपन्यास साहित्य में यथास्थान प्रस्तुत किया है।

'सूखा–पत्ता' उपन्यास का नायक कृष्ण कुमार, उर्मिला से प्रेम करता है और उससे शादी करना चाहता है। कृष्ण और उर्मिला की जातिगत विभिन्नता के कारण उन दोनों के

परिवार वाले मान–सम्मान व प्रतिष्ठा के कारण विवाह से इंकार कर देते हैं। वे समाज में अपनी प्रतिष्ठा व मर्यादा को धूमिल नहीं होने देना चाहते। इधर कृष्ण व उर्मिला अपने विवाह संबंधी निर्णय पर अटल रहते हैं। उर्मिला के पिता गंगाधारी बाबू कृष्ण से खानदान की इज्जत बचाने के लिए कहते हैं–"बेटा मैं चारों ओर से हारकर तुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हीं मुझकों और मेरे खानदान को बचा सकते हो।"[5] आगे गंगाधारी बाबू सामाजिक बंधन व मर्यादा का कटु यथार्थ प्रस्तुत करते हुए अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहते हैं–"बेटा, हम बहुत पिछड़े हुए लोग हैं, बहुत गिरे हुए। हम जमाने के साथ नहीं चल सकते। हम लोगों में ढकोसला ही ढकोसला है। दुनियां सुधर जाएगी पर हम लोग नहीं सुधर सकते ...... कृष्ण बेटा! सोचो, देखो, इससे मेरा सारा खानदान चौपट हो जाएगा।"[6] जब कृष्ण अपने और उर्मिला के भविष्य के विषय में गंगाधारी बाबू से कहता है कि इससे तो हम दोनों की ही जिंदगी बरबाद हो जाएगी तब गंगाधारी बाबू अत्यन्त अवरूद्ध कंठ से कृष्ण को समझाते हुए कहते हैं – "पर, यह शादी नहीं हो सकती कृष्ण ...... इसका मुझे सबसे बड़ा दुःख रहेगा। मैं समाज को नहीं छोड़ सकता .... इससे लड़ने की अभी मुझमें ताकत नहीं है।"[7] उपन्यासकार ने गंगाधारी बाबू के मुख से उक्त वाक्य कहलवाकर समाज के मध्य वर्ग पर कटाक्ष किया है। हालांकि समाज में प्रतिष्ठा व सम्मान सभी प्राप्त करना चाहते है, किन्तु इस मामले में मध्यवर्ग की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती है।

'आकाश पक्षी' उपन्यास सामन्ती प्रथा पर आधारित है। स्वतंत्रता के पश्चात् जमींदारों व सामन्तों की जागीदारें छीन ली गई थी। इसलिए लोकतंत्र शासन प्रणाली के चलते रियासतों का दौर अब खत्म हो गया था, लेकिन सामन्त व्यवस्था उनके दिलो–दिमाग में अब भी जड़े जमाये हुए थी। इसलिए उनके रहन–सहन, खान–पान व आदतें अब भी सामन्तों जैसी ही थी। यह सब उनकी प्रतिष्ठा का प्रतीक थे। 'आकाश पक्षी' उपन्यास में रवि और हेमा एक–दूसरे से प्रेम करते हैं और शादी करना चाहते हैं। एक दिन जब हेमा की माँ उन दोनों को वार्तालाप करते सुन लेती हैं, तो वह रवि को फटकार लगाती है। वह उसे अपने ऊँचे खान–दान व जाति की दुहाई देते हुए सामाजिक मर्यादा को बनाए रखने के लिए कहती है। साथ ही रियासतों के दिनों को याद करते हुए वह रवि को अपनी हैसियत में रहने की सलाह देती है। तब रवि, हेमा की माँ के समक्ष खानदान व मर्यादा के खोखले यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए कहता है – "आप गलत समझ रही हैं, जिस चीज को आप खानदान की इज्जत समझ रही हैं, वह एक खोखली चीज रह गयी है। .... एक जमाना था, जब लोग पढ़े–लिखे नहीं थे, जब उनकी बुद्धि खुली नहीं होती थी, तो इस किस्म की बातें वो किया करते थे। लेकिन आज वे बातें नहीं चलेंगी। जब लड़के–लड़कियाँ पढ़–लिखकर यह समझ लेंगे कि हमारे माँ–बाप झूठे ही अपनी जाति और खानदान के घमंड में चूर रहते हैं तो आपकी बातों को मानने से इनकार कर देंगे। तब वे न आपकी जाति को मानेंगे, न धर्म को।"[8]

वस्तुतः अमरकांत के उपन्यासों में मानवीय संबंधों का सूक्ष्म निरूपण हुआ है। स्वाधीनता के बाद मानव संबंधों में परिवर्तन दृष्टि का विकसित हेना स्वाभाविक था। अमरकांत ने अपने साहित्य को आदर्श और खोखली मर्यादाओं के खोल से निकालकर यथार्थ और मानवीय मूल्यों को स्थापित किया है। उन्होंने 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में उन सामाजिक प्रतिष्ठित लोगों पर कटाक्ष किया है, जो शराफत का चोला पहन अपने घरों में कमजोरों को दबाते है और दूसरों पर छिंटाकशी करते है। उक्त उपन्यास में राजलक्ष्मी उर्फ सुन्नर पांडे की पतोह समाज के कईं प्रकार के प्रतिष्ठित लोगों के बीच कार्य कर चुकी थी। उसने महसूस किया कि–"बाहर से जो सभ्य प्रतिष्ठित और साफ–सुथरे नज़र आते, वे भीतर बेहद चीखते–चिल्लाते थे। वे लगभग सभी अपनी सीधी–सादी, आज्ञाकारी और दिन–रात खटने वाली बीवियों को चौबीस घंटे कोसते रहते, उन्हें अन्य तरीकों से प्रताड़ित करते और दूसरों की बहू–बेटियों को अपने जाल में फंसाने की चाले चलते। घरों के अंदर औरतों की हालत बंद मुर्गियों की तरह थीं, जहां वे आपस में लड़ती, भुनभुनाती, खीजतीं, रोती–कलपती और कराहती। लोग बाहर दूसरों को उपदेश देते और अपने जीवन में उन्हीं उपदेशों का उल्लंघन करते और पड़ोसियों को नीचा दिखाने की योजनाएं बनाते और छल, कपट, फरेब जालसाजी, चापलूसी और धूर्तता से अधिक से अधिक धन कमाने और सफलता प्राप्त करने की कोशिश करते।"[9] इस प्रकार अमरकांत ने राजलक्ष्मी के माध्यम से समाज का कटु यथार्थ प्रस्तुत किया है कि जो सामाजिक मान–मर्यादा व प्रतिष्ठा की बात करते थे, वे ही उन मर्यादाओं को तोड़ते थे।

उपन्यासकार ने अपने उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' में ऐसे लोगों की ओर संकेत किया है। जिनकी मानवीय संवेदनाएं तो मर चुकी है, किन्तु वे सभ्य कहलाने का दंभ भरते है। इस उपन्यास में लंवगलता उर्फ ढेला नामक वैश्या का प्रसंग आया है। लवंगलता को तपेदिक की बीमारी हो जाती है। लंवगलता की मां श्यामदासी अपनी पुत्री के इलाज हेतु उन प्रतिष्ठित लोगों के यहां मदद के लिए जाती है, जिनका कभी उसके पास आना–जाना था। लेकिन वे सभी श्यामदासी से मान–मर्यादा व प्रतिष्ठा के धूमिल होने की वजह से उससे कतराते हैं और अपनी झूठी समस्याओं का हवाला देकर मदद करने से इंकार कर देते है।

श्यामदासी जब एक वकील के यहां मदद मांगने जाती है, तो वकील पहले तो उससे मिलना ही नहीं चाहता, वह कहता है – "यह खूंसट इस समय दरवाजे पर क्यों उपस्थित है? .... फिर यह इज्जत आबरू वालों का घर है, पतिव्रता पत्नी और बड़े–बड़े जिम्मेदार लड़के हैं, हुक्म बजाने वाले आदमी–जन है। अजीब कमबख्त औरत है, कहला दिया कि अकेले में जरूरी बात करनी है। ..... पहले तो देखकर उसका माथा ठनका कि कोई बवालिया मामला है .... नहीं इंतजार में बैठाए रखना ठीक नहीं है। पर जब बात सुनी तो सब कुछ बेजायका हो गया, मुंह में कड़वा–कड़वा फैल गया।"[10] वह बहाना बनाकर श्यामदासी को मदद करने से इंकार कर देता है।

लेकिन श्यामदासी पिछले दिनों की दुहाई देती है, जब वह उसके यहां आया करता था। तब वह अपनी इज्जत की बात करते हुए कहता है – "अरे धीरे बोलिये भाई, जो भी इज्जत बची है, वह सरे आम लुट जाएगी। हमकों तो दोनों ओर का ख्याल रखना पड़ता है। एक ओर आपका तो दूसरी ओर इन लोगों का।"[11]

इस प्रकार अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में समाज के उस कुरूप यथार्थ का निरूपण किया है, जहां व्यक्ति अपनी झूठी प्रतिष्ठा व सम्मान का दिखावा करते है, लेकिन अंदर से वे खोखले हैं तथा उनकी संवेदना मरी हुई है।

आधुनिकता, फैशनपरस्ती व दिखावा

शिक्षा जहां मनुष्य को विनम्र, सहज और चेतन बनाती है, वहीं फैशन व आधुनिकता की अंधी दौड़ ने उसे महत्त्वकांक्षी बना दिया है। पाश्चात्य शिक्षा के साथ–साथ मनुष्य अब पाश्चात्य जीवन की तरफ अधिक झुका दिखाई देता है। उसके मन में नैतिकता के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। फिर भी वह नैतिकता के विषय में बातें करके स्वयं को आधुनिक दिखाने का ढोंग करता है। अमरकांत ने ऐसे आधुनिकता का स्वांग रचने वालों का यथार्थ पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है, जिन्हें अपने से बाहर की दुनिया से कोई लेना–देना नहीं है। वे अपनी झूठी प्रदर्शनप्रियता से किसी की भी मानवीय भावनाओं को क्षति पहुंचाना अपना अहम समझते हैं। ऐसे आधुनिक वर्ग की विशेषताएं है – आत्मकेंद्रित, अनैतिकता का बौद्धिक समर्थन, आस्थाओं का खोखलापन इत्यादि।

'लहरे' उपन्यास का नायक श्यामाप्रसाद ऐसा ही पात्र है, जो गांव से शहर में पढ़ने–लिखने आता है और मामूली नौकरी प्राप्त कर स्वयं को औरो से श्रेष्ठ समझता है। वह शहर की चकाचौंध व आधुनिकता से प्रेरित हो स्वयं को कुलीन व श्रेष्ठ दिखाने का प्रदर्शन करता है। श्यामाप्रसाद "खूब अच्छे ढंग से प्रेस की हुई, नये फैशन की पैंट–कमीज और काले चमचमाते जूते पहन, गर्दन को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ढंग से टेढ़ी करके और सुग्गे जैसी नासिका किंचित सिकोड़कर, धीमी ठुमकी चाल से, बिना किसी को देखे ही यूनिवर्सिटी में चलता जाता, इस विश्वास के साथ कि सभी उसे अत्यन्त प्रतिभाशाली समझेंगे और वहां की सुन्दरतम लड़की उसे प्यार भी करने लगेगी, लेकिन इसके विपरीत उसके अंदर देहाती तथा मामूली हैसियत वाले परिवार का लड़का होने का एहसास और हीनता भी थी।"[12]

श्यामाप्रसाद स्वयं को आधुनिक समझ नारी का उद्धार करने की ढींगे भरता है, जबकि अन्तर्मन से श्यामाप्रसाद नारी को केवल भोग की वस्तु ही समझता है। "वह अपने को अत्यन्त आधुनिक विचार का बुद्धिमान युवक समझता है। वह अपने मित्रों के बीच नारी जाति की मुक्ति की लंबी–चौड़ी और ज्ञान भरी बातें करता। ... इसी समय उसके अंदर ही जब कोई उसे

धिक्कारने लगता, वह शीघ ही एक तार्किक शिखर पर चढ़कर अपने ही पक्ष में तर्क प्रस्तुत करने लगता।[13] इस प्रकार श्यामाप्रसाद आधुनिक बनने का ढोंग करता है, किंतु सच्चे अर्थो में वह विचारों से आधुनिक नहीं बन पाता तथा उसकी कथनी व करनी में भी अंतर होता है। वर्तमान समाज ऐसे आधुनिक लोगों से भरा पड़ा है, जो सभा व गोष्ठियों में बड़ी–बड़ी बातें तो करते है, किंतु समय आने पर किसी की भावनाओं को आहत करने से नहीं चूकते।

वर्तमान युग में मनुष्य भौतिक सुख–सुविधाओं, प्रदर्शनप्रियता, फैशनपरस्ती व दिखावे में विश्वास करता है। मनुष्य विलासी प्रवृत्ति का होता जा रहा है तथा उसकी लालसा सदा साधन संपन्न बनने की रहती है। वस्तुतः आधुनिक बनने की तीव्र उत्कंठा मध्यवर्ग में ही देखी जाती है। "आज सबसे अधिक अंतर्द्वन्द्व से ग्रसित मध्य वर्ग है, क्योंकि वह एक साथ परिवर्तन और स्थिरता का वरण करना चाहता है। .... एक तरफ तो वह आधुनिक और विचारशील बनने का दावा करता है। पर दूसरी तरफ वह उतना ही दकियानूसी दिखाई देता है, क्योंकि वह मूलतः सुरक्षावादी है। उसकी आय तो सीमित है पर चाहत बड़ी ऊँची है। .... वह आधुनिकता और परम्परा के बीच फंसा हुआ है।"[14]

'बीच की दीवार' उपन्यास में "दीप्ति के पिता एक मामूली सरकारी दफ्तर में क्लर्क थे, परन्तु थे वह मस्तमौला। उनको फैशन, गोश्त, शराब तथा संगीत से अत्यधिक प्रेम था। मित्र रिश्तेदार आ रहे हैं, कीमा–कलेजी खाई जा रही है, शराब पानी की तरह ढाली जा रही है, कहकहे लग रहे हैं, संगीत की तानें तोड़ी जा रही है। वह दिन में दो बार कपड़े बदलते थे। एकदम ताजा धुले कपड़े, जो क्रीज और कलफ से कड़कड़ाते रहते। उनके शरीर से सदा सेंट की खुशबू उड़ा करती।"[15] इस प्रकार मामूली नौकरी में इतने फैशन से रहने तथा फिजूल खर्ची के कारण उन्हें कर्ज भी लेना पड़ता। अमरकांत जी ने दीप्ति के पिता के माध्यम से उन लोगों की आधुनिकता व दिखावे का खोखला यथार्थ प्रस्तुत किया है, जो दोहरा जीवन जीते है।

'आकाश पक्षी' उपन्यास सामन्ती विचारधारा पर आधारित कथा है। जब रियासतें खत्म हो गयी और सभी देशी रियासतों को भारतीय संघ में मिला लिया गया, तब सरकार की ओर से इन रियासतों के राजाओं को राजभत्ता प्रदान किया गया, लेकिन यह सुविधा केवल राजावर्ग के लिए थी। उनसे जुड़े परिवार के अन्य बंधुओं की स्थिति अच्छी नहीं थी। उपन्यास की नायिका हेमा के पिता बड़े सरकार राजभत्ता पाने वाले अपने बड़े भाई की दया पर जीवन निर्वाह करते थे। फिर भी वे शान–शौकत दिखाने में पीछे नहीं रहते। वे विलासी, अकर्मण्य, अंहकारी तथा प्रदर्शन प्रिय व्यक्ति हैं।

वस्तुतः राजा के भाई और इनके परिवार के लोगों की हालत त्रिशंकु की तरह ही होती है। न वे राजा ही होते हैं और न राजा के घमंड से मुक्त होते हैं। उपन्यास की नायिका

हेमा स्वगत कथन में कहती है—"जब तक राजा साहब थे, खूब दावतें वगैरह चलीं। हम सभी खाने—पीने और पैसा उड़ाने में अत्यधिक उदार थे, इसलिए अपनी शान—शौकत दिखाने का अब हमारे पास यही तरीका रह गया था। मुझे उन दावतों की याद है, जिनमें शहर के बड़े—बड़े अफसर एवं रईस आए थे। खाने—पीने के साथ शराब का भी दौर चला था। देश में होने वाली अन्य बड़ी—बड़ी घटनाओं से उन्हें कोई मतलब नहीं था। उनकी बातचीत मुख्यतः किसी अनोखी यात्रा या किसी बड़ी दावत या समारोह से संबंधित होती।"[16]

हेमा की माँ की भी अजीब स्थिति थी, रियासत चली गई, लेकिन उनके तेवर और अंदाज अब भी वही है। हेमा के पड़ौसी इंजीनियर साहब की पत्नी जब उनसे मिलने की सूचना भिजवाती है, तब हेमा की माँ कहती है — "हम लोग तो भैया किसी से मिलते—जुलते नहीं। रियासतों के दिनों मे मामूली हैसियत का आदमी तो पास फटकने की हिम्मत भी नहीं करता था। अब तो जमाना ही नीच—गँवारों का हो गया है।"[17] अन्ततः हेमा की माँ राजा साहब की पत्नी से मिलने के लिए राजी हो जाती है, किंतु वह अपनी प्रदर्शन प्रियता तथा दिखावे का कोई मौका नहीं छोड़ती। जब इंजीनियर साहब की पत्नी हेमा की माँ से मिलने उनके घर जाती है, तो हेमा की माँ उच्चता के अहम् में उनके स्वागत के लिए कईं प्रकार के व्यंजन बनवाती है तथा स्वयं को भी वह अच्छे से सजाती है। हेमा स्वगत कथन में कहती है—'माँ ने अपनी सबसे बेशकीमती साड़ी और सभी गहने निकाल लिए। उनके आने के पहले वे खूब सज—धज गयी थी। नख से शिख तक वह गहनों से लद गयी थी। निस्ंदेह अपनी शान—शौकत, अपनी उच्चता एवं अपनी प्रतिष्ठा के लिए वह अपने पूर्ण वैभव का प्रदर्शन करना चाहती थी।"[18] नाश्ते में जो सामग्रियां बनी थी वे इतनी अधिक थी कि कम से कम बीस लोग इत्मीनान से डटकर नाश्ता कर सकते थे। दरअसल हेमा की माँ और बड़े सरकार इसी प्रकार उदारता और फिजूलखर्ची से अपने को औरों से श्रेष्ठ समझते थे। हेमा की माँ इंजीनियर साहब की पत्नी से अपनी उच्चता प्रदर्शित करते हुए कहती है — "खाइए ... और खाइए। आपने तो कुछ नहीं खाया। .... अब यह रसोईघर में लौटकर कैसे जाएगा? .... नौकर—चाकर खा जाएंगे।"[19] हेमा की माँ से इस प्रकार की बातें सुनकर इंजीनियर साहब की पत्नी का मुंह छोटा हो जाता है। उपन्यासकार ने यहां ऐसे सामंती लोगों का यथार्थ प्रस्तुत किया है, जिन्हें दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचाने में आनंद आता है तथा जो फिजूलखर्ची, फैशनपरस्ती तथा दिखावे को अपनी शान—शौकत समझते हैं।

संयुक्त परिवार का विघटन

"संयुक्त परिवार की आधारशिला उसके सिद्धांत, विचारधारा और नियम होते है। जिस परिवार के सदस्यों में एकता, सहयोग, संयम कर्त्तव्यपालन, सहनशीलता और अनुशासन की प्रवृत्ति जितनी अधिक दृढ़ और बलवती होती है, वह उतना ही सशक्त और स्नेहिल होता है।

ऐसे परिवार में भिन्न ज्ञान, भिन्न प्रवृत्तियों तथा भिन्न सामर्थ्य के सदस्य भी सदा एकता के सूत्र में बंधे रहते है।"[20]

वस्तुतः संयुक्त परिवार के कईं लाभ थे। पूरा परिवार साथ मिलजुल कर रहता था। आडम्बर और फैशन से दूर–दूर का नाता नहीं था, मोटा खाना और मोटा पहनना। सभी एक–दूसरे के सुख–दुःख में एक समान भागीदार थे। बच्चों का पालन–पोषण, शिक्षा, गर्भवती महिला की देखभाल, परिवार की विधवा, परित्यक्ता बहन, बेटी, बहू, विकलांग, बेकार निट्ठले लड़के और वृद्ध माता–पिता की देखभाल, सेवा–सुश्रुषा एवं भरण–पोषण आदि कार्यों का दायित्व परिवार के किसी एक व्यक्ति पर न होकर संपूर्ण परिवार मिल–जुलकर पारस्परिक सहमति से प्रसन्नतापूर्वक वहन करते थे।

संयुक्त परिवार के विघटन का कारण नगरों के उत्तरोत्तर विकास, शिक्षा के प्रचार प्रसार के कारण अधिकाधिक लोग कृषि का धीमा, ऊबाऊ कार्य, चींटी की चाल सा धीमा ग्राम्य जीवन त्याग कर शहरों में जा बसे। परिवार के मुखिया का स्वभाव यदि अतिक्रोधी, अहमवादी, आलोचनात्मक, महत्त्वाकांक्षी अथवा अपने से छोटो से अत्यधिक आशा रखने का होता है, तो उसके ऐसे स्वभाव के कारण परिवार के सभी सदस्य व्यथित रहते हैं। ऐसे परिवार में दरारें पड़ जाती है। ऐसे परिवार के सदस्य मार्ग मिलते ही वहां से खिसक लेते है। संयुक्त परिवार बिखरने लगता है।

उपन्यासकार अमरकांत ने संयुक्त परिवार के विघटन का कारण आर्थिक तनाव व कमाने वाले व्यक्ति के द्वारा दूसरे सदस्यों की उपेक्षा का यथार्थ परिदृश्य अपने उपन्यासों में निरूपित किया है। 'काले–उजले दिन' का नायक बचपन से पिता के स्नेह से वंचित रहता है, साथ ही विमाता के नफरत व क्रोध को सहता है। कथानायक का विवाह होने के बाद विमाता द्वारा उसकी पत्नी कांति को भी अनेक प्रकार की यातनाएँ सहन करनी पड़ती है। वह कांति को खाने–पीने के लिए भी नहीं पूछती। कांति छाती फाड़कर सारे घर का काम करती तिस पर उसे सास के ताने भी सहने पड़ते। "साफ–साफ सुन लो तुम मुझसे कोई आशा न करो। .... हमने पाल–पोस कर बड़ा कर दिया। पढ़ा–लिखा दिया। जब लड़का बड़ा हो जाए तो उसको हाथ–पैर चलाना चाहिए। ... तुम जो कुछ जरूरत हो, अपने मर्द से मांगो। ...... मर्द मजबूत रहता है, तो स्त्री को भी सुख मिलता है, पर अगर मर्द ही कमजोर रहे तो स्त्री को कौन पूछे? ऐसी स्त्री तो हर जगह से दुरदुरायी जाती है।"[21] बाद में कथानायक की तार–विभाग में सरकारी नौकरी लग जाती है और वह अपनी पत्नी कांति को लेकर अलग रहने लगता है। इस प्रकार धन कमाने की इच्छा तथा परिवार में बडों का छोटों के प्रति कठोर तथा उपेक्षित व्यवहार के कारण संयुक्त परिवारों का विघटन होना स्वाभाविक है।

'आकाश पक्षी' उपन्यास सामन्ती जीवन पर आधारित है। भारतीय समाज से सामंतवाद खत्म होने पर उनसे जुड़े लोग या राजसी परिवार जो रियासती दौर में साथ रहते थे, वे अब रियासते खत्म होने पर अपने–अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु अलग हो जाते है। राजा साहब व रानी साहिबा दिल्ली चले जाते है और हेमा का परिवार लखनऊ में ही रह जाता है। शायद इसका कारण यह भी था कि राजा साहब अपनी शान–शौकत पूरी करने के लिहाज से अपने छोटे भाई के परिवार को साथ नहीं रखना चाहते थे। हेमा स्वगत कथन में कहती है–"राजा साहब बहुत दिनों तक नहीं टिके। मेरी ताईजी यानी रानी साहब को वहां हम लोगों का साथ रहना पसंद न था। रानी साहब एक आधुनिक किस्म की महिला थी, जो आधुनिक प्रकार के वस्त्र पहनती, अंग्रेजी बोलती और दावतों तथा समारोहों में भाग लेती। वह हमेशा दिल्ली के ही सपने देखती थी, साथ ही वह एक ऐसे तड़क–भड़क के जीवन में प्रवेश करती थीं, जिससे वे पुराने जीवन के शान–शौकत की क्षतिपूर्ति कर सकती थी।"[22] इस प्रकार संयुक्त परिवार के विघटन का कारण व्यक्ति की अपनी स्वार्थपूर्ति भी है। यह एक ऐसा कटु यथार्थ है, जिसमें मानवीय संवेदनाएं सर्वाधिक आहत होती है।

संयुक्त परिवार के विघटन का एक बड़ा कारण साह–बहू के झगड़े तथा आपसी खींच–तान और मनमुटाव है। 'बिदा की रात' उपन्यास में नईमा बेगम का अभी–अभी निकाह हुआ है। नईमा की सास काफी तेज है और वह नईमा को दबाकर रखना चाहती है। जहाँगीरा बेगम, नईमा की सास की देवरानी है। जब नईमा की सास शबनम बेगम और जहाँगीरा बेगम साथ–साथ रहते थे, तो शबनम बेगम ने अपनी देवरानी को काफी तंग किया था। जहाँगीरा बेगम के शैहर करामतुल्ला बेरोजगार थे, वहीं उनके बड़े भाई मोहम्मद बरकतुल्ला कानूनगों से तरक्की करके नायब तहसीलदार हो गये थे। इसका सारा खामियाजा नई–नई जहाँगीरा बेगम को उठाना पड़ा।

"जाहिर है कि जेठानी ने उनको खूब तला और भुना। जब बेरोजगार शौहर के मुहँ में जबान न हो, तो उसकी बीवी की हालत क्या होगी, इसका कयास किया जा सकता है। इसका नतीजा यह निकला कि सहते–सहते जहाँगीरा बेगम के सीने में इतने छेद और जख्म हो गए, जिनमें से कईं आज भी भरे नहीं है और दर्द और जलन से बेहद तकलीफ देते हैं।"[23]

इस प्रकार जहाँगीरा बेगम अपनी जेठ–जेठानी से अलग हो जाती है। वह नईमा के कान भरते हुए कहती है – "अपने शौहर को खुश रखो, और माकूल मौका देखकर अलग मकान लेकर रहो। तुम जानो, जब से मैं देवरिया जाकर इन लोगों से अलग रहती हूँ, मुझे काफी चैन है।"[24] अमरकांत जी ने संयुक्त परिवार में सास–बहू के तनावपूर्ण संबंधों का यथार्थ प्रस्तुत किया है। बहू को सताने में सास महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसलिए भारतीय

परम्परा में उसे धृणा की दृष्टि से भी देखा जाता रहा है। अतः अमरकांत के उपन्यासों में संयुक्त परिवारों के विघटन का यथार्थ, समाज से यह अपेक्षा करता है कि वे एक–दूसरे की संवेदनाओं व भावनाओं का ध्यान रखें।

वस्तुतः "यदि परिवार के सभी सदस्य परस्पर स्नेह, सौहार्द, सहनशीलता, सहयोग और अनुशासन की प्रवृत्ति रखते हुए वर्तमान सोच और नई परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ढाल लें, परिवार के बुजुर्ग सदस्यों की भावनाओं का सम्मान करके उन्हें अपना आदर सम्मान प्रदान करते रहें, उनके दुःख और कष्ट को अपना समझकर संवेदना रखें, उनके प्रति पुरानी सोच को भुलाने का प्रयास करें, तो उनके हृदय से निकले आशीर्वाद से एक दिन अंधेरी कालरात्रि का तमस चीरकर प्रत्यूष का सुनहरा सूरज अपना प्रकाश उनके जीवन में अवश्य फैलायेगा।"[25]

"अपनी समस्याओं के निराकरण के लिए आज के बुजुर्गों को भी अपनी विचारधारा में परिवर्तन लाना नितान्त आवश्यक है। उन्हें अपने रूढ़िवादी विचारों और निरर्थक सड़ी–गली पुरानी परम्पराओं और अपने आलोचनात्मक अधिनायकवादी रवैये को त्यागकर परिवार के युवाओं और बच्चों को प्रेम, स्नेह और आशीर्वाद देकर उनका हृदय जीतना होगा। उनकी भावनाओं और विचारों को ध्यान से समझकर उन्हें अपना आशीर्वाद ओर मार्गदर्शन देना होगा, तभी उनकी सन्तानें और पुत्रवधुएं उन्हें अपने हृदय से आदर और सम्मान दे सकेगी।"[26]

विवाह, प्रेम तथा विवाहेत्तर संबंध

विवाह

विवाह पारिवारिक जीवन का मूलाधार है। यह वह धार्मिक या सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके अनुसार स्त्री और पुरूष, पति–पत्नी के रूप में सम्बन्ध स्थापित करते हैं। पति–पत्नी का स्नेह तथा प्रेमपूर्ण जीवन गृहस्थी में चार चाँद लगा देता है। विवाह परम्परा में पारिवारिक संबंधों में पति–पत्नी संबंध अपने केंद्र रूप में होते है तथा अन्य संबंधों की नीवं रखते है।

वस्तुतः "भारत, धर्म एवं संस्कृति प्रधान राष्ट्र है। भारतीय जीवन पद्धति में पवित्र दाम्पत्य एवं सतीत्व का महत्त्व प्रत्येक काल में अक्षुण्ण रूप से अपना अस्तित्त्व बनाये हुए है। भारतीय दम्पत्ति में विद्यमान प्रेम, विश्वास, निष्ठा, सेवा, त्याग एवं बलिदान ने भारतीय समाज के मूल–भूत ढांचे को बनाये रखा है।"[27]

अमरकांत के उपन्यास साहित्य में विवाह के उजले व धुंधले दोनों पक्षों का यथार्थ देखने को मिलता है। जहाँ एक ओर विवाह बंधन में बंधने के बाद एक–दूसरे की सुविधा–असुविधाओं, रूचि–अरूचि का ध्यान रखना तथा परस्पर विश्वास बनाये रखते हुए

एक–दूसरे को सम्बल प्रदान करना एक सफल दाम्पत्य जीवन का परिचायक है। तो वहीं दूसरी ओर पति–पत्नी के संबंधों में अविश्वास, अहं भावना व स्वार्थ भावना का पाया जाना दाम्पत्य जीवन को कटु बना, कलह का कारण बनता है। दाम्पत्य जीवन की कटुता सम्पूर्ण जीवन को विषाक्त कर देती है।

अमरकांत के उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य संबंधों के प्रति पूर्ण निष्ठा के संबंध में स्त्री पात्र अधिक सजग है। उनमें कर्त्तव्यपरायणता, विश्वसनीयता तथा पतिव्रता रूपी गुणों की स्पष्ट अभिव्यक्त हुई है। 'सुन्नर पांडे की पतोह' एक पतिव्रता स्त्री है। उसका पति अपने माँ–बाप से तंग आकर घर छोड़कर कहीं चला जाता है। लेकिन सुन्नर पांडे की पतोह आजीवन अनेक प्रकार की यातनाओं को सहती हुई उसके आने का इंतजार करती रहती है। लोग तरह–तरह की बातें करते, लेकिन उसने अपने माथे का सिन्दूर हटने नहीं दिया। "वह सिन्दूर माथे के आकाश पर उसी तरह चमकता रहा–स्थिर ध्रुवतारा की तरह। वस्तुतः पहले सिन्दूर का मतलब था पति, बाद में पति का मतलब सिन्दूर हो गया।"[28] इसी प्रकार 'काले–उजले दिन' उपन्यास की कान्ति सीधी–सादी पतिव्रता धर्मपरायण स्त्री है। वह सास–ससुर के ताने सहते हुए भी घर का सारा काम करती है। वह अपने पति की बार–बार हिम्मत बढ़ाती है। उसे पढ़ाई पूरी करने के लिए पैसे व गहने भी दे देती है।

'बिदा की रात' उपन्यास की सुल्ताना बेगम अपने पति मुनीर अहमद की हर प्रकार से फिक्र करती है। वह उसके प्रत्येक कार्य में साथ देती है। सुल्ताना बेगम अपने पति के साथ–साथ घर के और लोगों का भी बहुत ध्यान रखती है। वह अपनी ननद नईमा बेगम को कोई काम करने नहीं देती। वह भी उनसे बहुत खुश है, नईमा बेगम उससे कहती है – "मुनीर अहमद की दुल्हन, अल्ला तुम्हें बरकत दे .... मेरी फ्रिक न करो ....।"[29] इस प्रकार सुल्ताना बेगम अपने पति व परिवार वालों के प्रति सारी जिम्मेदारियों को कुशलतापूर्वक निभाती है। अमरकांत ने अपने उपन्यासों में भारतीय नारी के विपरीत परिस्थितियों में भी कर्त्तव्यपरायण रहने का सत्य प्रस्तुत किया है। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में आनन्दी अपने पति सीताराम का साथ प्रत्येक परिस्थितियों में निभाती है। वह आर्थिक संकट के समय पूरे मनोयोग से अपने परिवार का भरण–पोषण करती है।

'लहरें' उपन्यास की बच्ची देवी को उसका पति श्यामाप्रसाद पसंद नहीं करता, किन्तु श्यामाप्रसाद के बीमार पड़ने पर वह उसकी एक छोटे शिशु के समान देखभाल करती है। इस प्रकार वह एक पतिव्रता नारी है, जो हर परिस्थिति में अपने कर्त्तव्य का पालन करती है।

अमरकांत के उपन्यास साहित्य में पुरूष पात्रों का विवाह के प्रति अत्यन्त कमजोर दृष्टिकोण है। वे वासना के पुजारी, स्वार्थी तथा दिखावे प्रवृत्ति के है। यहाँ लेखक ने

पुरूष पात्रों के माध्यम से स्वयं को पति परमेश्वर तथा पत्नी को दासी समझने वाले पुरूषों का नग्न यथार्थ प्रस्तुत किया है।

'पराई डाल का पंछी' उपन्यास में अहिल्या एक पतिव्रता नारी है। वह अपने पति व बच्चों का पूरा ध्यान रखती है, किंतु दीपक स्वयं के ही विषय में सोचने वाला तथा अपनी मौज–मस्ती व गुलछर्रो में समय व्यतीत करने वाला अत्यन्त ही स्वार्थी प्रवृत्ति का पुरूष है। अहिल्या यदि अपना कभी कोई दुःख भी उससे बांटना चाहती, तो वह अपने किसी काल्पनिक दुःख की बात छेड़ देता और इस तरह वह अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों से दूर भागता। "अहिल्या चारपाई पर आते ही अपने शरीर के कष्ट की बात करती थी। ...... परन्तु दीपक उसके कष्ट की बात पर ध्यान नहीं देता था। इसका अर्थ होता उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करना, कर्त्तव्यपूर्ण यथार्थ को मंजूर करना, जिससे वह दूर भागता था।"[30]

दीपक अपनी पत्नी में जानबूझकर खामिया ढूंढ कर दूसरों को बताया करता। दीपक जब अपने मित्र टंडन के यहां मिलने जाता है, तो वह टंडन की पत्नी का सामीप्य व सहानुभूति प्राप्त करने के उद्देश्य से अपनी दुःखद शादी–शुदा जिंदगी के बारे में झूठ कहता है – "मैने सोचा था कि शादी ब्याह करके कुछ शांति मिलेगी, लेकिन वह न होना था। मैंने शुरू से ही उसके सुख–दुःख का इतना ख्याल रखा ..... जैसे मैं उसका नौकर हूँ .... सारा काम करता हूँ ... ... तिस पर न समय पर खाना, न समय पर नाश्ता।"[31] दीपक विवाह के मर्यादित व पावन बंधन की सर्वथा उपेक्षा किया करता। चूंकि टंडन की पत्नी निर्मला एक अच्छी स्त्री है, इसलिए उसे दीपक द्वारा की गयी निंदा अच्छी नहीं लगती, वह उसके प्रत्युत्तर में अपने पति की बढ़ाई किया करती। एक दिन उसने दीपक का मुंह बंद करने के लिए कहा –"असल बात यह है कि घर–गृहस्थी अकेले नहीं चलती, उसमें दोनों की मदद चाहिये ......।"[32] यह सुन दीपक हतप्रभ हो गया। वास्तव में इस बात ने दीपक को यथार्थ धरातल पर ला दिया।

'विवाह' स्त्री की नियति समझा जाता है। इसी कारण स्त्री को पुरूष से बंधना पड़ता है। चाहे पति कैसा भी हो शराबी, जुंआरी, कबाबी या फिर वैश्यागमन करता हो वह प्रतिकार नहीं करती। आखिर वह उसे छोड़कर कहां जाए। 'आकाश पक्षी' उपन्यास में हेमा के पिता में यह सभी दुर्गुण विद्यमान है। वह अपनी पत्नी से विश्वासघात करता है तथा अपनी वासना की पूर्ति हेतु कोठो पर जाता है। इतना ही नहीं हेमा की माँ राजा साहब को महाराजिन के साथ रंगे हाथों पकड़ लेती है। राजा साहब द्वारा माफी मांगने पर वह उन्हें क्षमा कर देती है, क्योंकि वह उनसे विवाह के बंधन में बंधी है। हेमा स्वगत कथन में कहती है–"माँ ने बड़े सरकार को माफ कर दिया था। इसके अलावा वह कर भी क्या सकती थी? वह बड़े सरकार की नियति से बँधी हुई थी। वह नियति क्या थी? वह नियति तेजी से हमकों नीचे गिराती जा रही थी, किसी

ऐसी अँधेरी खाई में जिसकी गहराई का अनुमान नहीं था। उस नियति ने हमारे भविष्य, हमारे सपनों और हमारी आकांक्षाओं को सदा–सदा के लिए नष्ट कर दिया।"[33] हेमा की माँ के समान हेमा भी अपनी नियति से समझौता कर लेती है और रवि के प्रेम को भूलकर अपने से दोगुने से भी ज्यादा उम्र के व्यक्ति से विवाह करने को तैयार हो जाती है। यह सब वह अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए करती है। वस्तुतः हेमा के माता–पिता विवाह रूपी रिवाज की आड़ में अपनी बेटी का सौदा कर लेते है ताकि उनका खर्चा चलता रहे और वे ऐशो आराम की जिंदगी जी सके।

वास्तव में अनमेल विवाह की समस्या हमारे समाज का एक कड़वा यथार्थ है। कुछ साधन–सम्पन्न लोग अपने अहं, स्वार्थ व वासना की पूर्ति हेतु विवाह जैसी पवित्र रीति का दुरूपयोग कर अपनी स्वार्थसिद्धि करते है। लेकिन इसके कारण कईं छोटी कन्याओं का सारा जीवन बर्बाद हो जाता है। छोटी सी उम्र में उन पर गृहस्थी का बोझ लाद दिया जाता है और अपने से कईं ज्यादा उम्र के व्यक्ति से शादी करके उनका जीवन नरकीय बन जाता है।

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में नीलेश के फूफा के कोई सन्तान नहीं है। उसकी बुआ उसके फूफा जी का विवाह एक बारह वर्षीय कन्या से करवा देती है। यहां भी हेमा के समान ही एक कम उम्र की लड़की का विवाह एक साठ वर्षीय बूढ़े व्यक्ति से करा दिया जाता है और उस पर परिवार को चलाने की जिम्मेदारी जबरदस्ती थोप दी जाती है। विवाह पश्चात् उसे कई प्रकार की यातनाओं से गुजरना पड़ता है। "हुलासोदेवी अशिक्षित, लड़कबुद्धि, बेहद सीधी और मेहनती थी, जिसे उसके पति ने बारह वर्ष की अवस्था में ही बड़ी–बूढ़ी पत्नी के सुपुर्द कर दिया, जिससे वह शऊर, अन्य तौर–तरीके तथा दाम्पत्य प्रेम के जरूरी गुर सीखे और संतान का जन्म हो। बुजुर्ग पत्नी ने अनुभवी, पड़ोसिनों तथा दाइयों की सलाह से पति और सौत, दोनों की ताकत और उत्पादन क्षमता वाले खाद्य पदार्थ खूब खिलाए–पिलाए, अचूक तरीके भी बताए गए, मगर दो वर्ष के प्रयास के बाद भी परिणाम नगण्य रहा तो बाँझ–बाँझ की फुसफसाहट आने लगी।"[34] इस प्रकार हुलासोदेवी को हमेशा फटकार, व्यंग्य और ताने सुनने पड़ते। विवाह की इस नियति ने उसे जिंदगी भर के लिए जकड़ लिया था। वह सबेरे से रात तक बुजुर्गियत का अभिनय करती और नौकरानी की तरह इसे अपनी नियति तथा कर्त्तव्य समझ दौड़ती रहती।

अमरकांत ने हुलासो देवी के माध्यम से विवाह का सर्वथा घृणास्पद यथार्थ प्रस्तुत किया है, जो किसी भी नारी के लिए अत्यंत पीड़ादायक, नरकीय तथा भय–आतंक से भरा सर्वथा असहनीय है।

प्रेम

प्रेम मानव हृदय की उदात्त और अनिवार्य अनुभूति है। यह पवित्र और मौलिक भावना है। त्याग, बलिदान व समर्पण इसके अनिवार्य तत्त्व है। प्रेम एक भावात्मक पक्ष है, जो मनुष्य जीवन को सरस बनाकर उसकी चित्तवृत्ति का परिष्कार करता है। अमरकांत जी के 'सूखापत्ता', 'बीच की दीवार', 'काले–उजले दिन', 'आकाश पक्षी' इत्यादि लगभग सभी उपन्यासों में 'रोमान्टिक एटीट्यूड' देखने को मिलता है। उनके उपन्यास साहित्य में प्रेम अपने सशक्त व यथार्थ रूप में सामने आया है। इसकी सशक्त अभिव्यक्ति 'बीच की दीवार' उपन्यास में हुई है। उपन्यास की नायिका दीप्ति पूर्व में अशोक के प्रति आकर्षित होती है तत्पश्चात् वह मनफूल के भँवर–जाल में फंसकर संघर्ष करती हुई आगे बढ़ती है और अंततः मोहन के रूप में पवित्र व निःस्वार्थ प्रेम को पाकर वांछित मंजिल प्राप्त करने में सफल होती है। उपन्यास के अंत में दोनों प्रेमी विवाह के पवित्र बंधन में बंध जाते हैं और एक–दूसरे का मनोबल बढ़ाते हुए सच्चे प्रेमी की तरह जिंदगी भर साथ निभाने की कसमें खाते है। मोहन दीप्ति से कहता है – "हम एक–दूसरे को सहारा और बल देंगे और आगे बढेंगे। तुम पर मुझको गर्व है। यह सब तुम्हारी वजह से हुआ, नहीं तो मैं कमजोर दिल का व्यक्ति हूँ। हम दोनों एक'–दूसरे के योग्य बनेंगे।"[35] उपन्यासकार ने यहां प्रेम के आदर्श रूप के साथ–साथ दीप्ति के संघर्ष को बताकर उसका निरूपण यथार्थ धरातल पर किया है।

'आकाश पक्षी' उपन्यास में हेमा और रवि के आदर्श प्रेम को समाज के बंधनों से लड़ते हुए दिखाया गया है। समाज के भीषण व दकियानूसी परम्पराओं के बीच आदर्श प्रेम दम तोड़ देता है। यह समाज का कटु यथार्थ है, जहां सड़ी–गली मान्यताओं के चलते युवापीढ़ी को अपने भविष्य से समझौता करना पड़ता है।

हेमा रजवाड़े परिवार से है। वह सामन्ती जीवन से घृणा करती है। हेमा रवि के आदर्श रूप को पसंद करती है। रवि देश की तरक्की, स्त्री शिक्षा की बात करता है और भ्रष्टाचार व सामन्तवाद को देश के कोढ़ के रूप में देखता है। दोनों एक–दूसरे को प्रेम करते है। हेमा कहती है–"मैंने कई बार उससे कहा था कि उसके एक संकेत पर मैं बड़े–से–बड़ा त्याग कर सकती हूँ, क्योंकि उसका मार्ग सच्चरित्र का मार्ग है और हम लोगों का प्यार भी सच्चा है।"[36] लेकिन दोनों का विजातीय होने तथा हेमा के माता–पिता की खोखली सामंती विचारधारा के कारण उनका विवाह नहीं हो पाता। हेमा अपने परिवार के ऐशो आराम के खातिर अपने प्रेम का त्याग कर देती है। यहां प्रेम का आदर्श रूप तो दिखाई देता है, किंतु यथार्थ के धरातल पर उसकी जड़े अत्यन्त कमजोर हैं। हेमा सामंती जीवन और उससे जुड़ी सड़ी–गली मान्यताओं को चाहकर भी नहीं छोड़ पाती।

'सूखा पत्ता' उपन्यास का नायक कृष्णकुमार उर्मिला से प्रेम करता है। दोनों एक–दूसरे का सदा साथ निभाने और विवाह करने की प्रतिज्ञा करते हैं, किन्तु जाति से भिन्न होने के कारण उनके परिवार वाले उनका विरोध करते है। कृष्ण कुमार के पिता द्वारा विरोध किये जाने पर वह उनसे साफ शब्दों में कहता है – "ठीक है, पर मैंने भी यह निश्चय कर लिया है कि यदि शादी करूँगा तो उर्मिला से ही। मैंने वचन दिया है और उससे विचलित होना नामुमकिन है। अपने वचन के अनुसार कार्य करना मैं अपना धर्म समझता हूँ।"[37] उर्मिला भी घर वालों तथा रिश्तेदारों की हर प्रकार से उपेक्षा व प्रताड़ना सहने के बावजूद अपने निर्णय पर दृढ़ रहती है। वह कृष्ण कुमार को अपने अंतिम पत्र में कहती है – "आप जी छोटा न कीजिए। मैं केवल आपकी हूँ। आप जब भी कहेंगे मैं सब कुछ छोड़कर आपके पास आ जाऊँगी।"[38] यथार्थतः अथाह प्रेम की दृढ़ता के बावजूद भी उनका प्रेम समाज की खोखली मान्यताओं व परम्पराओं को नहीं तोड़ पाता।

'काले–उजले दिन' उपन्यास के माध्यम से अमरकांत ने यहां प्रेम का त्रिकोणीय तथा विचित्र रूप प्रस्तुत किया है। जिसका अंकुरण भी यथार्थ धरातल पर ही संभव है। 'काले–उजले दिन' का नायक विवाहित है, किन्तु वह रजनी से प्रेम करता है। रजनी भी उससे आकर्षित हो उसे प्रेम करने लगती है। आकर्षण व भावुक क्षणों में उत्पन्न प्रेम अन्ततः उच्चादर्श को प्राप्त कर अपनी मंजिल प्राप्त कर लेता है। कथानायक अपने प्रेम के विषय में अन्तर्मन में विचार करता है–"एक समय था, जब मैं रजनी के शरीर और सौन्दर्य के लिए व्याकुल रहता था, लेकिन अब मैं उसकी आत्मा को उसकी ऊँचाईयों को उसके गुणों को अपने हृदय में महसूस किया करता था। उसके व्यक्तित्व ने मेरे सारे जीवन को बदल दिया था। ......रजनी के प्यार ने त्याग की अनिवार्यता में श्रद्धा एवं पूजा का रूप धारण कर लिया था।"[39] उपन्यास के अंत में जब नायक की पत्नी का अंत हो जाता है और कथानायक निराशा और पश्चात्ताप की अग्नि में जलता रहता हैं, तो रजनी उसके जीवन को अपनी सहानुभूति व प्रेम से फिर से संवार देती है।" वह नायक को समझाते हुए कहती है – "आपको ऐसा नहीं सोचना चाहिए। पुरानी बातों को भूलकर नयी जिंदगी प्रारम्भ करनी चाहिए। ...... आशा है, आप मुझे, जैसी मैं हूँ, स्वीकार करेंगे।"[40]

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में नीलेश व नम्रता किशोरावस्था से ही एक–दूसरे के प्रति आसक्त थे और मन ही मन एक–दूसरे को चाहने लगे थे। नीलेश विद्यार्थी होने के साथ–साथ देश को आजाद कराने हेतु गांधी जी के आंदोलन में भाग लेता है तथा देशव्यापी कार्यों में सक्रिय रहकर अपने देशभक्त होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। वहीं नम्रता, नीलेश को अपना आदर्श मान चरखे पर सूत कातते हुए स्वाभिमानी जीवनयापन करती है तथा देशव्यापी आंदोलनों व जुलूस में भाग लेती। गरीब, दुःखिया स्त्रियों को अक्षर ज्ञान करवाकर, उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने में उनकी मदद करती है। इस प्रकार दोनों के उद्देश्य एक होने से उनके

प्रेम मे भी प्रगाढ़ता आ जाती है, किंतु देश आजाद होने के पश्चात् नीलेश एक समाजवादी नेता अनिरूद्ध दास का पी.ए. हो जाता है। वहां नीलेश की दोस्ती अनिरूद्ध दास की बेटी प्रियादास से प्रगाढ़ हो जाती है। नीलेश स्वयं को भावी नेता और आधुनिक युवा के रूप में देखने लगता है। वह नम्रता को भूल जाता है। इधर अनिरूद्ध दास चुनाव जीत जाते हैं। एक दिन अकेले में नीलेश को नम्रता की याद आती है। वह नम्रता को मिलने के लिए कम्पनी गॉडर्न में बुलाता है। नम्रता नीलेश के द्वारा अपमानित किये जाने पर भी उससे मिलने जाती है। नम्रता का प्रेम स्थायी व दृढ़ है। लेकिन इसके साथ ही वह एक स्वाभिमानी नारी है अतः वह उसके प्रेम को ठुकरा देती है। वह कहती है – "स्त्री तो धरती के समान है, हमेशा देने के लिए तैयार है, इसलिए निजी सुख और महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए पुरूष उस पर सम्पूर्ण अधिकार चाहता है। उसे अपना अहंकार प्यारा है, इसलिए उसे दूसरे का ख्याल नहीं रहता। उसे अपना सुख चाहिए, तब वह नहीं देखता कि कहाँ क्या टूटा, क्या विभाजित हुआ। मेरे पास कुछ भी नहीं बचा है अब। मैंने तुम्हें सब कुछ दे दिया था, तुमने उसके दो टुकड़े कर दिए। मैं जैसी हूँ, वैसी ही रहने दो, मेरे और टुकड़े करने की कोशिश न करो। मैं अपने लिए जगह तलाशूँगी, टुकड़ो को जोड़ने की कोशिश करूँगी – कैसे, मैं स्वयं नहीं जानती। मैं शायद अपने को जोड़ नहीं पाऊँ, लेकिन सदा ऐसा नहीं होगा। आगे जरूर कोई स्त्री होगी, जो अपने को विभाजित नहीं होने देगी। तुम कभी मेरे पास न आना, न कभी बुलाना, न कुछ लिखना और न ही कोई सन्देश भेजना इसलिए कि तुम स्वयं विभाजित हो, तुम्हारे दो टुकड़े पहले ही हो चुके हैं।"[41] नम्रता के मुख से यह बाते कहलवाकर अमरकांत भारतीय नारी की स्वाभिमानी झलक प्रस्तुत करने में सफल हुए है। नम्रता अपने स्वाभिमान के साथ–साथ प्रेम की रक्षा करने में भी सफल होती है। उसका प्रेम स्वार्थ पर आधारित नहीं है। वह नीलेश को स्वार्थी व अवसरवादी पुरूष से साक्षात्कार करवाकर यथार्थ धरातल पर लाकर छोड़ देती है।

विवाहेत्तर संबंध

"मनुस्मृति कालीन संबंधों के अनुसार पत्नी पति को देवता समान पूज्य मानती थी। पति को वह अपना सब कुछ समर्पित करती थी। पति शराबी हो, कोढ़ी हो, घर के बाहर उसकी चार या दस प्रेमिकाएँ हो, फिर भी वह पूजनीय था। आज सब कुछ बदल गया है। आज वह जरूरी नहीं है कि पति से ही या पत्नी से ही प्रेम किया जाए, पति और प्रेमी तथा पत्नी और प्रेमिका दोनों एक ही हो। स्वच्छंदी, उन्मुक्त जीवन जीने की चाह में स्त्री–पुरूष, नैतिक बंधनों को ढ़कोसला मानते है। इसी कारण विवाहेत्तर संबंध पनप रहे हैं, जिससे पारिवारिक तनाव बढ़ रहे हैं। पति–पत्नी के बीच कोई तीसरा व्यक्ति आने से समस्या उत्पन्न होती है। एक–दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। परिणाम परिवार का विघटन होता है।"[42]

'आकाश पक्षी' उपन्यास में बड़े सरकार के अपनी पत्नी के अलावा कईं औरतों से संबंध है। बड़े सरकार अन्य औरतों से संबंध बनाने के लिए कारोबार का बहाना बनाकर अन्य शहरों में निकल जाते। हेमा इस संबंध में कहती है—"बड़े सरकार का साथ—संग अच्छा नहीं था। उनका आचरण हर दृष्टि से भ्रष्ट था। वह जुंआ खेलने तथा शराब पीने के अलावा कोठे पर भी जाते थे।"[43] बड़े सरकार विलासी प्रवृत्ति के व्यक्ति है। उनके संबंध घर पर काम करने वाली महाराजिन से भी थे, जिसका पता रानी साहिबा को चल जाता है। हेमा स्वगत कथन में कहती है—"उस रात में जब उस बात से निश्चित होकर की माँ सो गयी है, वह उठे तो कुछ देर बाद माँ भी उठीं, धीरे—धीरे वह उनके पीछे गयी। वह रसोई बनाने वाली के कमरे में घुसे और भीतर से उन्होंने दरवाजा बंद कर लिया।"[44]

'ग्रामसेविका' उपन्यास में प्रधान जी की गिनती गाँव के सम्पन्न वर्गों व आदर्श लोगों में होती है। लेकिन भीतर से वे एकदम चरित्रहीन है। उनके संबंध गाँव की कईं महिलाओं से है। उन्होंने यह संबंध जबरदस्ती स्थापित किए हैं। इसके लिए वे कईं प्रकार के हथकण्डे अपनाते है। कभी वे किसी के मर्द को पिटवा देते या किसी गरीब विधवा का सहरा बन बैठते। अपने संबंधों व करतूतों के विषय में प्रधान जी मन ही मन प्रंशासात्मक भाव से स्वगत कथन में कहते हैं—'पासी टोली की सरस्वती हत्थे पर ही नहीं चढती थी। क्या मदमाती जवानी थी उसकी पके महुए की तरह उसका शरीर था, जैसे रस टपकना ही चाहता हो। उसका पति बहुत सीधा—सादा था, परन्तु स्त्री बहुत ही होशियार थी। उन्होंने कितना रूपया उसके पति को खिलाया था, लेकिन सरस्वती हाथ में रेत की तरह बिछल जाती थी। आखिर में प्रधान जी ने उसके पति को बुरी तरह पिटवा दिया था, किन्तु ऊपर से उन्होंने उसकी दवा—दारू कराई, रिपोर्ट लिखने के लिए थानेदार को अपने साथ लेकर आए थे। रूपये—पैसे दिए थे और एक रोज सरस्वती को अकेले में पकड़ लिया था। वह कुछ नहीं बोली थी। वह रोती हुई उनकी गोद में आ गिरी थी। उपकार बहुत बड़ी चीज है। संकट में उपकार का अस्त्र अचूक होता है।"[45] वस्तुतः यह समाज का वीभत्स यथार्थ है, जहाँ प्रधान जी जैसे लोग वैसे तो मान—सम्मान और धर्म की बातें करते है, लेकिन समय आने पर विधवा स्त्रियों व नीच जाति की स्त्रियों से संबंध बनाने में भी नहीं चूकते।

अमरकांत के उपन्यासों के अधिकतर पुरूष पात्र अपनी सीधी—सादी पत्नी के प्रति उदासीन रहते है तथा अपनी यौन तृप्ति के लिए वे कोई पढ़ी—लिखी व फैशनेबुल लड़की को अपना शिकार बनाते है। वे आधुनिक लड़कियों को प्रेम जाल में फंसाकर सिर्फ अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं।

'काले—उजले दिन' के नायक का विवाह कान्ति से बहुत कम उम्र में ही हो जाता है। कान्ति उसकी हिम्मत है और वही उसका आदर्श। किन्तु नायक का मन एक

पढ़ी–लिखी, सुन्दर और फैशनेबुल स्त्री को पाने के लिए बैचेन रहता है। वह उसी के दफ्तर में काम करने वाली रजनी के प्रति आसक्त हो, उसे प्रेम करने लगता है। रजनी भी उसे प्रेम करती है। वह रजनी से मिलने के लिए बैचेन हो उठता है। नायक के रजनी के साथ आन्तरिक संबंध हो जाते है। इस संबंध में वह कहता है–"रजनी मुझे दोगुनी आतुरता से मिलती थी। उसके प्यार से ऐसा प्रतीत होता, जैसे वह जन्म–जन्म की भूखी प्यासी है। वैसे प्यार का प्रतिदान करने के लिए मैं पागल हो उठता। उस समय मेरा आत्मविश्वास और अहंकार कितना बढ़ जाता था।"[46]

इसी प्रकार 'बीच की दीवार' का मनफूल विवाहित है। लेकिन उसका मन भी किसी आधुनिक लड़की के लिए मचलने लगता है। वह दीप्ति को अपने प्रेम जाल में फंसा लेता है। मनफूल और दीप्ति को प्रेम केलि करते उसकी पत्नी लीला पकड़ लेती है। "मनफूल ने दीप्ति का हाथ अपने हाथ में ले लिया था। वह उसके हाथ को सहलाए जा रहा था। दीप्ति उससे सटी जा रही थी। ...... लीला ने अपनी चाल तेज कर दी। जब वह भी अँधेरे में घुसी तो वे आंलिग्नबद्ध थे। पैरों की आहट सुनकर वे फौरन छटक अलग हो गए।"[47]

वस्तुतः अमरकांत के उपन्यासों में विवाहेत्तर संबंध, समाज की विकृत मनोदशा को प्रस्तुत करता है, उनके अन्य उपन्यास 'सुन्नर पांडे की पतोह' में रामजस तिवारी, सुन्नर पांडे के बहनोई थे। सुन्नर पांडे की पतोह पर उनकी बुरी नजर थी। उनकी उम्र लगभग साठ वर्ष के पास थी। उनके दो लड़के भी थे। सुन्नर पांडे की पतोह को अकेली व बेबस जानकर उनका मन उससे संबंध बनाने के लिए तड़प उठता। उन्हें जब भी अवसर मिलता, वे सुन्नर पांडे की पतोह को छूने का प्रयास करते, एक दिन जब रामजस तिवारी ने मेले की भीड़ में सुन्नर पांडे की पतोह का हाथ पकड़ लिया, तो सुन्नर पांडे की पतोह ने हाथ के कड़े से रामजस तिवारी पर प्रहार कर दिया और रामजस तिवारी दर्द के मारे बिलखने लगा। इस प्रकार सभ्य समाज में एक ही कुटुम्ब के रिश्तेदार होते हुए भी रामजस तिवारी जैसे लोग बेसहारा व असहाय औरतों का फायदा उठाने की कोशिश करते हैं।

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास का दामोदर विवाहित होते हुए भी विवाहेत्तर संबंधों की इच्छा रखता है। उसकी नजर उसके एक मित्र बनवारी की पत्नी भगजोगिनी पर शुरू से थी जब से वह ब्याह कर आई थी। उसके मन में भगजोगिनी को प्राप्त करने की तीव्र उत्कंठा है। संयोगवंश बनवारी की मृत्यु तपेदिक के कारण हो जाती है। इसका नाजायस फायदा उठाकर वह भगजोगिनी को हासिल करने के उद्देश्य से उसकी पैसे से मदद करने लगता है। दामोदर कई प्रकार के छल–प्रपंच व कूटनीतियों के माध्यम से भगजोगिनी से रिश्ता जोड़ने के लिए उसे राजी कर लेता है। भगजोगिनी की सास भी स्वार्थवश अपनी बहू का गन्धर्व विवाह दामोदर के साथ करवा देती है।

वस्तुतः गन्धर्व विवाह दामोदर के लिए कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। वह तो केवल अपनी यौनिच्छा की पूर्ति हेतु उन्हें ठगता रहता है। वह भगजोगिनी की सास से किसी को कुछ नहीं बताने के लिए कहता है। वह कहता है – "चाची मैंने शिवजी की इच्छा बताई। कोई ढिंढोरा पीटना थोड़े ही है। भगवान की भी यही इच्छा है कि किसी को कुछ न बताया जाए और दोनों परिवार में सुख का सागर लहराता रहे। मेरा दुर्भाग्य है कि पहले से ही अपना एक घर–परिवार है, उसके लिए मेरा फर्ज तो कुछ न कुछ होता ही है। उनको छोड दूँ और यहाँ धूम–धाम से शादी कर लूँ, तो बड़ा भभ्भड़ होगा। .... बवाल मचेगा। यह बड़ा जालिम शहर है चाची, लोग जीने न देगें। मेरे पास बड़ा पैसा है। .... मैं सबको खूब सुख दूँगा ..... बच्ची को पढ़ाकर शादी करूँगा, बच्चे को पढ़ाकर सरकारी नौकरी दिला दूँगा। सब चुपचाप शान्ति से होगा, जाति–बिरादरी का सवाल नहीं उठेगा, सबकी इज्जत बची रहेगी।"[48] इस प्रकार दामोदर भगजोगिनी से विवाहेत्तर संबंध बनाने में सफल हो जाता है।

निष्कर्षतः अमरकांत के लगभग सभी उपन्यासों में विवाहेत्तर संबंधों का समाज की परिपाटी से विपरीत किंतु, समाज में ही घटित होने वाले कटु यथार्थ का चित्रण हुआ है।

प्रणय बनाम यौन चेतना

"फैशन के बदलते रूपों, संचार–माध्यमों यथा–सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन आदि द्वारा प्रसारित चमक–दमक, जीवनमूल्यों के संक्रमण से प्रणय संबंधी परम्परागत आदर्श अब खण्डित होकर बिखरने लगे है। प्रेम की पवित्र भावना स्त्री–पुरूष के शारीरिक आकर्षण तक जा पहुँची है। वर्तमान संघर्ष के दौर में प्रणय की धारणा जैसे अपना अर्थ ही खोती जा रही है। व्यक्ति में प्रणय का तत्त्व गौण होता जा रहा है तथा यौन चेतना प्रधान होती जा रही है।"[49]

अमरकांत ने अपने लगभग सभी उपन्यासों में यौन–चेतना व दमित इच्छाओं का भयावह व घृणित यथार्थ प्रस्तुत किया है। 'लहरें' उपन्यास में श्यामाप्रसाद अपनी दमित इच्छाओं की पूर्ति हेतु मोहल्ले की स्त्रियों को देखकर भद्दे इशारे तथा प्रणय याचना करता है। वह "ऐसी भंगिमाएं और मुद्राएं बनाता है, जैसे सूर्य नमस्कार या कोई योग–प्राणायाम कर रहा है और उन्हीं के बीच में भद्दे इशारे भी जैसे ये उन्हीं के अभिन्न अंग है। वह कभी मुस्कुराकर दोनों हाथ माथे पर जोड़ देता और कभी दोनों हाथों के अंगूठों को क्रमशः दोनों कानों के बीच टिकाकर उंगलियों का संचालन इस ढंग से करता, मानों बुला रहा हो। प्यार भरी तिरछी धारदार दृष्टि से और कभी अत्यन्त कारूणिक मुद्रा बनाकर देखता जैसे याचना कर रहा हो और कभी–कभी लोलुप तन्मय मुस्कुराहट के साथ पलकों को कोमल संकेंतो से झपकाता।"[50]

वस्तुतः सभ्य समाज के पुरूष का एक कटु यथार्थ है कि वह अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति हेतु छोटी–छोटी बालिकाओं को भी इसका शिकार बनाने में नहीं चूकता। 'सुन्नर

पांडे की पतोह' उपन्यास में माहेश्वर पांडेय जो रिश्ते में राजलक्ष्मी (सुन्नर पांडे की पतोह) की माँ सुरसती के जीजा लगते थे, उनके यहां रहने आये। एक दिन घर में दस वषीर्य राजलक्ष्मी को अकेला पाकर उनके अंदर कुंठित यौन भावनाएँ हिलौरे लेने लगी। "पचकौड़ी तिवारी के जाते ही माहेश्वर पांडेय के दिल में एक शैतान अचानक भयावह और विशाल आकार धारण करने लगा अथवा पहले से ही उनके अंदर वह शैतान विद्यमान था? वह धीरे से किसी चोर की तरह दालान के अंदर चले गए, भीतर से दरवाजा बंद कर लिया और चुपके से उस कोठरी के दरवाजे पर जाकर खड़े हो गए, जिसमें राजलक्ष्मी सोई थी। वह गम्भीर मुद्रा में थी और निःशब्द सो रही थी। दरवाजा पहले से ही खुला था। राजलक्ष्मी एकदम बच्ची थी, निर्दोष व अनजान, पर माहेश्वर पांडेय की हैवानियत खूँटा तोड़कर बेतहाशा दौड़ने लगी।"[51]

इसी प्रकार इसी उपन्यास के अन्य उदाहरण में रामजस तिवारी अपनी पत्नी के साथ ददरी मेला देखने ससुराल आते हैं। वह रिश्ते में सुन्नर पांडे के बहनोई है, किंतु जब वह सुन्नर पांडे की पतोह को देखते है तो नैतिकता भूल जाते है। "बिना पति की जवान औरत गुड़ के समान होती है और उनकी हालत एक चींटें की तरह हो गई। वह जब मौका मिलता सुन्नर पांडे की पतोह को बुरी तरह घूरने लगते। वह या तो वहाँ से हट जाती या घूँघट को और लम्बा कर लेती। जब वह दूसरे आँगन में कुँए से पानी भरने जाती। रामजस तिवारी पता नहीं किधर से पहुँच जाते और बहुत मीठी आवाज में बोलते—अरे दुलहिन, लाओ मैं भर देता हूँ .... तुम थक जाओगी। मैं नहीं जानता था कि तुमसे इतना काम लिया जाता है।"[52]

अतः पुरूष प्रधान समाज में, पुरूष नारी पर अपना पूर्ण अधिकार समझता है। वैसे भी सामाजिक व्यवस्थानुसार नारी अपना जीवन पिता, भाई, पति व पुत्र के संरक्षण में ही रहकर काटती है। समाज द्वारा स्थापित इस व्यवस्था को पुरूष प्रधान समाज ने नैतिकता का नाम दिया हुआ है। बाद में यह पुरूष प्रधान समाज ही नैतिकता के बंधनों को तोड़ता नजर आता है।

'बीच की दीवार' उपन्यास में मनफूल अपनी यौनिच्छा की पूर्ति हेतु दीप्ति को अपने प्रेम जाल में फांसता है। वह उसे संगीत शिक्षा के लिए प्रेरित करता है तथा कसरत करके शरीर को मजबूत बनाने के लिए उत्साहित कर उसे विश्वास दिलाता है कि वह उसका हितैषी है। वह अपनी पत्नी से झूठ बोलकर उससे मिलता है। वह शारीरिक सुख तथा वासना की तृप्ति हेतु व्याकुल हो उठता है। वह मन ही मन विचार करता है —"अब वह अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता, विलम्ब करने से हो सकता है, सारा काम बिगड़ जाए। हर बात का एक अवसर होता है। अब अवसर आ गया है कि वह साहस का परिचय दे और जबरदस्ती सुख को अपने अधीन कर ले।"[53]

'कंटीली राह के फूल' का नायक अनूप कामिनी से प्रेम करता है, लेकिन वह 'मधु' के मांसल शरीर पर भी मोहित है। "प्यार मैं कामिनी को ही करता था, लेकिन मधु से मुझे मोह हो गया था। मैं उसको त्यागना चाहता था, परन्तु वह मनुष्य की उस दुर्बलता की तरह थी, जिससे वह घृणा करना चाहता है, परन्तु कर नहीं पाता और अवसर पाकर दबोच लेती है।"[54] अतः 'बीच की दीवार' उपन्यास का मनफूल तथा 'कंटीली राह के फूल' का नायक अनूप दोनों में ही प्रेम भावना गौंण रूप में तथा यौनिच्छा अपने प्रबल रूप में दिखाई देती है। आधुनिक समाज में अधिकतर युवक व युवतियों की स्थिति ऐसी ही है।

'काले–उजले दिन' का नायक विवाहित है, किन्तु उसकी पत्नी कांति कम पढ़ी–लिखी तथा साधारण सी दिखने वाली स्त्री है। वह अत्यधिक सीधी–सादी थी। नायक इसके विपरीत खूबसूरत व आधुनिक स्त्री चाहता था। वह स्वगत कथन में कहता है–"मेरा हृदय आधुनिक लड़की के लिए पागल रहने लगा, जो पढ़ी–लिखी हो, सुंदर हो, जिसमें नाज नखरें हो।"[55] कथा नायक अपने दफ्तर में कार्यरत रजनी के प्रति आसक्त हो जाता है। वह रजनी को अपने प्रेम का इजहार कर देता है। रजनी भी उसे प्यार करने लगती है, किंतु वह प्रेम आत्मिक न होकर मांसल होता है। कथानायक स्वयं आत्ममंथन करता हुआ कहता है – "झूठ! कितना बड़ा झूठ! मैं एक बड़े झूठ, ढोंग और आडम्बर को पाल रहा था। मैं क्या रजनी को प्यार करता था? या मेरा आकर्षण सिर्फ उसके शरीर के प्रति था?"[56] इस प्रकार काले–उजले दिन' का कथानायक अपनी यौन–इच्छाओं की पूर्ति हेतु रजनी के समीप जाता है।

'सूखापत्ता' उपन्यास का नायक कृष्णकुमार भी अपने अन्दर एक अजीब सा परिवर्तन महसूस करता है, जो उसकी यौन इच्छा का ही प्रतिफल होती है। कृष्णकुमार स्वगत कथन में कहता है – "दिल को सदा एक मीठी व्याकुलता कचोटा करती। वास्तव में मेरा मन नारी की ओर भाग रहा था। इस आकर्षण में एक दृढ़ स्पष्टता थी। किसी मन–पसन्द सुन्दर स्त्री के जवान शरीर और मन पर अधिकार की कल्पना से ही दिल में तूफान पैदा हो जाता है।"[57]

उपन्यास में 'कलवतिया महरिन' की बड़ी लड़की 'जतिया' का प्रसंग आया है, जो अपने आवारा पति की मार और जुल्म से ऊबरकर ससुराल से भाग आती है। जतिया कृष्ण के शारीरिक सौष्ठव से प्रेरित हो उस पर आसक्त हो जाती है। एक दिन कृष्ण कुमार के घरवाले मंदिर गए हुए थे। वह अकेला था। जतिया उसके घर काम करने आती है। जतिया को देखकर कृष्ण कुमार अपने भीतर एक यौन उत्तेजना को महसूस करता है। "मलिकाइन जी! भीतर ओसारे में खड़े होकर उसने पुकारा .... फिर पास आकर मृदु स्वर में बोली .... पानी पिओगे .... ओसोरे में जलती लालटेन का मद्धिम प्रकाश उसके शरीर पर पड़ रहा था। .... उसके मुख पर सदा की तरह मुस्कराहट नहीं थी, बल्कि गंभीर लावण्य का एक अजीब भाव उभर आया था। .....

वह मुझे भली लग रही थी .... यह जानकर मुझे बड़ा अचम्भा हुआ। .... और तब अचानक मेरा सारा शरीर ऐंठने लगा। यह क्या था! क्या यह प्रेम था? नहीं कतई नहीं। मेरे सामने खाई थी और लगा कि मैं उसमें गिरना चाहता था।"[58]

अमरकांत जी के लगभग सभी उपन्यास में प्रेम को केंद्रीय स्थान पर रखा गया है। कमलाप्रसाद पांडेय इस संदर्भ में कहते हैं–"उनका कथासाहित्य मध्यवर्ग की एक अहमियत को खोलता है। मध्यवर्ग को कमजोर करने में सबसे बड़ी कमजोरी 'सेक्स' है। 'सेक्स' के मात्र शारीरिक क्रियाकपालों के लिए भावुकतावश अपनी प्राणनिधि खो बैठता है। एक ओर वह शरीर की पवित्रता की वकालत करता है, दूसरी ओर वही अँधेरे में उस पवित्रता को तोड़ता है। अँधेरे और उजले का यह फर्क मध्यवर्ग में भरा पड़ा है। साहसहीन यह वर्ग शोषित और शोषकों के बीच में पेंडुलम बना अटक रहा है। इसने मनुष्य के सामने खतरों का अंबार लगा दिया है। अमरकांत इसी वर्ग की तथाकथित प्रेम भावना का सामाजिक पुननिर्माण करता है।"[59]

'सूखापत्ता' उपन्यास में कृष्ण कुमार व उर्मिला के प्रेम का विस्तृत वर्णन हुआ है। इसी के चलते कृष्णकुमार की प्रबल यौनिच्छा का प्रसंग भी आया है। कृष्ण स्वगत कथन में कहता है – "मैं उसको हृदय से चिपटाकर पागल की तरह चूमने लगा। वह मेरी गोद में निश्चेष्ट एवं शान्त पड़ी थी। उसने मेरा किंचित् भी विरोध नहीं किया। जब मेरा आवेग कुछ शान्त हुआ, तो मैं उसके बालों को सहलाने लगा। .... इसके बाद फिर उसने मेरा हाथ पकड़ा और उसको उठाकर अपनी आँखों पर रख लिया। कुछ ही देर में मेरा हाथ आँसुओं से भीग गया वह रो रही थी। .... मेरे हृदय को आघात लगा। मैं पशु हूँ। मैंने धीरे से उसको हाथों में उठाकर चारपाई पर रख दिया और चुपचाप नीचे उतर आया।"[60]

'इन्ही हथियारों से' उपन्यास में अंग्रेजों के अत्याचारों का अनेक स्थानों पर अनेक रूपों में चित्रण हुआ है। सन् 1942 के समय गौरे सैनिकों द्वारा किये गये ओछे कृत्य व अश्लील हरकतों का यथार्थ व कटु चित्रण उपन्यासकार ने किया है। "गौरे सैनिकों की ट्रेने तेजी से भगाई जाती थी, जहाँ तक भाग सकें और कोयला–पानी के लिए भरसक किसी वीरान स्टेशन पर ही रोकी जाती थी। फौजियों पर कई तरह के प्रतिबन्ध थे और उनकों नीचे उतरना भी मना था। अंग्रेज गार्ड उन्हें हमेशा फटकारता रहता था, परन्तु ट्रेन के किसी स्टेशन पर रूकते ही वे अजीब उन्माद की हाल में आ जाते थे। किसी भूली भटकी औरत को अथवा बन्द दरवाजों–खिड़कियों वाली बस्तियों को देखकर ही शोर–हुल्लड़ मचाने लगते। उनके मुँह से लगातार 'चट–चट' और च्च–च्च की आवाजें और अंग्रेजी में अश्लील गाने निकलने लगते और कईं अपनी पैंटे खोलकर नंगी हैवानियत उछालने लगते।"[61] उस समय अंग्रेज कप्तान या उनके सैनिक गरीब गांव की लड़कियों को अपनी यौनिच्छा की तृप्ति हेतु उठवा लिया करते थे। "उस

दिन फौजियों की एक स्पेशल ट्रेन बलिया स्टेशन से खुलकर बेतहाशा भागती हुई, अत्यन्त छोटे बलकुहा स्टेशन पर ठीक छः बजे सुबह कुछ देर के लिए रूकी। उसी समय पास गाँव की किसी झोंपड़ी की एक किशोरी, शौच के बाद हल्की, ताजी, उत्फुल्ल और निश्चिन्त होकर स्टेशन के निकटस्थ गढ़ैया तक पहुँची ही थी कि उसे डरावनी, अश्लील आवाजों ने घेर लिया। घंटो बाद वह गंगा के माझी पुल से कुछ दूर पहले, रेल पटरी के किनारे पड़ी मिल गई। चित्त, दोनों बाहें छितरी हुई, चेहरा बाईं और मुड़कर पूरा ढरक गया–सा, मुख पर भय–आतंक और क्रन्दन से ठीक पहले ठहरी हुई ठंडी लकीरे–हर पंखुरी मसली, क्षत–विक्षत और नुची हुई।"[62] इस प्रकार उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में यौन चेतना का अत्यंत वीभत्स व कटु यथार्थ प्रस्तुत किया है।

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, तनाव व कुंठा

अमरकांत जी का अनुभव फलक अत्यन्त व्यापक है। वे जन सामान्य के यथार्थवादी लेखक हैं। उन्होंने मुख्य रूप से अपने उपन्यासों में मानस की कुंठा, द्वन्द्व व तनाव का यथार्थ चित्रण, 'सूखापत्ता', 'पराई डाल का पंछी', 'बीच की दीवार', 'कंटीली राह के फूल', 'आकाश पक्षी' और 'काले–उजले दिन' में विस्तृत रूप में किया है।

वस्तुतः "पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, प्राथमिक समूहों के नियंत्रण का अभाव, धार्मिक, जातियों, नियमों व आदर्शों की शिथिलता, व्यक्तिवाद, भोग–विलासिता, भीड़–भाड़, तड़क–भड़क व फैशन के प्रभाव के कारण व्यक्ति का नैतिक स्तर शिथिल रहता है तथा उसका व्यक्तित्व असंतुलित हो जात है।"[63] भावात्मक संबंधों की दूरी तथा बढ़ती प्रदर्शनप्रियता के कारण यहाँ मनुष्य–मनुष्य नहीं रह जाता और मनुष्य का मानसिक संघर्ष और असंतोष बढ़ जाता है और वह टूटने लगता है। वह मानसिक द्वन्द्वात्मक स्थिति को प्राप्त हो तनाव व कुंठा से ग्रसित हो जाता है। मनुष्य की इसी द्वन्द्वात्मक स्थिति का यथार्थ लेखक ने अपने साहित्य में प्रस्तुत किया है।

'काले–उजले दिन' का नायक अपनी पत्नी कांति की इज्जत तो करता है, किन्तु वह उससे प्यार नहीं करता। वह रजनी से प्रेम करता है, किंतु अपने प्रेम के लिए वह कांति को त्याग नहीं सकता। वह रजनी से प्रेम करके कांति को धोखा दे रहा था। वह स्वगत कथन में कहता है–"मैं एक दुविधाजनक परिस्थिति में फँसा था। कभी मुझ पर नैतिक पश्चाताप का प्रकोप होता और मैं कान्ति के लिए हर प्रकार के त्याग का निश्चय करता। ...... लेकिन इतना सब सोचने के बाद मुझे रजनी के मुस्कुराते चेहरे का स्मरण होता, जैसे रात के अंधेरे में चाँद निकल आया हो। ...... उसके प्यार के समुद्र में आदर्श,, नैतिकता और कर्त्तव्य सब तिनके की तरह बह जाते।"[64] इस प्रकार 'काले–उजले दिन' का नायक मानसिक द्वन्द्व व तनाव की स्थिति से गुजरता हुआ निर्णय लेने में असक्षम रहता है।

'सूखापत्ता' उपन्यास का नायक कृष्णकुमार उर्मिला से प्रेम करता है। विजातीय होने के कारण दोनों का विवाह नहीं हो पाता। उर्मिला की शादी कहीं ओर तय हो जाती है। वह दुःखी मन से बलिया छोड़कर गांव चली जाती है। कृष्ण कुमार इन सब बातों का दोषी स्वयं को मानकर दुःखी होता है। मैंने उर्मिला को धोखा दिया। मेरे जैसा तुच्छ और बुजदिल ढूंढे नहीं मिलेगा। मैंने उसके निर्दोष प्यार का गला घोंटा। वह दुःख भोगने के लिए नहीं बनी थी। तो भी मैंने उसको भारी दुःख दिया। .... मैंने झूठे आदर्शों में आकर उसके साथ अन्याय किया है। उर्मिला मैं कायर हूँ, मैंने तुम्हारे साथ धोखा किया है। मेरा प्यार सच्चा नहीं था।"[65] यहां कृष्णकुमार तनाव व कुंठा को महसूस करता है।

'पराई डाल का पंछी' उपन्यास का नायक दीपक व्यभिचारी प्रवृत्ति का है। टंडन की बेटी मीना की सालगिरह पर जब विश्वनाथ तिवारी उसका पर्दाफाश करता है तो वह निहायत दुःखी हो जाता है। उसका मन कुंठा से भर जाता है। वह मन ही मन विचार करता है –"निर्मला की बातों से उसको परेशानी हुई थी, लेकिन तिवारी की बातों ने तो उसे यथार्थ धरातल पर ला दिया था, जैसे धोबी गंदे कपड़े को पाट पर पटकता है। उसका सारा जीवन उसकी आँखों के सामने चल चित्र की तरह घूम गया। सचमुच यदि तीन शब्दों में उसका परिचय दिया जाए तो कहा जाएगा – महत्त्वाकांक्षा, प्यार अैर स्वार्थ।"[66] यहां नायक अपने अन्तर्द्वन्द्वों से छिटककर स्वयं ही यथार्थ धरातल पर गिर जाता है।

'बीच की दीवार' उपन्यास में मोहन दीप्ति से प्रेम करता है, लेकिन उसके मन में द्वन्द्वात्मक स्थिति रहती है कि उसका प्रेम सफल होगा अथवा नहीं। मोहन के मामा की बेटी सुधा की शादी के दौरान मोहन के मामा तथा दीप्ति के घर के बीच की दीवार को तोड़कर दोनों आंगनों को मिला दिया जाता है। इसके फलस्वरूप मोहन और दीप्ति परस्पर निकट आ जाते है। वे एक–दूसरे को चाहने लगते है, किंतु सुधा के विवाह के पश्चात् जब यह दीवार फिर से बन जायेगी तब उनके प्रेम का क्या होगा। इस संबंध में वह अंतर्मन में विचार करता है–"इससे पहले उसकी और दीप्ति की जिंदगी क्या दो अलग–अलग आंगनों की तरह नहीं थी, जिसके बीच भेद व अलगांव की न जाने कैसी दीवार खड़ी थी।? वह दीवार कब की टूट चुकी है। लेकिन इन दोनों आंगनों के बीच की दीवार जब पुनः खड़ी हो जाएगी तो क्या दीप्ति और उसके बीच भी वही दीवार खड़ी नहीं हो जाएगी और वे अलग–अलग फेंक नहीं दिए जाएँगे?"[67]

वस्तुतः आज का युवा प्रेम के चयन में द्वन्द्व की स्थिति में रहता है। जहां वह एक ओर पत्नी के रूप में आदर्श स्त्री की छवि अपने मस्तक पटल पर अंकित करता है, वहीं दूसरी ओर वह सुन्दर व आधुनिक स्त्री की चाह भी रखता है। वर्तमान युग में अनेक युवा मन की यही द्वन्द्वात्मक स्थिति रहती है। 'कंटीली राह के फूल' का नायक अनूप कुमार कामिनी से प्रेम

करता है, पर वह मधु के प्रति भी आकर्षित है। उपन्यास के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक वह इस अन्तर्द्वन्द्व में रहता है कि वह कामिनी को प्यार करता है या मधु से। अपने अन्तर्मन के सत्य को जानता हुआ भी वह अपनी हीनभावना व कमजोरियों के वशीभूत सत्य से भागता प्रतीत होता है। वह कामिनी और मधु के विषय में अन्तर्मन में विचार करता है। "कामिनी में साहस था, शिष्टता थी, सभ्यता थी, आगे बढ़ाने की इच्छा थी, परिस्थितियों की समझ तथा उद्देश्य की व्यापकता थी, जबकि मधु में आरामतलबी, स्वार्थ, सडांध, संकीर्णता और दुर्बलता थी। दोनों में तीन ओर छह का संबंध था। फिर भी मैं मधु से घृणा नहीं करता था। प्यार मैं कामिनी को ही करता था, लेकिन मधु से मुझे मोह हो गया था।"[68]

वस्तुतः नायक अनूप कुंठित मनोवृत्ति का शिकार है। कामिनी के उपेक्षित व्यवहार से वह क्रोध, ईर्ष्या, निराशा, अपमान तथा प्रबल घृणा और बैचेनी को महसूस करता है। वह कहता है–"मैं अपनी अहम्मन्यता, संकीर्णता, कुलीन वंश का जीवन–दर्शन, अकर्मणीयता, आरामतलबी को कुचल रहा था। मैं अपने लिए तथा अपने देश और समाज के लिए कुछ करना चाहता था। कामिनी को जीतने के लिए मैं ऐसा कर रहा था।"[69] इस लघु उपन्यास में "कथ्य के स्तर पर किशोरमन की रोमांटिक यथार्थता और जिंदगी में बार–बार छूट गए संदर्भों की एक विशिष्ट पहचान है।"[70]

'आकाश पक्षी' उपन्यास की नायिका हेमा अपने सामंती जीवन तथा 'पुरानी सड़ी–गली मान्यताओं से घृणा करती है। वह कुंठा की शिकार है। हेमा अपनी माँ को इन्हीं सामंती मान्यताओं में पिसते हुए देखती है। वह कहती हैं – "मैं उनकी पीड़ा आज समझ रही हूँ। वे जिंदगी भर एक पिछड़ेपन की पुरानी लीक पर चलती रही। .... फिर पुरानी मान्यताओं को तोड़ना उस समय आसान होता है, जब हम शिक्षित हों, हमारा हृदय उन्मुक्त हो और जब हम दूसरों से मिले–जुले। लेकिन जब हमारा हृदय अपनी ही सीमाओं को सब–कुछ समझता हो तो किसी चीज को बदला नहीं जा सकता।अपने चारों ओर लक्ष्मण रेखा खींचकर अपने घमंड और झूठी शान में डूबे रहना उस गड्डे के पानी तरह है, जिसका निकास कहीं नहीं होता और जो धीरे–धीरे सड़ता रहता है।"[71] हेमा अपने सामन्ती जीवन की मान्यता को तोड़ नहीं पाती और कुंठा का शिकार होती है।

'इन्ही हथियारों से' उपन्यास में गोपालराम समाज की जाति व्यवस्था तथा खोखले आदर्श से कुंठित है। वह जाति से चमार है। वह समाजवादी पार्टी से संबंधित है। उसके माता–पिता दूसरों के यहां मजूरी करके अपनी आजीविका चलाते है। गोपालराम पढ़–लिख कर नौकरी करना चाहता है। समाजवादी पार्टी का सदस्य होने के नाते वह उच्च वर्ग में बैठता तो है, पर कोई उसके हाथ का छूआ पानी भी नहीं पीता। "सम्पन्न ऊँची जातियों के कर्मठ नौजवान थे,

जो सचमुच समाज में परिवर्तन चाहते थे, देश की आजादी के साथ परन्तु गोपालराम को लगता कि वे उससे खींचे–खींचे रहते हैं, उससे कुछ अलग बैठने की कोशिश करते हैं। यदि उसके हाथ का पानी पीने का अवसर आता तो कुछेक ऐसे भी थे, जो कोई न कोई बहाना बनाने लगते।"[72] इन सब कारणों से गोपालराम में एक हीनता घर कर जाती है। वह हर समय तनाव व कुंठित रहने लगता है। वह अजीब ही द्वन्द्वात्मक स्थिति से घिरा रहता है। इसी कुंठा में वह अपने अर्न्तमन में ऊँची जातियों के विषय में विचार करता है – "धनी–मानी, समर्थ, बलवान और जन्मजात उच्च वर्गों का समुद्र हिलोरे ले रहा था, कभी चमकता, कभी मुस्कुराता, कभी ऊँची तरंगों में गर्जन करता और अपने भीतर असंख्य जीव–जन्तुओं को दबाए, छिपाए, डुबाए और उनके अस्तित्व को नकारते। अन्दर जो जल असंख्य धाराएँ और भँवर तथा अतल गहराईयों में धरती का जो आधार है, वह सब क्या कुछ भी नहीं? हाँ ऊँची जातियों के लोगों ने सब कुछ ले लिया है, सबके हक हड़प लिए हैं और गरीबों के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा है। वे कुछ देना भी नहीं चाहते, न खेत–जमीन, न कुँआ–तालाब, न पत्रा–पोथी अेर न पूजा–पाठ। वह सामाजिक बगावत की भावना से बेचैन हो जाता।"[73] उपन्यासकार अमरकांत ने यहां गोपालराम के माध्यम से निम्न वर्ग की कुंठित मनोवृत्तियों का यथार्थ प्रस्तुत कर उच्च वर्ग पर प्रहार किया है।

समाज में नारी की दयनीय स्थिति

किसी भी देश की संस्कृति, राष्ट्रीयता, समाज की समृद्धि और निर्धनता वहां की नारियों के अस्तित्व व स्थिति पर निर्भर करती है। प्रेमचन्द की परम्परा के उपन्यासकर अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में समाज में नारी के अस्तित्व व नारी विमर्श को महत्त्व दिया है। पुरातन मूल्यों, जर्जर रूढ़ियों और आधुनिक सभ्यता के तथाकथित अधिकारों के मध्य नारी की समस्या बढ़ती गई है। पुरूष केंन्द्रित समाज में नारी अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व खोकर अन्य समान्य समस्याओं की भांति एक वस्तु के रूप में उपस्थित हुई है। अमरकांत जी ने 'सूखापत्ता' से लेकर 'इन्ही हथियारों से' तक सभी उपन्यासों में पुरूष प्रधान समाज की बर्बरता, नारी के दोयम दर्जे की स्थिति तथा उसकी दुर्गति के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये है। आज भी समाज का नारी के प्रति सामन्ती दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। नारी को पुरूष अपनी सम्पत्ति के रूप में देखता है। वह अपनी पूंजी का इच्छानुसार उपयोग करने का अधिकारी है। 'लहरें' उपन्यास की सुमित्रा पुरूषों की मनोवृत्ति के विषय में कहती है कि पुरूषों के अनुसार "स्त्रियाँ भोग–विलास की वस्तु है, बच्चे पैदा करने की मशीन है, वे इसीलिए बनी है, इसलिए उन्हें अपने काम से मतलब रखना चाहिए।"[74]

वस्तुतः पुरूष प्रधान समाज का मानना है कि नारी का अस्तित्व पुरूष से ही है। विवाह पश्चात् नारी के सम्बोधन के कईं नाम प्रकट हो जाते हैं, लेकिन रिश्तों को

निभाते–निभाते उसका मूल नाम ही कहीं खो जाता है। 'लहरें' उपन्यास में विमला द्वारा बच्ची देवी से उसका नाम पूछे जाने पर वह सुहागिन स्त्री का नाम नहीं लेने के संबंध में तर्क करती है। बच्ची देवी कहती है –"खूब कहती हो बहिनी, तुम्हीं बताओ कहीं सुहागिन स्त्री का नाम पूछता है कोई? नाम लेकर बुलाया है भला?"[75] विमला के इस प्रश्न पर विमला के पास कोई उत्तर नहीं था, जो इस माकूल प्रतिपाद के रूप में प्रस्तुत किया जा सके। वास्तव में स्त्री का अस्तित्व उसका नाम गुम ही हो गया है। विमला को स्मरण हो उठता है कि – "कालोनी की सभी औरतें उसे 'बहनजी' या अट्ठाइस नंबर वाली' कहती है। उसके पति 'लल्लू की मम्मी' कहते है। सास, जेठानी 'दुल्हन' और 'देवरानी' या 'भाभी' कहती हैं। अपने ही विवाहित जीवन में उसका नाम कैसे गायब हो गया? .... क्या इन्हीं कारणों से एक सुहागिन स्त्री का कोई नाम नहीं पूछता? यह कोई सामाजिक सम्मान है या स्त्री के निजी अस्तित्व को दूसरों के जीवन में घुला–पचा देने का कोई तरीका?"[76]

पुरूष प्रधान समाज में नारी का अस्तित्व धूमिल है, पुरूष चाहे जैसा भी हो, पर नारी के साथ उसका नाम होने मात्र से ही नारी का अस्तित्व है। ऐसा माना जाता है कि स्त्री को पुरूष का साथ नहीं मिलता, तो समाज में उसकी स्थिति अच्छी नहीं मानी जाती है। 'लहरें' उपन्यास की बच्ची देवी कहती है – "दुबर की मेहरारू गाँव भर की भौजाई? जिसका मर्द ऐसा, जिसके बाल बच्चे नहीं, दुबर हुई कि जबर? है बहिन, अपने मर्द के चुम्मा में बड़ी ताकत होती है, ऐसी मेहरारू को कोई आँखे तरेर के देख न ले .... हाँ, जिसको यह सब नहीं मिलता, वह दुबर कुतिया की तरह दुबकी रहती हैं, जिसको देखो, वही उसे दुरदुरा देता है, दो डंडा लगा देता है।"[77]

आगे वह कहती है–"मर्द चाहे जैसा भी हो, मर्द से ही स्त्री की जिनगी है, मर्द ही उसका सहारा है, उसकी इज्जत है। न होने से तो अच्छा है शराबी, रंडीबाज, ऐबी, अंधा, कोढ़ी, लूला कोई भी मर्द हो। कोई न सही तो मिट्टी का मर्द हो – हाँ उसी को औरत अपना सुहाग समझती है।"[78] बच्ची देवी के इस कथन से स्पष्ट है कि नारी पुरूष पर अवलम्बित है। अमरकांत जी ने बच्ची देवी के माध्यम से संकेत किया है कि भले ही स्त्री पुरूष के द्वारा सतायी जाती हो, लेकिन वह उसी में ही स्वयं के अस्तित्व को तलाशती नज़र आती है।

इतिहास के आदिकाल से लेकर मध्यकाल तक समाज पुरूष प्रधान ही रहा है, जिसमें नारी को 'छाया' तथा 'भोग्या' मानने जैसे कुण्ठित व रूग्ण मनोवृत्तियों की प्रधानता देखने को मिलती है। साथ ही समाज में विधवा अथवा परित्यक्ता नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय मानी जाती है। बाहर अथवा घर में उसकी स्थित अच्छी नहीं है। मनुस्मृति में उक्ति है कि –

"ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी।।"

'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में सुन्नर पांडे तथा अतिराजी, राजलक्ष्मी के सास–ससुर है। राजलक्ष्मी के पति झुल्लन पांडे घरवालों से तंग आकर घर छोड़कर कहीं चले जाते है। सास अतिराजी राजलक्ष्मी को पसंद नहीं करती। वह उसे दुःखी करने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ती। सच है स्त्री ही स्त्री की सबसे बड़ी दुश्मन होती है। एक दिन अतिराजी सुन्नर पांडे से अपनी बहू के विषय में कहती है – "अरे जाइए न आप भी बहती गंगा में हाथ धो आइए .... कहने पर दरवाजा खोल देगी। पता नहीं कौन–कौन तो आते रहते है दिन–रात। मैं कहां तक देखती रहूँगी? जाइए, जाइए अभी जवान है – आसानी से गोद में आ जाएगी ....।"[79] एक सास का अपनी बहू के विषय में इस प्रकार सोचना, समाज के निहायत ही घृणास्पद स्वरूप को प्रकट करता है। देखा जाए तो एक प्रकार से स्त्री ही उसकी सबसे बड़ी दुश्मन हैं क्योंकि वह एक और तो पुरूष द्वारा सतायी जाती है फिर दूसरी ओर अपने से ही कमजोर स्त्री को प्रताड़ित करके प्रतिशोध लेती है। अतिराजी जैसी स्त्रियां समाज में नारी के प्रति हो रहे शोषण का एक हिस्सा है। औरतों की सोच का सीमित व पिछड़ा होना ही औरतों की तरक्की में बाधा है।

'कंटीली राह के फूल' में अनूप नारी की दयनीय स्थिति के विषय में कहता है – "मैं उस खानदान से हूँ, जहां अब भी पिछड़ापन है। वहां औरतों को दबाकर रखा जाता है। खाना बनाने और पतिसेवा के अलावा औरतों का वहां कोई काम नहीं। खुद औरतें कहती है कि औरत को पढ़ने–लिखने से कोई मतलब नहीं और वह मर्द की बराबरी नहीं कर सकती।"[80]

'काले–उजले दिन' के नायक की पत्नी कांति भारतीय पतिव्रता नारी है। कथानायक अपनी पत्नी कांति को धोखा देता है और वह अपने दफ्तर में कार्यरत रजनी के प्रति आसक्त हो जाता है। कांति इस विषय में सब कुछ जानते हुए भी अपने पति का विरोध नहीं करती। इस सब बातों का कथानायक पर यह असर हुआ कि उसकी नजर में उसकी पत्नी का महत्त्व कम होता गया और वह मनमानी करता रहा।

कथानायक नारी की दयनीय स्थिति के लिए भारतीय नारी को स्वयं जिम्मेदार ठहराता है। वह कहता है – "वह मुझसे अपने को हीन व तुच्छ मानती थी – एक दासी की तरह, जैसे कि भारतीय स्त्री अपने को फौरन मान लेती है। अपने सारे अवगुणों के बावजूद वह मेरा अपमान नहीं करती थी। इन सब बातों से मेरे निकट उसका महत्त्व और कम हो गया।"[81]

'आकाश पक्षी' उपन्यास में सामंती परिवारों की स्त्रीयों की दीन–हीन स्थिति का यथार्थ व घृणास्पद वर्णन हुआ है। जहाँ स्त्रियों का जीवन अपने शराबी, कबाबी व व्यभिचारी पुरूषों की सेवा में ही बीत जाता है। हेमा अपनी माँ और ऐसी ही भारतीय स्त्रियों के विषय में

चिंतन करती है, जिनका सारा जीवन निकम्मे व अयोग्य पतियों की सेवा में ही बीत जाता है। वह कहती है –"हमारे देश में स्त्री का जीवन सर्वथा, परावलम्बित होता है, पति पर अवलम्बित। पति जो करता है, जो सोचता है, वही स्त्री करती है और सोचती है। यही उसके जीवन की उपलब्धि है। पति से ही उसका लोक और परलोक बनता है। यह कितनी व्यर्थ की बात है? युगों से न मालूम कितनी प्रतिभाशालिनी स्त्रियाँ इसी तरह अयोग्य और निकम्मे पतियों की सेवा करते–करते विनष्ट हो गयी होगी।"[82] पुरूष की यह नियती है कि उसने जहां अकेली व असहाय लड़की देखी, वह उसका शोषण करने के लिए उत्साहित रहता है। 'सूखापत्ता' उपन्यास में कलवतिया महरिन की बड़ी लड़की अपने पति के जुल्म और मार से ऊबकर ससुराल से भाग नैहर आ जाती है। जतिया घरों में झाडू–पोंछा कर अपना भरण–पोषण करती है। वह गरीब व असहाय है इसलिए मोहल्ले के लोग चंद पैसों से उसे खरीदना चाहते है। कृष्णकुमार अपने स्वगत कथन में कहता है–"मैं जानता था कि सारा मोहल्ला उस पर लालची कुत्तों की तरह सतृष्ण दृष्टि लगाए हुए है। मुझे उन गन्दे लोगों पर बहुत गुस्सा आता और मैं अपने समाजवादी आदर्शवाद में सोचता कि ये लोग एक गरीब लड़की को अपने पैसों के बल पर पथ भ्रष्ट करने में तुले है।"[83]

जतिया के माध्यम से उपन्यासकार समाज के उस घिनौने यथार्थ की ओर संकेत करता है, जहां लोग एक अकेली स्त्री जो अपने पति के जुल्मों व अत्याचारों से पहले ही दुःखी है। वह उससे अलग रहकर मेहनत कर स्वाभिमान से जीना चाहती है, परंतु यह समाज उसे ससम्मान जीवनयापन करने नहीं देना चाहता।

'बिदा की रात' उपन्यास में बकरीदन नाम की एक विधवा महिला जिसकी दो बेटियाँ है सुल्ताना से मदद मांगने जाती है। वह बल्लन कसाई से परेशान है, जिसकी नज़र उसकी छोटी बेटी पर है। वह अपना दुःखडा सुल्ताना बेगम से कहती है – "क्या बताऊँ, बेगम साहब, वह अल्ला से भी नहीं डरता और उससे सभी डरते हैं इतना शैतान है वह। वह रास्ते में छेडछाड़ करता ही है, बाद में उसकी हिम्मत इतनी बढ़ गई कि वह मेरे मकान के सामने गुजरते हुए आवाजें कसने लगा। एक रोज मैंने बाहर निकल खूब गाली दी, लेकिन वह हँसते हुए बोला, काहे लड़ती हो, छोटी को एक घण्टे के लिए मेरे यहां काम के लिए भेज दिया करो, मैं तुम्हारी तकलीफें दूर कर दूँगा और सभी खुश रहेंगे। मुहल्ले वाले भी कुछ नहीं बोलते। इधर काम करने नहीं जाती तो खाने को पैसा ही नहीं है ......।"[84] समाज में अकेली रहकर जीवन यापन करने वाली महिलाओं व उनके बच्चों का जीवन सुरक्षित नहीं रह पाता। यह वही समाज है जिसे हम इज्जतदार या मर्यादित कहते है, लेकिन उपन्यासकार ने बकरीदन के माध्यम से भेडियों रूपी समाज का यथार्थ प्रस्तुत किया है।

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास की भगजोगनी के पति बनवारी की तपेदिक से मृत्यु हो जाती है। बनवारी का मित्र दामोदर उसकी मृत्यु के पश्चात् भगजोगिनी की सास को आर्थिक संबल देने के बहाने भगजोगिनी का हाथ उसके हाथ में देने के लिए राजी कर लेता है। इस आड़ में वह भगजोगिनी का दैहिक शोषण करता है। हालांकि उसने भगजोगिनी से गन्धर्व विवाह भी किया था। लेकिन यह सब प्रपंच उसने उन दोनों स्त्रियों को बेवकूफ बनाने के लिए किया। वह इस गन्धर्व विवाह के विषय में न तो अपनी पत्नी को ही कुछ बताता है और न ही समाज को। एक दिन दामोदर की पत्नी द्वारा रंगे हाथों पकड़े जाने पर वह इस रिश्ते से साफ मुकर जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समाज में पतिविहिन, परित्यक्ता व असहाय स्त्रियों को केवल कामुक दृष्टि से ही देखा जाता है। इस दृष्टि से समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय है।

यौन भावना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। धनी वर्ग के ऐसे लोग जो अपनी स्त्री से किए संभोग से सन्तुष्ट नहीं होते, वे वैश्या के पास जाकर अपनी भूख मिटाते नज़र आते हैं। कुछ ऐसे लोग भी होते है, जो मजदूर है, जिन्हें दूर–दराज में आजीविका हेतु अपने परिवार को छोड़कर अत्यत्र रहना पड़ता है। भारत में ब्रिटिश शासन काल में वैश्या–व्यवसाय पनपने का यही मुख्य कारण था। उस समय "अंग्रेज अधिकारियों तथा सैनिकों की लैंगिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रत्येक शहर और छावनी में वैश्याओं के अड्डे बन गए। अंग्रेजों के शासन काल में प्रत्येक नगर में एक ऐसा मोहल्ला बन गया जहाँ वेश्याएँ और उनके दलाल रहते थे और जहाँ खुलकर शरीर का व्यापार होता था।"[85]

यह वैश्याएँ जब तक जवान और स्वस्थ रहती तब तक इनका धंधा खूब चलता लेकिन बुढ़ापा आने या बीमार होने की स्थिति में इनकी मदद के लिए कोई आगे न आता। ऐसी स्थिति में इनकी हालत अत्यन्त दयनीय हो जाती। नारी को वैश्या बनाने में समाज और हालातों का बहुत बड़ा समर्थन है। वैश्याओं का जीवन अपमान, बेइज्जती तथा घुटन से भरा होता है। ऐसी स्थिति में उन नारियों की स्थिति तो और भी दयनीय होती है, जो इस पेशे को मजबूरी में अपनाती है। 'इन्ही हथियारों से' उपन्यास की लवंगलता को वैश्या जीवन बिल्कुल पसंद नहीं है। वह भी उन छोटी बच्चियों की तरह आंगन में फुदकना चाहती है तथा खुले आकाश में उड़ना चाहती है, किन्तु उसे मात्र बारह वर्ष की अवस्था में वैश्यावृति में धकेल दिया जाता है।

वस्तुतः यह एक ऐसी समस्या है, जिस पर गंभीरता से विचार करने और निर्णय लेने की आवश्यकता है। महात्मा गांधी ने पतिता, अभागिन व उपेक्षित नारियों की स्थिति पर लिखा था–"यह बड़े दुःख और अपमान की बात है कि मनुष्य की वासना की तृप्ति के लिये स्त्रियों को अपनी इज्जत बेचनी पड़ी। पुरूष ने (जो नियामक है) स्त्रियों का जो अपमान किया है

उसके लिए उसको कठिन दण्ड भोगना पड़ेगा। जब स्त्री अपनी पूरी शक्ति से पुरूष के जाल से बचकर उसके नियमों और संस्थानों के विरूद्ध आंदोलन करती है तो हिंसात्मक ही क्यों न हो, कम प्रभावशाली नहीं होता। भारतवर्ष के पुरूषों को चाहिए उन हजारों स्त्रियों के विषय में गम्भीरतापूर्वक विचार करें, जो इनकी नियम विरूद्ध अनैतिक वासना के लिए अपनी इज्जत को बेचती है।"[86]

उपन्यासकार अमरकांत जी ने अपने उपन्यासों में हर वर्ग की नारी समस्या का यथार्थ प्रस्तुत किया है। चाहे वह सुन्नर पांडे की पतोह हो, चाहे 'लहरें' की बच्ची देवी या 'इन्ही हथियारों से' की भगजोगिनी अथवा लवंगलता नामक वैश्या सभी की स्थितियों व परिस्थितियों के जिम्मेदार उनके आस–पास के लोग या पुरूष वर्ग का समाज है, जो नारी पर अपना एकाधिकार समझते है। यह समाज की एक कुत्सित मनोवृत्ति है तथा पौरूष समाज का कटु यथार्थ भी।

नवीन नारी की परिकल्पना

मनुस्मृति में जहां नारी के विषय में यह माना जाता रहा कि नारी स्वातंत्र्य समाज के लिए कदापि हितकर नहीं है, क्योंकि नारी का स्वभाव चंचल है और उसे निरंकुश छोड़ देने से समाज विनाश के कगार पर पहुँच सकता है। वहीं तुलसी ने **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"** कहकर नारी को पूजनीय बताया है।

आधुनिक काल में बुद्धिजीवियों, विचारकों तथा लेखकों के दृष्टिकोण में नारी की अस्मिता के प्रति क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। जयशंकर प्रसाद का जयघोष –

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में।
पीयूष स्रोत सी बहाकरो, जीवन के सुंदर समतल में।।"

कहकर नारी को आदर व श्रद्धा से देखने का दृष्टिकोण प्रदान किया। साथ ही प्रसाद का यही जयघोष आज की नारी में अपूर्व आत्मविश्वास तथा आत्मचेतना का भी वाहक बना। आज की भारतीय नारी परम्पराओं से विद्रोह तो करती है, परंतु उसका आचरण यथासम्भव सामाजिक मर्यादाओं के अनुकूल ही होता है। कुल मिलाकर आज की भारतीय नारी निरंतर नयी दिशाओं की खोज में सजग दिखाई देती है।

आज की नारी के विषय में डॉ. सुरेश सिन्हा लिखते हैं–"यह तय बात है कि वह एक महज सजावट का सामान न होकर नए जीवन की समग्र योजना का एक अविश्लेष्य अंग बन चुकी है, फिर भी वह घुली जाती है और उसे घुमा–फिराकर वासना की एक सामग्री मात्र समझा जाता है। हालांकि नारी को नाम कुछ और दे दिए गए हैं, शायद संज्ञाएं भी बदल गई है और स्वरूप भी। प्राचीन संस्कारों और नवीन परिस्थितियों का द्वन्द्व आज की नारी के लिए भीषण

समस्या बन गया है। इस द्वन्द्व में वह दोनों ही परिस्थितियों में अपने को मिसफिट पाती है और उसके 'मिसफिट' होने की यह कुण्ठित स्थिति ही आज की भारतीय नारी की स्थिति है।"[87]

अमरकांत के लगभग सभी उपन्यासों में नारी के प्रति हो रहे अन्याय व अत्याचार के विरूद्ध विद्रोही स्वर मुखरित हुआ है। जहां उनके उपन्यास साहित्य में एक और पीड़ित व दयनीय नारी का चित्रण हुआ है, वहीं दूसरी ओर सशक्त, सबल तथा विद्रोही नारी की झलक भी दिखायी देती है।

अमरकांत के उपन्यास 'सुन्नर पांडे की पतोह' में जब सास अतिराजी द्वारा राजलक्ष्मी को तरह–तरह की यातनाएं दी जाती है, तो वह चुपचाप उन्हें सहन कर लेती है। अतिराजी उसके चाल–चलन पर भी लांछन लगाती है। अति तो तब हो जाती है जब सास अतिराजी अपने पति को बहू से संबंध बनाने हेतु उसकी कोठरी में जाने को कहती है। राजलक्ष्मी यह सब सुन लेती है और क्रोध से भर उठती है और इसका विद्रोह करती हुई कहती है–"मैं आप दोनों की बातें सुन चुकी हूँ। मैं नहीं जानती थी कि आप लोग इतना गिर जायेंगे। पर मैं कहे देती हूँ – मुझमें सती का तेज है। जिनके हाथों में मैंनें अपना हाथ दिया था, उन्हीं के लिए मैं जिन्दा हूँ। मैं अपने तेज से आप दोनों को भस्म कर सकती हूँ। और कुछ नहीं तो मैं अपनी जान दे सकती हूँ।"[88]

आज की नारी अपने प्रति हो रहे किसी भी अत्याचार को बर्दाशत नहीं करती, वह उसका विद्रोह बड़े ही दृढ़ता के साथ करती है। 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास की सुशीला का विवाह उसकी उम्र के दोगुने व्यक्ति से तय कर दिया जाता है। तब वह 'सुन्नर पांडे की पतोह' से रोते हुए कहती है–"मैं मर जाऊँगी, मैं जहर खा लूँगी, छत पर से नीचे कूद पडूँगी, जल मरूँगी, पर यह शादी नहीं करूँगी।"[89]

सुशीला के मुख से यह सब बातें सुनकर सुन्नर पांडे की पतोह मन ही मन विचार करती है। "उसे लगा कि हर स्त्री अपना जीवन बोझ की तरह ढोती रहती है, फिर भी जब स्त्री निश्चित कर लेती है तो वह बड़े–से–बड़े संकट का मुकाबला भी कर सकती है। सुशीला ने आज यह सब सिद्ध कर दिया था।"[90]

आज की नारी अपने पैरों पर खड़ी है। वह नौकरी कर अपने परिवार का भरण–पोषण करती है। आज वह किसी भी तरह के अन्याय को चुपचाप सहन नहीं करती। वह हिम्मत, साहस व मेहनत को अपना हथियार बना समाज से लडती हुई नजर आती है।

'ग्रामसेविका' उपन्यास की नायिका 'दमयन्ती' बचपन से ही आर्थिक तंगी से जुझने तथा प्रेम में असफल होने के बावजूद भी हिम्मत नहीं हारती। माँ के देहांत तथा पिताजी पर लकवा फिरने के पश्चात् वह अपने पिता, बूढ़ी दादी व छोटे भाई की जिम्मेदारी अपने कंधों

पर उठा 'ग्रामसेविका' की नौकरी करने एक छोटे से गांव के लिए निकल पड़ती है। वह उसके प्रति हुए अन्याय का बदला अपने पैरों पर खड़े होकर निर्दयी समाज से लेने का प्रण करती है। "उसके दिल में एक आग जल रही थी। वह साहस संघर्ष और कर्मठता का जीवन अपनाकर अपने दुःख, निराशा और अपमान का बदला चुकाएगी।"[91]

अमरकांत जी ने दमयंती के माध्यम से सन् 1950 के आसपास गांव में नौकरी करने वाली स्त्री के प्रति गांव वालों का दृष्टिकोण कैसा था तथा दमयन्ती के संघर्षशील चरित्र के माध्यम से तत्कालीन समय का यथार्थ प्रस्तुत किया है। दमयंती ग्रामसेविका के रूप में जिस गांव में कार्य करती है। वहां अंधविश्वास, अशिक्षा और निर्धनता का साम्राज्य था। दमयंती अद्भुत साहस, प्रेम तथा धैर्य का परिचय देते हुए धीरे–धीरे गांव वालों को अंधविश्वास से मुक्त करने का प्रयास करती है। जमुना की दुधमुही बच्ची के प्राण बचाकर वह गांव वालों को अंधविश्वास से दूर करने का प्रयास करती है। वह जमुना से कहती है–"हवा और सफाई तन्दरूस्ती के लिए बहुत जरूरी है। भूत–प्रेत कुछ नहीं। जमाना तेजी से बदल रहा है। बड़े–बड़े रोगों की दवायें तैयार हो गई है। पहले दवाओं की सुविधा नहीं थी, तो लोग झाड़–फूंक से ही सन्तोष कर लेते थे। कुछ बच्चे अच्छे हो जाते थे, तो लोग समझते थे कि यह झाड़–फूंक का ही असर है। परन्तु अनगिनत बच्चे हर वर्ष इन्हीं अन्धविश्वासों के कारण मर जाते हैं। कोई भी बात होने पर फौरन डॉक्टर के यहाँ जाना चाहिए।"[92] दमयंती गांव के लोगों को शिक्षा का महत्त्व समझाते हुए कहती है–"आदमी अपनी तकदीर आप बनाता है। अगर खेत की जुताई ठीक से न की जाए, उसमें अच्छी खाद और बीज न डाले जाए तो क्या अच्छी पैदावार अपने आप ही हो जाएगी, असल चीज है अपनी मेहनत, अपनी कोशिश और अपनी बुद्धि। कौन जानता है कि इन्हीं में से कोई पढ़कर बहुत बड़े आदमी न हो जाएँ और अपने देश का नाम ऊँचा करें। लेकिन इनको पढ़ाया ही न जाएगा तो वे क्या कर सकेंगे।"[93]

आज की नारी पढ़–लिख कर समाज से अंधविवास को दूर करने का प्रयास भी कर रही है। 'ग्रामसेविका' उपन्यास के गांव वालों का मानना था कि हैजा एक दैवीय प्रकोप है। तब दमयंती गांव वालों को अंधविश्वास से मुक्ति दिलाने हेतु कहती है–"यह रोग है, यह देवी–देवता नहीं है। अगर इस रोग से लड़ा नहीं जाएगा तो वह सारे गाँव को खत्म कर देगा। अन्धविश्वासों से कोई लाभ नहीं होता है। दुनियां तेजी से तरक्की कर रही है। विदेशों में तो लोगों ने पढ़–लिखकर तथा मेहनत करके ऐसी तरक्की कर ली है कि वहाँ हैजा, प्लेग, चेचक वगैरह का नाम भी खत्म होता जा रहा है।"[94]

'आकाश पक्षी' उपन्यास का नायक रवि, हेमा की माँ को बदलते परिवेश तथा स्त्री शिक्षा व उनके अधिकारों के बारे में बताते हुए नवीन नारी के विषय में कहता है – "चाची

जी जमाना तेजी से बदल रहा है । आप देख रहीं है आज औरतें अधिक से अधिक पढ़ रही है, ऊँचे–ऊँचे पदों पर काम कर रही हैं, भाषण दे रही हैं, कॉलेजों, यूनिवर्सिटियों में पढ़ा रही है। औरत–मर्द में कोई ऊँचा–नीचा थोड़े हैं? सभी बराबर है। जो काम मर्द कर सकते है और करते है, वही औरतें भी कर सकती है और करती हैं ....।"[95] इस प्रकार उपन्यासकार ने नवीन नारी से सम्बन्धित क्रांतिकारी विचारों को रवि के मुख से कहलवाकर नारी अस्मिता तथा बदलते परिवेश की ओर संकेत किया है।

नारी धैर्य व साहस की प्रतिमूर्ति है। वह अपने पति की अर्द्धांगिनी व सहचरी है। परिवार में आने वाली समस्याओं का वह डटकर मुकाबला करती है। 'काले–उजले दिन' की कांति अपने पति का सम्बल बढ़ाकर उसे पढ़ने के लिए प्रेरित करती है। पारिवारिक समस्याओं के कारण कथानायक जब हिम्मत हार जाता है, तो वह उसे समझाते हुए कहती है–"जब मर्द ही हिम्मत हार जाएगा तो क्या होगा? हिम्मत हारा हुआ आदमी तो कुछ भी नहीं कर सकता। आपकी उम्र ही क्या है। आप फिर से पढ़ सकते है। .... टेंथ पास करने से आपको नौकरी मिल जाएगी। ...... मेरी चिन्ता आप न कीजिए। मैं हर दुःख–कष्ट बरदाशत कर सकती हूँ।"[96] इस प्रकार कान्ति उसे समझाते हुए नवीन दिशा प्रदान करती है।

इसी उपन्यास में रजनी के माध्यम से उपन्यासकार ने समाज और जीवन के प्रति अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। रजनी अनूप से कहती है – "मैं यह नहीं मानती कि हर बात में आदमी अपने को दोषी समझे। सदा हीनता और अपराध भाव से ग्रस्त रहने को मैं बर्दाशत नहीं कर पाती। मैं सदा आगे बढ़ने को ही जिंदगी मानती हूँ।"[97]

'बिदा की रात' उपन्यास में उपन्यासकार ने औरतों पर होते जुल्म का प्रतिकार किया है चाहे वह किसी भी जाति या धर्म की हो उसे एक इंसान की तरह जीने का पूर्ण अधिकार है। अमरकांत ने जहांगीरा बेगम के माध्यम से नारी के विद्रोही स्वरूप को प्रकट किया है। जहांगीरा बेगम, नईमा को समझाते हुए कहती है कि–"मैंने तो तुम्हारे चचिया ससुर अब्बा से साफ–साफ कह दिया था कि मैं हवा और रोशनी के बगैर नहीं रह सकती, और न किसी की टेढ़ी–तिरछी बात ही बरदाशत कर सकती हूँ। मर्द के बेकार, वाहियात शको–सुबहा पर लानत भेजती हूँ। मुस्लिम खातून हूँ तो अल्ला ने जो कानून बनाए है, उन्हीं पर चलूँगी, मगर अल्ला ने यह कहाँ कहा है कि औरत जानवर की तरह रहे, ताने, मारपीट और जुल्म सहे। .... याद रखों तुम मुस्लिम खातून हो, भेड–बकरी नहीं, अल्ला ने तुम्हारी इज्जत–आबरू और हक और सेहत के लिए बहुत कुछ कहा है। तहजीब और पर्दगी का यह मतलब तो नहीं कि बिना हवा रोशनी के मकान में बंद कर गंदी जबान के ढेला–पत्थर मारे जाएँ।"[98] कुछ दिनों पश्चात् नईमा की सास चालाकी से अपने बेटे का निकाह गुलशन बेगम से करवा देती है। गुलशन बेगम बेहद समझदार

और होशियार थी। गुलशन की सास नईमा बेगम के खिलाफ उसके कान भरने का प्रयास करती है, किंतु गुलशन बेगम अपनी सास को झिड़कती हुई कहती है—"आप मुझे नईमा बेगम बहन के खिलाफ कुछ न कहिए, वह अब मेरी बड़ी बहन है। आप जईफ हो गईं, अलग अपने कमरे में कुरान पढ़ा कीजिए, हम लोगों की जिंदगी में टांग न अड़ाइए। मैं नईमा बहन नहीं हूँ, मैं वैसी नेक और दबने वाली नहीं हूँ, मैं आपकी एक भी नहीं चलने दूंगी।"[99] इस प्रकार उपन्यासकार ने गुलशन बेगम के माध्यम से नारी की बदलती सोच तथा उसके विद्रोही स्वर का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में उपन्यासकार ने दुलारी गुरूजी के माध्यम से नारी की बदलती सोच का स्वाभाविक व यथार्थ अंकन किया है। दुलारी गुरूजी नारी के स्वाभिमान, साहस व शक्ति के विषय में अपनी शिष्या नम्रता को प्रेरित करते हुए कहती है—"स्त्री कोई काठ की लकड़ी, रेत—पाई नहीं है, उसमें भी सुन्दर इच्छाएँ है, स्वाभिमान है, विवेक है, अत्याचार और उत्पीड़न के विरूद्ध घृणा के भाव है, राष्ट्रप्रेम और साहित्यप्रेम है। तुलसीदास अगर सचमुच ही स्त्री को ढोर, गंवार समझते थे, तो यह एकदम वाहियात और झूठी बात है। इसका विरोध करना चाहिए, खूब पढ़—लिख कर, नए ज्ञान—विज्ञान अपनाकर और तुच्छ अहंकार को छोड़कर स्त्री को अपना स्वाभिमान अपना कद खड़ा करना होगा, रूढ़ियों और गलत बात का विरोध करना होगा ......।"[100]

वस्तुतः नवीन नारी दबी—कुचली नारी नहीं है। वह समाज से लड़ना जानती है, जिसका ज्वलंत उदाहरण इसी उपन्यास की भगजोगिनी देवी है। भगजोगिनी के पति बनवारी की तपेदिक के कारण मृत्यु हो जाती है। बनवारी का मित्र दामोदर उसकी सास से भगजोगिनी का हाथ मांग लेता है। भगजोगिनी के दैहिक शोषण के इरादे से वह झूठ—मूठ उससे गर्न्धव विवाह भी करता है। इसका पता जब दामोदर की पत्नी व समाज को लगता है, तो वह सबके सामने भगजोगिनी से अपने संबंध के विषय में मुकर जाता है। भगजोगिनी गांधी जी के बताये रास्ते पर स्वाभिमान से अपना जीवन यापन करने लगती है। परन्तु कुछ समय पश्चात् गोवर्धन जो समाजवादी कार्यकर्ता है तथा जिसकी अभी हाल ही में डाकखाने में नौकरी लगी है, उससे विवाह करना चाहता है। भगजोगिनी इस विवाह से इंकार कर देती है। नम्रता के समझाने पर कि गोवर्धन ईमानदार है और यदि तुम भी उसे पसंद करती हो, तो विवाह करने में कोई हर्ज नहीं है। इस पर भगजोगिनी नम्रता से कहती है कि—"क्या औरत रोज मर्द बदलने के लिए बनी है? क्या वह कोई मशीन है! उसका कोई दिल—मन नहीं हैं? उसका प्यार कपड़े बदलने की तरह है? उसकी हिम्मत इसलिए न हुई कि मेरे साथ धोखे में मजबूरी में कभी कुछ हो गया तो वह समझता है कि अब भी मैं मजबूर हूँ और इस तरह की बात मान लूंगी। यह प्यार है कि हवस है बहन जी? दया कृपा है! जब तक शरीर है तो मीठी—मीठी बातें है, जब मतलब निकल जाएगा,

स्त्री का शरीर ढह जाएगा तो यह प्यार कितने दिनों तक रहेगा? ...... मैं मेहनत करूँगी, रूखा–सूखा खाऊँगी, अपने बच्चों को पढ़ा–लिखा कर बढ़ा करूँगी, अपने पैरों पर खड़ा होने में उनकी मदद करूँगी।"[101]

भगजोगिनी के प्रसंग के माध्यम से उपन्यासकार ने स्वार्थी समाज का यथार्थ प्रस्तुत किया है साथ ही नारी के विद्रोही स्वर को मुखरित कर यह बताने का प्रयास किया है कि नारी एक ही लीक पर चलने वाली नहीं है। वह पुरूष के बिना भी स्वाभिमान के साथ खड़े रहने का सामर्थ्य रखती है। इस प्रकार उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में विद्रोही नारियों का वर्णन कर नवीन नारी की परिकल्पना की है।

5.2 राजनीतिक संदर्भ

राजनीति ने प्राचीन काल से ही मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया है। आधुनिक काल में तो वह जन सामान्य के जीवन को सीधे प्रभावित करने वाला एक अपरिहार्य अंग बन चुकी है। आज की जिंदगी का हर रास्ता राजनीति से होकर गुजरता दिखाई देता है। वर्तमान भारत में सत्ता का सबसे प्रभावशाली रूप यदि कोई है, तो वह है राजनीति। राजनीतिक समझ के बिना सामाजिक जीवन की समझ ही सम्भव नहीं है।

वस्तुतः वर्तमान जनता राजनीति और राजनीतिज्ञों के हाथों की कठपुतली बन कर रह गयी है। करोड़ों जनता के भाग्य का फैसला आज संसद और विधानसभाओं में होता है। प्रायः अधिकांश राजनीतिज्ञों का चरित्र गंदगी, भ्रष्टाचार व स्वार्थपरता से परिपूर्ण है। इस देश में "महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ खुलकर कहने लगे हैं कि पाँच सौ करोड़ रूपए जमा कर, इस राशि के कुशल उपयोग से भारत का प्रधानमंत्रित्व पाया जा सकता है। राजकीय बड़े सौदों में विधायिकाओं के सदस्य खुले बाजार में अपने आपको नीलाम करने लगे। सड़क की राजनीति ने दुःसाहसी युवा नेताओं को जन्म दिया, जिन्हें न आदर्शों की चिन्ता थी न साधनों की। शब्द शक्ति और बाहुबल से वे अपना काम चला रहे थे। इस दौर में राजनीतिक नेताओं, अपराधिक तत्त्वों और माफिया गिरोहों के बीच संवाद और सहयोग बढ़ा। जातीय भावना और धर्म के नाम पर आतंकवाद के विस्फोट होने लगे।"[102]

देश की वर्तमान स्थिति के संदर्भ में अटल बिहारी का मानना है–"हम एक अंधेरी गली में प्रविष्ट हो चुके है। जहां फिसलन है और उजाला दिखायी नहीं देता। यदि राजनीति भ्रष्ट, स्वार्थी और सत्ता लोलुप है, तो कोई प्रणाली जन कल्याण का साधन नहीं बन सकती। अब राजनीति में सद्‌गुण नहीं रह गये और यह एक विषैला हस्त–कौशल बन गया है, जिसमें ईमानदारी नहीं रही।"[103]

भारतीय राजनीतिक स्थिति पर डॉ. लक्ष्मण दास का मत है कि—"चारों तरफ एक—एक राजनैतिक वर्ग पनपने लगा, जो जोंक की तरह जनता का रस चूसने लगा और अपने लिए सुविधाएं बटोरने लग गया।"[104] अतः कहा जा सकता है कि सार्वजनिक जीवन में आज किसी राजनेता का आदर्श व्यक्तित्व नहीं रहा, जिसका अनुकरण नई युवा पीढ़ी कर सके।

वस्तुतः राजनीतिक भाषा की रचना ऐसी है, जिसमें झूठ को सच बताया जाता है और सच का बडे सम्मान के साथ कत्ल किया जाता है। कमलेश्वर ने नयी कहानी की भूमिका में कहा है—"राजनीति की महत्ता से इंकार नहीं किया जा सकता और न उससे निरपेक्ष रहने की आवश्यकता है।"[105] आज जनसाधारण का राजनीति से कटकर रहना न तो संभव है और न ही उचित। शायद यही कारण है कि स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकार राजनीति के महत्त्व को अस्वीकार नहीं करते।

अमरकांत के उपन्यास साहित्य में राजनीतिज्ञों का मूल स्वरूप तथा जनमानस के जीवन में उनका प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में आजादी पूर्व राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में भाग ले रहे युवकों की मानसिकता तथा स्थिति का यथार्थ अंकन किया है। इनके द्वारा सृजित 'सूखापत्ता' व 'इन्ही हथियारों से' उपन्यास में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का स्वर मुखरित हुआ है। अमरकांत के उपन्यास साहित्य में राजनीतिक यथार्थवाद की अभिव्यक्ति का अध्ययन निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है।

स्वातंत्र्य पूर्व भारत व देशप्रेम

अमरकांत ने जब लेखन कार्य प्रारम्भ किया, उस समय स्वतंत्रता संग्राम महात्मा गांधी के नेतृत्व में चरम सीमा पर था। सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में स्वयं अमरकांत जी ने सक्रिय भागीदारी की थी। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में सहभागी जनता के सहयोग व योगदान को उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभूत किया था, जिसका प्रभाव उनके लेखन में भी परिलक्षित होता है। उन्होंने अपने उपन्यास 'सूखापत्ता' व 'इन्हीं हथियारों से' में स्वाधीनता आंदोलन का यथार्थ चित्रण किया है।

'सूखापत्ता' उपन्यास की पृष्ठभूमि सन् 1945 के आस—पास की है, जब भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन पूरे उभार पर था। गांधी जी पूरे भारतीय समाज के मानस पटल पर छाए हुए थे। सन् 1942 में कांग्रेस कमेटी ने गांधी जी के नेतृत्व में एक व्यापक आंदोलन भारत छोड़ो का आगाज किया, जो आगे चलकर मील का पत्थर साबित हुआ। जिसने तमाम अत्याचारों का सामना करते हुए ब्रिटिश सरकार की जड़ो को खोखला कर दिया। गांधी जी ने 'करो या मरो' का आह्वान करते हुए हर जगह अपनी दस्तक दी। इस आंदोलन से कोई अछूता नहीं रहा। स्वयं उपन्यासकार अमरकांत भी इस आंदोलन से अछूते न रह सके। पूर्वी उत्तर प्रदेश बलिया

और उसके आस–पास का क्षेत्र तो क्रांतिकारियों का विशेष अड्डा बन गया था। सन् 1942 की क्रांति में तो बलिया पूरे देश में अग्रणी रहा। भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास बड़े गर्व से इस बात को स्वीकार करता है। इस आंदोलन में उस समय के नवयुवकों में ऐसा उत्साह था कि उन्होंने देश को आजाद कराने के लिए अपना घर, स्कूल, गांव तक छोड़ दिया। अमरकांत स्वयं कहते है कि गांधी जी के 'करो या मरो' आह्वान पर वे अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़कर देश की आजादी की लड़ाई में कूद पड़े थे।

'सूखापत्ता' उपन्यास में अमरकान्त ने स्वयं के द्वारा भोगे निजी अनुभवों को यथार्थ धरातल पर शब्दबद्ध किया है। प्रस्तुत उपन्यास में वे भाव जो कृष्ण कुमार को क्रांतिकारी पथ पर ले जाने के लिए प्रेरित करते हैं, वे अमरकांत जी के ही भाव है। 'सूखापत्ता' उपन्यास में उन्होंने कृष्ण कुमार से कहलवाया है कि – "उस समय की स्थिति में राजनीति ऐसा प्रशस्त पथ था, जिस पर चलने से मेरे मन के आदर्श को आकार मिलता। सन् 42 का आन्दोलन मेरी आँखों के सामने गुजरा था और उस आंदोलन को जिस तरह से दबाया गया था, उससे मैं भली–भाँति अवगत था। देश के क्रांतिकारियों के बलिदान के किस्सों को पढ़–सुनकर यौवन का गर्व एवं आत्मसम्मान सोए शेर की तरह जाग उठता।"[106] उपन्यास का नायक कृष्ण कुमार अपने इस आदर्श को रूपाकार करने हेतु अपने तीन मित्र–मनोहर, दीनानाथ एवं दीनेश्वर के साथ मिलकर देश को आजाद कराने के लिए संकल्पित हो योजनायें बनाता है।

कृष्ण कुमार व उसके साथियों के दिल में विदेशी गुलामी के विरूद्ध घृणा एवं क्रोध उत्पन्न करने का सबसे अधिक श्रेय रामलाल नाम के एक रंगरेज को जाता है। वह उन्हें भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरू और अन्य क्रांतिकारियों के त्याग और बलिदान के किस्से प्रशंसनीय, मौलिकता व अतिरंजना के साथ सुनाया करता। तत्कालीन समय के साहित्य ने भी इन युवाओं के हृदय में आजादी का बिगुल बजाने का काम किया था। कृष्ण कुमार स्वगत कथन में कहता है – "परीक्षा समाप्त होने के पश्चात् दो ऐसी पुस्तकें पढ़ने को मिली, जिन्होंने मेरी और मेरे साथियों की विद्रोही भावभूमि के निर्माण और विस्तार में पर्याप्त योगदान किया। एक पुस्तक सम्भवतः 'भारत में सशस्त्र क्रांति की चेष्टा' थी और दूसरी पंडित सुन्दरलाल द्वारा लिखित 'भारत में अंग्रेजी राज'......... इन पुस्तकों को पढ़कर पहली बार मुझे भारत के सम्पूर्ण इतिहास, यहां हुए अन्यायों और अत्याचारों के विरूद्ध संघर्ष करने वाले उसके महान् व्यक्तियों और उसकी प्रगतिशील संस्कृति के प्रति एकात्मकता की अनुभूति हुई। हमारे घर की चारदीवारी के बाहर पैंतीस करोड़ लोगों का एक ऐसा पिछड़ा देश है, जिसकी उन्नति में सबकी उन्नति और जिसकी अवनति में सबकी अवनति निहित है – ऐसे ही भाव उन पुस्तकों को पढ़कर दिल में प्रथम बार उत्पन्न हुए।"[107]

कृष्ण व उसके साथियों की उम्र लगभग सोलह वर्ष है। वे सभी अल्पायु होने के कारण गांधी जी के आन्दोलन के महत्त्व की पर्याप्त समझ तो नहीं रखते, लेकिन उन सभी के हृदय में अंग्रेजी हुकुमत के विरूद्ध क्रोध व घृणा है। इसीलिए वे क्रांतिकारी मार्ग को अपना कर देश सेवा में जुट जाते है। कृष्ण व उसके साथियों द्वारा किये गये कार्य सही दिशा न मिलने के अपरिपक्व मानसिकता की देन थी। इसलिए क्रांतिकारी आतंकवादी बनने के लिए कभी वे रात के सन्नाटे में ताला तोड़कर एक–दो बोरे चीनी चुराते है तो कभी खाली बोरे, कभी वे भूथरी तलवार इकट्ठा करते, तो कभी किसी अंग्रेज समर्थक सेठ को बेहोश करने के लिए एक डॉक्टर से मित्रता करके वहाँ से क्लोरोफार्म की शीशी चुराते। इसके अलावा उन्होंने गांव से लाठियाँ मंगवा ली तथा एक 'लाठी शिक्षक' पुस्तक भी खरीद ली। इन सब वस्तुओं के रखने के लिए वे एक रिटायर्ड शिक्षक का मकान चार रूपये में किराये पर लेते हैं। कृष्ण कुमार और उसके मित्रों ने मिलकर एक 'खूनी आजाद क्रांतिकारी पार्टी' का गठन भी किया। इसी दौरान कृष्ण कुमार का संबंध एक 'बलराम तिवारी' नामक क्रांतिकारी से होता है। वह उसे बाबू भोला सिंह तथा मंजूर अली को धमकी भरे पत्र लिखने को कहता है। एक दिन अचानक जरीना नामक वैश्या के घर डकैती के आरोप में कृष्ण कुमार व उसके साथियों को पुलिस गिरफ्तार कर लेती है। कृष्ण कुमार पुलिस की भारी यंत्रणा सहता है, लेकिन जो कार्य उसने नहीं किया उसका जुर्म वह स्वीकार नहीं करता। वह कहता है–"मुझे ऐसा लगा कि मैं भयंकर से भयंकर यंत्रणा भी बर्दाश्त कर सकता हूँ। इस मार ने मेरी सुप्त चेतना, गर्व, आदर्शवादिता और पुरूषत्व को जगा दिया। मुझमें एक अकल्पित दृढ़ता आती गई। उसके प्रहार ने जादू की छड़ी का काम किया था और इससे मेरा व्यक्तित्व एकदम बदल गया था। मैं कायर नहीं हूँ, मैं नीच नहीं हूँ, मैं इसके सर्वथा अयोग्य हूँ कि मैं अपने देश के सम्मान को बेच सकूँ।"[108]

यह तथ्य इस ओर संकेत करता है कि उस समय के समाज में कृष्ण कुमार व उसके साथी जैसे कई नवयुवकों के दिलों में ही राजनीतिक हलचल नहीं मची हुई थी, बल्कि वे इसमें हिस्सेदार भी थे। बाद में कृष्ण कुमार के सभी मित्र उससे अलग हो जाते हैं। कृष्ण कुमार कम्यूनिस्ट विचारधारा के अखिलानंद वर्मा के सानिध्य में आता है। अखिलानंद वर्मा क्रांतिकारी आतंकवाद को गलत मानते हैं। वह कहते है–"आतंकवाद से देश का लाभ नहीं हो सकता। जब क्षोभ अधिक होता है और शक्ति तथा ज्ञान की कमी होती है तब आतंकवाद का जन्म होता है। अध्ययन से ज्ञान होता है और ज्ञान से सही तथा गलत को समझने की शक्ति उत्पन्न होती है। इस शक्ति को साधारण जनता के उत्थान में लगाने से ही कल्याण हो सकता है।"[109] अखिलानंद कृष्ण कुमार को ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुकाबला करने के विषय में समझाते हुए कहते हैं –"ब्रिटिश साम्राज्य एक बहुत बड़ी ताकत है, और उसका मुकाबला सिर्फ हम या आप या कुछ चुने हुए आदर्शवादी और बहादुर नहीं कर सकते। यह उसी समय मुमकिन है, जब यहां का

एक–एक मजदूर, एक–एक किसान, और एक–एक नौजवान एक साथ विद्रोह का झंडा उठा दे। जनता के बल से बड़ी ताकत इस दुनियां में कोई नहीं।"[110]

अखिलानंद कहते है कि देश की आजादी के बाद राजनीतिक स्वतंत्रता व समाजवाद दोनों जरूरी है। अखिलानंद वर्मा की समाजवादी पार्टी का कृष्ण कुमार पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सम्पूर्ण उपन्यास की कथा पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कथा स्वयं अमरकांत के जीवन की कथा है। बलिया शहर में बीता उनका बचपन। वहां के लंठई और आवारगी भरे वातावरण में बीता उनका कैशोर्य जीवन, युवावस्था में स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेना, इस दौरान शिक्षा का क्रम टूटना, बाद में मार्क्सवादी विचारधारा की ओर मुड़ना इत्यादि सभी घटनाएं जो 'सूखापत्ता' उपन्यास के नायक कृष्णकुमार के साथ दिखाई देती है, वे अमरकांत के जीवन की भी घटनाएँ है। इससे स्पष्ट है कि 'सूखापत्ता' उपन्यास का कथानक यथार्थ भूमि पर लिखा गया है तथा नायक कृष्णकुमार स्वतंत्रता पूर्व के नौजवानों का प्रतिनिधित्व करने वाला नायक कोई ओर नहीं स्वयं अमरकांत है।

'इन्ही हथियारों से' उपन्यास में गांधी जी के विभिन्न प्रकार के आंदोलनों तथा क्रांतिकारी घटनाओं का वर्णन हुआ है। स्वातंत्र्य पूर्व के भारत की तत्कालीन परिस्थितियों का लेखा–जोखा प्रस्तुत करने वाला यह उपन्यास कोई इतिहास ग्रन्थ नहीं है, अपितु देश की आजादी में अपना सर्वस्व बलिदान कर देने वाले साधारण जन–समुदायों का यथार्थ उद्घाटन है।

गांधी जी के असहयोग आंदोलन में जनता ने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया।" इस आंदोलन में जनता की भागीदारी का अन्दाजा इससे भी आपको हो जाएगा कि अनेक नौजवानों ने अपनी शादियों में दान–दहेज लेने से इनकार कर दिया। उनका कहना था, "यदि दहेज ही देना चाहते है तो ग्यारह या इक्कीस चरखे बनवाकर दे दीजिए।"[111]

'इन्हीं हथियारों से' में बलिया क्षेत्र में घटित देशव्यापी आंदोलनों तथा क्रांतिकारी घटनाओं का यथार्थ वर्णन हुआ है। "गांधी जी ने यहां आने पर बलिया को 'दूसरा बारदोली' कहा था।"[112] पूरा जन–समुदाय देश को आजाद कराने के लिए व्याकुल था। "बलिया की समूची जनता आजादी के लिए व्याकुल थी। उसने आजादी के हर आंदोलन में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया था और आज वह इस आखिरी लड़ाई में निर्णायक भूमिका निभाने को तैयार थी। इस समय न कोई धर्म, न कोई जाति न क्षेत्र। बस पूरा हिन्दुस्तान। एक विशाल, अटूट चट्टान।"[113]

गांधी जी ने अपने अंहिसात्मक आंदोलनों तथा भाषणों से आम जनता का समय–समय पर उत्साहवर्धन भी किया। गांधी जी ने अपने भाषण में कहा था – "हम अपनी स्वतंत्रता लड़कर प्राप्त करेंगे। वह आकाश से टूटकर नहीं आ सकती। यह मेरे जीवन की अन्तिम लड़ाई होगी, लेकिन जो मेरे अंहिसा के सिद्धांत से थक गए, वे मेरे साथ न आवें। .... सरकारी

कर्मचारी कांग्रेस का साथ दे। अध्यापक और विद्यार्थी मैदान में आ जाएँ। सभी का मंत्र एक ही होगा – 'करो या मरो' हम या तो हिन्दुस्तान को आजाद करके रहेंगे अथवा शहीद हो जाएँगे।"[114]

इस सन्दर्भ में अमरकांत जी कहते है–"गांधी जी के नेतृत्व की खूबी यह थी कि सिर्फ भाषण, उपदेश और बड़े–बड़े नारे ही नहीं दिए गए बल्कि ठोस सरल, रचनात्मक कार्यों के बीच–बीच में आंदोलनात्मक कार्यक्रम, उस नेतृत्व ने आज के पक्ष में लोगों को ऐसी बुद्धि, ज्ञान, साहस और क्रांतिकारी तेवर दिए जो श्रेष्ठ परम्पराओं, निजी जरूरत तथा आकांक्षाओं से जुड़े और प्रेरित भी थे।"[115]

वस्तुतः उस समय जनमानस के पटल पर गांधी जी सम्पूर्ण रूप से छाए हुए थे। गांधी जी के 'करो या मरो' के आह्वान ने जनता में जोश भर दिया था। तत्कालीन समय में गांधी जी के आह्वान का सार्थक परिणाम हुआ। अतः जनव्यापी नेताओं ने गांधी जी की रणनीति का यथार्थ आम जनता में फैलाने का काम किया। इस दौरान बलिया में घोषणा होती है –"गांधी जी ने आजादी का बिगुल बजा दिया है। उन्होंने अंग्रेजों से कहा कि वे भारत को छोड़कर चले जाएँ और देशवासियों से 'करो या मरो' की अपील की है। .... हम जिला और शहर कांग्रेस समिति की ओर से सभी दुकानदारों, कचहरिया और दफ्तरिया लोगों और बहादुर छात्रों तथा माताओं–बहनों से अनुरोध करते हैं कि वे आज से पूरी हड़ताल कर दें और इस अन्यायी अंग्रेज सरकार को आखिरी धक्का देने के लिए बाहर मैदान में आ जाएँ।"[116]

ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन को दबाने के लिए जगह–जगह अपनी दमनकारी गतिविधियां प्रारम्भ कर दी थी। बड़े–बड़े नेताओं गांधी जी, जवाहर लाल नेहरू इत्यादि को जेलों में बंद कर दिया गया था। ऐसी स्थिति में आंदोलन को सुचारू रखने की जिम्मेदारी साधारण कार्यकर्ता और जनता के कंधों पर आ गई थी। सरकार ने 144 धारा लागू कर दी थी। जिसके अनुसार कहीं भी यदि चार–पांच लोग इकट्ठे दिखे, वहीं सरकार उन्हें गिरफ्तार कर जेल में ठूंस देती। असंदिग्ध व्यक्ति को सीधे गोली मार दी जाती। वास्तव में ब्रिटिश सरकार आम जनता के विशाल आंदोलन को देखकर डरी हुई थी। "एक दिन जब शहर का छोटा डाकखाना और जहाज घाट का कार्यालय फूँक दिया गया, तो जिला प्रशासन की असमर्थता और असहायता जग जाहिर हो गई।"[117]

ब्रिटिश सरकार ने अपने अत्याचार बढ़ा दिये थे। बेवजह वह जनता पर जुल्म करने लगी। "धारा 144 तोड़ने के जुर्म में अंधाधुध गोलियां चलवा दी ... पुलिस लॉरी मौत, आतंक और भय के धुर्रे उड़ाती हुई चली गई है, हताहतों को छोड़कर .... बहुत से लोग जमीन पर बोरे बिछाकर और उन पर गल्ले या सब्जियों वगैरह के ढेर लगाकर सामान बेचते है। भगदड़ में ही आलू बिखरे हुए है, कहीं गेहूँ। न कहीं जुलूस, न कही आंदोलन, एक बाजार पर बिना किसी

चेतानवी के तड़ातड़ गोलियाँ। कोई चावल के ढेर पर मरा है, कोई ढर्रो के बीच रास्ते में। कोई सड़क के बीच में पड़ा है, कोई नाली के किनारे। बाजार तो बन्द है, दुकानदार भाग गए हैं, सामान जहाँ के तहाँ पड़े है, समस्या है लाशों की उनके रिश्तेदारों को बुलाकर अन्येष्टि कराने की।"[118] इस प्रकार ब्रिटिश हुकुमत की क्रूरता व बर्बरता का कटु यथार्थ यहां प्रस्तुत हुआ है। फिर भी आम जनता में उत्साह था। उन्होंने महात्मा गांधी की नीतियों को अपना हथियार बना लिया था। इस सन्दर्भ में अमरकांत जी कहते है हमारा सबसे बड़ा सम्बल है–"महात्मा गांधी द्वारा बताए गए असहयोग, सत्याग्रह, कौमी एकता, साम्प्रदायिक सद्भाव, अस्पृश्यता उन्मूलन, अहिंसात्मक प्रतिरोध, नारी उत्थान, स्वदेशी, साहसी, स्वाभिमान और जनसेवा के रचनाकार विचार और कार्यक्रम। इसलिए लोग जान गए है कि आजादी की लड़ाई कैसे और किन हथियारों से लड़ी जा सकती है। जहाँ कोई नेता नहीं है, वहाँ स्वयं ही लोग दल बनाकर और अपने ही बीच में से किसी को नेतृत्व सौंपकर निकल पड़ते है नारे लगाते हुए। कोई बड़ा नेता न होने पर भी उन्होंने महान् जिम्मेदारियां संभाल ली है।"[119]

"लोगों के दिलों में क्रांति के शोले दहक रहे हैं, जिनमें सरकारी कार्यालयों, थानों, डाकखानों, स्टेशनों तथा अन्य स्थानों पर विद्यमान विदेशी हुकूमत के रेकार्ड, महत्त्वपूर्ण दस्तावेज अन्य कागज–पत्र, टिकट, लिफाफे, पोस्टकार्ड, मनी ऑर्डर, तार के फार्म वगैरह जलकर खाक हो गए। जो नोट मिले वे या तो जला दिए गए या कार्यालय के साधारण कर्मचारियों और गरीबों में बांट दिए गए।"[120]

यह निर्विवाद सत्य है कि देश को आजाद कराने में गांधी जी, जवाहर लाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस जैसे बड़े नेताओं तथा शहीद भगत सिंह व चन्द्रशेखर आजाद जैसे क्रांतिकारियों की अनमोल कुर्बानियां है। साथ ही न जाने कितने आम व मामूली लोगों का सहयोग व बलिदान है, जिसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। इन सभी के सहयोग से आजाद भारत का स्वप्न साकार हो सका। "उसमें ऐसे–ऐसे व्यक्तियों ने आगे बढ़कर नेतृत्व संभाला जिनके बारे में ऐसा कभी सोचा ही नहीं जा सकता। जिनको पहले कभी दब्बू, मरियल, सोझियाँ, गँवार, गरीब, शर्मिला, नासमझ, पिछड़ा अथवा आवारा या उद्दंड समझा गया है, वे कईं हिम्मतियों और आदर्शवादियों से भी आगे बढ़ गए।"[121]

वस्तुतः "राजनीतिक आजादी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उसमें आर्थिक और सामाजिक समता के स्वप्न जुड़ गए थे, जो बहुत चटक भले ही न हो, लेकिन जो देश, समाज की समस्याओं और उनके समाधान की रूप–रेखा और तरीकों की समझ दे रहे थे। इसी वजह से इस आन्दोलन में साधारण लोगों की भागीदारी सर्वाधिक थी।"[122] हालांकि अंग्रेज प्रशासकों की उन्मत्तकारी प्रवृत्ति तथा नीतियों के फलस्वरूप आम जनता को जान–माल की काफी

हानि हुई, जिसके हृदय द्रावक यथार्थ का चित्रण अमरकांत के 'इन्हीं हथियारों से' में दृष्टिगत होता है। "अनेक देशभक्तों के मकान जला दिए गए, जिनसे धुँआ उठ रहा था महिलाओं और बच्चों के क्रन्दन के साथ। बाहर निर्जन है, दुकानें बन्द है, हवा सहमी है, धरती थरथरा रही है और आकाश झुक गया है, और इन सबके बीच विदेशी गुलामी के प्रशासक के सैकड़ो अनुचर अपने बूटों के तले भारतीय जनता के अरमानों को रौंद रहे है।"[123] क्रांति के दीवानों के जोश व देशप्रेम के आगे ब्रिटिश सरकार की क्रूरता व बर्बरता निराश हो चुकी थी। देशभक्तों को जेल में अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता था। "कैसे उनका रस्सा खोलकर जमीन पर पटका गया, कैसे चार व्यक्तियों ने उनका एक–एक हाथ, एक–एक पैर दबाए रखा और पाँचवें ने कैसे मोचनी से मूँछ का एक–एक बाल उखाड़ा फिर उसके बाद कैसे गरीब राहगीरों को बुलाकर उनका पेशाब एक हंडिया में एकत्रित करके ढरके की मदद से उसे जबरदस्ती पिलाया गया, ... ऐसी यंत्रणा को शब्दों में लिपिबद्ध करना संभव नही।"[124]

समकालीन परिस्थितयाँ चाहे जैसी भी हो। देश का हर वर्ग स्वाधीनता चाहता था। उनके नेत्रों में आजादी की ज्वाला धधक रही थी, रगों में क्रांतिकारी खून उबल रहा था तथा सभी के चेहरों पर एक समान तेज दिखाई पड़ता था। इनमें एक वर्ग ऐसा भी था जो निरक्षर व असक्षम थे, वे स्वाधीनता का मतलब भी ठीक से नहीं जानते थे, लेकिन एक बात जरूर थी। वे आजाद होना चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि आजादी उनके दु:ख–दर्द को दूर कर देगी। देश को आजादी चाहिए, चाहे इसके लिए उन्हें कोई कुर्बानी देनी पड़े, वे हर प्रकार की कुर्बानी देने के लिए तैयार थे। अमरकांत ने 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में स्वातंत्र्य पूर्व भारत का यथार्थ प्रस्तुत किया है, जहां देशप्रेम की लहर हिलोरे ले रही थी, हर व्यक्ति आजाद भारत में सांस लेने का स्वप्न देखता था और उसे साकार होता हुआ देख भी रहा था।

देश विभाजन व साम्प्रदायिकता

सन् 1940 के उपरांत मुसलमानों को यह स्पष्ट था कि उनका उद्देश्य न तो एक राष्ट्रीय हिंदू भारत में दूसरे स्तर की नागरिकता था, और न ही एक बहुराष्ट्रीय भारत में एक संदिग्ध सी साझेदारी। उन्हें तो एक विभिन्न प्रदेश में एक विभिन्न राष्ट्रीयता की आकांक्षा थी।

जवाहर लाल नेहरू ने कहा है कि – "एक साम्प्रदायिक से दूसरी साम्प्रदायिकता समाप्त नही होती। प्रत्येक एक–दूसरे को बढ़ावा देती है और दोनों ही पनपती है।"[125]

"भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या को केवल हिन्दू–मुस्लिम प्रश्न अथवा इसको हिन्दू–मुस्लिम धर्मों का विरोध मानना ठीक नहीं। साम्प्रदायिक प्रश्न का आधार राजनैतिक अधिक और धार्मिक कम है। इन दो धर्मों के अतिरिक्त इस त्रिभुज में एक तीसरा पक्ष भी था।

अंग्रेजों ने हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायों के बीच अपने आपको स्थापित कर एक साम्प्रदायिक त्रिभुज खड़ी कर दी। इस त्रिभुज की सबसे दृढ़ तथा आधार भुजा अंग्रेज थे। वे न ही मुसलमानों के मित्र थे, न हिन्दुओं के शत्रु। वे तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के मित्र थे और 'बांटो और राज्य करो' में विश्वास करते थे। लार्ड जान एल्फिन्स्टन जो 1853 से 1860 तक बम्बई के गवर्नर थे, उन्होंने एक बार लिखा था कि 'बांटो और राज्य करो' यह प्राचीन रोमन कहावत थी और यह हमारी भी होनी चाहिए। इसी प्रकार सर जॉन स्ट्रेची जो एक प्रशासनिक अधिकारी थे, ने भी लिखा था, भारत में विभिन्न धर्मों का एक साथ होना हमारी राजनैतिक स्थिति के लिए बहुत अच्छी बात है। सन् 1857 के विद्रोह में बहादुरशाह जफर को पुनः सम्राट बनाने का प्रयत्न किया गया था, अतएव अंग्रेजों के मन में मुसलमानों के प्रति कुछ कटुता थी।"[126]

"सर सैयद अहमद खान जो आरम्भिक काल में एक संयुक्त भारतीय राष्ट्र और हिंदू–मुस्लिम एकता के कट्टर विरोधी और अंग्रेजी साम्राज्य के समर्थक बन गए। आरम्भिक कल में जहां उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों को एक सुन्दर वधू (भारत) की दो आँखे बतलाया था, वहीं इसके विपरीत उन्होंने एक भाषण में, जो उन्होंने 16 मार्च 1888 को मेरठ में दिया, उनका यह कहना था कि हिन्दू और मुसलमान न केवल दो राष्ट्र है, अपितु विरोधी राष्ट्र है। यदि अंग्रेज भारत से चले जाए तो ये कभी भी एक साझा राजनैतिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकते।"[127] स्पष्ट है कि अंग्रेजी नीति के फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमान दो विभिन्न राष्ट्रों, धर्मों व जातियों में बंटने को मजबूर हो गये। पहले तो वे इस नीति के खिलाफ थे, किंतु कुछ कूटनीतियों के चलते व लोभवश उन्होंने बंटना स्वीकार कर लिया। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, अंग्रेजी संसद ने जुलाई 1947 में पारित किया और उसके अनुसार 15 अगस्त 1947 से हिन्दुस्तान को दो स्वतंत्र प्रदेशों भारत और पाकिस्तान में बांट दिया गया। हिंदी कथा साहित्यकारों ने देश–विभाजन तथा साम्प्रदायिक को अपने साहित्य में स्थान दिया है। हिन्दू–मुस्लिम एकता के किस्से तथा उसमें फूट पड़ना और देश–विभाजन से होने वाली पीड़ा के अनेकोनेक किस्से हिंदी साहित्य में भरे पड़े हैं।

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में हिन्दू–मुस्लिम एकता का उदाहरण देखने को मिलता है। "दो गांव पास–पास थे। एक गाँव था हिन्दुओं का और दूसरा मुसलमानों का। दोनों ही गांवों के लोग आपस में प्यार से रहते। दशहरा में गाँव के प्रतिष्ठित हिन्दू लोग पडौसी गांव में जाकर मुसलमान भाईयों को रामलीला और विजयादशमी का मेला देखने के लिए आदरपूर्वक बुला लाते। होली मे दोनों गांव के लोग आपस में होली खेलते, गले मिलने के लिए चले आते .... और चैता गाते। इसी तरह मुहर्रम के दिन गांव के मुस्लिम बुजुर्ग पड़ौसी हिन्दू गाँव में हर दरवाजे घूम–घूमकर आते आज .... कतल की रात है। .... दाहा उठने के समय आ जाइए। खूब ताशा सुनिए, गदा–फाना देखिए, मन्नत–मानिए .... ईद और बकरीद को भी झुंड के झुंड हिंदू अपने मुसलमान भाईयों से ईद मिलने पडौसी गांव जाते। दोनों गाँवों के लोगों के बीच कभी

कोई झगड़ा नहीं हुआ। खेत बारी को लेकर अगर कभी कोई मतभेद भी हुआ तो मिल जुलकर सुलझा लिया जाता।"[128] किंतु "विभाजन के फलस्वरूप देश में हिंसा का ऐसा भयानक ताण्डव नृत्य हुआ कि शैतान की क्रूरता भी उसके सामने फीकी पड़ गयी। दोनों जातियों के परस्पर वैमनस्य और घृणा की आग के कारण विभाजन के उपरान्त मनुष्य की दानवता के अकल्पनीय दृश्य देखने में आये। देश में साम्प्रदायिक दंगों की जो आग भड़की उसके कारण लाखों निर्दोष, निरूपाय मनुष्य मृत्यु के ग्रास बने और लाखों को बेघरबार होना पड़ा। विभाजन से उत्पन्न परिस्थितियों ने जन–जीवन, उसकी नैतिकता, आदर्श और मान्यताओं को झकझोर दिया।"[129]

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में देश–विभाजन तथा साम्प्रदायिक दंगों का यथार्थ चित्रण हुआ है। "स्वातन्त्र्य–प्रेमियों की भारी जीत के बाद केन्द्र और प्रान्तों में सरकारें बन गई। अब स्पष्ट हो गया कि केन्द्र की अन्तरिम सरकार की सफलता के बाद शीघ्र ही जनता सरकार के हाथों वास्तविक सत्ता अधिकार सौंपकर अंग्रेज भारत छोड़ देंगे। लेकिन सत्ता इतने निकट देखकर छीना–झपटी शुरू हो गई। अन्तरिम सरकार असफल होकर टूट गई और कई जगह विशाल पैमाने पर साम्प्रदायिक दंगे होने लगे। हत्या, लूट और अपहरण की घटनाएं। जिन लोगों ने स्वतंत्रता के लिए विशाल अंहिसात्मक जुलूसों का नेतृत्व किया था, वे मूक, अशक्त दर्शक मात्र बनकर रह गए। हिन्दू मुसलमान, सिक्ख, आदि नेताओं में से कोई कुछ नहीं कर सका, सिर्फ महात्मा गांधी ही अकेले आमरण अनशन की नैतिक शक्ति के द्वारा हिंसा को रोकने की कोशिश करते रहे। इसके बाद, इसके नए वायसराय आ गए और राजनीतिक नेताओं से बातचीत के बाद, विभाजन के साथ देश को स्वतंत्रता देने के फैसले पर समझौता हो गया।"[130] अमरकांत जी ने 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास के माध्यम से विभाजन की त्रासदी का यथार्थ अंकन किया है। वास्तव में साम्प्रदायिकता की समस्या के समाधान के दृष्टिकोण से राजनीतिज्ञों का देश–विभाजन का निर्णय एक भयंकर भूल थी और उनकी अदूरदर्शिता का परिचायक भी। भारत–विभाजन का तात्कालीन प्रभाव तो भीषण था ही, किन्तु यह इतनी दूरगामी प्रभाव वाली घटना थी कि इसकी त्रासदी के प्रभाव और परिणामों को लाखों निरीह लोग आज तक किसी न किसी रूप में सहन कर रहे हैं। साम्प्रदायिक दंगों का जो सिलसिला विभाजन के कुछ समय पूर्व से प्रारम्भ हुआ, उसका प्रभाव वर्तमान में भी ज्वलन्त है।

वस्तुतः अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता को हथियार बनाकर हमारे देश के टुकड़े करने की स्कीम निकाल ली थी। यह एक ऐसा हथियार था, जिसकी धार का असर आज भी देखा जा सकता है। अमरकान्त जी ने इस मसले पर अपने विचारों की अभिव्यक्ति 'बिदा की रात' उपन्यास में मुनीर अहमद के माध्यम से की है। वे कहते हैं कि –

"हिन्दुस्तान का बंटवारा इस उसूल पर हुआ कि हिंदू और मुसलमान एक देश के बाशिन्दे नहीं, बल्कि दो अगल–अलग मुल्क है, और मुसलमानों को हिन्दुओं से अलग एक मुल्क यानी पाकिस्तान दे देना चाहिए। यह उसूल था और इसकी असली सूरत क्या हो सकती थी, जबकि समूचे हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुसलमान अलग–बगल बसे है। अमली सूरत या कोई वाजिब स्कीम किसी के पास थी ही नहीं। बस अमली सूरत निकाली अंग्रेजों ने। यह बंदरबाँट उन्होंने ही कराई क्योंकि फौजी ताकत उन्हीं के पास थी, स्कीम उन्हीं के पास थी, हमारे हिन्दुस्तानी लीडरों, चाहे कांग्रेस हो, चाहे मुस्लिम लीग, हिन्दू सभा हो या डॉ. अम्बेडकर हो या दूसरे हिन्दू–मुसलमान नेता हो, किसी के पास कोई स्कीम थी ही नहीं। सियासत के बिसात पर अंग्रेजों ने अपने मोहरे ऐसे चले कि हमारे सभी लीडर, जो उनके पास आजादी के लिए समझौता करने गए थे, बुरी तरह मात खा गए और एक ऐसी स्कीम को मंजूरी दे बैठे, जिसकी वजह से उस समय तो तबाही हुई ही थी, आगे का भी मंजर वैसा ही दिखाई देता है। ये चीजे कहाँ रूकेंगी....... ।"[131]

साम्प्रदायिकता ने केवल हिन्दू–मुसलमान ही नहीं, मनुष्य को विभिन्न जातियों में बांट दिया है। जातियता तथा साम्प्रदायिकता को बनाए रखने में आज कईं लोग सक्रिय है, जिनमें प्रमुख भागीदारी राजनेताओं की है। साम्प्रदायिकता की जड़े गहराई तक फैली है। समय–समय पर लोगों को जातियता तथा साम्प्रदायिकता के आधार पर उनकी धार्मिक भावनाओं से खिलवाड़ कर, उनमें विद्वेष फैलाकर, राजनीतिक दल अपना उल्लू सीधा करते है। इस संबध में डॉ. हेमेंद्रकुमार पानेरी लिखते हैं–"स्वतंत्र भारत में ऐसे कतिपय राजनीतिक दलों का विकास हुआ है, जिनके परिणाम स्वरूप भी समय–समय पर साम्प्रदायिकता भड़क रही है। ...... ये दल किसी भी घटना को साम्प्रदायिकता के चक्षुओं से देखने का प्रयत्न करते हैं। राजनीति में साम्प्रदायिकता का प्रवेश बड़ा विध्वंसकारी होता है। भारत घोषित रूप से धर्म–निरपेक्ष राष्ट्र होते हुए भी धार्मिक साम्प्रदायिकता के विषैले वातावरण से पीड़ित है।"[132]

अमरकांत जी ने अपने उपन्यास साहित्य में राजनीतिक दाव–पेज का यथार्थ प्रस्तुत किया है। 'ग्रामसेविका' उपन्यास में गाँव पंचायतों के चुनाव होने वाले थे। इसके लिए गाँव के प्रधान जी चुनाव में हिस्सेदारी चाहते थे। उन्होंने कईं प्रकार के हथकंडे अपनाए। "पैसे के बल पर उसने कईं व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर ही लिया था। इसके बाद जातिवाद की भावनाओं को भी उसने उभाड़ा। इस तरह ब्राह्मण भी उसके पक्ष में हो गए। प्रधान जल्दी ही हरचरण के पर कतर देना चाहता था।"[133]

प्रधान जी साम्प्रदायिक विचारधारा के व्यक्ति है। "भीतर से वह घोर साम्प्रदायवादी अवश्य थे। उनको यह पसंद नहीं था कि भारत में मुसलमानों को रहने दिया जाए।"[134]

देश–विभाजन के बाद आज भी भारत व पाकिस्तान की आम आबादी अपने मन में जुनून और दहशत के लिए जिंदगी गुजारने को मजबूर है। 'बिदा की रात' उपन्यास में वकील मुनीर अहमद कहता है – "हमारे महरूम अब्बा हुजूर तो मुस्लिम लीग के मेम्बर थे, वे पाकिस्ताान के हक में थे, मगर बंटवारे के बाद उन्होंने वहां जाने से मना कर दिया। उनका कहना था – "मेरे बाप दादा तो यहां मरे, क्या हम मरने पाकिस्तान जाएँ। आप देखिए मौलाना नहीं गए, मौलाना मदनी नहीं गए, रफी अहमद किदवई नहीं गए, जाकिर हुसैन साब नहीं गए, फखरूद्दीन अली अहमद नहीं गए........ करोड़ों मुसलमान नहीं गए। मौलाना आजाद ने बार–बार मना किया कि वे हिन्दुस्तान छोड़कर न जाएँ ..... मगर जो लोग नहीं माने तो चले गए। इधर मुसलमान मारे गए और उधर हिन्दू–सिक्ख मारे गए लाखों लोग इधर से उधर गए और उधर से इधर आए और लाखों की खूँरेजी और भगदड़ के बाद आज दोनों और जो बचे है वे अपनी दिलों में बंटवारे के जख्म और दाग लेकर जुनून और दशहत की जिंदगी गुज़ार रहे है।"[135]

"यह कोई अस्वाभाविक नहीं था कि आजादी से पहले हिन्दू और मुस्लिम दोनों साम्प्रदायिक तत्त्वों का नेतृत्व सामन्ती तत्त्वों ने किया। हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग का नेतृत्व मुख्य रूप से जमींदारों, ताल्लुकदारों और ऊँची जातियों के लोगों के हाथ में था, ये तत्त्व अपने वर्गीय हितों के लिए साम्प्रदायिकता बढ़ाने में सक्रिय रहते थे। दंगे इनका सबसे बड़ा हथियार थे, जिनका पूरा इस्तेमाल इन्होंने हिन्दू–मुस्लिम जनता के सर्वहारा वर्गों के बीच एकता न होने सकने के लिए किया।"[136]

'आकाश पक्षी' उपन्यास में अमरकांत जी ने रवि के माध्यम से उक्त धारणाओं के प्रति अपनी उग्रवादी विचारधारा प्रस्तुत की है। रवि सामन्तवाद के विषय में कहता है – "हमारा देश कईं सदियों से गुलाम रहा है। सामन्तवाद ने हमारे देश को टुकड़े–टुकड़े करके रखा। .... सामन्तवाद और उसकी समस्याओं को छोड़े बिना, उसके खिलाफ संघर्ष किए बना हमारे देश में एकता कायम नहीं हो सकती। .... जातिवाद, साम्प्रदायवाद आदि समस्याएँ इसी सामन्तवादी समस्या से जुड़ी हुई है। ..... जब तक हम अपने देश में जाति, धर्म और वर्गों को खत्म नहीं करते, हम कुछ नहीं कर सकते।"[137] इस विषय में डॉ. अनुकूल चंद राय ने लिखा है – "उपन्यासकार अमरकांत ने 'आकाश पक्षी' उपन्यास में दो वर्गों – सामंती परिवेश से प्रभावित एवं प्रगतिशील चेतना से जुड़ाव को उपस्थित कर उनके संघर्षों को सीधे–सादे ढंग से बखूबी उजागर

किया है और उद्घोष किया है कि सामंतवादी व्यवस्था एवं सोच को छिन्न–भिन्न किये बिना समाज एवं व्यक्ति का किसी भी प्रकार कल्याण संभव नहीं।"[138]

"देश की स्वतंत्रता के लिए हमें बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। उसे पाने के लिए हमें उन सब उपलब्धियों की बलि देनी पड़ी, जो स्वाधीनता संग्राम के दीर्घकालीन अनुशासन, तप और त्याग से मिली थी। एकता हमारे स्वतंत्रता संग्राम की धूरी थी किन्तु देश–विभाजन से एकता की नींव हिल गयी। अंहिसा हमारा मूलमंत्र था।"[139]

जहां तक भारत में साम्प्रदायवाद का प्रश्न है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में साम्प्रदायिक दंगों के जारी रहने के पीछे किसी एक कारण को दोषी नहीं माना जा सकता। जहां देश में एक ओर आर्थिक विकास हुआ है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक व सांस्कृतिक पतन भी देखने को मिलता है। इसका प्रभाव विभिन्न सामाजिक संस्थानों पर देखा जा सकता है। वर्तमान में राजनीतिक दलों का आचरण, देश में संगठित माफियाओं द्वारा दंगे फैलाना आदि बहुत से घटक है, जो समय–समय साम्प्रदायिकता की आग भड़काने का काम करते रहते हैं। कमलेश्वर इस सन्दर्भ में कहते हैं–"साम्प्रदायवाद तो साम्प्रदायवाद है, वह चाहे बहुसंख्यकों का हो या अल्पसंख्यकों का मैं इस वामपंथी अवधारणा से सहमत नहीं हूँ कि बहुसंख्यकों का साम्प्रदायवाद ज्यादा भयानक है। अल्पसंख्यकों का और बहुसंख्यकों यानी हिन्दू–मुसलमानों का साम्प्रदायवाद दोनों ही भयानक है और ये एक–दूसरे को पोषित करते हैं बल्कि राजनीतिक दृष्टि से यह दोनों एक–दूसरे के पूरक है। अगर मुस्लिम फिरकापरस्त नहीं होगें, तो हिन्दु फिरकापस्तों को ध्वस्त किया जा सकता है पर जब शाहबुद्दीन जैसा आदमी Muslim Indian जैसा पेपर निकालता है तब तक हम किसी Hindu India को सामने आने से रोक नहीं सकते।"[140]

'बिदा की रात' उपन्यास में साम्प्रदायिक दंगे का प्रसंग आया है। सुल्ताना बेगम अपने बेटे युसुफ को हिन्दू–मुस्लिम दंगे के विषय में बताती हुई कहती है – "हिन्दू–मुसलमानों का मिला–जुला, मोहल्ला लोग मिलजुल कर रहते। ..... फरजाना के मकान के एक बगल में मुसलमान का मकान था और दूसरे बगल में एक हिन्दू खानदान रहता था। खूब चहल पहल और रौनक रहती थी। .... मुस्लिम खानदान से अच्छे रिश्ते ही थे, हिंदू पडौस से भी मेलजोल। ..... मगर बदकिस्मती से वहाँ एक मज़हबी जुलूस के रास्ते को लेकर अचानक दंगा–फसाद शुरू हो गया। चारों ओर दहशत फैल गई। शोर–शराबा, बम–पिस्तौल, आगजनी .... करीब पांच–छः रोज ही यह सब चला, पुलिस ने जल्दी दबा दिया मगर इस बीच दोनों और जान–माल का काफी नुकसान हो गया।"[141]

वस्तुतः भारत के बंटवारे के कौन जिम्मेदार रहे? अमूमन दंगा कौन शुरू करता है? मुसलमान या हिन्दू? यह सभी प्रश्न बहस मुबाहिस के मुद्दे हो सकते हैं। लेकिन इन सबसे भी

ज्यादा यह दो कौमो के मन में मैल व कडुवाहट उत्पन्न करने के कारण भी बन जाते हैं। जो लोग स्वतंत्रता पूर्व आपस में भाई–भाई जैसे रहते थे, वे ही स्वतंत्रता पश्चात् आपसी हित व स्वार्थ के लिए एक–दूसरे पर छिंटाकशी करते है। साम्प्रदायिक दंगों के पीछे दिखने वाला धार्मिक कारण वास्तव में गौण है। इसके पीछे जो बलवती कारण है वह है कि राजनीति। ये राजनतिक लोग धर्म व संस्कृति की आड़ में अपने आर्थिक व राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति करते है। 'बिदा की रात' उपन्यास में वकील गुरूशरण वर्मा हॉकी क्लब के चुनाव में प्रेसीडेंट के पद के लिए खड़े होते हैं, वहीं मुहर्रिर साहब सेक्रेटरी के पद के लिए। वकील साहब ऊपरी तौर पर तो मुहर्रिर साहब के पक्षधर थे, किन्तु भीतर से वे नर्मदा प्रसाद को जीताना चाहते हैं। इसलिए परिणाम खुलने पर मुहर्रिर साहब हार जाते हैं। इस पर मुहर्रिर साहब गुरूशरण वर्मा से कहते हैं – "वकील साहब मुझसे क्या गलती हो गई कि आप मुझसे इतने नाराज हैं? आप शुरू से ही कह देते तो मैं खड़ा ही न होता। मुझे तो ख्वाब में भी ऐसी उम्मीद न थी।"[142] इस पर वकील साहब, मुहर्रिर साहब पर जज्बाती तंज–ताने का इजहार करते हुए कहते हैं–"मुहर्रिर साहब, आपने पूरा पाकिस्तान तो हथिया लिया, अब क्या चाहते हैं? यहां के लोगों के लिए तो कुछ छोड़िएगा।"[143] मुहर्रिर साहब गुरूशरण वर्मा को अच्छा दोस्त समझते थे। उनके मुंह से यह सब सुन वे हक्का–बक्का रह जाते हैं।

उन्होंने गुरूशरण वर्मा से कहा – "वकील साहब, आप क्या कह रहे हैं? मैं तो जानबूझकर पाकिस्तान नहीं गया, इस शहर और अपने वतन की मुहब्बत में। आपको हमेशा बड़ा भाई समझा और आपने भी मुझे छोटे भाई की तरह माना। अब क्या हो गया? अब पाकिस्तान बनाने का मुझे जिम्मेदार क्यों मान रहे हैं?"[144] इस प्रकार गुरूशरण वर्मा और मुहर्रिर साहब अच्छे मित्र होते हुए भी अपने–अपने स्वार्थ के कारण भारत विभाजन की त्रासदी का जिम्मेदार एक–दूसरे को ठहराते हैं। इसके पीछे उनके अपने स्वार्थ और राजनीति एक महत्त्वपूर्ण कारण के रूप में उभर कर आते है।

वस्तुतः समकालीन विश्व में साम्प्रदायिकता ने अपने पैर सख्ती से जमा लिये थे। हर व्यक्ति एक–दूसरे को शंका की दृष्टि से देखने के लिए विवश था। उनके दिलों में एक–दूसरे के प्रति प्रेम और विश्वास खत्म हो चुका था। साम्प्रदायिकता का यह दंश अब जातियता में परिवर्तित हो गया है। जातीय समस्या ने आज वैश्विक रूप धारण कर लिया है। इस सन्दर्भ में राहुल सांकृत्यायन का मत दृष्टव्य है – "कितने लोग समझते हैं कि भारत की जातीय समस्याएँ सिर्फ पाकिस्तान और हिन्दुस्तान तक सीमित है। इस पर विशेष तौर से कहने के पहले यहाँ मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि जातियों की समस्या जिसके भीतर ही पाकिस्तान भी आ जाता है – सिर्फ भारत की ही अपनी समस्या नहीं है बल्कि दुनियां के ओर देशों को भी इससे गुज़रना पड़ा है।"[145]

अमरकांत ने अपने उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' में जातीय भेदभाव समाप्त करने तथा साम्प्रदायिक सद्‌भाव बनाये रखने की अपील की है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –क्रांतिकारी प्रेमानंद जब अंग्रेज अधिकारी से पानी मांगता है। तब एक अंग्रेज अधिकारी उनसे कहता है कि आप तो पण्डित है क्या आप यहां का पानी पियेंगे? तब प्रेमानंद अंग्रेज अधिकारी की कूटनीति को समझ, जाति व साम्प्रदायिकता का खण्डन करते हुए कहते हैं – "कई कमजोरियाँ होते हुए भी हम महात्मा गांधी के रास्ते पर चलते है। हम अगर हिन्दू है, मुसलमान है, ईसाई है तथा किसी भी धर्म के है, अपने–अपने धर्म का पालन करते हुए भी हिन्दुस्तानी है। हम धार्मिक और जातिय भेदभाव व छूआछूत के विचार को पाप समझते है ....सभी लोग हमारे लिए भाई है समान है। हम इन्हीं छोटी–छोटी बातों में पडेंगे, तो इस देश को एक कैसे कर सकते हैं, आजादी कैसे प्राप्त कर सकते हैं? .... मैं सबसे पहले भारतीय हूँ, हिन्दुस्तानी हूँ, फिर कुछ और।"[146] उपन्यासकार ने अपने विचारों के माध्यम से मानवीय संवेदना को जाग्रत करने का प्रयास किया है। वे 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में साम्प्रदायिक सद्‌भाव को जरूरी मानते है। "आज साम्प्रदायिक सद्‌भाव कितना जरूरी है। हां यह हमारी राष्ट्रीयता और आजादी के लिए जरूरी है। जातीयों का आपसी मेलजोल भी कितना जरूरी है, यह अंहिसा के विचार से ही संभव है। हिंसा तो समझदारी दूर करके सब कुछ बिखरा देगी। शांति और अंहिसा हवा में लटकी चीज नहीं है, उसका मजबूत आधार है, वह बदले हुए समय में आजादी, मानव एकता और मानव प्रेम का और समता तथा न्याय के आधार पर सामाजिक उन्नति का ठोस विचार और कार्यक्रम है।"[147]

भ्रष्ट प्रजातंत्र

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में शासन की लोकतंत्रात्मक प्रणाली सामने आयी। पूर्व में हमारे सामने समस्या थी कि हमारा भाग्यविधाता कौन बनेगा – कोई एक पूंजीपति या उद्योगपति? किंतु लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली के माध्यम से जनता द्वारा जनता के हित में, जनता में से ही प्रतिनिधि चुना जाने लगा। इस प्रकार अब हम अपने भाग्य के विधाता स्वयं है। हर व्यक्ति जिसकी उम्र 18 वर्ष की है, वह इस देश का भाग्यविधाता बन सकता है। अब किसी एक के भी हाथों में सत्ता का केंद्रीकरण नहीं रहा, चुनाव द्वारा हम अपने राजनेता को चुन सकते हैं। जिस भी पार्टी को बहुमत मिलता है, वह सरकार बनाकर शासन चलाती है। इस तरह प्रत्येक पांच वर्ष में हम अपने भाग्य के विधाता का चुनाव स्वयं करते है। सत्ता हाथ में आते ही सत्ताधारी पुराना शराफत का चोला उतारकर अपनी स्वार्थसिद्धि में लग जाता है। इन राजनेताओं की कथनी व करनी में जमीन आसमान का अंतर देखा गया है। सत्ता में आने पर वे अपने किसी करीबी रिश्तेदार या सगे–संबंधियों के हित में लग जाते हैं, किंतु ऐसा भी नहीं है कि आम जनता का काम नहीं सधता। लेकिन उनके कार्य के लिए वह सीधी सादी जनता से मोटी रकम ऐंठते हैं। स्वार्थांन्धता व भ्रष्टाचार केवल राजनेताओं तक ही सीमित नहीं है यह अब सरकारी कर्मचायिों में

भी फैल चुकी है। पैसे के बल पर नौकरियां खरीदी जाती हैं, प्रमोशन करवाये जाते है। पैसे से ही अटका हुआ सरकारी काम द्रुतगति से सम्पन्न हो जाता है।

'लहरें' उपन्यास में श्यामाप्रसाद के माध्यम से उपन्यासकार ने भ्रष्टाचार के यथार्थ को पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है। श्यामाप्रसाद बी.ए. व एम.ए. की परीक्षा पास करके सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठता है, लेकिन सफल नहीं हो पाता। बार–बार की असफलता से वह निराश हो जाता है। "गनीमत यह हुई कि एक सहपाठी की जिद पर रेलवे की एक मामूली नौकरी की परीक्षा में बैठा और लिखित परीक्षा में सफल हुआ, परंतु इंटरव्यू में पास होना इतना आसान नहीं था, फिर तो उसने पिता पर बड़ा दबाव डाला। अंत में पिता ने कहीं से कर्ज काढ़कर इतंजाम किया और वह सफल घोषित कर दिया गया।"[148] वर्तमान में नौकरियों में इस प्रकार का भ्रष्टाचार सर्वाधिक देखा जाता है। सरकारी व निजी कम्पनियों में यह समस्या यथार्थ धरातल पर महत्त्वपूर्ण व मूल समस्या है।

आजादी के बाद सरकार ने आम जनता के हित में कई योजनाये प्रारम्भ की। इन योजनाओं का उद्देश्य आम गरीब जनता को लाभ पहुँचाना था, लेकिन यह योजनायें पूरी तरह से सफल न हो सकी। अमरकांत ने अपने उपन्यास 'बिदा की रात' में ऐसी ही सरकारी योजना का जिक्र किया है। यह योजनाएँ प्रारम्भ तो हुई, किंतु इन योजनाओं का असली लाभ बिचौलियों, नेताओं तथा धनी वर्ग को ही हुआ। "भारत में पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कम्यूनिटी प्रोजेक्ट नाम से एक बड़ी स्कीम शुरू की थी, मगर वह आधी भी कामयाब न हुई और करीब सभी पैसा सही लोगों के पास न पहुँच कर दूसरे चालाक लोगों की जेबों में चला गया। कागज पर तो काम खूब दिखाए गए मगर जमीन पर वे बहुत कम नज़र आए। इसका यह नतीजा निकला कि होशियार लोगों में नेतागिरी का शौक पैदा हुआ और निजी तौर पर कोई सोसाइटी बनाकर सरकारी पैसा खींचने के हुनर का इज़ाफा होने लगा।"[149]

वर्तमान राजनीति गुंडागर्दी का अखाड़ा बनकर रह गई है। चुनाव जीतने के लिए विपक्षी दल किसी भी हद तक जा सकता है। यहाँ तक कि चुनाव जीतने के लिए गुंडों की सहायता भी ली जाती है। विरोधी पार्टी के उम्मीदवार को डराना–धमकाना आज सामान्य बात हो गई है। यहाँ तक कि उम्मीदवारों की हत्या तक करवा दी जाती है। जाहिर है कि राजनीतिज्ञ और अपराधियों की साँठ–गाँठ होती है। इस संदर्भ में श्यामचरण दुबे लिखते है–"सड़क की राजनीति ने दुःसाहसी युवा नेताओं को जन्म दिया, जिन्हें न आदर्शों की चिंता थी, न साधनों की। शब्द–शक्ति व बाहुबल से वे अपना काम चला रहे थे। इस दौर में राजनीतिक नेताओं, अपराधिक तत्त्वों और माफिया गिरोहों के बीच संवाद और सहयोग बढ़ा।"[150]

अमरकांत ने 'ग्रामसेविका' उपन्यास में प्रधान जी के माध्यम से इसका चित्रण किया है। प्रधान जी चुनाव जीतने के लिए कई प्रकार के षड़यंत्र रचते हैं, लेकिन सफल नहीं हो पाते। अंत में वे अपने विपक्षी हरचरण को गुड़ों से पिटवा देते हैं। "प्रधान जी ने अपने दल का जोर–शोर से संघटन आरम्भ किया। पैसे के बल पर उसने कईं व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर ही लिया था। इसके अलावा जातिवाद की भावनाओं को भी उसने उभाड़ा।"[151] लेकिन जनता अब तक प्रधान जी के इरादों को भाँप चुकी थी। "इसलिए गांव वालों ने प्रधान जी के खिलाफ सरकार को चिट्ठी लिखी। इसलिए प्रधान बहुत बौखला गया था। एक दिन जब हरचरण रामगढ़ से लौट रहा था तो रास्ते में कुछ लोग उस पर टूट पड़े। वे लाठियों से उसको मारने लगे थे। ... ... उसको सिर में चोट आई थी उससे खून बह रहा था।"[152] इस प्रकार प्रधान जी के माध्यम से राजनीति का भद्दा रूप प्रकट हुआ है।

देश आजाद होने के बाद स्वतंत्र भारत की बागडोर नेताओं के हाथ में आ चुकी थी। हालांकि तब कुछ नेताओं को छोड़कर सभी नेता देश के हित में ही सोचा करते थे। जब देश आजाद हुआ तो गरीबी, भुखमरी, विभाजन की त्रासदी, अशिक्षा तथा कईं प्रकर की समस्याओं से जुझ रहा था। इस प्रकार लड़खड़ाते हुए देश को फिर से खड़ा करने में नेता तथा समाज सधारकों का बड़ा हाथ रहा है, किंतु धीरे–धीरे नेताओं के नैतिक पतन तथा स्वार्थान्धता के कारण नेताओं में लोकहित की चाहत सियासत में बदल गई। देश तरक्की के नाम पर नेता स्वयं की तरक्की में ज्यादा ध्यान देते नज़र आए। उपन्यासकार अमरकांत ने 'बिदा की रात' उपन्यास में राजनेताओं की सियासत की चाह, अमीर बनने तथा रूतबा हासिल करने इत्यादि का यथार्थ चित्रण किया है। "आजादी के पहले सेवा और त्याग की जो सियासत थी, वह धन और ताकत की चाहत और हरकत में बदल गई। चुनावों ने इसे खूब बढ़ाया। दरअसल चुनाव जीतकर ही विधानसभा और संसद में पहुँचकर ताकतवर बना जा सकता था, इसलिए हर तरह के हथकंडे अपनाए जाने लगे। तब तो पैसे के अलावा दबंगई और असलहे की अहमियत बढ़ी। इसके साथ दबंगों की पूछ भी। फिर तो जरायम पेशे वाले शामिल होते गए इस खेल में। फिर ऐसे मौकापरस्ती के माहौल में फिरकापरस्त ताकतें क्यों पीछे रहे? उन्होंने भी आगे बढ़कर ताकत हासिल करने की मुहिम छेड़ दी अपने खास तरीकों के साथ।"[153]

दरअसल अमरकांत जी ने अपने उपन्यासों में राजनीति की उन समस्याओं का भी वर्णन किया है, जो प्रायः अछूती रहीं है। राजनेता येन–केन प्रकारेण चुनाव जीतना चाहते है। चुनाव जीतने के लिए जो कुछ भी किया जाए वह उनकी दृष्टि मे जायज है। राजनीति को कूटनीति भी कहा गया है क्योंकि इसकी चाल लम्बी व दूरदर्शी होती है। वही राजनेता सत्ता में आ सकता है जो कूटनीतिज्ञ हो। यह एक कला है जो कि लोगों को ठेस पहुँचाए बिना या उन्हें नाराज किए बना व्यवहार कौशल से अपने हितों को साध लेता है। अच्छा राजनीतिज्ञ जानता है

कि सामने वाले को पहले तो खूब चढ़ाओ, उसके हितों के विषय में बात करो और जब उसे अपना हित सधता नज़र आयें तब अपना हित पूरा करो। 'इन्ही हथियारों से' उपन्यास में अनिरूद्ध दास ऐसे ही अवसरवादी नेता है, जो लोगों में अधिक लोकप्रिय है। "हाल में हुए सांगठिक चुनावों में उनका दल अत्यन्त प्रभावशाली होकर निकला था और वे सभी, जो शक्ति राजनीति का ककहरा सीख रहे हैं, उनको सहयोग देने तथा उनका सम्पर्क और स्वीकृति प्राप्त करने के लिए बेताव होकर चले आ रहे थे। दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण है कि सत्ता में रहकर देश सेवा का नया जीवन दर्शन। पहले से ही उनके कुछ साथी और सहयोगी थे, कुछेक का जेलों में चुनाव किया था उन्होंने और बाहर निकलकर तेजी से अपने प्रभाव विस्तार के लिए नए—नए शिक्षित, योग्य अच्छे घरों के देशभक्त युवकों को चुनकर महत्त्वपूर्ण पदों पर बिठा रहे थे या बिठाने की तैयारी कर रहे थे। इस व्यवस्था के साथ कि उनको किसी प्रकार की कमी न होने पाए और उनका कोई काम रहने न पाए।"[154] इस प्रकार 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में अमरकांत ने राजनीति का यथार्थ प्रस्तुत किया है कि वे देशभक्त राजनेता जो देश को आजाद कराने के लिए जेलों में यातनाएं सहन कर रहे थे, देश को आजादी मिलते ही उन्होंने अपना दृष्टिकोण बदल लिया था। अब वे देशहित के साथ—साथ स्वहित को अधिक महत्त्व देने लगे थे।

'ग्रामसेविका' उपन्यास में प्रधान जी का चरित्र भ्रष्ट है। आजादी से पूर्व तो उन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया, किंतु आजादी मिलने के पश्चात् वह बिल्कुल बदल गये। "आजादी मिलने से पूर्व चाहे वह प्रभावशाली और अत्याचारी जमींदार के रूप में भले ही विख्यात रहे हों, परन्तु उसके बाद में उनमें घोर परिवर्तन हुआ। वह कहते भी थे कि यह जीवन परिवर्तनशील है। उन्होंने खद्दर का कुर्ता, खद्दर की धोती और गांधी टोपी नियमित रूप से पहननी शुरू कर दी थी। उनकी आवाज बहुत मीठी हो गई थी और वह सदा मुस्कुराते रहते थे।"[155] उनकी पहचान सरकार के कईं आला अफसरों से थी। गांव वालों का कोई भी काम हो वे ले—देकर उसे निपटा देते थे। उनका मानना था कि सरकार की कोई भी योजना अथवा कार्य हो वो बिना लेन—देन के सम्भव हो ही नहीं सकती थी। इस प्रकार गांव की जनता से पैसे ऐंठकर वह अपनी जेबे गर्म किया करते थे। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने गांव वालों के हित में योजनाएं प्रारम्भ की थी, किंतु, प्रधान जी चालाकी से उन योजनाओं से अपना ही हित साध लेते। "स्वतंत्रता दिवस के बाद विकास कार्य के सिलसिले में कईं दफ्तर खुल गए थे। लोग जरूरत होने पर प्रधान जी के पास ही जाते थे। वे जानते थे कि प्रधान जी के अलावा और कोई उनका काम नहीं कर सकता। परन्तु काम कैसे हो? भैया जैसा जमाना आए वैसा करना चाहिए। वे तो शहर के लोग है, पैसा तो उतना मिलता नहीं, दो चार पैसा पान—पत्ता के लिए जरूरी हो जाता है। वैसे तो कोशिश यही की जाती है कि काम मुफ्त ही में हो जाए परन्तु कुछ कहा भी तो नहीं जा सकता। इस तरह प्रधान जी की जेब हमेशा भरी रहती थी।"[156]

स्वातंत्र्योत्तर भारत में राजनेताओं का जो स्वरूप अमरकांत जी ने अपने उपन्यास साहित्य में दिखाया है वह राजनीति का कटु यथार्थ प्रस्तुत करता है।

जनता का मोहभंग

अमरकांत का उपन्यास साहित्य आजाद देश के राजनीतिक आंदोलनों में आम लोगों की भूमिका को दर्शाते हुए राजनेताओं के उस घिनौने रूप के सामने लाता है, जिससे सामान्य जन आहत है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भरत की राजनीति में विशाल परिवर्तन हुये। स्वतंत्रता मिलने के बाद राजनीतिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार, स्वार्थांधता, अवसरवादिता का बोल–बाला होने के साथ–साथ सामन्ती चरित्रों ने भी आम जनता को लूट कर उनका शोषण किया। अतः स्वतंत्र भारत में राजनीति अपना आधार खोती चली गई इससे राजनीति और राजनेताओं के प्रति आम जनता का मोह भंग हुआ। अमरकांत ने अपने उपन्यास 'पराई डाल का पंछी' में स्वतंत्र भारत के राजनीतिक पतन को दीपक के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। वह कहता है–"सबसे अधिक नैतिकता की बात यहां की जाती है और सबसे अधिक नैतिक पतन इसी देश का हुआ है।" यहां की नैतिकता का पतन विदेशियों को खूब मालूम हैं, इसीलिए वे हमारी खूब तारीफ करते है और प्रेम से अपना उल्लू सीधा करते है।"[157]

'ग्रामसेविका' उपन्यास में दमयन्ती द्वारा गांव की जनता में शिक्षा का प्रचार–प्रसार करने, अंधविश्वास को दूर करने तथा गरीबी व बीमारियों के प्रति सचेत करने से गाँव के लोगों में जागरूकता आती है। वे गाँव के प्रधान जी की कूटनीतियों को समझ जाते है और उनका प्रधान जी पर से विश्वास उठ जाता है। जंगी प्रधान जी की करतुतों के विषय में गाँव वालों को समझाते हुए कहता है–"यह प्रधान जी है न, वह बड़ा पाजी है। वह ग्रामसेविका बिटिया को भी तंग कर रहा है। तुम तो जनती ही हो कि शरीफ घरों में बहू–बेटियों पर इसकी बुरी नज़र रहती है .... गलती हमीं लोगों की है। जब हम लोग गाँव सभा के मामलों में जरा भी दिलचस्पी नहीं लेंगे, तो ऐसे लम्पट लोग आएँगे ही। महात्मा जी भी गाँव–सभा और पंचायत राज चाहते थे। पंचायत राज का मतलब गरीब जनता का राज। हम सबकों मिल–जुलकर काम करना चाहिए और प्रधान के अन्याय का मुकाबला करना चाहिए। प्रधान तो पंचायत और ग्राम सभा को अपनी जेब में लिए फिरता है। अगले चुनाव में हमें कोशिश यही करनी चाहिए कि इस प्रधान जैसा स्वार्थी और अन्यायी आदमी प्रधान बनने ही न पाए। महात्मा जी का यही सन्देश है।"[158] इस प्रकार आजादी के बाद भ्रष्ट नेताओं, जागीदारों, साहूकारों व प्रधानों से आम जनता का मोह भंग हुआ। स्वतंत्रता पूर्व भारत में आम लोगों का मानना था कि आजादी मिलते ही उनके सब कष्ट दूर हो जायेंगे। अमरकांत जी ने अपने उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' में आम जनता की पीड़ा व उसकी आकांक्षा को स्थानीय नेता रमाशंकर के शब्दों में कहलवाया है। रमाशंकर भगजोगिनी की

सास को आजादी का मतलब समझाते हुए कहता है – "देखो चाची, अपने को रो–धोकर कमजोर करोगी, तो बहू और बच्चे भी हिम्मत छोड़ देंगे। जो बीत गया है, वह भूल जाओ। जैसा समय आए, वैसा करना चाहिए, ... यह हिम्मत का समय है, मेहनत का समय है .... आगे अच्छा जमाना भी आएगा। हम सब इसलिए तो लड़ रहे है। .... यह समझ लो जब देश को आजादी मिलेगी, तो गरीबों का राज होगा।"[159] आखिर विभाजन का दंश झेलने के पश्चात् देश को आजादी तो मिली किंतु इस विभाजन ने सरकार के प्रति उनके विश्वास को तोड़ कर रख दिया।

"शायद सभी को ऐसा अनुभव हुआ था, हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई उन सभी को, जिन्होंने आजाद हिन्दुस्तान का शानदार सपना देखा था, उसके लिए स्वातन्त्र्य आंदोलन में शामिल हुए थे। एक ही जमीन पर और एक ही हवा–पानी में बढ़े पले लोग क्यों ऐसी विभाजित, खतरनाक आजादी स्वीकार कर रहे हैं? लेकिन किसी के पास इसका जवाब नहीं था। सभी जानते थे कि यह गलत हो रहा है, लोगों को बाँटने जैसा है, यह तो सदा के लिए खूनी लड़ाई लड़ने जैसा है, साम्राज्यवादियों के षड्यंत्र और जाल में जानबूझकर फंसने जैसा है।"[160]

स्वतंत्रता से पूर्व सरकार से जो आम जनता की आकांक्षाएं थी, वो विभाजन की त्रासदी को झलने के बाद खत्म हो गई। साथ ही रही सही आकांक्षाओं ने सामन्ती, साहूकारों, जमींदारों व राजनेताओं के अत्याचारों व शोषण को सहते–सहते अपना दम तोड़ दिया। इस प्रकार सरकार के प्रति आम जनता का मोह पूर्णतः खत्म हो चुका था।

5.3 आर्थिक संदर्भ

वर्तमान युग में अर्थ–जीवन का मूलाधार बन गया है। अर्थ को यदि समाज की धूरी कहा जाए तो गलत न होगा। अर्थ से ही पूरे समाज का ढाँचा निर्मित होता है, जिससे मानव संबंध परस्पर प्रभावित होते हैं। नित–नए आविष्कारों तथा भौतिक सुख–सुविधाओं के प्रति लगाव के कारण आज मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ रही हैं। फलस्वरूप प्रदर्शनप्रियता, फैशनपरस्ती तथा भौतिक सुख सुविधाओं के माध्यम से ही व्यक्ति की प्रतिष्ठा निश्चित की जाती है। इन भौतिक सुख–सुविधाओं का लाभ वही व्यक्ति उठा सकता है, जिसके पास काफी धन–दौलत हो। समाज का एक वर्ग ऐसा भी है, जिनके पास धन तो नहीं है परन्तु वे धनी होने का दिखावा करते हैं।

आज मनुष्य भौतिक सुख–सुविधाओं में फँसकर प्रकृति से दूर होता जा रहा है। प्रकृति से उसका रिश्ता टूट गया है। आज अर्थ के कारण मानव संबंधों में दूरियां बढ़ती जा रही है। हमें किससे संबंध बनाने है, किससे नहीं, किससे मिलना–जुलना है, क्या खाना–पीना है, क्या काम करना है, क्या नहीं यहां तक हमारी सोच पर अर्थ इतना हावी हो गया है कि हमें अपने

धन–वैभव से हटकर सोचने तक का भी अधिकार नहीं है। अर्थ ही यहां मनुष्य का व्यवहार निश्चित करता है। कहा भी गया है –

आपके पास पैसा है,
तो लोग पूछते है .... कैसा है?

उक्त दो पंक्तियाँ समाज का आर्थिक यथार्थ अभिव्यक्त करने में सक्षम है। धन हमारे जीवन की सबसे उपयोगी चीज है, जिसके माध्यम से हम अपनी सारी जरूरत की वस्तुएँ खरीद सकते हैं। आर्थिक व नैतिक दृष्टि से देखा जाए तो आर्थिक विकास से तात्पर्य व्यक्ति, परिवार, समाज, गाँव, देश व राष्ट्र की तरक्की को आर्थिक विकास कहा जा सकता है। आमतौर पर "आर्थिक दृष्टि से जो सम्पन्न है, उसी की ओर सभी आकृष्ट होते है। अर्थ से यहाँ रिश्ते बनते हैं, बिगड़ते है फिर बनते है। बनने–बिगड़ने का यह सिलसिला चलता ही रहता है। परिवार में जब तक कोई कमाता है तब तक ही उसका महत्त्व है। जो कमाता है वही प्रेम, इज्जत और सम्मान का हकदार होता है। मेहमानों पर होने वाले खर्च तक को अपव्यय समझा जाता है। इस प्रकार का पाश्विक उपयोगितावाद जन्मा है। जिससे फायदे की उम्मीद हो उसका बड़ा आदर सत्कार किया जाता है।"[161] अर्थ का यह लेन–देन इस बात पर निर्भर करता है कि रिश्तों को कहां तक निभाना है। यह भी तब तक ही होता है जब तक कि उन रिश्तों से लाभ हो। उनके उपयोग के बाद वे मानवीय संवेदनाएं स्वतः ही दम तोड़ देती है। इस संदर्भ में डॉ. रतनलाल लिखते हैं – यहां वहीं विजयी है जिसके पास धन है और इस नव धनाढ्य वर्ग ने धन को ही अपना मजहब बना रखा है, इसलिए यह वर्ग विश्वास एवं चाहत के रिश्ते बनाता है बल्कि खरीदता है।"[162]

मानव जीवन में अर्थ की महत्ता सर्वाधिक है। यह निर्विवाद सत्य है कि आधुनिक युग में मनुष्य आंतरिक रूप से मानवीय संबंधो को जीने की अपेक्षा घसीट रहा है। अर्थ यथार्थ धरातल पर अपने पैर जमाता जा रहा है। "समाज और व्यक्ति के जीवन से अर्थ निकाल दीजिए, समूचा ढाँचा धराशायी हो जाएगा।"[163] जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धन अत्यन्त आवश्यक है। परिवार की रोजी–रोटी से लेकर शिक्षा तक में धन की अत्यधिक आवश्यकता है। परिवार में यदि कमाने वाला एक मात्र परिवार का मुखिया ही है, तो सम्पूर्ण परिवार का भरण–पोषण करना भी कठिन हो जाता है। उसके लिए कभी–कभी नैतिक पतन से भी गुजरना पड़ सकता है। वास्तव में भौतिक सुख–सुविधाओं का लाभ तो वही उठा सकता है, जिसके पास धन अधिक है। "ईमानदारी की आय में तो आज पूरे–परिवार को रोटी खिला पाना भी कठिन है। ये सुविधाएँ प्रायः उन्हीं व्यक्तियों के पास दिखायी देती है, जो या तो राजनीतिक

नेता है या काला बजारिए है या तस्कर है या जो उत्कोच लेते हैं। गरीब व्यक्ति तो आज भी इन सुविधाओं के नाम भी शायद नहीं जानता।"[164]

वस्तुतः "अर्थ आज की जिंदगी का अहम सवाल है, जिसे हल करने के लिए प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति परेशान है। बदलती परिस्थितियों में आर्थिक सम्पन्नता ही जीवन का ध्येय हो गया है, जिस कारण नैतिक मूल्यों का विघटन व अनेक सामाजिक विसंगतियाँ उत्पन्न हो रही है। व्यक्ति विशेष के लिए भौतिक सुखों को भोगना ही सबसे महत्त्वपूर्ण हो गया है। आपसी सम्बन्धों को निर्धारित करने वाला धुरी अर्थ बन गया है। इसके कारण नैतिक मूल्य, त्याग, सेवा, धर्म, कर्त्तव्यपरायणता आदि को अर्थ प्रधान संस्कृति ने छिन्न–भिन्न कर दिया।"[165]

स्पष्ट है कि मनुष्य के आचार–विचार, संस्कृति, नैतिकता, सामाजिक नियंत्रण आदि पर अर्थ–व्यवस्था का गहरा प्रभाव है। अमरकांत जी ने अपने उपन्यास साहित्य में अर्थ के उस कटु यथार्थ को प्रस्तुत किया है, जहाँ व्यक्ति के सभी संबंध अर्थ से ही जुड़े होते है। अमरकांत के उपन्यास के पात्र अर्थ का दिखावा करते हैं। चाहे वे कितनी भी विकट आर्थिक परिस्थितियों से गुजर रहे हो किंतु वे अपने को धनी व आर्थिक स्वरूप से सम्पन्न होने का ढोंग करते हैं। ये पात्र भीषण आर्थिक मानसिक दबाव, तनाव व कुंठा का शिकार होते है। इनके संबंध अर्थाधारित है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु यह भोले–भाले लोगों को ठगते है। अमरकांत के उपन्यास साहित्य में समाज के आर्थिक पक्ष का नग्न यथार्थ देखा जा सकता है।

वस्तुतः रचनाकार समाज का जागरूक प्रहरी होता है। वह समाज में रहकर उनकी सम्भावित समस्याओं के बनते–बिगड़ते स्वरूप को यथार्थ धरातल पर अंकित करता है। वह समाज में ही जीता है और उसकी समस्त सम्भावनाएं भी इसी समाज से परिचालित होती है। अमरकांत जी ने अपने उपन्यास साहित्य में कुछ ऐसे ही पक्षों को उजागर किया है, जो अर्थ के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करते हैं।

अर्थ व दिखावा

समाज में सम्मान से जीवनयापन करने के लिए अर्थ का होना उतना ही आवश्यक है जितना की मनुष्य को जिन्दा रहने के लिए हवा, पानी, अन्न इत्यादि। कुछ लोगों का तो इतने से भी पेट नहीं भरता। वे अपने धन का आधिक्य प्रदर्शन करने में लगे रहते हैं। समाज का एक वर्ग तो ऐसा भी है, जो धनी न होते हुए भी धन का प्रदर्शन करता है। वैसे तो धन का दिखावा प्रत्येक वर्ग अपनी–अपनी क्षमतानुसार करता है, किंतु उच्च व निम्न वर्ग की तुलना में मध्यमवर्ग में यह प्रदर्शनप्रियता सर्वाधिक देखी जाती है। यह प्रदर्शनप्रियता इतनी अधिक होती है कि समाज के अन्य लोगों को इससे परेशानी का सामना करना पड़ता है। अमरकांत जी ने अपने उपन्यास 'आकाक्षपक्षी' में अर्थ का खोखला यथार्थ प्रस्तुत किया है। उपन्यास की नायिका हेमा के

घर इंजीनियर साहब की पत्नी पड़ौसी होने के नाते उनसे मेल–जोल बढ़ाने के उद्देश्य से मिलने आती है, किन्तु हेमा की माँ द्वारा अर्थ का प्रदर्शन करने से वह असहज हो जाती है। हेमा स्वगत कथन में कहती है–"माँ ने अपनी सबसे बेशकीमती साड़ी और गहने निकाल लिए। उनके आने के पहले वे खूब सजधज गयी थी। नख से शिख तक वे गहनों से लद गयी थी। निस्संदेह अपनी शान–शौकत अपनी उच्चता व प्रतिष्ठा के लिए वह अपने सम्पूर्ण वैभव का प्रदर्शन करना चाहती थी।"[166] वर्तमान में हेमा के माता–पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। हेमा के पिता रियासत के दिनों को भूल नहीं पाए थे। इसलिए दूसरों को प्रभावित करने के लिए वे नाना प्रकार से अर्थ का दिखावा करते। हेमा कहती है–"उस समय नयी–नयी बात थी, रियासत के दिनों के शान–शौकत की ताजा यादगार थी, इसलिए दूसरों को प्रभावित, आतंकित और भयभीत करने की आकांक्षा बहुत प्रबल थी। उस समय हमारे दरवाजे पर एक दर्जन से कम कुत्ते तो किसी भी हालत में न थे।"[167] राजा साहब शंतरज और जुंआ खेलने को भी प्रदर्शनप्रियता ही मानते थे अपनी शान समझते थे। इस प्रकार उपन्यासकार ने हेमा के माता–पिता के माध्यम से सामंती अर्थव्यवस्था की झूठी शान का खोखला यथार्थ प्रस्तुत किया है।

'सूखापत्ता' उपन्यास के नायक कृष्णकुमार का मित्र दीनानाथ मध्यम वर्ग से ताल्लुक रखता है। उसके पिता एक मामूली वकील है। उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं है, किंतु दीनानाथ अपनी मित्र–मण्डली के बीच अपने अमीर रिश्तेदारों के विषय में वार्तालाप करके रौब झाड़ता है तथा झूठे अर्थ का दिखावा कर सन्तोष प्राप्त करता है। दरअसल मध्यमवर्गीय परिवार में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे स्वयं भले ही साधन सम्पन्न न हो पर किसी न किसी माध्यम से वह स्वयं को आर्थिक रूप से सम्पन्न होने का दिखावा अवश्य करते है। कृष्ण कुमार अपने मित्र दीनानाथ की प्रदर्शनप्रियता के विषय में कहता है – मेरे "मित्र का नाम दीनानाथ था। ..... उसके बाप मामूली वकील थे। उसकी आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी। हाँ, उसके अनुसार उसके रिश्तेदार उच्चपदस्थ और अत्यन्त ही प्रभावशाली थे। उसके फूफा ढुमराव महाराज के मैनेजर थे और उनके पास सोने का एक पलंग और चाँदी की चौकी थी। उसके जीजा जी का भी कम महत्त्व नहीं था। वह एक फिल्म कम्पनी के डायरेक्टर थे और लीला चिटनिस, देविका रानी तथा अशोक कुमार रोज ही उनके पास आते। उनको आगे पढ़ने की जरूरत नहीं थी, क्योंकि उसके जीजा जी ने साफ–साफ कह दिया था कि दसवीं पास करने के बाद उसको बम्बई में भेज दिया जाए, फिल्म कम्पनी में उसको अभिनेता का काम मिल जाएगा। हम उसकी बातें बड़ी हसरत से सुनते और उससे कुछ हतप्रभ भी हो जाते। रिश्तेदारों के मामलों में उसको छोड़कर हम सभी बहुत अभागे थे।"[168] उपन्यासकार ने यहां दीनानाथ के माध्यम से समाज के अर्थ संबंधी खोखले यथार्थ को प्रस्तुत किया है। सच है आज जिनके पास पैसा है अथवा जिसके

सगे—सम्बन्धी अमीर है, उसका समाज में बड़ा ही सम्मान होता है, क्योंकि मनुष्य की ऊँचाई आज अर्थ के आधार पर नापी जाने लगी है।

आर्थिक विफलताएं

अमरकांत जी के अधिकांश उपन्यास मध्यम व निम्न वर्ग के जीवन से संबंधित है। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में इस वर्ग की आर्थिक विफलताओं का बड़ा ही सूक्ष्मता से अंकन किया है। उनकी यह चेतना स्थितियों, घटनाओं और पात्रों के माध्यम से प्रकट हुई है। जिस वस्तु का उन्होंने चयन किया है वह जीवन के यथार्थ को अपने वास्तविक रूप में उद्घाटित करती है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों की कथा विश्वसनीय लगती है। हमें ऐसा प्रतीत होता है, जैसे ये सभी परिस्थितियाँ, स्थितियाँ और घटनाएँ हमारे अपने जीवन की हो। उन्होंने अपने उपन्यास में अर्थ पक्ष को आरोपित नहीं किया है, अपितु वह सहज रूप से उद्घाटित हुआ है। अमरकांत जी के उपन्यासों में स्वातंत्र्यपूर्व से लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत की झलक देखने को मिलती है। तब से लेकर आज तक गरीबी, भुखमरी तथा बेरोजगारी की समस्याएं आज भी हमारे सामने अपने यथावत् रूप में खड़ी दिखाई देती है।

'बिदा की रात' उपन्यास में लेखक ने ऐसे लोगों के जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया है, जो दो वक्त की रोटी जुटा पाने में असक्षम है। उन्होंने सुल्ताना बेगम के मोहल्लें के माध्यम से ऐसे लोगों का मुद्दा उठाया है, जो जीवन की मूल—भूत आवश्यकताओं को भी बड़ी मुश्किल से पूरा कर पाते हैं। सुल्ताना बेगम इन लोगों की मदद करती है, लेकिन यह सहायता ऐसी ही है जैसे एक बूंद से समुद्र नहीं भर सकता उसी प्रकार केवल सुल्ताना बेगम के मदद करने से इन लोगों की परेशानियां भी दूर नहीं हो सकती। फिर भी वह उनकी सहायता करने में जुट जाती है। उस मोहल्ले के "छोटे—छोटे लड़के बिना तालीम के छोटी—छोटी दुकानों में काम करते और जिसको कुछ न मिलता वे बाहर आवारगी में वक्त गुजारते। औरतें खाते—पीते घरों में तरह—तरह के काम करती। इन लोगों को जो भी मिलता, उससे किसी तरह दोनों वक्त खाने का काम चल जाता, बाकी काम धरे के धरे रह जाते। उधार चढ़ जाता। बिना कर्ज के गाड़ी आगे बढ़ ही नहीं पाती। .... किसी के घर में शौहर के पगार न मिलने पर आटा नहीं होता या लड़की के बीमार होने पर डॉक्टर की फीस या दवा के पैसे न होते। कुछ तो ऐसी होती, जिनके घर महीने में जो भी पैसा आता, वह सब रहमान बनिए की उधारी में चुक जाता, क्योंकि बनिया उधार चुकाए बिना अगले महीने का राशन वगैरह देने की तैयार न होता। ऐसे खानदानों की जिंदगी कभी न खत्म होने वाली उधारी की ही मोहताज थी।"[169]

'आकाश पक्षी' उपन्यास में सामन्ती लोगों की झूठी शान शौकत व आर्थिक विपन्नता का यथार्थ प्रस्तुत हुआ है। हेमा के माता—पिता रियासती दिनों के खत्म होने के बावजूद

भी काफी ऐशो–आराम से जीवनयापन करते, जबकि उनकी आर्थिक स्थिति अब अच्छी नहीं थी। राजा साहब को बड़े सरकार द्वारा मुआवजे की रकम में से दस हजार रूपये मिले थे, जिसे भी वह अपनी झूठी शान–शौकत तथा फिजूलखर्ची में खत्म कर चुके थे। नौबत यहां तक आ जाती है कि जो लोग अनाप–शनाप खर्चा करते थे। तरह–तरह के व्यंजनों को खाते तथा बचने पर उन्हें नौकर–चाकर को बांट देते अथवा जानवरों के सामने फैंक देते थे। वे आज दाने–दाने को मोहताज थे। राजा साहब गृहस्थी चलाने के लिए रानी साहिबा के ज़ेवर तक बेच देते है। धीरे–धीरे उनके घर के सभी सामान बिक जाते है। उपन्यास की नायिका हेमा स्वगत कथन में घर की विपन्न आर्थिक स्थिति के विषय में कहती है –

"अब इमारत एकदम धराशायी हो गयी थी। फिर अब एक–एक दिन काटना मुश्किल हो गया। अब तक बहुत से सामान बिक चुके थे। न मालूम कितनी मसहरियाँ, सन्दूक, ड्रम, टब, चारपाईयां घर से जा चुके थे। वे मामूली दामों पर बेच दिए जाते, फिर गाड़ी कुछ दूर तक आगे खिसकती। कभी बड़े सरकार अहाते के पेड़ कटवा डालते। न मालूम कितने पेड़ कट चुके थे। वह पेड़ कटवाकर बेच देते। कुछ नये–नये तरीके भी उन्होंने निकाले पैसे कमाने के। जैसे कभी बाहर के मवेशी फाटक के अन्दर आते, तो वह उनको पकड़कर बाँध लेते और जब उनके मालिक आते तो उनसे पैसा वसूल करके ही मवेशियों को छोड़ते। परन्तु इस तरह खर्चीली गृहस्थी कैसे चल सकती थी। कुछ दिनों तक गाड़ी चलती, फिर रूक जाती।"[170] इस प्रकार 'आकाश पक्षी' उपन्यास में सामन्ती आर्थिक विपन्नता तथा जीवन का खोखला यथार्थ प्रस्तुत हुआ है।

'सूखापत्ता' उपन्यास के नायक कृष्णकुमार भी मध्य वर्ग से सम्बन्ध रखता है उसके पिता पेशे से वकील है। उनके परिवार में कृष्णकुमार के अलावा उसके माता–पिता, बड़े भाई साहब, एक छोटा भाई और एक विधवा चाची भी है। इस प्रकार एक व्यक्ति की आजीविका पर जीने वाले लोगों की कुल संख्या छह है। कृष्ण कुमार के बड़े भाई साहब इलाहाबाद में रहकर पढ़ते हैं। कृष्ण कुमार के यहां नौकर–चाकर भी है। कृष्णकुमार के पिता सामाजिक प्रतिष्ठा को बचाए रखने की जद्दोजहद के कारण अपने परिवार की गाड़ी जैसे–तैसे खींच रहे हैं। इस प्रकार उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत नहीं कही जा सकती। कृष्णकांत व उसके साथी मिलकर एक क्रांतिकारी संगठन का निर्माण करते है, जिसके अस्तित्व हेतु व सामग्री के लिए उन्हें चोरी करके पैसे जमा करने पड़ते है। एक बार कृष्णकुमार के एक मित्र की कॉलेज फीस जमा नहीं हो पाती। कृष्ण कुमार उसे फीस जमा कराने का आश्वासन देकर अपनी माँ से पाँच रूपये की मांग करता है, तो उसकी माँ घर की आर्थिक तंगी का हवाला देते हुए कहती है – "हाय रे बेटा, पाँच की कौन कहे, एक भी मुश्किल है। कचहरी पर बज्जर पड़ गया है, इधर रूपए बहुत कम मिल रहे हैं। ……… कुछ होता तो मैं न देती? इन सबों को विश्वास नहीं होता। सोचते है माँ ने छिपाकर

ट्रंक में दो–चार हजार रूपए रख छोड़े है। अरे बाबू, माँ का ही कलेजा जानता है। आज कोई बात पड़ जाए तो दो रूपए अपने पास से निकालकर माँ खर्च नहीं कर सकती, उधार लेने पड़ेंगे।"[171] इस प्रकार कृष्णकुमार की माँ की बातों से स्पष्ट है कि कृष्ण कुमार के घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी।

'काले–उजले दिन' के नायक को बचपन से ही आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है। विवाह पश्चात् जब उसकी नौकरी तार–विभाग में लग जाती है, तो वह पत्नी के साथ वाराणसी रहने लगता है। लेकिन उसकी तनख्वाह अत्यधिक न होने तथा घर खर्च निकलने के बाद उसमें से कुछ पैसा घर भिजवाने के कारण उसे आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पडता है। वह स्वगत कथन में कहता है – "कांति मुझे कितना प्यार करती थी .... मैं पैसा कोई अधिक नहीं पाता था, लेकिन वह उसी में सारी व्यवस्था ठीक रखती थी। हर महीने वह गृहस्थी का कोई सामान कर लेती। चारपाई, बर्तन, स्टोव, इस्तरी, बक्से, कपड़े। .... पिताजी की हर महीने रूपए की फरमाइशें आती। वह किसी–न–किसी तकलीफ का उल्लेख करते। पहले तो दो–तीन महीने मैंने पचास–पचास रूपये भेजे परंतु बाद में मुझे बड़ा गुस्सा आया। ये पैसे भेजने से मुझे काफी आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ता।"[172]

इसी प्रकार 'पराई डाल का पंछी' उपन्यास के नायक 'दीपक' की तनख्वाह भी कुछ खास नहीं है। इस कारण उसकी पत्नी अहिल्या व उसके बच्चों के तन पर ढंग के कपड़े भी नहीं होते। दीपक लापरवाह किस्म का व्यक्ति है। वह खुद का ध्यान रखता है पर बीवी बच्चों की उसे कोई खास परवाह नहीं है। फिर महीने की तनख्वाह मे से "तीस रूपए मकान का किराया निकल जाता था। तीस–चालीस रूपए दीपक सिगरेट–पान, खान–पान में फूंक देता था।"[173] इस प्रकार दीपक के माध्यम से उपन्यासकार ने आर्थिक समस्या को उजागर कर इसके पीछे के यथार्थ को भी प्रदर्शित किया है।

अर्थाधारित संबंध

पारिवारिक संबधो तथा रिश्तों में अर्थ का महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है। आज की इस भागम–भाग की जिंदगी में मानव संबंध बस एक वस्तु बनकर रह गए हैं। ऐसे में "रूढ़ संबंधों के प्रति नई पीढ़ी का आस्थावान बने रहना संभव नहीं हैं। वह उन संबंधों के प्रति कहीं भीतर से जुड़ाव महसूस ही नहीं कर पाती। उसने देखा है कि संबंधों के ऊपर सबसे बड़ी जो चीज काम करती है, वह है पैसा। वही संबधों को बनाता है और वही बिगाड़ता है। इसलिए वह इनके प्रति बेहद ठंडा है। संबंधों का यह ठंडापन उसके लिए अत्यंत जटिल समस्याओं का विधायक बना हुआ है। परिवार के सारे सदस्य एक–दूसरे से औपचारिक बंधनों से बंधे है। उसका एक चाहरदीवारी से जुड़े होना ही उनके सबंधों का द्योतक है अन्यथा वे एकदम अलग–अलग हैं,

प्रत्येक सिर्फ अपने आप तक सीमित है।"[174] इस प्रकार पारिवारिक संबंध स्थापित करने यथा विवाह इत्यादि में स्नेह, प्रेम की जगह उपयोगितावादी दृष्टि पनप रही है।

अमरकांत जी ने अपने उपन्यास साहित्य में अर्थ पर आधारित संबंधों का यथार्थ प्रस्तुत किया है। जहाँ अर्थाधारित संबंधों के पीछे मानवीय संवेदना दम तोड़ती नज़र आती है। 'ग्राम सेविका' उपन्यास की नायिका दमयन्ती अतुल से प्रेम करती है। जाति से भिन्न होने के साथ–साथ दोनों में आर्थिक आधार पर भी बहुत बड़ा फर्क है। दमयंती जहां गरीब परिवार से ताल्लुक रखती है, वहीं अतुल सम्पन्न वर्ग से। अतुल दब्बू स्वभाव का है। वह अपने माता–पिता तथा अपने खान–दान की इज्जत और उसकी पढ़ाई के मुताबिक मिलने वाले दान दहेज के लालच में आकर कहीं और शादी कर लेता है। दमयंती को इसकी सूचना उसकी एक सखी से मिलती है। "उस दिन मुन्नी ने बताया था कि अतुल की शादी तय हो गई है। लड़की बहुत सुन्दर है और उसके बाप बहुत धनी है, जो तिलक में दस हजार देंगे। यह सुनकर दमयन्ती का सारा शरीर सुन्न हो गया था जैसे देह का सारा खून बाहर निकल गया हो, परन्तु उसको विश्वास न हुआ।"[175] अतुल की शादी की पुष्टि जब दमयन्ती के पिता स्वयं करते है, तो दमयन्ती को अपने जीवन से निराशा हो जाती है। इस प्रकार 'ग्रामसेविका' उपन्यास में अतुल अर्थ के लालच में आकर दमयन्ती से अपना रिश्ता तोड़ लेता है। अमरकांत ने यहां अर्थाधारित संबंधों के कारण पवित्र प्रेम के खंडन तथा टूटती मानवीय संवेदनाओं का कटु यथार्थ प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार 'आकाश पक्षी' उपन्यास की नायिका हेमा, रवि से प्रेम करती है। हालांकि यहां रवि और हेमा दोनों ही सम्पन्न वर्ग से है, लेकिन हेमा की माँ रजवाड़े परिवार से संबंध रखने के कारण रवि को अपनी बेटी के लायक नहीं समझती। हेमा के परिवार की हालत धीरे–धीरे खराब हो जाती है। उनके भूखों मरने तक की नौबत आ जाती है। तब हेमा के माता–पिता धन के लालच में आकर अपनी सोलह वर्षीय बेटी हेमा का विवाह एक पैतालिस वर्ष के अधेड़ उम्र के व्यक्ति से तय कर देते हैं। हेमा अपने माता–पिता की झूठी शान–शौकत की पूर्ति तथा छोटे भाई–बहनों के भरण–पोषण हेतु विवाह के लिए तैयार हो जाती है। तब कुँवर साहब उनके पूरे परिवार के भरण–पोषण की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेते है। हेमा रवि के प्यार का गला घोंट देती है। वह स्वगत कथन में कहती है–"मैंने शाम को अपने को खूब सजाया और माँ से कहा कि मैं कुँवर साहब के साथ घूमने जा रही हूँ। पहले कुंवर साहब मुझे हजरतगंज के एक मशहूर होटल ले गए। खाने–पीने के बाद हम सिनेमा देखने गए। सिनेमा के बाद एक पार्क में वहाँ मैने अपना सर्वस्व कुंवर साहब को सौंप दिया। .... वापस जाने के बाद कुंवर साहब ने दो बौरे गेहूँ, दो बोरे चावल, एक बोरा दाल, एक बोरा चना खरीदकर घर में रखवा दिया। इसके अलावा उन्होंने सारे घर के लिए कपड़े तथा मेरे लिए बेशकीमती साड़िया, ब्लाउज के कपड़े, पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक, सुगन्धित तेल, चप्पलें, सैंडिलें और कान तथा हाथ के गहने खरीदे।"[176]

इस प्रकार अर्थ से जुड़े इस संबंध की कब्र में हेमा दफन हो जाती है। अमरकांत जी ने उक्त उपन्यास के माध्यम से सामन्ती वर्ग के मिथ्या दम्भ, लोलुपता वश अपनी ही बेटी का सौदा करने वाले लालची लोगों का कटु यथार्थ प्रस्तुत किया है।

अर्थाधारित संबंधों के विषय में डॉ. कमल गोयनका लिखते हैं–"ये मानव शरीर धारी ऐसे मानव है, जिनके हृदय में विद्यमान मानव अदृश्य हो गया है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से जो मानवीय रिश्ता है, जो भावना के धरातल पर जुड़ने की प्रक्रिया है और जो मनुष्य के मन में हजारों सालों से चली आ रही भावनाओं की सत्ता है, वह जैसे इस महानगर के समुद्र की गहराईयों में डूब गई है। मनुष्य जैसे अमनुष्य हो गया है, पिता जैसे अपिता, माँ जैसे अमाँ, मित्र जैसे अमित्र हो गया है, प्रेमिका जैसे अप्रेमिका बन गई है। .... भावना और मानवीय रिश्तें डूब गए है। और रह गया है मात्र ऐसा इंसान जो यंत्रवत् गणित के आधार पर कुछ लेने के लिए जुड़ता है और फिर छिटककर अपनी राह चल देता है।"[177]

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में भगजोगिनी के पति बनवारी की तपेदिक से मृत्यु हो जाती है। बनवारी की मृत्यु के पश्चात् उसका मित्र दामोदर भगजोगिनी की सास से उसका हाथ मांगता है बदले में वह उनकी सभी जरूरतों को पूरा करने का आश्वासन भी देता है। "मैं सबकों खूब सुख दूँगा चाची, तुम्हारे लिए नाइन लगा दूंगा, रोज तुमको उबटन, तेल लगाएगी। दोनों जून खाना बनाने के लिए किसी गरीब होशियार को रख दूँगा।"[178] इस प्रकार दामोदर भगजोगिनी की सास को आर्थिक लालच देकर भगजोगिनी से गन्धर्व विवाह कर लेता है। दामोदर पहले से विवाहित है। कुछ समय पश्चात् जब इस गन्धर्व विवाह के बारे में दामोदर की पत्नी व समाज को पता चलता है, तो दामोदर बड़ी होशियारी से भगजोगिनी के साथ अपने संबंधों की बात से मुकर जाता है। इससे भगजोगिनी को गहरा आघात लगता है। इस प्रकार भगजोगिनी और दामोदर का संबंध अर्थ पर टिका था, जिसकी नींव स्वयं भगजोगिनी की सास ने रखी थी, किंतु इस संबंध की पोल खुलने पर दामोदर ने भगजोगिनी व उसके परिवार से सभी संबंध तोड़ लिए और बाद में उनकी आर्थिक सहायता करना भी बंद कर दिया।

आर्थिक शोषण

"स्वातंत्र्यपूर्व काल में ब्रिटिशों ने यहां की जनता पर अन्याय–अत्याचार किया। ब्रिटिश व्यापार के निमित्त भारत आए थे और शासक बन बैठे। यहां की अर्थव्यवस्था का ढांचा ही परिवितिर्त हो गया। यहाँ का कच्चा माल इंग्लैण्ड जाने लगा। यहाँ के उत्पादनों पर अधिक कर लागू किए गए। यहाँ के माल की खपत कम हो गई और घरेलू उपयोग बंद पड़ गए।"[179]

अंग्रेजो की शोषण नीति स्वतंत्रता पश्चात् आज भी बरकरार है। आम जनता तथा मजदूरों का शोषण आज भी हो रहा है। देश की आर्थिक व्यवस्था के साथ–साथ यहां के

लोगों को आर्थिक व मानसिक रूप से कमजोर बनाने के पीछे साहूकारों व सामन्तों का भी कम हाथ नहीं है। सामन्तें व साहूकारों ने तो किसानों की कमर ही तोड़कर रख दी। कृषि कर के साथ–साथ नाना प्रकार के कर किसानों से लिये जाने लगे। कर न दिये जाने पर उन पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये जाते। उनके साथ जंगली जानवरों के समान सलूक किया जाता। अमरकांत जी के उपन्यास 'आकाश पक्षी' में इसका यथार्थ अंकन हुआ है। उपन्यास की नायिका हेमा अपने बचपन की स्मृति में गोता लगाते हुए किसानों की उस दुर्दशा को याद करती है। जब किसान ओला गिरने या अतिवृद्धि होने या अन्य कारण से लगान समय पर न दे पाते थे। हेमा कहती है–"एक दिन की बात मुझे इस तरह याद है, जैसे कल ही की घटना हो। एक गरीब दुःखिया किसान अपनी जमीन की लगान दे न पाया था। उसके घर में खाने को भी नहीं था, क्योंकि उस साल सूखा पड़ गया था और लोग भूख से मर रहे थे। उसको बड़े सरकार ने बुला भेजा। मैं उस बूढ़े किसान को अब भी देखा सकती हूँ। उसका शरीर काँटा की तरह झुका था। काला भुजंग। उसकी छाती के बाल सफेद हो रहे थे। गिद्ध की तरह उसकी टाँगे मुड़ी हुई सी थी। वह हाथ जोड़कर खड़ा था और 'माई–बाप' कहकर गिड़गिड़ा रहा था, लेकिन सरकार उसको गन्दी–गन्दी गाँलियां दे रहे थे। फिर उनकी आँखे गुस्से से लाल हो गयीं और वह कारिन्दे को आदेश देने के बजाय स्वयं ही उस पर टूट पडे और उसको बुरी तरह मारने लगे। वह किसान इस तरह चिल्लाने लगा जैसे बकरे को हलाल किया जा रहा हो।"[180] उपन्यासकार ने यहां सामन्तों द्वारा गरीब किसानों पर किये गये दैहिक व आर्थिक शोषण का अत्यन्त वीभत्स व कारूणिक यथार्थ प्रस्तुत किया है।

ऐसा ही एक प्रसंग 'इन्हीं हथियारों से' में भी देखने को मिलता है। उपन्यास के नायक नीलेश का एक मित्र शिवदर्शन जमींदार का पुत्र है। शिवदर्शन और नीलेश राजकीय स्कूल में सहपाठी है। एक दिन नीलेश शिवदर्शन से पढ़ाई के सिलसिले से मिलने उसके घर जाता है। वहां वह शिवदर्शन के पिताजी द्वारा एक किसान पर होते निमर्म अत्याचार का कारूणिक दृश्य देखता है। नीलेश शिवदर्शन के पिताजी के संबंध में कहता है कि–"उस व्यक्ति ने एक बूढ़े, सूखे, जर्जर असामी को लगान न देने पर पकड़ मँगवाया था, और पेड़ से बंधवाकर उस पर गला फाड़–फाड़कर गन्दी से गन्दी गालियों की बौछार की थी। उसकी राजनीतिक दृष्टि तो साफ नहीं थी उस समय, फिर भी उसे बड़ा कष्ट हुआ था .... ब्रिटिश हुकुमत से उसे और नफरत हो रही है, जो ऐसे सड़े–गले हैवान सामन्तों को पाल पोस रही है। सन्तोष इसी से होता है कि इस विदेशी सरकार के खात्मे के बाद सामन्तों की यह व्यवस्था भी मिटा दी जाएगी।"[181]

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में अंग्रेजों द्वारा बलिया की सीधी–सादी जनता का आर्थिक व दैहिक शोषण का कारूणिक दृश्य प्रस्तुत हुआ है। "अंग्रेजी फौज कई टुकड़ियों में बँटकर हर तरफ से गाँवों में प्रवेश कर जाती है। गिरफ्तारियां, अंधाधुध पिटाई, मकान

जलाने–फूंकने, लूटपाट करने, अन्न और चीनी के बोरे उठा ले जाने, हजारो रूपए उगाहने का आतंकी जुल्म शहर के बाद गाँवों में भी आरम्भ हो गया।"[182]

स्वातंत्र्यपूर्व साहूकारों, सामन्तों व जमींदारों ने गरीब जनता का भरपूर आर्थिक व दैहिक शोषण किया। यह शोषण स्वतंत्रता पश्चात् भी प्रधान जी व नेताओं के रूप में जारी रहा। 'ग्राम सेविका' उपन्यास में ग्राम प्रधान 'विचित्र नारायण दुबे' के माध्यम से गरीब किसानों के आर्थिक शोषण का यथार्थ प्रस्तुत हुआ है। प्रधान जी "गरीबों को रूपये सूद पर देते। वह प्रेमपूर्वक कर्ज को उस हद तक चढ़ जाने देते थे, जब तक गरीब लोग पूरा चुकता कर ही नहीं सकते थे। वे चुकाते भी जाते और कर्ज बना भी रहता था। इस तरह गांव के लोगों की एक अच्छी–खासी संख्या उन पर आश्रित थी।"[183]

इतना ही नहीं प्रधान जी उनसे अपने घर का काम भी लिया करते थे। "जिनकी आर्थिक स्थिति खराब थी, उनमें से कोई खेत–खलिहान देखता था, कोई गाय–बैलों को सानी पानी चला देता था और कोई रात को पहरा दे देता।"[184] इस प्रकार प्रधानजी जैसे साधन–सम्पन्न लोग आम गरीब वर्ग का मनमाने तौर पर आर्थिक शोषण करते।

आधुनिक अर्थव्यवस्था इतनी खामीयुक्त है कि अमीर व्यक्ति और अमीर होता जा रहा है तथा गरीब व्यक्ति और गरीब। इस अर्थव्यवस्था के कारण आम आदमी का जीना दुभर हो गया है। दोगली अर्थव्यवस्था की वजह से प्रधानजी जैसे लोग गाँव में क्रियान्वित विकास योजनाओं से मिलने वाले लाभ को स्वयं ही डकार जाते है। गाँव के सीधे–सादे लोगों को तो इन विकास योजनाओं की जानकारी भी नहीं होती। सरकारी अफसर जब कभी गांव में जातें तो वे भी प्रधान जी से ही मिलकर सारे आंकड़े इकट्ठे कर लेते। उनको गाँव के अन्य लोगों के यहां जाने की जरूरत ही महसूस नहीं होती। नतीजतन प्रधान जी जैसे अन्य अमीर लोगों को ही "सबसे अधिक तकाबी मिलती और इन्हीं को सबसे अधिक कर्ज मिलता था। खाद, बीज आदि अन्य सुविधाओं के मामले में भी वे ही लोग लाभ में रहते थे। शेष जनता तो विकास बाबुओं और अफसरों से इस तरह डरती थी जैसे वे थानेदार या पुलिस–सिपाही हो।"[185] प्रधान जी अपनी जमीन जायदाद में निरंतर वृद्धि करते रहते थे। पटीदारों की जमीन में से कुछ भाग हथिया लेते थे।"[186] इस प्रकार प्रधान जी जैसे लोगों द्वारा गरीब किसानों का दैहिक, मानसिक व आर्थिक शोषण होता रहा है। गरीब किसानों का जीवन दोगली अर्थव्यवस्था के कारण बर्बाद हो रहा था। इन सबका यथार्थ व भीषण चित्रण अमरकांत जी ने अपने उपन्यासों में किया है।

अर्थ, मानसिक द्वन्द्व व तनाव

मध्यम व निम्न वर्ग की वैसे तो कईं समस्याएँ है, लेकिन उनमें से आर्थिक समस्या प्रमुख है। स्वातंत्र्यपूर्व से लेकर आज तक यह समस्या अपने गंभीर रूप में हमारे समक्ष

एक चुनौती बन कर खड़ी हुई है। "विकासशील देशों के लिए गरीबी सबसे बड़ी समस्या है, गरीबी एक समस्या नहीं बल्कि परस्पर जुड़ी समस्याओं की एक श्रृंखला है।"[187] अमरकांत जी ने अपने उपन्यास साहित्य में आर्थिक समस्या से जुझते तथा अर्थ के कारण मानसिक दबाव, कुंठा व तनाव को झेलते लोगों का कारूणिक यथार्थ प्रस्तुत किया है। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में गोपालराम निम्न वर्ग से संबंधित है। उसके माता–पिता दूसरों के यहां मजदूरी करके अपना व अपने बच्चों का पालन पोषण करते है। उसके माता–पिता बड़े ही कष्ट झेलकर उसे शिक्षा दिलाते है। उसके घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। आर्थिक तंगी के कारण वह आगे की पढ़ाई भी नहीं कर पाता। गोपालराम आर्थिक तंगी के कारण मानसिक दबाव व तनाव को झेलता है। उसका स्वभाव उच्च जाति के लोगों के प्रति ईर्ष्यालु, घृणित व क्रोधी हो जाता है। वह अपने सवर्ण जाति के मित्र नीलेश से अपने मन मस्तिष्क के तनाव व कुण्ठा युक्त विचारों को अभिव्यक्त करता है। वह कहता है–"मेरे बाबू और माई सीधे–सादे हैं, वे डांट–डपट, लात–जूता खाते रहते हैं, अभाव में गिड़गडाते रहते हैं, लेकिन उन्हें गुस्सा नहीं आता। सीधे–सादे मेरे बाबू हर दुर्गति भुगतते हुए भी खेती मजदूरी करते है। मेरी माई बड़े घरों में बच्चा जनाने तथा और काम करती है तो उसे रोज पके हुए बासी भोजन की मजदूरी और फसल होने पर कुछ पसेरी अनाज मिल जाता है। मुझे अचम्भा होता है कि कैसे वे मेरी पढ़ाई के लिए हर महीना दस रूपए भेज देते हैं और मैं बेहया की तरह लिए जाता हूँ। .... तुम मेरा गुस्सा जानना चाहते हो? मैं सबसे ईर्ष्या करता हूँ, सबसे धृणा करता हूँ, दुनियां के सारे 'राक्षस' और 'सारे देवता' मिलकर भी इतना गुस्सा नहीं कर सकते।"[188] इस प्रकार अर्थ के अभाव में गोपालराम की मनोवृत्ति कुंठित हो जाती है और वह मानसिक दबाव व तनाव को महसूस करता है।

'ग्राम सेविका' उपन्यास की नायिका दमयंती का परिवार भी आर्थिक तंगी से गुजर रहा होता है। दमयंती के पिता आर्थिक तनाव के कारण अपनी पत्नी पर क्रोध करते है। आर्थिक विपन्नता के समय व्यक्ति की मनोवृत्ति का कुंठित होना स्वाभाविक है। दमयंती स्वगत कथन में कहती है –"कभी–कभी पिताजी आर्थिक परेशानियों से खीझकर उनको मारते थे। तब वे देर तक रोती और खाना नहीं खाती। बाद में पिताजी उनको मनाते थे। उनको पेट की टी.बी. हो गई थी।"[189] इस प्रकार दमंयती का परिवार गरीब तो था ही तथा बीमारियों का शिकार होने के कारण अत्यधिक आर्थिक तंगी को झेल रहा था।

'काले–उजले दिन' उपन्यास का नायक आर्थिक तंगी के कारण मानसिक द्वन्द्व व तनाव को झेलता है। नायक की सौतेली माँ व पिता दहेज के लालच में उसका विवाह तय कर देते है। सौतेली माँ बचपन से ही नायक पर अत्याचार करती थी, किन्तु विवाह के पश्चात् वह उसे अर्थ संबंधी तानों से प्रताड़ित करने लगी। उसकी पत्नी कांति को भी छोटी–छोटी बातों के लिए ताने दिये जाने लगे। वह स्वगत कथन में कहता है–"मैं पढ़ा–लिखा नहीं था और न ही

कुछ कमाता–धमाता था, यदि मैं कमाता होता तो मेरी पत्नी को इतनी तकलीफ न होती। .... मेरे सामने अन्धकार छाया हुआ था। ..... मैं उसके हाथ पर एक पैसा तक नहीं रख सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं बेहद चिन्तित रहने लगा।"[190]

नायक आगे कहता है कि–"पहले तो जो कुछ अन्याय होता था, वह मुझ पर होता था लेकिन अब जो कुछ अन्याय होगा, वह उस पर होगा, जो मेरे सहारे रहने आयी थी। यही नहीं जो असन्तोष और शिकायत मुझसे होगी, उसका पूरा बदला उससे निकाला जाएगा, क्योंकि यहां सबसे कमजोर वहीं पड़ती है। ...... ऐसी स्थिति बहुत दिनों तक कैसे चलेगी?"[191] नायक की सौतेली माँ जब उसकी पत्नी कान्ति को ताने देती तब नायक मूक दृष्टा होकर सब कुछ चुपचाप सुन लेता है और प्रतिकार नहीं करता। तब वह कांति से कहता है–"कांति मुझे माफ करो ...... मैंने आज वे सभी बातें सुनी जो माता जी ने तुमसे कही थी। यहाँ मैं चुपचाप बैठा रहा। मैं एक शब्द भी न बोल सका, क्योंकि न मेरे पास पैसा है और न मैं किसी काबिल हूँ .... मेरी पढ़ाई भी नहीं हो सकी। .... पिताजी मुझसे बात भी पसंद नहीं करते। मैंने उनसे एक दिन कहा था पढ़ाई जारी करने के लिए, लेकिन उन्होंने साफ–साफ इंकार कर दिया। उन्होंने कहा कि वे एक पैसा भी मेरी पढ़ाई पर खर्च नहीं कर सकते। अब बताओ मैं क्या करूँ? मुझे तो कुछ समझ में ही नहीं आता। इच्छा करती है कि कुछ खाकर सो जाऊँ।"[192] नायक अर्थ के अभाव में निराश होकर आत्महत्या जैसे जघन्य व हीनता भरे कृत्य को करने हेतु विवश हो उठता है। कान्ति उसे समझाती है कि वह धैर्य रखे तथा पढ़ाई प्रारम्भ करने के लिए अपना हार बेचने को कहती है। इस पर नायक दुःखी मन से कहता है–"कांति मुझे कांटो में न घसीटों। मेरे लिए यह कैसी शर्म की बात है कि तुम्हारे गहने बेचकर पढ़ाई करूँ, जबकि चाहिए यह कि मैं तुम्हारे लिए नये–नये गहने बनवाकर देता।"[193] इस प्रकार अमरकांत जी ने आर्थिक तंगी को झेलते दम्पत्ति का यथार्थ प्रस्तुत किया है।

'इन्ही हथियारों से' उपन्यास के नायक नीलेश के पिता कचहरी में वकील है। उनके पास थोड़ी बहुत जमीन–जायदाद भी है। इसलिए खाने–पीने की कभी कमी नहीं रही, किंतु अचानक राजनीतिक हलचलों के कारण बलिया में कांग्रेसियों द्वारा आंदोलन चालू हो जाता है तथा जगह–जगह पर प्रदर्शन और जुलूस निकाले जाते है। इस कारण बलिया में स्कूल, कॉलेज व कचहरी इत्यादि सरकारी संस्थाने बंद कर दी जाती है। सीतानाथ जमीन–जायदाद को अपने छोटे भाई को सौंपकर निश्चित हो चुके थे, लेकिन वो भी जमीन को जपाई पर देकर उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देते। इस तरह जमीन से होने वाला फायदा भी अब मिलना बंद हो जाता है। सीतानाथ के परिवार में कुल दस लोग है। कचहरी बन्द होने से इतने बड़े परिवार का खर्चा चलाना मुश्किल हो जाता है। सीतानाथ की पत्नी आनंदी आर्थिक तंगी के कारण हर समय इस परेशानी में रहती हैं कि पैसा कहाँ से आए, सामान कैसे खरीदा जाए या घर में जो कुछ भी है

वह कैसे बने? आनंदी अपनी सास जीरादेई से कहती है–"दुकानदार अब उधार भी नहीं देते, जलाने के लिए लकड़ी कहाँ से लाऊँगी, छौंकने व बघारने के लिए घी–तेल कहाँ से आएगा, मैथी, जीरा, मिर्चा, धनिया कौन देगा? सभी डिब्बे बर्तन बोल गए है .... मौका पड़ने पर कोई मदद नहीं करता, हर बात मुझी पर छोड़ देते है, सब मुझे ही नोचते खसोटते है ......।"[194]

जीरादेई के कहने पर आनंदी घर में रखे जौ, चने से रोटी, दाल व हलुआ बनाकर बच्चों को भोजन खिलाती है। बड़े तो मन मारकर खाना खा लेते है, लेकिन छोटे बच्चे सुरेश, धीरेश, रमेश व उमेश रोना व मचलना शुरू कर देते है। "एक दिन आनंदी ने खीझ कर कह दिया, जाओं नहीं खाना हो तो न खाओ .... भात में कलेजा फाड़ के निकालूं? अन्त में आँचल में मुँह छिपाकर रोने लगी।"[195] अमरकांत जी ने सीतानाथ के परिवार के माध्यम से उस समय के परिवारों की आर्थिक स्थिति तथा महिलाओं की मानसिक स्थिति व द्वन्द्व का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

'आकाश पक्षी' उपन्यास की नायिका हेमा के माता–पिता सामन्ती परिवार से है। रियासत चले जाने के बाद भी हेमा के माता–पिता फिजूलखर्ची करते है तथा ऐशो–आराम की जिंदगी जीते है। इससे धीरे–धीरे सरकार की ओर से मुआवजे में मिली रकम खत्म होने लगती है। नौबत यहां तक आ जाती है कि घर के सभी सामान बिक जाते है। आर्थिक तंगी के चलते हेमा के माता–पिता हेमा का विवाह एक पैतालिस वर्ष के युवराज से तय कर देते है। हेमा को यह समझते देर नहीं लगती है कि उसके माँ–बाप ने अपनी शान–शौकत, ऐशो–आराम व आर्थिक पूर्ति हेतु उसका सौदा कर दिया है। वह मन ही मन छटपटा कर रह जाती है। उसका मन एक अजीब पीड़ा और कुंठा से भर उठता है। वह कहती है–"मैं अपने माँ–बाप और परिवार के लिए अपना जीवन तिल–तिल मोम की तरह जला दूँगी। अब यह शरीर और जीवन एक जिन्दा लाश की तरह है। मेरे अन्दर कोई भावना नहीं है। मैं मशीन बनूंगी, एक पूर्जा। ...... अब खुश हो मेरे माता–पिता। उनकी छाती अब ठंडी होगी। उनको चाहिए धन, उनको चाहिए झूठी प्रतिष्ठा, उनको चाहिए झूठी शान–शौकत। मैं सब कुछ उनको दूंगी, क्योंकि मैं अब आजाद चिड़िया नहीं बल्कि एक मशीन का पूर्जा हूँ, जिसके दिल नहीं हैं, जिसके मन में आकांक्षाएँ नहीं है। जिसमें रंगीन भविष्य की उमंगे नहीं है।"[196] इस प्रकार हेमा के माध्यम से उपन्यासकार ने समाज के उस कटु यथार्थ का अंकन किया है जहाँ अर्थ के लालच में माँ–बाप अपनी बेटी तक का सौदा कर डालने में नहीं हिचकते। आर्थिक तंगी के दंश को झेलते लोग कुंठा का शिकार होते है। वे एक–दूसरे से ईर्ष्या करते हैं, लड़ते–झगड़ते हैं, क्रोध तथा घृणा करते हैं व बदले की आग में जलते रहते है। इस तरह वे आर्थिक मानसिक दबाव व तनाव झेलते हुए दो पाटों में पिसते रहते है। अमीर और अमीर हो जाते है तथा गरीब और गरीब हो जाते हैं। इस प्रकार अमरकांत जी ने अपने उपन्यासों में अर्थ की उपयोगिता तथा उससे जुड़े पक्षों का विकृत व यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है।

5.4 सांस्कृतिक सन्दर्भ

संस्कृति का अर्थ, परिभाषा व स्वरूप

संस्कृति समाज की वह प्रक्रिया है, जो सदैव हमारे पूर्वजों द्वारा अनुभूत होकर अगली पीढ़ी को अथवा पीढ़ी–दर–पीढ़ी संस्कार रूप में धरोहर स्वरूप प्राप्त होती है। दूसरो शब्दों में संस्कृति विचार, आदर्श–भावना और संस्कार प्रवाह का एक सुसंगठित और सुस्थिर संस्थान है, जो मानव को सहज ही पूर्वजों से प्राप्त है। सच्ची संस्कृति भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों को एक सूत्र में गूँथती है। साहित्य, दर्शन, आचारशास्त्र और समाजशास्त्र में संस्कृति के अलग–अलग अर्थ प्रयुक्त होते हैं। कहीं यह भावाभिव्यक्ति का माध्यम है, तो कहीं नैतिक उपलब्धि का, कहीं आध्यात्मिक धारणा है, तो कहीं भौतिक।

हिंदी साहित्य कोश में "संस्कृति शब्द 'सम्' उपसर्ग के डुकृञ् (करणे) धातु से 'सुट्' का आमगन करके 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है – साफ या परिष्कृत करना।"[197]

टायलर के अनुसार – "संस्कृति वह समग्र जटिलता है, जिससे, ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून और ऐसी ही अन्य क्षमताओं एवं आदतों का समावेश है, जो मनुष्य समाज का एक सदस्य होने के नाते प्राप्त करते है।"[198]

संस्कृति शब्द की व्याख्या करते हुए **डॉ. गुलाबराय** कहते है – "संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से है, जिसका अर्थ है संशोधन करना, उत्तम बनाना और परिष्कार करना।"[199]

अन्य शब्दों में "संस्कृति का अर्थ संस्कार–सम्पन्न जीवन है। वह जीवने जीने की कला और विशिष्ट पद्धति है। संस्कृति एक ऐसा विराट तत्त्व है, जिसमें सभी कुछ समाविष्ट हो जाता है। मानव जीवन के इच्छा, ज्ञान और क्रिया तीन पक्ष है, जिसे दूसरे शब्दों में हृदय, बुद्धि और व्यवहार कहा जा सकता है। इन तीन तत्त्वों का जब पूर्ण सामजंस्य होता है, तब संस्कृति होती है।"[200]

वस्तुतः "संस्कृति का भावार्थ शाब्दिक अर्थ की अपेक्षा अधिक विशद् एवं व्यापक है। अपने व्यापक अर्थ में संस्कृति से अभिप्राय किसी समाज की जीवन पद्धति से है, जिसमें उसकी कला, शिल्प, विश्वास, मूल्य, संस्कार, प्रथाएं, धर्म, नीति आदि समाहित है। धर्म और संस्कृति का प्रगाढ़ सम्बन्ध है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का मूलाधार भी धर्म ही रहा है। धर्म में भी प्रायः वे ही संस्कार आते हैं, जो संस्कृति में है। हमारे यहां धर्म व्यापक शब्द है। वह हमारे जीवन को शासित करता है। धर्म और संस्कृति में अंतर केवल इतना ही है कि धर्म

में केवल श्रुति स्मृतियों और पुराण ग्रंथों का आधार रहता हैं, किंतु संस्कृति में परम्परा का आधार रहता है।"[201]

इन्द्र विद्यावाचस्पति के मत में—"किसी भी देश की आध्यात्मिक सामाजिक और मानसिक विभूति को उस देश की संस्कृति कहते है। 'संस्कृति' शब्द में देश के धर्म, साहित्य, रीति—रिवाज, परम्पराओं, सामाजिक संगठन आदि सब आध्यात्मिक और मानसिक तत्त्वों का समावेश होता है। इन सबके समुदाय का नाम संस्कृति है।"[202]

"संस्कृति वास्तव में सामूहिक जीवनयापन का एक ढंग है, जो सामूहिक जीवन के सामने अनुभवों के परिणामस्वरूप विकसित होती है।"[203] अतः व्यक्ति के समस्त क्रियाकलाप संस्कृति के ही अंग है। संस्कृति हमारे सम्पूर्ण सामाजिक जीवनयापन में व्याप्त है। संस्कृति के निर्माण में कईं पीढ़ियों का योगदान होने से वह अनुभव पोषित होती है। इस संदर्भ में सोहन शर्मा लिखते हैं — "संस्कृति श्रम और सृजन के जरिए समाज के विकास की प्रक्रिया है। संस्कृति मनुष्य समाज के शताब्दियों के अनुभवों के उन निष्कर्षों का जिन्हें हम आदर्श या मूल्य मानते हैं, सम टोटल है।"[204]

वस्तुतः संस्कृति की आधार शिला पुरातन है। विगत का प्रभाव और समसामयिक परिवर्तन इसे प्रवाहशील बनाते है। संस्कृति किसी भी देश की अस्मिता को जीवंत और सतत प्रवाहमान बनाये रखने में सहायक होती है। नैतिक दृष्टि से संस्कृति का संबंध नैतिकता, सच्चाई, ईमानदारी, आदर्श नियमों एवं सद्गणों से है। संस्कृति का संबंध सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् से है। इतिहासकारों ने संस्कृति शब्द का प्रयोग समाज एवं मानव समूह की उन्नत अवस्था के अर्थ में किया है। धर्म, ज्ञान, विज्ञान, कला, संगीत, दर्शन एवं साहित्य के क्षेत्र में मानव की फलीभूत उपलब्धियों को इतिहासकारों ने संस्कृति की संज्ञा दी है।

निष्कर्षतः "संस्कृति वह प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति को विवेक और व्यवहार ज्ञान की उपलब्धि होती है। संस्कृति जीवन में आदर्शों, मूल्यों का निर्माण करती है एवं उनको परिष्कृत करती है। संस्कृति में किसी भी राष्ट्र के धर्म, रीति—रिवाज, परम्पराऐं, साहित्य, कला, सामाजिक संगठन आदि तत्त्वों का समावेश होता है। संस्कृति के दो पक्ष माने जाते है—आन्तरिक अथवा अव्यक्त और बाह्य अथवा व्यक्त। आन्तरिक दृष्टि से मन और बुद्धि का संस्कार संस्कृति है तथा आचरण एवं शील 'संस्कृति' के व्यक्त रूप है। संक्षेप में हम कह सकते है कि मनुष्य की सुन्दर कृतियों तथा चिंतन की अभिव्यक्ति की समष्टि का नाम ही संस्कृति है।"[205]

उपन्यासकार अमरकांत जी एक सामाजिक प्राणी है। उनका मानना है कि सामाजिक संस्करण में संस्कृति की उपादेयता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे अपनी संस्कृति के प्रति अत्यन्त सजग व चेतन दिखाई देते हैं। वास्तव में व्यक्ति जो कुछ भी अपने आस—पास की

संस्कृति से ग्रहण करता है वह उसके व्यवहार में समाविष्ट हो जाता है। अतः उनके उपन्यास साहित्य में संस्कृति के विविध रूप परिलक्षित होते हैं।

धार्मिक आस्था

संस्कृति का ही अभिन्न रूप धर्म है। धर्म और संस्कृति को एक–दूसरे का पूरक भी माना जा सकता है। मानव समाज में धर्म को एक शक्ति व विकास के रूप में मान्यता प्राप्त है। धर्म समाज को बनाए रखने में समर्थ है। मनुष्य कितना भी अधिक आधुनिक क्यों न हो जाए, उसमें धर्म के प्रति आस्था दिखाई देती है। प्रारम्भ काल से लेकर मनुष्य में पाप–बोध की भावना आज भी बलवती रूप में विद्यमान है। यह यथार्थ सत्य है कि धर्म भीरू भावना मनुष्य में कहीं न कहीं अपने गौण रूप में विद्यमान होती है। उसका ऐसा मानना है कि किसी का भी अहित करने पर मनुष्य पाप का भागी बन जाता है।

वस्तुतः धर्म का मानव जीवन में प्रमुख महत्त्व है। व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के निर्माण में धर्म की महती आवश्यकता देखी जा सकती है। देखा जाए तो व्यक्ति तथा समाज के सभी कार्यों का नियन्ता धर्म ही है। धर्म एक शक्तिशाली अस्त्र के रूप में देखा जा सकता है, जो व्यक्ति को बुराई, अन्याय, अत्याचार से संघर्ष करने के लिए प्रेरित भी करता है। "धर्म अभौतिक संस्कृति का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग है, जो व्यक्ति की क्रियाओं तथा व्यवहार को नियंत्रित करने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। धर्म का तात्पर्य किसी अधिमानवीय, अलौकिक अथवा समाज से उच्च शक्ति पर विश्वास है, जिसका आधार भय, श्रद्धा, भक्ति तथा पवित्रता की धारणा है तथा इसकी अभिव्यक्ति, प्रार्थना, पूजा या आराधना द्वारा होती है।"[206]

अमरकांत जी के उपन्यास साहित्य के पात्रों में भी धार्मिक भावना मूल रूप से विद्यमान् है। 'पराई डाल का पंछी' उपन्यास में जब दीपक को दफ्तर से आने में देर हो जाती है तब उसकी पत्नी अहिल्या किसी अनिष्ट के भय से ईश्वर से प्रार्थना करती है कि "अगर वह उसके पति को जल्दी ही भला चंगा घर ला देंगे तो वह उनको दो रूपये के लड्डू चढ़ायेगी।"[207] इसी प्रकार 'सुन्नर पांडे की पतोह' ईश्वर में आस्था रखने वाली धार्मिक स्त्री है। पति द्वारा घर छोड़कर अन्यत्र चले जाने के पश्चात् सुन्नर पांडे की पतोह पर घर वालों द्वारा कई प्रकार के अत्याचार किये जाते है इससे तंग आकर वह घर और गांव छोड़कर जब जाने लगती है तो ईश्वर से प्रार्थना करती है कि – "हे बरमा, बिसुन, महेश, हे हनुमान जी, हे दुर्गा जी, हे गंगा मैया, हे लछना फूआ, हे डीह बीबा, हे दसो दिशा के सभी देवी–देवता, हे नैहर ससुराल के सभी पुरखा लोग, हे गांव–जवार के चिरई–चुरंग, खेत–खलिहान, बाग–बगीचा, पोखर–तालाब .... यह गाँव, घर छोड़कर मैं हमेशा के लिए जा रही हूँ .... मेरी भूल–चूक माफ करें – पांडेजी गांव कभी आवें तो बता देना कि मेरा दोष कुछ नहीं है।"[208]

सामान्यतः कुछ लोग संस्कृति के अभिन्न रूप धर्म का उपयोग समाज को बांटने में करने लगे है, जिसके ज्वलंत उदाहरण साम्प्रदायिक दंगों के रूप में देखे जा सकते हैं। भारतीय संस्कृति विभिन्न धर्मों की संरक्षिता के रूप में जानी जाती है, किंतु धर्म को आधार बनाकर साम्प्रदायिक दंगे फैलाने वालों के लिए भारत एक मिसाल के रूप में है, क्योंकि दुनियां की दूसरी बड़ी मुस्लिम आबादी यहीं निवास करती है। वैसे तो भारतीय संविधान की दृष्टि में सभी धर्म समान है। वह किसी भी धर्म को विशेष संरक्षण प्रदान नहीं करता। इसलिए भारतीय संस्कृति पूरे विश्व में अद्वितीय संस्कृति के रूप में विद्यमान है। इसने दुनियां की समस्त संस्कृतियों को अपने में समेटे हुआ है। यह जन समुदाय के लिए विभेदक न होकर उसका संरक्षण करती है। स्वातंत्र्यपूर्व का भारत हिन्दू–मुस्लिम दोनों समुदाय के धर्मो के प्रति आस्था व एकता का प्रतीक रहा है। इसका स्वाभाविक व यथार्थ चित्रण 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में देखने को मिलता है। "दो गाँव पास–पास थे। एक गाँव था हिन्दुओं का और दूसरा मुसलमानों का। दोनों ही गाँवों के लोग आपस में बहुत प्यार से रहते। दशहरा में गाँव के प्रतिष्ठित हिन्दू लोग पड़ौसी गाँव जाकर मुसलमान भाईयों को रामलीला और विजयादशमी का मेला देखने के लिए आदरपूर्वक बुला लाते। होली में दोनों गाँव के लोग आपस में होली खेलते, गले मिलने के लिए चले आते। ...... उसी तरह मुर्हरम के दिन गांव के मुस्लिम बुजुर्ग पड़ौसी हिन्दू गांव में हर दरवाजे घूम–घूमकर कह आते : अरे दुल्हिनिया, अरे बबुनियाँ, आज कत्ल की रात है। .... सब चलें .... खूब ताशा सुनिए, गदा–फाना देखिए, मन्नत मानिए"[209] इस प्रकार अमरकांत ने स्वतंत्रता पूर्व के भारत के धर्म व संस्कृति की यथार्थ झांकी प्रस्तुत की है, जिसमें हिन्दू व मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के लोग एक–दूसरे के धार्मिक कार्यो में आस्था रखते तथा रूचि लेते थे।

अंधविश्वास व मान्यताएँ

विज्ञान और नई शिक्षा के चलते मनुष्य आज भाग्य से अधिक कर्म में विश्वास करने लगा है। वर्षों से चली आ रही कईं प्रकार की मान्यताओं व परम्पराओं को देखने की उसकी दृष्टि में भी परिवर्तन हुआ है। अंधविश्वास को वह अब विज्ञान की कसौटी पर कसकर देखने लगा है, क्योंकि उसे यह ज्ञात हो गया है कि मनुष्य जाति का विकास अंधविश्वास को दूर किए बगैर संभव नहीं है। शिक्षित समाज तो अंधविश्वास को नहीं मानते, किंतु कुछ पुरानी पीढ़ी के लोगों में आज भी कहीं–कहीं अंधविश्वास दिखाई पड़ता है। इन अंधविश्वासों के पीछे कईं प्रकार की दंतकथाऐं जुड़ी होती है। जो धीरे–धीरे समाज द्वारा मान्यता प्राप्त कर लेती है। इसलिए इन्हें मान्यताएँ भी कहा जाता है। ऐसा भी कहा जाता है कि जो लोग अंधविश्वासी है, वे अलौकिक शक्तियों या भगवान द्वारा शापित या हानि होने के डर से आंख बंद कर इन पर विश्वास कर के अनुसरण करते है। अमरकांत जी ने अपने उपन्यास साहित्य में मुख्य रूप से ग्रामीणों में प्रचलित अंधविश्वासों व मान्यताओं का यथार्थ प्रस्तुत किया है। 'सुन्नर पांडे की पतोह'

उपन्यास में जुगुल तिवारी की इकलौती बहन लछना को साँप द्वारा काट लिया जाता है। लछना साँप को मारने से मना कर देती है। वह अपने अंतिम समय में घरवालों से कहती है कि–"अब हमारा पूजि गया। पंचैया को दूध लावा चढ़ाकर हमारी पूजा करना। आगे हम इस वंश के मरद स्त्री बच्चा, किसी को भी नहीं काटेंगे। हमारा नाम ले लेंगे लोग, किसी का कुछ नहीं बिगड़ेगा।"[210] इसके बाद सचमुच तिवारी परिवारों में किसी भी व्यक्ति को साँप ने नहीं काटा। इन परिवारों में यह मान्यता प्रचलित हो गई कि यदि कोई भी साँप देख लेता और भूल से उसके मुख से साँप निकल जाता, तो वे दोनों हाथ जोड़कर लछना फुआ, माफ करो कहते। ऐसा करने पर वह साँप चुपचाप वहाँ से चला जाता।

अंधविश्वास ने मानव जीवन को जन्म पूर्व से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक घेर रखा है। ऐसा ही एक अंधविश्वास बच्चे के जन्म से संबधित है। 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में पचकौडी तिवारी के यहां कोई संतान जीवित नहीं रह पाती। जब राजलक्ष्मी का जन्म हुआ तो उसका विशेष ध्यान रखा गया। अनेक प्रकार के टोने टोटकों के प्रक्रम किये गये। दादी "देवकाली ने इस बार फूँक–फूँक कर कदम रखे। सबसे पहले तो उसने नवजात शिशु का नाम 'कतवरिया' रख दिया, जैसे वह सुरसती की कोख से पैदा नहीं हुई बल्कि घूरे कतवार पर पड़ी मिली। इतने पर भी संतोष न होने पर उसने कतवरिया को दो रूपये में बुधिया कमकरिन के हाथ बेच दिया। . ... बुधिया ने कतवरिया को दिन भर रखा उसको खिलाया उसका गू–मूत किया, उसको बार–बार 'मेरी बछिया', 'मेरी बछिया' कहा। इस तरह बेटी को पराई बनाने में जो कसर रह गई थी, वह पूरी हुई।"[211] बच्चों की नजर से सम्बन्धित अंधविश्वास आधुनिक सभ्य समाज में भी देखे जा सकते हैं।

अमरकांत जी ने 'ग्रामसेविका' उपन्यास में अंधविश्वास के कईं पहलुओं पर प्रकाश डाला है। जैसे–शिक्षा संबंधी अंधविश्वास, रोग संबंधी अंधविश्वास, बच्चों के जन्म संबंधी अंधविश्वास भूतों संबंधी अंधविश्वास तथा माहमारी संबंधी अंधविश्वास इत्यादि सभी का ग्रामीण स्तर पर यथार्थ अंकन हुआ है। शिक्षा के संबंध में गाँव वालों का अपना–अपना विश्वास व तर्क है। गाँव की एक स्त्री कहती है–"मेरे लड़के की तो किस्मत ही में पढ़ना नहीं लिखा है बहिन जी .... इसके बाबू दो बार इसको रामगढ़ के स्कूल में बैठा आए और दोनों बार इसने चारपाई पकड़ ली। ढेलू पण्डित ने इसका हाथ देखकर कहा कि इसकी तकदीर में विद्या ही नहीं तो यह पढ़ेगा क्या खाक?"[212] इसी प्रकार सुमरिनी दाई के घर में पढ़ाई फलती ही नहीं। ..... उसने दमयंती के सामने अपने हाथ को करछुल की तरह घुमाते हुए कहा "कैसी बात करती हो, बहिन जी? पढ़ाई जाए चूल्हा में। मेरा लडका आवारा ही रहेगा। बाबा रे, उस साल लड़के को भेजा तो छह ही दिन बाद उसके चाचा को क्या हो गया कि शाम होते–होते ....। चलो–चलो बहुत देखे हैं तुम्हारे जैसे।"[213] इस प्रकार विशुनपुर गाँव में शिक्षा को लेकर कईं प्रकार के अंधविश्वास प्रचलित है।

बच्चों के जन्म को लेकर भी गांव में कईं अवधारणाए व्याप्त हैं। बच्चों को भूत–प्रेत, नजर तथा हाय से बचाने के लिए ग्रामीणवासी जादू–टोना, टोटके, तंत्र–मंत्र, गंडा, ताबीज इत्यादि पर विश्वास करते है। 'ग्रामसेविका' उपन्यास में जमुना ने एक बच्ची को जन्म दिया। जमुना की सास बच्ची को भूत–प्रेत व नजर से बचाने के लिए कईं उपक्रम करती है। "कोठरी के भीतर और दरवाजे पर बोरसी में आग जला दी गई। दरवाजे पर एक बंदर की खोपड़ी तथा जूते टांग दिए गए।"[214]

जिस कोठरी मे जमुना व उसकी बच्ची को रखा गया था। इसमें एक छोटी सी खिड़की थी जो कि बंद करवा दी गयी थी और दरवाजा भी हमेशा बंद रखा जाता। ऐसा करने से कोठरी में स्वच्छ हवा न आने से बच्ची की तबीयत खराब हो गई। जमुना की सास रधिया मिसिराइन को ले आती है, जो भूत–प्रेत, जादू–टोना इत्यादि की विशेषज्ञ है। "गाँव में कोई रोग–शोक होने पर देवी उसे निश्चित रूप से सपना देती कि इतवार–मंगलवार को क्या–क्या चढ़ावा चढ़ाना चाहिए। बरम, डीह, जादू–टोना, हवा–बतास, जिन्न, चुडैल आदि की दवा उनके पास रहती थी।"[215] मिसिराइन बच्ची की बीमारी का कारण गड़तुआ बाबा को बताती है, जो बच्चों को पकड़ लेता है। वह बच्ची के गले में काला ताग बाँध तथा साँप केंचुल का धुआं देने को कहकर चली जाती है। इन सबका जमुना की बच्ची पर कोई असर होते न देख दूसरे दिन झींगुर सोखा को बुलाया जाता है। जो भूत–प्रेतों को तंत्र–मंत्रों से भगा देता है। झींगुर सोखा ने बच्ची को देखकर कहा – "सहुआइन, सिरहाने सूअर की टट्टी की धुआं देव। मैंने उसको पकड़ लिया है, जाकर बाँध देता हूँ। इस बार बच्चू निकल नहीं सकते।"[216] इस प्रकार गांव में व्याप्त जादू–टोना, तंत्र–मंत्र इत्यादि अंधविश्वास के कारण गाँव वाले इलाज न करवाकर इनका सहारा लेते हैं, जिसका भयंकर परिणाम गांव के भोले–भाले लोगों को भुगतान पड़ता है। रधिया मिसिराइन जैसे लोग अपनी रोजी–रोटी के लिए गांव के भोले–भाले लोगों को अपना शिकार बनाते हैं। रधिया मिसिराइन, कनिया की माँ को कनिया की तरक्की तथा स्वास्थ्य का लालच देकर तथा ऊपरी हवा का भय बताकर, बेवकूफ बनाती है। वह कहती है "अरे बसंवारी वाली डोमिनिया है न, उसको मैंने आज इधर ही घूमते देखा है। सब ठीक कर दूंगी, वह बहुत तंग नहीं करती .... बस एक–डेढ़ रूपये के चढ़ावे से खुश हो जाती है।"[217] गांव वालों का मानना था कि बंसवारी में चुडैल रहती है, जो बच्चों को परेशान करती है।

अमरकांत जी ने 'ग्रामसेविका' उपन्यास में गांव में हैजा, महामारी तथा इससे संबंधित अंधविश्वास का बड़ा ही रोचक तथा यथार्थ वर्णन किया है। गाँव में बड़ी संख्या में चारों ओर मक्खियों का प्रकोप फैल जाता है। इस पर इन्सानों का कोई वश नहीं चलता। इस सबंध में गाँव वालों का मानना है कि–"मक्खी मैया काली मैया की बहिन है। रधिया मिसिराइन को मक्खी मैया ने सपना दिया है। मक्खी मैया को आँखे लाल–लाल कर तथा जीभ निकालकर दौड़ते हुए

मिसिराइन ने स्वयं देखा है। गाँव पर भारी विपत्ती आने वाली है। .... पापियों का नाश करने आई है मक्खी मैया।"[218]

दमयन्ती जो कि ग्रामसेविका है, इसकी सूचना बी.डी.ओ. साहब को देती है। एक दिन सरकारी डॉक्टर हैजे का टीका लगाने गाँव आते हैं, लेकिन टीके के संबंध में भी गांव वालों की धारणा विचित्र है। उनका मानना है कि "टीके से देवी नाराज हो जाएगी। कुछ यह सोचते थे कि इससे धर्म चौपट हो जाएगा।"[219] रधिया मिसिराइन गांव के लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए एक ढोंग रचती है। "एक दिन गड़तुआ बाबा के बगीचे में गांव भर की औरतें इकट्ठी हुई। रधिया मिसिराइन जमीन पर बैठ गई थी। उसके बाल की लटें आगे खुली थी। वे दोनों हाथों से जमीन पर थप–थप पीट रही थी, और सिर तेजी से हिला रही थी। मिसिराइन कह रही थी –"मै मक्खी मैया हूँ। गाँव का धरम–करम चौपट हो गया है। मैं सबका नाश कर दूँगी। .... रामदासी ने डरती आवाज में पूछा, दुहाई हो मैया की। का चढ़ावा चढ़ेगा मैया? .... मिसिराइन बोली, एक खसी, दो धोती, दो सेर का एक रोट .... ग्यारह जोड़ी पूडी, ग्यारह जोड़ा पुआ, एक सेर दशांग, आधा सेर लौंग, ग्यारह सेर सीधा।"[220] इस प्रकार मिसिराइन जैसे लोगों द्वारा गाँव के भोले–भाले लोगों को अंधविश्वास में लेकर उनसे बहुत सारे चढ़ावे के रूप में खाने–पीने की वस्तुएं तथा पैसा हड़प लिया जाता। 'ग्रामसेविका' उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने गांव में व्याप्त अंधविश्वास का बड़ा ही रोचक तथा यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है।

आधुनिक युग में भी गांव हो या शहर लोग डॉक्टर के पास जाने से कतराते है। अपनी बीमारी का इलाज वे झाड़–फूंक तथा जादू–टोने से करवाने में विश्वास करते हैं। उनका मानना है कि डॉक्टर अधिक फीस लेता है, जबकि झाड़–फूंक करने वाले बाबा कुछ ही पैसों में ठीक कर देता है।

'बिदा की रात' उपन्यास में सुल्ताना बेगम के यहां खाना पकाने एक औरत रहमानी आया करती थी। एक दिन उसकी आँख में तकलीफ हो जाती है। सुल्ताना उसे डॉक्टर के यहां जाने की सलाह देती है। इस पर रहमानी कहती है–"नूर मियाँ की अम्मा तो कह रही थी, जंगली मियाँ के यहां चली जाओ। आँख की कोई भी बीमारी हो रोहा, फुल्ली, समलबाई, सबकी दवा है उनके पास। अगर हवा–बयार की वजह से तकलीफ है तो झाड़ फूंक भी कर देते हैं। बस एक रूपया लेते हैं, इससे अधिक नहीं सोचती हूँ वहीं चली जाएंगे।"[221] इस प्रकार रहमानी की बातों से स्पष्ट है कि अंधविश्वास हर मजहब हर किस्म के लोगों खासतौर पर कम–पढ़े लिखे तथा गरीब लोगों में ज्यादा प्रचलित है।

अंधविश्वास केवल गांवों में ही नहीं, अपितु कस्बों व महानगरों में भी कहीं–कहीं पुरानी पीढ़ी के लोगों में देखा जा सकता है। जैसे–व्रत उपवास करना, सावन में दाढ़ी तथा सर

के बाल न कटवाना, मंगलवार अथवा गुरूवार को दाढ़ी–मूंछे या नाखून नहीं काटना, सप्ताह के किसी एक निश्चित दिन माँस का सेवन न करना, भविष्य में किसी अनिष्ट की चितां से व्रत उपवास या दान–पुण्य करना, स्त्रियों द्वारा संतान के लिए संतान साते अथवा पति की लम्बी आयु के लिए करवा चौथ का व्रत रखना इत्यादि। सभी प्रवृतियां कहीं–न–कहीं आधुनिक युग में पढ़े–लिखे लोगों में दिखाई देती है। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में नीलेश अपने दाढ़ी–मूछों के नरम–नरम बाल कैंची से तराश देता है। इस पर नीलेश की दादी चिंतित होते हुए कहती है – "हाय ऐ नीलेश बाबू यह क्या किया। बाप के जिंदा रहते क्या दाढ़ी–मूंछ पर छूरा लगाया जाता है। तुमने किसी से पूछा नहीं। कितना खराब है यह।"[222] नीलेश के यहां पिता के रहते दाढ़ी–मूंछ बनवाना अपशकुन समझा जाता है। इसी प्रकार नीलेश के लिए लड़की देखने जाते वक्त नीलेश की माँ आनंदी भीमल–बो को जब बिदा करती हैं, तो सब काम शुभ हो, इसके लिए वह – "दही–मछली लेती आना।"[223] शब्दों का प्रयोग करती है। हालांकि उनके घर में मछली तो बनती नहीं थी, लेकिन आनंदी के मायके में प्रस्थान के समय शुभ कामना प्रकट करने के लिए ऐसा कहा जाता था।

'सूखापत्ता' उपन्यास में कृष्णकुमार व उसके मित्रों के बीच हुए अंधविश्वास भरे वार्तालाप के रोचक किस्सों का उपन्यासकार ने बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण किया है – "चुड़ैले रात को मैले का उबटन लगाती है, भागते बवंडर में थूकने से राक्षस पैदा हो जाते है और एक खास मलहम लगा लेने से पानी पर चला जा सकता है।"[224] इस प्रकार उपन्यासकार ने बालसुलभ चेष्टाओं तथा वार्तालाप व किस्सों का यथार्थ अंकन किया है कि किस प्रकार अंधविश्वास हमें आश्चर्य चकित तथा भयभीत करते है।

वस्तुतः उपन्यासकार ने समाज के उस यथार्थ को प्रस्तुत किया है, जहां निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक के लोग दैवीय तथा चमत्कारों की शक्ति में विश्वास करते हैं। वे न केवल विश्वास ही करते हैं, बल्कि उन नुस्खों को अपनाकर उसी प्रकार कार्य भी करते हैं। लोग अंधविश्वासों में पढ़कर अपने जीवन को खतरों में डालते है तथा जीवन भर इस विकृति का शिकार होते रहते हैं। अंधविश्वास को दूर करने के लिए लोगों में शिक्षा व जागृति पैदा करना अत्यन्त आवश्यक है।

जाति–पाति तथा छूआ–छूत

प्राचीन काल से ही भारत में जाति–पाति व्यवस्था तथा छूआ–छूत का प्राबल्य रहा है। "वर्ण व्यवस्था हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में व्यवस्था और संगठन बनाए रखने का मूल आधार रही है। आर्यों का सामाजिक–जीवन वर्ण व्यवस्था पर ही आधारित था। वर्ण व्यवस्था के अनुसार समाज को चार वर्णों यथा – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में विभाजित किया गया था।

वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक वर्ण का कार्य निश्चित था और जिसका पालन करना वर्ण वालों के लिए अनिवार्य था, किंतु अब वर्ण के स्थान पर जाति व्यवस्था का विशेष जोर है।"[225]

वर्णव्यवस्था के कारण प्राचीन काल में अत्यधिक विकट स्थितियाँ थी। अस्पृश्यों को सार्वजनिक जैसे–मंदिर, सभागार, कुआँ आदि स्थानों पर प्रवेश वर्जित था। जिस वर्ण व्यवस्था का निर्माण कार्य को सुचारू रूप से चलायमान रखने हेतु किया गया था। उसने धीरे–धीरे अपना विकृत रूप धार कर लिया। एक समय ऐसा भी था कि अस्पृश्य व्यक्ति को थूकने के लिए हाथ में पात्र तथा रास्ते पर चलने से उन्हें अपने पैरों के निशान मिटाने के लिए पीछे झाडू बाँध कर चलना पड़ता था। आज अस्पृश्यता का दंश शिक्षा के प्रचार–प्रसार तथा लोगों में अपने अधिकारों के प्रति आई जागरूकता के कारण कुछ कम तो हुआ है, किंतु अभी भी हमारे समाज में जाति–पाति के बंधन ढीले नहीं हो पाए है।

अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में कई जगह जातिगत भेदभाव का यथार्थ प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यास "पराई डाल का पंछी" में रेखा की माँ जाति–पाती में भेद रखती है। मौहल्ले के नल से नीची जाति के लोगों द्वारा पानी भरने पर वह वहां से पानी भरना पसंद नहीं करती। वह अहिल्या से कहती है –"अब तो नीची जाति के लोगों का जमाना आ गया है। वे हमेशा नल पर जमे रहते है और कुछ कहो तो गाली–गलौच करने लगते है।"[226]

आधुनिक युग में शिक्षा के कारण जातिगत विभिन्नता के होते हुए भी इसका प्रभाव कम हुआ है। आज विभिन्न जाति के लोग साथ में शिक्षा ग्रहण करते हैं, उठते–बैठते है, खाते–पीते हैं, किंतु जाति व्यवस्था हमारे समाज में इतने गहरी जड़े जमाये हुए है, कि जहाँ भी शादी–ब्याह जैसे संबंध स्थापित करने की बात आती है, तो हम फिर जातिवादी हो जाते हैं।

'बीच की दीवार' उपन्यास में मोहन और शंकर आपस में दोस्त है, लेकिन जब मोहन शंकर को उसकी बहन दीप्ति से अपने प्रेम के विषय में बताता है, तो शंकर पर इसकी उल्टी ही प्रतिक्रिया होती है। "इस प्रस्ताव से जैसे वह आकाश से जमीन पर गिर गया। मोहन का यह प्रस्ताव उसको अनुचित लगा और वह क्रोध में भी आ गया। उसने मोहन को फटकारा भी। ...... इसके बाद दोनों परिवारों में मनमुटाव सा चलने लगा। शंकर ने मोहन से बोलना छोड़ दिया।"[227]

इसी प्रकार 'ग्रामसेविका' उपन्यास में अतुल दमयन्ती से प्रेम करता है, किंतु जातिगत विभिन्नता तथा दान–दहेज के लालच में वह अन्यत्र शादी कर लेता है। अतुल दमयन्ती को एक पत्र लिखता है, जिसमें वह जातिगत विभिन्नता के चलते दमयंती से विवाह न कर सकने में अपनी असमर्थता जताता है। दमयंती हालातों से समझौता कर लेती है। "अतुल दूसरी जाति

का लड़का था। फिर उसके घर की आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी। उससे शादी कैसे सम्भव थी। उसने वह पत्र उसी समय जला दिया था।"[228]

अमरकांत ने उक्त उपन्यास में स्थान–स्थान पर जातिगत विषय को उठाया है। जब दमयंती विशुनपुर गांव में ग्रामसेविका बनकर आती है, तो गांव की औरतें उसकी जाति को संदेह की दृष्टि से देखती है। वे कहती है–"ग्रामसेविका की जाति का कोई ठिकाना नहीं और वह लोगों का धर्म–चौपट करने आई है। हिन्दू की जवान लड़की क्या छूटी–सी इसी तरह घूम सकती है।"[229] दमयन्ती ने बच्चों को स्कूल में पढ़ाना शुरू किया, तो यहां भी उसे छूआ–छूत व जातिगत भेद–भाव का सामना करना पड़ा। "अहीर औरतें अपने को पासी औरतों से श्रेष्ठ समझती थी और उनके साथ मिलकर वे नहीं बैठती थी। दमयन्ती ने कईं बार समझाया कि इस तरह छूआ–छूत रखना ठीक नहीं। आदमी–आदमी से भेद नहीं होता। .... आपके कहने से कोई धर्म और जाति छोड़ देगा बहिन जी .... अहिर की कोई औरत कहती है।"[230]

जातिगत विभन्नता का सबसे ज्यादा लाभ राजनेता उठाते हैं। जाति के नाम पर वे वोट इकट्ठे करने के लिए साम्प्रदायिक दंगे करवाने से भी बाज नहीं आते। 'ग्राम सेविका' उपन्यास में गांव के प्रधान जी चुनाव आते ही गांव के सीधे–सादे लोगों को बेवकूफ बनाने तथा अपनी ओर मिलाने के लिए उन्हें कईं तरह के लालच देते है साथ ही वह जातिवाद का भी सहारा लेते हैं।

"पैसे के बल पर उसने कईं व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर लिया था। इसके अलावा जातिवाद की भावनाओं को भी उसने उभाड़ा। इस तरह ब्राह्मण भी उसके पक्ष में हो गए। प्रधान जी हरचरण के पर कतर देना चाहता था .... हरचरण है तो आखिर अहीर जाति का? अहीर में बुद्धि ही कितनी होती है?"[231]

इस प्रकार प्रधान जी जैसे लोग अथवा राजनेता जातिवाद के नाम पर अपना उल्लू सीधा करते हैं। ऊँच–नीच का यह भाव शिक्षित व सम्पन्न वर्गों में भी देखा जाता है। 'आकाश पक्षी' उपन्यास में हेमा सामन्ती परिवार की बेटी है। उसके यहां नीची जाति के लोगों को अपमान की दृष्टि से देखा जाता है। उनसे बात–चीत करना या उनके समान ही घर के छोटे मोटे कार्यों को स्वयं हाथ से करने को वर्जित मानते है। जातिगत भेद–भाव के कारण हेमा के माता–पिता अपने बच्चों को अन्य बच्चों के साथ खेलने से भी मना कर देते है, किंतु हेमा ऊँच–नीच नहीं मानती। उसे इन बातों से घृणा होती है। रवि और हेमा एक–दूसरे से प्रेम करते है और शादी करना चाहते हैं, लेकिन जब रवि के पिता, इंजीनियर साहब रवि की शादी का प्रस्ताव हेमा के लिए ले जाते हैं, तो बड़े सरकार हेमा के पिता भड़क उठते हैं। "क्या कहा आपने? रवि से मैं हेमवती की शादी कर दूँ? कैसे हिम्मत हुई आपकी ऐसी बात करने की? क्या

हम लोग इतने गिर गए कि अपनी जाति को छोड़कर जिस–तिस से शादी करते फिरे, क्या हैसियत है आपकी? माना कि आप इंजीनियर हो गए हैं, पर कौआ–कौआ रहेगा और कोयल–कोयल। हम है सूर्यवंशी। सैकड़ों–हजारों वर्षों से हमारे पुरखे राजपाट करते आए हैं, हम शादी क्या अपने से नीची जाति में कर सकते हैं?"[232] स्पष्ट है कि मनुष्य अपनी झूठी शान–शौकत व इज्जत के रहते जाति–पाति के बंधनों को नहीं तोड़ पाता। इसके लिए उसे चाहे संतान के प्रेम की बलि ही क्यों न चढ़ानी पड़े।

आज भी समाज में अधिकतर लोग अपनी ही जाति में विवाह करना पसंद करते हैं, क्योंकि शिक्षित व संभ्रात परिवारों में भी जाति–पाति के बंधन देखे जाते हैं। 'सूखापत्ता' उपन्यास का नायक कृष्णकुमार अपने पिताजी को उर्मिला से अपनी शादी के लिए मनाते हुए कई प्रकार की दलीलें देता है कि पुराने जमाने में भी स्वयंवर की प्रथा थी और स्त्री–पुरूष अपनी पसंद से शादियां कर लेते थे। तब कृष्ण कुमार के पिता उसे अपनी ही जाति में स्वयंवर रचाने के लिए कहते हैं। कृष्ण कुमार जातिगत भेद–भाव का सत्य व कटु यथार्थ अपने पिता को बताते हुए कहता है – "जाति को मैं नहीं मानता, जाति एक सामाजिक ढकोसला है, अपने झूठे अहंकर का कमजोर किला। कुछ साधन–सम्पन्न लोगों ने कमजोरों को दबाना चाहा और इसके लिए उनकी सीमाएँ निश्चित कर दी। इस संसार में दो ही जातियाँ है, एक अच्छे लोगों की और दूसरी बुरे लोगों की, एक साधन–सम्पन्न लोगों की, और दूसरी साधन विहीन लोगों की। क्या ब्राह्मण जाति में एक से एक कमीने बदमाश, व्यभिचारी और लुच्चे नहीं भरे हैं? क्या और दूसरी जातियों में अच्छे लोग नहीं हैं? क्या यह सच नहीं है कि ऊँची कहीं जाने वाली जातियों के लोग छिपकर कुकर्म करते हैं और फिर भी अपने को श्रेष्ठ समझते है?"[233] तमाम दलीलों के बावजूद भी कृष्णकुमार का विवाह जातिगत विभिन्नता के कारण उर्मिला से नहीं हो पाता।

वस्तुतः जब तक मनुष्य को यह पता न चले की अन्य व्यक्ति निम्न जाति का है तब तक वह उसके हाथ से सब कुछ खा–पी लेता है, परन्तु वह जाति से चमार या भंगी है इसका पता चलते ही वह उसके द्वारा लाई गई खाने–पीने की चीजों को भी हिकारत तथा धृणा की दृष्टि से देखने लगता है। 'इन्ही हथियारों से' उपन्यास में गोपालराम निम्न वर्ण से संबंधित है। वह सवर्ण जातियों पर कटाक्ष करते हुए कहता है –"मैं ... हर पार्टी के लोगों के बीच आता–जाता हूँ। बड़ी–बड़ी ऊँची बातें करने वालों के मुँह लटक जाते है, जब मेरे हाथ से छुआ पानी पीने की कोई मजबूरी आ जाती है। साथ में खाने–पीने के मामलों में तो और भी विकट स्थिति होती है। .... यार बचपन में और स्कूल में भी ये बातें नहीं आती थी, लेकिन बढती उम्र और बढ़ते ज्ञान के साथ यह भेद–भाव क्यों बढ़ता जाता है। जितना ज्ञानी उतना ही ढ़ोंगी, स्वार्थी और संकीर्ण। हर जगह है यह चीज कम्यूनिस्ट पार्टी में कुछ कम है। राहुल जी कहते है, कि कम्यूनिस्टों को सभी जातियों और समुदाय के गरीबों से मेलजोल बढ़ाना चाहिए, साथ में बैठकर

खाना चाहिए, सबके त्यौहरों में शामिल होना चाहिए, जातियों और सम्प्रदाय के लोगों के बीच वैवाहिक संबंधों को बढ़ावा देना चाहिए, धार्मिक और सामजिक अछूतपन को दूर करने के लिए आंदोलन करना चाहिए। कितने कम्यूनिस्ट है ऐसे?"[234]

इस प्रकार गोपालराम के माध्यम से उपन्यासकार ने वर्ण व्यवस्था के जटिल व कटु यथार्थ का चित्रण किया है। यह एक ऐसी संस्कृति है, जिसकी जड़ें गहरे तक पैठी हुई है और शिक्षित वर्ग चाहकर भी इससे अछूता नहीं रह सकता। आधुनिक युग में भी वर्ण व्यवस्था का यह क्रम समाज व संस्कृति के लिए अभिशाप बना हुआ है। इससे उभरने के लिए निरंतर प्रयास व निश्चित निर्णय लेने की महती आवश्यकता है।

अमरकांत जी ने अपने उपन्यासों में समाज के धुंधले व कटु यथार्थ के साथ–साथ उजले व सबल पक्षों को भी दर्शाया है। जो निम्न प्रकार है –

रीति–रिवाज

रीति रिवाज वे सामाजिक परम्पराएँ या संस्कार है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी समाज में चले आ रहे है। आज की युवा पीढ़ी कुछ प्राचीन परम्पराओं तथा रीति रिवाजों को स्वीकार नहीं कर, आधुनिक युग के अनुसार चलना चाहती है। इन रीति रिवाजों से हमें हमारी संस्कृति के विषय में जानकारी होती है।

यह रीति–रिवाज हमारे जीवन को रंगों के समान चित्रात्मकता प्रदान करते है। अमरकांत जी के उपन्यास साहित्य में जगह–जगह रीति–रिवाजों का यथार्थ व स्वाभाविक अंकन हुआ है।

हमारी संस्कृति में शादी ब्याह, गौना, बच्चे का जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत तक के जितने भी रीति–रिवाज है, सभी रीति–रिवाजों के निर्वहन हेतु गीत प्रचलित है। क्षेत्र विशेष के अनुसार इन गीतों की अपनी महत्ता है तथा इनके बिना ये रीति–रिवाज व रस्में पूरी ही नहीं होती। 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में राजलक्ष्मी की डोली जब ससुराल पहुंचती है "तो औरतों ने दूल्हा–दुल्हिन का परछोना करते हुए गीत गाया था –

> "हँसत खेलत मोरे बाबू गइल, मन धूमिल काहें अइलें,
> मन बेदिल काहें अइले, सासु छिनकरिया न जोग कइले,
> मन धूमिल काहे अइलें।"[235]

'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में झुल्लन पांडे के विवाह के समय की जाने वाली एक रस्म, गुरूहथी का वर्णन आया है। जिसमें दुल्हे का बड़ा भाई दुल्हिन के लिए लाई गई

सामग्रियाँ भेंट करता है। "वह हाथी पर चढ़ा, ऊँट पर चढ़ा, गुरूहथी (बड़े भाई की एक रस्म, जब वह दुल्हिन के गहने चढ़ाता है) की।"[236]

'बीच की दीवार' उपन्यास मे सुधा के विवाह के समय दुल्हा–दुल्हन को कोहबर में ले जाने की एक रस्म का वर्णन हुआ है। कोहबर में जाते समय दूल्हे के साथ हँसी मजाक की परम्परा है। इस परम्परा के दौरान दूल्हे की सालियाँ व अन्य स्त्रियाँ उसके साथ हँसी–मजाक करती है। सुधा की शादी के समय जब दूल्हा–दुल्हिन को कोहबर में ले जाया गया तो सालियों व स्त्रियों ने मजाक के लहजे से कहा – "गजल गाइए जीजाजी। तभी अन्दर जा पाइएगा .... मुझे गजल तो नहीं आती .... कुछ भी गा दीजिए। दो लाइन ही सही इसके बिना छुटकारा नहीं होगा। अच्छा तो सुनिए .... हे प्रभु आनन्ददाता ज्ञान इनको दीजिए।"[237] इस प्रकार विवाह इत्यादि की रस्में समाज के बंधन के रिश्तों में मीठास घोलने का कार्य भी करती है।

'ग्रामसेविका' उपन्यास में जंगी की बेटी कनिया का विवाह बालपन में ही हो जाता है। उनके गाँव में गौना की रस्म होने के बाद ही लड़की को ससुराल भेजा जाता है। जंगी, दमयंन्ती से कहता है – "लड़की उसकी एकदम बढ़िया है। शादी तो हो गई है, पर लड़का अभी कुछ छोटा है। ...... जो है सो एक दो साल बाद गौना कर देना है।"[238]

इस प्रकार अमरकांत ने अपने आस–पास के समाज व संस्कृति का अनुभूत यथार्थ प्रस्तुत किया है, जो हमारे जीवन में आनंद उत्पन्न करता है और हमें हमारी संस्कृति से जुड़ाव का अवसर भी प्रदान करता है।

उत्सव व मेले

भारतीय संस्कृति में उत्सव व मेलों का अपना ही महत्त्व है। ये हमाारे जीवन में खुशी व रौनक लाते हैं। अमरकांत जी के उपन्यास साहित्य में उत्सव व मेलों का वर्णन प्रसंगानुकूल हुआ है। इन सबका वर्णन करने में वे इतने सिद्वहस्त है कि यह हमारे नेत्रों के सामने जीवंत व साकार हो उठते हैं। 'बीच की दीवार' उपन्यास में सुधा के विवाह का उत्सव, उसकी साज–सजावट व बारात के स्वागत का वर्णन अत्यन्त सहज रूप में यथार्थ धरातल पर हुआ है। "मकान के सामने बड़ा तम्बु तना था, जिनमें कतारों में अनगिनत मेजे और कुर्सियां सजी थी। मकान झंडियों, झालरों और बन्दनवारों से सजा था, जिसके बीचों–बीच ऊपर की और लाल कपड़े पर सुनहरे अक्षरों में 'स्वागत' लिखा था।"[239]

इसी प्रकार 'आकाश पक्षी' उपन्यास में मेलें में लगने वाली नुमाइशों का यथार्थ व स्वाभाविक वर्णन हुआ है। रवि, हेमा और उसके परिवार के अन्य बच्चों को नुमाइश दिखाने ले जाता है। जहां भारत सरकार द्वारा प्रगतिशील देश का नक्शा व योजनाओं के मॉडल प्रदर्शिनी के माध्यम से दिखाए जाते है। हेमा नुमाइश के विषय में कहती है–"हमने क्या–क्या नहीं देखा था।

भारत सरकार तथा अन्य राज्य सरकारों के जो स्टॉल थे, उनमें कुछ आधुनिक भारत का नक्शा देखने को मिला। ऐसा भारत जो प्रगति के मार्ग पर मजबूत कदमों से चलने जा रहा था। न मालूम कितनी बड़ी–बड़ी योजनाऐं लागू की जा रही थी, और कुछ आगे लागू कर दी जाने वाली थी, जिनकी सफलता पर देश का रूप ही बदल जाएगा। ये सारी योजनाएं भारत की गरीबी को दूर करने के लिए कार्यान्वित की जा रही थी। हमने खेल–तमाशे भी देखे। सर्कस बहुत ही अच्छा था। मौत का कुआँ भी।"[240]

इस प्रकार उत्सव व मेले हमारे मनोरंजन के साथ–साथ हमारा ज्ञानवर्धन भी करते है। अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में उत्सव व मेलों का वर्णन कर अपने आस–पास की संस्कृति का एक अभिन्न रूप प्रस्तुत किया है, जिसका भारतीय संस्कृति में अपना अलग ही महत्त्व है।

खान–पान

किसी भी देश, राज्य अथवा जगह की संस्कृति भिन्न–भिन्न होने से, वहां का रहन–सहन तथा खान–पान भी क्षेत्र अथवा स्थान–विशेष के अनुरूप ही होता है। अमरकांत के उपन्यास साहित्य की विशेषता है कि वे स्थान विशेष की संस्कृति से पाठक को रूबरू कराते चलते हैं। वे पाठक वर्ग को विभिन्न प्रकार के व्यंजनों के स्वाद से सराबोर करते हुए उसकी विधि व विशेषता भी प्रदर्शित करते हैं। इनके औपन्यासिक साहित्य में कई प्रकार की खाद्य सामग्रियों का यथास्थान वर्णन हुआ है।

'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में गांव के खान–पान तथा उसके स्वाद व महत्ता के विषय में बताया गया है कि "जिसने वहां का दूध, दही, घी, मट्ठा, मकई की रोटी, दलिया, चिउड़ा, लावा–लाई, चना–चबैना, आम–अमरूद, खरबूजा–तरबूज का निरंतर सेवन किया है उसका कहना ही क्या।"[241] वास्तव में गांव का खान–पान अत्यन्त शुद्ध, स्वादिष्ट व पौष्टिक होता है।

'पराई डाल का पंछी' उपन्यास में भी अहिल्या को शहर में रहते हुए गांव के खान–पान की याद आती है। वह रेखा की मां से कहती है कि गांव में "दूध, घी ....गन्ना तैयार हो गया है, उसका रस पीने को और महिया खाने को मिलेगी। मटर के दाने भी गोस गये है, उसका होरहा मिलेगा ...... वह कभी सत्तू खाती थी, कभी रस पीती थी, कभी दारा–दूध खाती और कभी चिउड़ा दही।"[242]

'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में देमितलाल तेलहा पराठा, तरकारी और मकुनी–चोखा की दुकान खोलता है। सुन्नर पांडे की पतोह देमित लाल को मकुनी–चोखा के विषय में बताते हुए कहती है – "मकुनी बाटी की तरह होती है, पर वह गोल व छोटी होती है,

और उसमें सत्तू का भरता भरा रहता है। सारा कमाल भरते और मकुनी की सेंकई में होता है, साथ में आलू अथवा आलू–बैंगन का चोखा चलता है।"[243]

'बिदा की रात' उपन्यास में मुस्लिम संस्कृति के खान–पान का वर्णन हुआ है। जैसे – "बादाम, पिस्ता और चिरौंजी डालकर पोस्ता का हलवा .... गुलाब शकरी का शर्बत।"[244]

"गोशत, कीमा, कबाब, कोफ्ता, बिरियानी, मछली–करी, और उसके कटलेट, चिकेन, जर्दापुलाव, हलवा, खीर, बर्फी, सेवई, फिरनी, मिठाई वगैरह।"[245] कईं प्रकार के अनाज के भुजा भड भूजे .... अरवा चावल और सेल्हा चावल का अलग–अलग चने का, मकई का, मटर का, यहां तक कि गेहूँ का भुजा भी।"[246]

'इन्ही हथियारों से' उपन्यास में बलिया क्षेत्र के घरों में पकने वाली खाद्य सामग्रियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस उपन्यास में नीलेश के पविार में बनने वाले विभिन्न प्रकार के व्यजनों का बहुतायत में उल्लेख हुआ है। इस संबंध में विश्वनाथ त्रिपाठी कहते है – "अमरकांत बलिया को इतना अधिक जानते है यह देखकर आश्चर्य होता है। .... बलिया का शायद ही कोई व्यंजन मिठाई, सब्जी, फल–फूल है जो इस उपन्यास में न आया हो।"[247] नीलेश के घर नाश्ते में बनने वाली साम्रगियों जैसे – "पूड़ी–सब्जी .... कभी–कभी बड़े कटोरे में गर्म गाय के दूध में भाड़ में भूना चिउड़ा और देशी शक्कर डालकर"[248] प्रयोग किया जाता था।

नीलेश एक दिन अपने मित्र गोवर्धन को खाने पर आमंत्रित करता है, जहां कई प्रकार की सामग्रियां उसके सामने रख दी जाती है – "अलग–अलग कटोरियों में आलू–पराठा और चने की रसेदार सब्जी और दो छिछली तशतरियों में खडेरा (बेसन की बर्फीनुमा तली सब्जी), पापड, तिलौडी, चटनी, हरी मिर्च और कटी प्याज तथा नींबू। गमकौआ चावल के दो कड़े, लघु स्तुपों पर दो–दो रोटियां ....।"[249]

उपन्यास में नीलेश के भाई वीरेश के पंसद के खाने का भी वर्णन हुआ है।"उसे सूखी चीजें बेहद पसंद आती। रसगुल्ला, जलेबी, इमरती, मगद का लडडू, ढूँढा–ढूँढी, तीसी का लड्डू, तीखर का लड्डू, सूखी पापड़ी, मैथी का लडडू, भुजा मकई का परमल .....रूखा सूखा ठेकुआं .... सेवड़ (नमकपारे) सूखा सेव, बेसन का और सादी सूखी मूंगदाल, मोठ भी उसकी प्रिय खुराक थी।"[250] नीलेश के परिवार में आर्थिक तंगी के समय जौ और चने से बनने वाली खाद्य सामग्रियों का वर्णन बड़ी कुशलता के साथ हुआ है। "जौ की दो बड़ी पतली रोटियाँ, चने की दाल, चने की पतले रसे की सब्जी .... नाश्ते में बेसन का पपरा (चीला) ... तेल और गुड़ की मदद से हलवा भी बना।"[251] चने की घुघनी कभी तलके और कभी रसा में चने (बेसन) की कभी पकौड़ी, कभी बजका, कभी खडेरा। ...... खेसिया ....।"[252]

इसी उपन्यास में सदाशयव्रत द्वारा होटल में बनाये व्यंजनों का भी वर्णन हुआ है। "जब पहले दिन खाना बनाकर घरवालों और पार्टी कार्यकर्ताओं को भी खिलाया तो सभी उनको आश्चर्य से देखते रह गए। कच्चा ही भोजन बना था दाल,भात रसेदार सब्जी, दही–बडा, कढ़ी–बड़ी, पालक का रायता और तिलौडी।"[253] अमरकांत जी ने बलिया क्षेत्र के खान–पान का विस्तार से वर्णन किया है, जिससे वहां की संस्कृति की समरसता का अहसास होता है।

वेशभूषा

मनुष्य की भौतिक उपस्थिति के अन्य पहलुओं की तरह वेशभूषा का भी सांस्कृतिक महत्त्व है। ऐसा माना जाता है कि जो व्यक्ति जिस तरह के वस्त्र धारण करता है वह उसी प्रकार की संस्कृति को इंगित करता है। वेशभूषा, व्यक्ति की अपनी संस्कृति के अनुसार पहनावे की विशिष्ट शैली है, जो समाज में उसे एक महत्त्वपूर्ण दर्जा दिलाती है। वेशभूषा मानव के सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करती है। यह फैशन के साथ–साथ युग–विशेष को भी दर्शाती है। यह व्यक्ति को सुन्दर बनाने के साथ उसके व्यक्तित्व में निखार लाने का भी कार्य करती है। भारतीय लोग प्रारम्भ से ही पहनावे के प्रति सजग रहे हैं।

भारतीय परिधान में वस्त्रों के साथ–साथ आभूषण इत्यादि का भी विशेष महत्त्व है। 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में महिलाओं के आभूषणों का वर्णन हुआ है। "उसके पैरों में 'कड़ा–छड़ा', हाथों में चूड़ियां, नाक में छूँछी, कान में चाँदी का कनफूल और गले में चाँदी की एक मोटी हँसली थी।"[254]

आधुनिकता व फैशनपरस्ती के दौर में आज आधुनिक संस्कृति के अनुसार आचरण करना अनिवार्य हो गया है। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में नम्रता जब से लखनऊ से आयी है उसने साड़ी छोड़कर सलवार–कमीज पहनना शुरू कर दिया था, इसी तरह जब नम्रता कॉलेज में अध्ययन कर रही होती है। वहां नीलेश की ओर से उदासीनता झेलने के पश्चात् उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं। "एक तो उसने खद्दर का परित्याग कर दिया था। बदले में रेशम की मँहगी, आकर्षक डिजाइनदार साड़ी, ब्लाउज, कानों में सुंदर टॉप्स, नाक में नगवाली कील तथा हाथों में दो–दो सोने की चूड़ियों के बीच रंगीन दिलकश काँच की चूँडिया।"[255]

भारतीय वेशभूषा को राजनीतिक व सामाजिक घटक भी प्रभावित करते है। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में नीलेश अपने विद्यार्थी जीवन में खादी का कुर्ता व धोती पहना करता था, लेकिन अनिरूद्धदास के सम्पर्क मे आते ही वह राजनीतिक परिवेश के अनुसार ही कपड़े धारण करने लगता है। नीलेश की बदली हुई वेशभूषा के विषय में वीरेश नम्रता को बताता है "उनकी पोशाक वगैरह एकदम बदल गई है। चूडीदार पैजामा और शेवावनी में देखा था उन्हें। खदद्र है लेकिन महीन और खूब प्रेस किया हुआ। चमाचम जूते और बाल खूब सुंदर कटे।"[256]

इसी प्रकार आधुनिकता के दौर में, 'आकाश पक्षी' की हेमा जब स्कूल में साड़ी पहनकर जाती है, तो वहां सभी बच्चे उसे 'माताजी' कहकर चिढ़ाते है। वह माँ से सलवार कमीज पहनने की जिद करती है।

'लहरें' उपन्यास का नायक श्यामाप्रसाद जब यूनिवर्सिटी में गया तो वह सुन्दर और आकर्षक युवक के रूप में जाना जाने लगा, क्योंकि "वह खूब अच्छे ढंग से प्रेस की हुई, नये फैशन की पैंट–कमीज और काले चमचमाते जूते पहन यूनिवर्सिटी कैंपस में चलता जाता।"[257]

यूं तो सजना संवरना सभी को पसंद होता है, लेकिन यह प्रवृत्ति स्त्रियों में ज्यादा पायी जाती है। खासतौर पर तब, जबकि वह नवयुवती हो। 'बीच की दीवार' उपन्यास की दीप्ति को सजना संवरना बहुत पंसद है और अशोक भी आधुनिक ढंग से कपड़े पहनना पसंद करता है। एक दिन वे पिकनिक के लिए निकलते है। इस अवसर पर "दीप्ति भी खूब सजी–संवरी थी। वह एक चूड़ीदार पायजामा और चटक लाल रंग का स्वेटर पहने थी। आँखों में काजल की पतली रेखाएँ, अशोक गैबर्डीन का एक नया सूट पहने था और उसके कपड़ो से एक खुशबू निकलकर चारों ओर उड़ रही थी। उनमें सबसे सादी पोशाक मोहन की थी, वह एक मामूली कपड़े का पायजामा और कुर्ता पहने हुए था। ऊपर से काली सदरी।"[258]

'कंटीली राह के फूल' की मधु सदैव सजधज कर रहती है। उसे घूमना–फिरना खरीददारी करना, रेस्तरां में खाना खाना व सिनेमा देखना बेहद पसंद है। वह अनूप से मार्केटिंग करने उसके साथ चलने को कहती है। इस अवसर पर वह खूब सजती–संवरती है। "उसके शरीर पर बेशकीमती साड़ी और ब्लाउज था। ऊपर से चेस्टर। हाथ में कलाई घड़ी और सोने की चूडियाँ। कानों में बालियाँ झूम रही थी। मुँह में पाउडर लगा था और होठों पर लिपस्टिक।"[259]

अमरकांत जी के उपन्यास साहित्य में समाज के बदलते परिवेश के अनुसार परिधानों का प्रमुखता से वर्णन हुआ है। आधुनिकता व फैशनपरस्ती के दौर में शिक्षित समाज में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावानुसार वेश–भूषा के प्रति संचेतना दिखाई देती है।

इस प्रकार उपन्यासकार ने जहां एक ओर संस्कृति के उजले पक्षों यथा – रीति–रिवाजों, उत्सव, मेले, खान–पान, वेश–भूषा इत्यादि का अनुभवगत वर्णन कर जहां हमें हमारी संस्कृति के मनमोहक दर्शन कराये है, वहीं दूसरी ओर धर्म व संस्कृति के नाम पर हमारी धार्मिक आस्था से खिलवाड़ करने वाले पक्षों यथा–अंधविश्वास, रूढ़ियों, जाति–पाति तथा छूआ–छूत का वीभत्स व धृणित यथार्थ प्रस्तुत कर उक्त सांस्कृतिक विकृतियों को समाज के समक्ष लाने का प्रयास किया है।

निष्कर्षतः अमरकांत के उपन्यास साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक यथार्थ के उजले व धूमिल पक्ष परिलक्षित होते है। उनकी लेखनी से प्रसूत सामाजिक

अस्मिता के व्यष्टि और समष्टि तत्त्व समायोजित हो, सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करते है। उनका साहित्य आदर्श और खोखली मर्यादाओं के आवरण से अविच्छिन्न मानवीय मूल्यों को यथार्थ धरातल पर स्थापित करता है। उनके उपन्यासों में सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक संबंधों, मानसिक अन्तर्द्वंद्वों, संयुक्त परिवारों का विघटन, आधुनिकता की दौड़ में आत्मकेन्द्रित होती युवा वर्ग की आस्थाओं का खोखला यथार्थ प्रस्तुत हुआ है।

उनके उपन्यास साहित्य में नारी अस्तित्व व अस्मिता का यथार्थ अंकित है। उपन्यासकार ने पुरूष प्रधान समाज की बर्बरता, नारी के दोयम दर्जे की स्थिति तथा उसकी दुर्गति के मार्मिक प्रसंगों को यथार्थ धरातल पर उकेरा है। साथ ही उनके उपन्यासों में नारी के प्रति हो रहे अन्यास व अत्याचार के विरूद्ध विद्रोही स्वर भी मुखरित हुआ है। इनके उपन्यासों में जहां एक ओर पीड़ित, दयनीय व अबला नारी का चित्रण हुआ है, वहीं दूसरी ओर सबल, सक्षम व विद्रोही नारी के चित्र भी अंकित है। इनके उपन्यासों की नारी का योगदान प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों से अधिक ही है। मानव–मूल्यों को एक बार फिर से परिभाषित करती ये नारियां आर्थिक मोर्चों पर भी आगे रही है।

अमरकांत के उपन्यास साहित्य में अर्थ विभिन्न रूपों में उपस्थित हुआ है। आधुनिक युग में धन–वैभव तथा उपयोगितावादी दृष्टिकोण ने मानव–मूल्यों व संवेदनाओं को क्षति पहुंचायी है। सम्पन्न वर्ग द्वारा निम्न वर्गों का आर्थिक शोषण तथा अर्थाधारित संबंधों के चलते मानसिक द्वन्द्व व तनाव को झेलते लोगों का कटु व भयावह यथार्थ उनके साहित्य में दृष्टिगत होता है। शोषक वर्गों द्वारा शोषितों का यह शोषण स्वातंत्र्यपूर्व से लेकर स्वातंत्र्योपरांत भी यथावत् चला आ रहा है। उनका साहित्य भ्रष्टाचार के दलदल में फंसे भ्रष्ट नेताओं, जागीदारों, साहूकारों व प्रधानों से आम जनता के मोह–भंग का कटु यथार्थ प्रस्तुत करता है। उनके उपन्यासों में राजनीति के विविध आयाम दृष्टिगत होते है। जहां उन्होंने एक ओर देश–प्रेम व हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रसंगों का वर्णन किया है, वहीं दूसरी ओर देश–विभाजन व साम्प्रदायिकता की पीड़ा के दंश को भी उकेरा है।

भारत सदियों से विभिन्न संस्कृतियों की जन्म–भूमि रहा है। अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में विभिन्न प्रकार की वेश–भूषा, खान–पान, रीति–रिवाज, उत्सव व मेलों इत्यादि का वर्णन कर, हमें हमारी सम्पन्न व सभ्य संस्कृति के दर्शन कराये है। उन्होंने संस्कृति व धर्म के नाम पर धार्मिक–आस्था, अंधविश्वास, जाति–पाति तथा छूआ–छूत जैसे विषयों का प्रासंगिक यथार्थ प्रस्तुत किया है। अतः उनका उपन्यास साहित्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक दृष्टि से यथार्थ भूमि पर रचित एक सम्पन्न साहित्य है, जो पाठक को एक सुनिश्चित दिशा–निर्देश प्रदान करता है।

सन्दर्भ

1. अमृतलाल नागर की कथा दृष्टि के समाजशास्त्रीय आयाम, डॉ. सरोज सिंह, पृ. 2
2. यथार्थवाद, शिवकुमार मिश्र, पृ. 67
3. हिंदी उपन्यासों में कथा–शिल्प का विकास, डॉ. प्रतापनारायण टंडन, पृ. 55
4. अमृतलाल नागर की कथा दृष्टि के समाजशास्त्रीय आयाम, डॉ. सरोज सिंह, पृ. 12–13
5. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 169
6. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 170
7. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 171
8. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 200
9. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 106
10. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 441
11. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 442
12. लहरें, अमरकांत, पृ. 42
13. लहरें, अमरकांत, पृ. 73
14. आठवें दशक की हिंदी कहानी, डॉ. प्रतिभा धारासूरकर, पृ. 39
15. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 6
16. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 14
17. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 25
18. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 26
19. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 28
20. साहित्य और संस्कृति, डॉ. सरला अग्रवाल, पृ. 159
21. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 34
22. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 15
23. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 57
24. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 57

25. साहित्य और संस्कृति, डॉ. सरला अग्रवाल, पृ. 162
26. साहित्य और संस्कृति, डॉ. सरला अग्रवाल, पृ. 162
27. हिंदी उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य चित्र, डॉ. उर्मिला भटनागर, भूमिका से
28. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 25
29. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 50
30. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 16
31. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 39
32. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 40
33. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 152
34. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 334
35. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 144
36. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 121
37. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 160
38. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 168
39. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 129
40. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 162–163
41. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 534
42. उपन्यासों में महानगरीय अवबोध, डॉ. अशोक बालुचकर, पृ. 94
43. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 142
44. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 149
45. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 63
46. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 73
47. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 71
48. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 247–248
49. हिंदी उपन्यासों में प्रशासन, डॉ. सुधाकर अदीब, पृ. 89

50. लहरें, अमरकांत, पृ. 18

51. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 41

52. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 26

53. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 60

54. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 99

55. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 51

56. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 72

57. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 112

58. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 115

59. अमरकांत, वर्ष–1, रवीन्द्र कालिया, पृ. 297

60. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 153

61. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 103

62. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 103

63. समाज विज्ञान के मूल तत्त्व, पी.सी.खरे, पृ. 199

64. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 82–83

65. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 176

66. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 55

67. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 135

68. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 99

69. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 116

70. आधुनिक संदर्भ में आज के हिंदी उपन्यास, डॉ. अतुल, पृ. 199

71. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 34

72. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 374

73. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 375

74. लहरें, अमरकांत, पृ. 64

75. लहरें, अमरकांत, पृ. 29

76. लहरें, अमरकांत, पृ. 30

77. लहरें, अमरकांत, पृ. 35

78. लहरें, अमरकांत, पृ. 36

79. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 49

80. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 52

81. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 51

82. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 168

83. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 113

84. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 153

85. भारतीय सामाजिक समस्याएं, डॉ. एस.पी. श्रीवास्तव, पृ. 162

86. हिंदी उपन्यासों में नारी, डॉ. शैल रस्तोगी, पृ. 299

87. हिंदी उपन्यासों में नारी, डॉ. शैल रस्तोगी, पृ. 190

88. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 49

89. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 69

90. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 70

91. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 19

92. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 29

93. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 21–22

94. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 123

95. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 79

96. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 35

97. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 144

98. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 57

99. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 80

100. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 72

101. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 502

102. समाज और संस्कृति, रामचरण दुबे, पृ. 162–163

103. दैनिक जागरण, अटल बिहारी वाजपेयी

104. धर्मयुग, लक्ष्मणदास, 1980

105. नयी कहानी की भूमिका, कमलेश्वर, पृ. 176

106. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 48

107. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 49

108. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 101

109. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 106

110. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 107

111. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 11

112. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 11

113. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 98

114. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 236

115. आधुनिक हिंदी उपन्यास, डॉ. नामवर सिंह, पृ. 165

116. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 292

117. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 354

118. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 162

119. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 397

120. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 399

121. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 400

122. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 401

123. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 459

124. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 492

125. आधुनिक भारत का इतिहास एक जीवन मूल्यांकन, यशपाल, पृ. 419

126. आधुनिक भारत का इतिहास एक जीवन मूल्यांकन, यशपाल, पृ. 419

127. आधुनिक भारत का इतिहास एक जीवन मूल्यांकन, यशपाल, पृ. 420

128. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 123

129. उपन्यासकार कमलेश्वर : संवेदना और शिल्प, डॉ. देशाणी महेन्द्र कुमार जे. पृ. 208

130. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 532

131. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 72

132. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास, हेमेन्द्र कुमार पानेरी, पृ. 259–260

133. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 130

134. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 60

135. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 40

136. उद्भावना–संपा., अजय कुमार, पृ. 25

137. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 197–198

138. अमरकांत के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, डॉ. अनुकूल चंद राय, पृ. 51

139. उपन्यासकार कमलेश्वर : संवेदना और शिल्प, डॉ. देशाणी महेन्द्र कुमार जे. पृ. 204

140. दस्तक : संपादक – राघव आलोक, पृ. 13

141. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 170–171

142. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 74

143. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 74

144. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 74

145. आज की समस्याएँ, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 5

146. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 499

147. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 452

148. लहरें, अमरकांत, पृ. 43

149. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 45

150. समय और संस्कृति, श्यामचरण दुबे, पृ. 162–163

151. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 130

152. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 131

153. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 45–46

154. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 525

155. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 58

156. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 59

157. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 29

158. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 97

159. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 296

160. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 533

161. समय माजरा, (सं.), डॉ. हेतु भारद्वाज, मार्च–2002 (मूल्य निर्माण प्रक्रिया : विविध संदर्भ–डॉ. अशोक बालुचकर), पृ. 66

162. वार्षिकी हिंदी कहानी, (सं.) वीरेन्द्र सक्सेना, 1984, पृ. 25

163. आधुनिक हिंदी कहानी में नारी की भूमिकाएं, सुशीला मित्तल, पृ. 33

164. युगबोध और हिंदी नाटक, डॉ. सरिता वसिष्ठ, पृ. 45

165. अमरकांत के उपन्यासों में प्रतिबिम्बित समाज, रूचि मिश्रा, पृ. 126

166. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 26

167. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 132

168. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 12

169. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 151–152

170. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 213

171. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 149

172. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 50

173. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 58

174. हिंदी उपन्यासों में महानगरीय अवबोध, डॉ. अशोक बालुचकर, पृ. 158

175. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 18

176. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 218

177. कांचघर : महानगरीय संवेदन हीन एवं यांत्रिक संसार का प्रामाणिक दस्तावेज, डॉ. कमल किशोर गोयनका, पृ. 48–49

178. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 248

179. हिंदी उपन्यासों में महानगरीय अवबोध, डॉ. अशोक बालुचकर, पृ. 172

180. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 8–9

181. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 171

182. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 460

183. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 58

184. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 59

185. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 59

186. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 60

187. कथा–संपा. मार्कण्डेय, पृ. 196

188. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 84–85

189. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 11

190. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 32

191. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 34

192. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 35

193. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 41

194. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 345

195. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 347

196. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 218

197. हिंदी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 801

198. अमृतलाल नागर की कथा दृष्टि के समाजशास्त्रीय आयाम, डॉ. सरोज सिंह, पृ. 122

199. साहित्य और संस्कृति, डॉ. सरला अग्रवाल, पृ. 136

200. साहित्य और संस्कृति, डॉ. देवेन्द्र मुनि शास्त्री, पृ. 121

201. भारतीय संस्कृति, बाबू गुलाबराय, पृ. 3

202. खड़ी बोली रामकाव्यों में चित्रित समाज और संस्कृति, डॉ. मनोहर सर्राफ, पृ. 22

203. भारतीय संस्कृति के विविध आयाम, डॉ. नारायण नाटाणी, पृ. 1

204. वर्तमान सांस्कृतिक परिदृश्य एवं चुनौतियां, (सं.) रवीद्र शुक्ल, सियाराम शर्मा, विकल्प मार्च–99 पृ. 272

205. समाज संस्कृति और साहित्य, पृ. 23

206. आधुनिक काव्य में जीवन मूल्य, डॉ. हुकुमचंद राजपाल, पृ. 20

207. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 9

208. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 46

209. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 123

210. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 34

211. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 36

212. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 20

213. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 21

214. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 25

215. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 26

216. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 27

217. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 91

218. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 120–121

219. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 122

220. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 123

221. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 95

222. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 80

223. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 163

224. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 12

225. भारतीय संस्कृति के विविध आयाम, प्रकाश नारायण नाराणी, पृ. 14

226. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 69

227. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 143

228. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 13

229. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 20

230. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 39

231. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 130

232. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 204

233. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 160

234. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 84

235. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 54

236. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 50

237. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 129–130

238. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 23

239. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 126

240. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 112–113

241. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 40

242. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 64

243. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 13

244. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 24

245. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 35

246. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 50

247. आधुनिक हिंदी उपन्यास, डॉ. नामवर सिंह, पृ. 170

248. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 25

249. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 86

250. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 149

251. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 347

252. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 348

253. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 139

254. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 50

255. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 534

256. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 522

257. लहरें, अमरकांत, पृ. 42

258. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 17

259. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 72

षष्ठम् अध्याय

अमरकांत का उपन्यास साहित्यः भाषा एवं शिल्प विधान

षष्ठम् अध्याय
अमरकांत का उपन्यास साहित्यः भाषा एवं शिल्प विधान

6.1 शिल्प, अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

साहित्यकार अपने साहित्य के सफल उद्घाटन एवं अभिव्यक्ति के लिए साहित्य की रचना करते समय शिल्प का सहरा लेता है। उपन्यास के शिल्प के अंतर्गत उन सभी विधियों, नियमों, कल्पनाओं, विचारों एवं तरीकों का समावेश हो जाता है, जिनके माध्यम से उपन्यास के घटना, पात्र, वार्तालाप अथवा दृश्य तथा वातावरण सजीव हो उठते हैं। अपनी भाषा को प्रभावी बनाने हेतु वह भाषा का विभिन्न रूपों में प्रयोग करता है। वह भाषा को तोड़–मरोड़कर शब्दों से खेलता है। इसके लिए वह मुहावरों, कहावतों एवं सूक्तियों का सहारा लेता है। इन सबके पीछे रचनाकार की संवेदनशीलता, अनुभव वैशिष्ट्य, यथार्थदृष्टि, निरीक्षण शक्ति तथ उसकी अलौकिक प्रतिभा छिपी होती है, जो मानव जीवन के किसी विशिष्ट पहलू पर प्रकाश डालती है। परिणामस्वरूप ऐसी रचना उद्दिष्ट पूर्ति में सहायक होती है। वास्तव में इन सभी उपादानों को ही साहित्यिक भाषा में 'शिल्प' कहा जाता है।

"शिल्प' शब्द अंग्रेजी के 'Technique' शब्द का हिंदी रूप है। विभिन्न शब्द कोशों के अनुसार 'Technique' शब्द हिंदी में 'क्रियाकल्प प्रविधि', 'शिल्प विधि, प्रक्रिया, तंत्रपद्धति, रचना–प्रणाली, रीति, शैली, शिल्प कौशल तथा 'हिंदी शब्द सागर' के अनुसार हाथ से कोई चीज बनाकर तैयार करने का काम, दस्तकारी, कारीगरी, हूनर, कलासंबंधी व्यवसाय, दक्षता, कौशल, चातुर्य, निर्माण, सृजनसृष्टि रचना आदि अर्थों से संबंधित है।"[1]

शिल्प के शब्दकोशिय अर्थ

शिल्प – संज्ञा (पु.) (स.) निर्माण, सृष्टि रचना।"[2]

"शिल्प गुण। कलाकृति के विभिन्न अंगों की शिल्पगत एकान्विति।"[3]

"शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है।"[4]

परिभाषा

"किसी भी रचना में प्राणतत्त्व विषय है, तो शिल्प उसका शरीर है अर्थात् आकार। इस प्रकार शिल्प लेखक की मूल प्रेरणा, दृष्टिकोण, आशय, उद्देश्य, अभिप्रेत आदर्श, विषय आदि की अभिव्यक्ति का साधन है।"[5]

"कला के रचना के जिन तरीकों, रीतियो और विधियों का उपयोग किया जाता है वे ही उस कला की शिल्पविधि के नाम से पुकारी जाती है।"[6]

डॉ. सत्यपाल चुग के मतानुसार – "उपन्यास रचना में जिस प्रक्रिया से लक्ष्य तथा संवेदनानुभूति उसके तत्त्वों–कथानक, पात्र, वातावरण आदि में परिणत हो औपन्यासिक रूप का निर्माण करते है, वही उसकी शिल्पविधि है।"[7]

उपर्युक्त मतों से स्पष्ट है कि 'शिल्प' एक कौशल है, एक प्रक्रिया है जिसमें रचना का आरंभ से अंत तक की बुनावट भाषा शैली, भाषा प्रयोग, शब्द प्रयोग, मुहावरों, कहावतों, सूक्तियों तथा शैलीगत प्रयोग आदि का सम्मिलित रूप है। अमरकांत के उपन्यासों का शिल्प पक्ष कथ्य के अनुरूप सशक्त व प्रभावी है। इसका विवेचन निम्नानुसार किया जा सकता है।

6.2 भाषा के विविध प्रयोग

'भाषा' शब्द संस्कृत की भाष् (पूवादिगणी) धातु से बना है। भाष् धातु का अर्थ है, व्यक्तियों की वाणी (भाष् व्यक्तायां वाचि) व्यक्त वाणी के रूप में, जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है, उसे भाषा कहते है। 'भाष्यते व्यक्त वाग्रूपेण अभिव्यञ्जतेत इति भाषा) भाषा याद्रच्छिकवाचिक ध्वनि संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करता है। भाषा देवी अंश है, जो मनुष्य को ही प्राप्त है। भाषा रूपी ज्योति के बिना संसार अंधकार युक्त होता है।"[8]

"भाषा मनुष्य के पास एक ऐसा साधन है, जिसके माध्यम से वह समाज के अन्य लोगों से भावों और विचारों का आदान–प्रदान करता है।"[9]

"भाषा वह वाचिक व्यवस्था है, जो मौन रूप में तो मानसिक रूप लिए होती है और मुँह से व्यक्त होकर ध्वनि रूप में भौतिक रूप ग्रहण करती है।"[10]

अतः भाषा विचारों के आदान–प्रदान के साथ–साथ साहित्य में उत्कृष्टता व प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करती है। प्रत्येक साहित्यकार की अपनी अलग तरह की भाषा संरचना होती है। वस्तुतः भाषा ही वह कसौटी होती है, जिस पर कसकर किसी रचनाकार की रचना में खरेपन की परख की जा सकती है। साहित्यिक रचना में नवीनता सर्वप्रथम भाषा के स्तर पर ही प्रकट होती है। भाषा प्रयोग विधि के आधार पर किसी साहित्यिक रचना या रचनाकार की कृति का मूल्यांकन करते समय उसके द्वारा प्रयोग किये गये तत्त्वों का अवलोकन किया जाता है।

उपन्यासकार अमरकांत ने अपने साहित्य में प्रांजल, सरस एवं भावानुकूल प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में नयी अर्थवृत्ता ओर गाम्भीर्यता लाने के लिए प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता, काव्यात्मकता, ध्वन्यात्मकता आदि का

कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है। अमरकांत जी की भाषा पात्रों व परिवेश के अनुकूल है। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में पात्रों के चित्रण को पूर्णता और स्वाभाविकता देने के लिए वातावरण का भी ध्यान रखा है। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में ग्रामीण, शहरी, कस्बाई, भयानक तथा करूण वातावरण इत्यादि को स्थान दिया है। इस प्रकार उपन्यासकार अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में भाषा का अद्वितीय प्रयोग किया है।

सहज, सरल प्रभावी भाषा

साहित्यकार की भाषा युगानुरूप होती है। यदि कोई साहित्यकार अपने परिवेश की उपेक्षा करता हुआ भाषा का प्रयोग करता है, तो यही माना जा सकता है कि वह अविवेकपूर्ण दुराग्रह से गुजर रहा है। यूं तो साहित्य का मूलाधार मानव है और मानव समाज का अभिन्न अंग है। समाज ही साहित्य का कथ्य बनता है। "समाज और लोक का निकट से निरीक्षण करके अपने व्यापक कलेवर में उसका यथार्थ समाज चित्रण करने वाली विधा 'उपन्यास' है और दूसरी ओर उसका संबंध सीधा समाज से ही होता है।"[11] समाज में संप्रेषण एवं परस्पर विचार विनिमय का साधन भाषा ही है।

भाषा को साहित्य का अस्त्र माना जाता है। अमरकांत ने भाषा रूपी अस्त्र का प्रयोग पात्रों व परिवेश के अनुरूप किया है। इन्होंने परिवेश की आधुनिक रूप की आत्मा को पहचान उसे वास्तविक धरातल पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। फलस्वरूप उनका औपन्यासिक कथ्य भाषा की अनुरूपता पाकर अधिकाधिक संप्रेषणीय बन गया है। जीवन संदर्भो की यथार्थता के संप्रेषण के लिए जिस भाषा का प्रयोग अमरकांत ने किया है, वह यथार्थ भाषा है। उनकी सहज, सरल, प्रभावी अभिव्यक्ति ने पात्रों व परिवेश की भिन्नता यथा – शिक्षित–अशिक्षित, ग्रामीण–शहरी, बूढ़े–जवान इत्यादि को मुखरित किया है। उनके कथ्य की प्रामाणिकता ने भाषा को भी प्रामाणिक बना दिया है। परिवेश विशेष से जुड़ी घटनाएं व पात्र इनके भाषा प्रयोग से अत्यंत स्वाभाविक हो उठे हैं। 'लहरें' उपन्यास में 'सुमित्रा' स्त्री–जाति की कमजोरियों और उनके समाधान के विषय में अत्यंत सरल व सहज भाषा में कहती है–"औरतों का उत्पीड़न होता है, मगर कैसे दूर होगा यह? कभी–कभी संशय होता है कि पढ़ने–लिखने से ही क्या पुरूषों की मानसिकता बदल जाएगी? क्या स्त्रियों की मानसिकता में बदलाव आ जाएगा? मुझे लगता है कि स्त्रियों की सिर्फ पुरूषों को दोष देकर संतुष्ट होने की अपनी आदत छोड़कर स्वयं कुछ सोचना चाहिए। ..... हमको आपस में मिलना–जुलना चाहिए, संगठित होना चाहिए।"[12]

अमरकांत ने 'ग्रामसेविका' उपन्यास में ग्रामीण देहाती भाषा का सहज और स्वाभाविक प्रयोग पात्रों के अनुकूल किया है। "रधिया मिसिराइन गाँव में घूम–घूमकर कहने लगीं, "जमाना बड़ा खराब आ रहा है। यह कलियुग नहीं, भटयुग है। इसमें किसी का धरम–करम ठीक

नहीं रहेगा। बड़े लोगों की इज्जत चौराहे पर उतारी जायेगी। मैया रे रंडी–छिनालों का जमाना आ गया है ..... जितने दिन मजे में गुजर जाएँ। ....।"[13]

'आकाश पक्षी' उपन्यास की भाषा–योजना अत्यन्त स्वाभाविक सहज व सरल है। "मैं बहस नहीं करती। मैं सब कुछ जानती हूँ। मुझसे कुछ भी नहीं छिपा है। आपने एक वैश्या को मेरी छाती पर बिठा दिया और ऊपर से अनजान बनने की कोशिश कर रहे हैं। मैंने सारी रात जाग–जागकर देखा है कि कौन कहाँ जाता है? ठीक है, आप जो चाहें करें, मैं इस घर में अब नहीं रहूँगी। आप उसी को लाकर रखिए ......।"[14]

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में अमरकांत ने नीलेश के माध्यम से गांधीवादी विचारों की अभिव्यक्ति अत्यंत सरल शब्दों में की है। "गाँधी जी के ग्राम स्वराज का अर्थ मैं केवल इतना ही समझ सका हूँ कि गुलामी, नकलचीपन, आरामतलबी, स्वार्थ, आलस्य, अस्पृश्यता, अंहकारपूर्ण शान–शौकत, दो मुंहे, शहरीपन, अन्धविश्वास को छोड़कर, हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि सभी धर्मों एवं जातियों के लोग मजदूर, किसान, हरिजन, दलित, गरीब तथा अन्य सभी, परिश्रम, परस्पर प्यार और सहयोग, समानता, इन्सानियत, स्वालम्बन के रास्ते पर चलकर उन्नति करें। गांधी जी हिन्दुस्तान की आजादी, एकता, स्वाभिमान और जनतान्त्रिकता की आवाज है।"[15]

पात्रानुकूलता

अमरकांत के उपन्यास साहित्य की भाषा में पात्रानुकूल भाषा वैविध्य देखा जा सकता है। अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में ग्रामीण–शहरी, शिक्षित–अशिक्षित, शोषक–शोषित, बच्चे–बूढ़े, स्त्री–पुरूष इत्यादि वर्ग के सभी पात्रों को जीवंत रूप में सशक्त अभिव्यक्ति दी है। उनके पात्रों में अनपढ़, ग्रामीण, किसान, मजदूर, अशिक्षित नारी, शोषित, दलित वर्ग हो या सुशिक्षित नारी, डॉक्टर, शिक्षक इत्यादि विविध वर्ग के पात्रों के स्वरों को सहज रूप में यथार्थ धरातल प्राप्त है।

अमरकांत के 'लहरें' उपन्यास की पात्र बच्ची देवी देहाती है, तो लेखक ने उसके मुँह से देहाती भाषा बुलवाकर उपन्यास को ग्रामीण अंचल के समीप ला दिया है। "कैसी बात करती हो बहिनी .... दिखाई नहीं देत बाऽ? कोई भगाकर लाई मेहरारू थोड़े ही हूँ। पंडित–पुरोहित ने सात फेरा कराया है, मांग में सेंनुर भरवाया है, मंत्र पढ़ा है .... और क्या।"[16]

'ग्रामसेविका' उपन्यास की पात्र दमंयती शिक्षित नारी है। वह गाँव वालों को शिक्षा का महत्त्व समझाते हुए कहती है – "पढ़ाई से कई फायदे हैं, अब रमपतिया को ही लीजिए। पहले उसके यहाँ चिट्ठी आती थी, तो उसके घर वाले उसको पढ़वाने के लिए सारे गाँव घूमते थे। परन्तु अब रमपतिया घर बैठे–बैठे पढ़ देता होगा। .... खेत के लिए कैसा बीज

चाहिए, कैसी खाद चाहिए, यह सब वह किताबें पढ़कर जान सकेगा। बाजार में माल बेचते समय और खरीदते समय उसको कोई बेवकूफ नहीं बना सकता। .... गाँव के नौजवानों को पढ़–लिखकर शहर की ओर नहीं भागना चाहिए। पढ़–लिखकर उसको गाँव में ही अच्छे ढंग से खेती करनी चाहिए। कोई नया कारोबार करना चाहिए, मिल–जुलकर सारे गाँव की तरक्की करनी चाहिए।"[17]

'इन्ही हथियारों से' उपन्यास में भगजोगिनी की सास पढ़ी–लिखी नहीं है तथा देहाती भाषा का प्रयोग करती है। उपन्यासकार ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करके चरित्र व परिस्थिति को एक साकार रूप देने का प्रयास किया है जब दामोदर की पत्नी भगजोगिनी को गालियाँ देती है तब भगजोगिनी की सास उसके प्रत्युत्तर में कहती है–"अरे कौन है रे, तू हरामजादी,? मेरे दरवाजे पर आकर तैं–तैं करके रंगरेजी छाँट रही है! कैंची की तरह जबान चलौबू तऽ कैंची से ही जबान काट लेईब, तब 'आय–आय' करत छिछियात अपने घर लौट जइबू। यह पूजारिन बनती है, गंगा नहाती है, लाज–शर्म घोलकर पी गई है, पता नहीं केकर बच्चा से पेट फुलाकर आधी रात को शहर में नाचत बाऽ। मर्द नहीं पूछता तऽ हम क्या करें रे कुलबोरनी? सुन ले, तोर मर्द मेरी बहू से गन्धर विवाह किए है, गन्धर विवाह किए है, गन्धर विवाह किए है ......"[18]

'सूखापत्ता' उपन्यास में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है, जिसमें एक पिता अपने पुत्र को समझाते हुए कहता है–"बेटा कृष्ण आज तक मै चुप रहा पर आज तुमसे एक प्रार्थना करता हूँ। तुम समझते होंगे कि बाबूजी बड़े निर्दयी है, पर मेरा ही जी जानता है कि मेरी क्या हालत है। तुम मेरे खून हो। जब तुम्हीं खुश न रहोगे, तो मैं कैसे रह सकता हूँ? कृष्ण, ... सच मानों अगर मेरी जरा भी चलती तो मैं तुम्हारी शादी उर्मिला से अवश्य कर देता।"[19]

'बिदा की रात' उपन्यास मे सुल्ताना बेगम मुस्लिम परिवार से है। अतः उसकी भाषा भी उसी के अनुरूप है। बचपन में वह बहुत शरारती थी। उनकी वालिदा मेहताब बेगम सुल्ताना को मुस्लिम औरतों के रहन–सहन के कानून–कायदे समझाते हुए कहती है–"खुदा ने औरत को मुस्लिम घर में इसलिए भेजा है कि वह शऊर, सलीका और तहज़ीब सीखे, बड़े बुजुर्गों के सामने नज़रें नीची रखे उनका हुकुम माने और उनकी खिदमत करे। दुनिया में घुम आओ, जो शर्म–लेहाज, शराफत और तहजीब एक मुस्लिम खातून में होती है, वह किसी जात में नहीं। मगर यह सब नहीं सीखोगी, बुर्का नहीं पहनेंगी, गरूर के साथ सबको आँखें दिखाएगी और सबसे बदज़बानी करेगी तो इसका निकाह कैसे होगा। हाय अल्ला, मैं इससे आज़िज आ गई हूँ, तबीयत करती है जहर की पुड़िया फाँककर हमेशा के लिए सो जाऊँ ....।"[20]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमरकांत जी ने उपन्यास साहित्य में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उनके ग्रामीण स्त्री–पुरूष पूरबी लोक–प्रचलित, भदेस व खुरदरी भाषा का प्रयोग करते हैं, तो शिक्षित और सभ्य समाज के पात्र अपने व्यवसायानुकूल सभ्य भाषा का प्रयोग करते है। इनके मुसलमान पात्र खलिस उर्दू बोलते है, तो शिक्षित हिंदू पात्र परिष्कृत व परिमार्जित संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग करते नज़र आते है। अतः इनके उपन्यास साहित्य में बलिया जैसी पूर्वी क्षेत्र की शब्दावली के साथ–साथ लोक निर्मित शब्द तथा ग्राम्य जीवन में प्रचलित शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है।

प्रतीकात्मकता

'प्रतीक' शब्द की व्युत्पत्ति 'क्तिन्' धातु में 'प्रति' उपसर्ग पूर्व 'ईकन्' प्रत्यय लगने से हुई है। व्युत्पत्तिमूलक अर्थ में जिस वस्तु अथवा साधन के द्वारा बोध अथवा ज्ञान की प्रतीति होती है, उसे प्रतीक कहते है। "प्रतीक' काव्य में विचार या प्रत्यय का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये विशिष्ट अर्थ का द्योतन करते हैं। अनिश्चित वस्तु का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। ये विचार संवेदन के संवाहक, स्थैर्य के प्रदाता, गुणात्मकता के संवर्धी तथा एकोन्मुखी होते है। प्रतीक मूर्त पर अमूर्त के अथवा अमूर्त पर मूर्त के आरोपण के साथ भावाभिव्यंजना के अभिधेय से भिन्न, वे संशलिष्ट एवं विशिष्ट माध्यम है।"[21]

"प्रतीपते अनेन इति प्रतीकः" सामान्यतः कोशो में प्रतीक शब्द का प्रयोग चिह्न प्रतिरूप संकेत आदि विभिन्न अर्थों में मिलता है।"[22]

'मानक हिंदी कोश' में प्रतीक शब्द के विषय में बताया गया है कि "वह गोचर या दृश्य तथ्य या वस्तु जो किसी अगोचर, अदृश्य या अप्रस्तुत तथ्य या वस्तु के ठीक या बहुत कुछ अनुरूप होने के कारण उसके गुण–रूप का परिचय कराने के लिए इसका प्रतिनिधित्व करती है।"[23]

अमरकांत जी के साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग यत्र–तत्र देखा जा सकता है, लेकिन इन्होंने जहाँ भी प्रतीकों की संरचना की, वहाँ वह उपन्यास की भाषा सौन्दर्य की श्रीवृद्धि में सहायक सिद्ध हुई है। अमरकांत ने उपन्यास साहित्य के शीर्षकों में प्रतीकों का प्रयोग किया है। जिनकी व्यवस्था उपन्यास के कथ्य से उभरती है। इस दृष्टि से 'सूखापत्ता', 'आकाश–पक्षी', 'काले–उजले दिन', 'लहरें', 'कंटीली राह के फूल', 'पराई डाल का पंछी इत्यादि उपन्यास प्रमुख है।

'लहरें' उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। 'लहरें' उपन्यास का शीर्षक नारी समाज के आन्दोलित मन की झलक प्रस्तुत करता है। यह नारी के मन में उठने वाली तरंगों के समान है, जो समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए स्त्री–जागृति एवं उसके संगठन के लिए

'लहरें' बनकर उठती है। 'लहरें' उपन्यास में सुमित्रा, सरोजबाला व मोहल्ले की अन्य स्त्रियों द्वारा स्त्री–जागृति हेतु एक संस्था का निर्माण किया जाता है। मोहल्ले की स्त्री सरोजिनी गुलाटी द्वारा संस्था का नाम 'मिलनी' रखा जाता है, जो परस्पर सौहार्द व सहानुभूति का प्रतीक है। "संस्था का एक नाम मेरे दिमाग में आया है, 'मिलनी'। यह नाम इसलिए मुझे अच्छा लगा कि हम औरतों को बदनाम किया जाता है कि हम एक–दूसरे से जलती है या औरत ही औरत की दुश्मन होती है। यह आरोप गलत है, इसे हम 'मिलनी' संस्था के विचार और काम से ही साबित कर सकते है।"[24]

'पराई डाल का पंछी' उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। उक्त उपन्यास का नायक 'दीपक' विवाहित है। उसके दो बच्चे भी है। दीपक स्वभाव से धूर्त, लम्पट व व्यभिचारी है। जिस तरह पक्षी एक डाल से दूसरी डाल पर फूदकता रहता है, उसी तरह दीपक भी एक जगह बंध कर नहीं रहना चाहता। वह चाहता है कि दुनियाँ की हर स्त्री उससे प्यार करे। अमरकांत जी ने टंडन के मुंह से दीपक के इस यथार्थ के विषय में कहलवाया है। "तुम जहाँ जाते हो, किसी के घर में, किसी के समारोह में, ट्रेन में, कहीं भी वहाँ तुम इस तलाश में रहते हो कि कोई खूबसूरत स्त्री या लड़की मिले, जिससे तुम प्यार कर सकते .... नहीं, नहीं, तुम नहीं, वह तुमसे प्यार कर सकती।"[25]

'कंटीली राह के फूल' उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। अंजनीकुमार अनूप को इस शीर्षक की विशेषता बताते हुए कहता है कि – "कंटीली राह के फूल इसका नाम कुछ आडम्बरपूर्ण आपको लगे, परंतु इसका मतलब भी है। कंटीली राह हमारा परिश्रम, हमारी कर्मठता और ज्ञान के अन्वेषण की हमारी आकांक्षा उसी में हम खिल सकते हैं, फूल की तरह।"[26]

"काले–उजले दिन" उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है और उसका सीधा जुड़ाव नायक के सुख–दुःख भरे जीवन से है। नायक के जीवन का काला दिन तो तब प्रारंभ होता है। जब उसे बचपन में विमाता और पिता दोनों का मात्र तिरस्कार मिलता है। विमाता एवं पिता के तिरस्कार एवं यातना से उसमें हीनता एवं कुण्ठा उत्पन्न होती है। उसका समस्त जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। साहसहीनता, उद्देश्यहीनता तथा निराशा उसके व्यक्तित्व में जड़ जमा लेती है। जिस प्रेम की उसे तलाश थी, वह उसे अपनी पत्नी कांति से कभी नहीं मिलता। उसकी तलाश वह रजनी में करता है। कांति को लेकर वह द्वंद्व में पड़ता है। यदि वह जीवित रहती तो सम्भवतः उसके जीवन का उजला दिन कभी नही आता, क्योंकि उसमें वह साहस नहीं था कि वह अपनी विवाहित पत्नी को त्याग सके। दुर्घटनावश बीमारी के कारण कांति का देहांत हो जाता है और रजनी को अपनाकर वह उजाले में आ जाता है, सुख की प्राप्ति करता है। इससे स्पष्ट होता है कि उपन्यास का शीर्षक 'काले–उजले दिन' प्रतीकात्मक है। शीर्षक में ही सम्पूर्ण उपन्यास का कथानक है।"[27]

'आकाश पक्षी' उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। उक्त उपन्यास की नायिका हेमा एक पक्षी की तरह मुक्त गगन में उड़ना चाहती है, जहाँ जाति–पाति का कोई बंधन न हो। वह स्वगत कथन में कहती है–"दिन में मैं एकांत में बैठकर देर तक चुपचाप आकाश में पंख फैलाकर उड़ने वाली चिड़ियों तथा सफेद बादलों को निहारा करती। मुझे कभी–कभी ऐसा लगता कि मैं और रवि साथ–साथ स्वछन्द आकाश में उड़ रहे हैं और बाहर की स्वच्छ हवा को पी रहे हैं।"[28]

हेमा के माता–पिता हेमा का विवाह दुगुने उम्र के व्यक्ति से तय कर देते है। तब हेमा दुःखी हो उठती है और अत्यंत भाव–विभोर हो वह कहती है–"मैं सब कुछ उनको दूँगी, क्योंकि मै अब आजाद चिड़िया नहीं बल्कि एक मशीन का पूर्जा हूँ, जिसके दिल नहीं है, जिसके मन में आकांक्षाएँ नहीं है, जिसमें रंगीन भविष्य की उमंगे नहीं है।"[29]

हेमा अपने माता–पिता के विचारों को पसंद नही करती थी। वे रियासत खत्म होने के बाद भी उसी विचारधारा को पकड़े हुए थे वह कहती है – "मैं उनके जाल से मुक्त होकर रवि के साथ उन्मुक्त उड़ना चाहती थी। मेरे उन ख्वाबों का क्या होगा? क्या वे शीशे की तरह गिरकर चकनाचूर हो जायेंगे।"[30] उपन्यास के प्रारंभ में हेमा का वर्तमान दिखाया जाता है, जिसमें वह विवाहित है, वह कहती है–"आज मेरी उम्र चालीस से कम नहीं। मैं एक दिन ऐसी हवा में आजाद चिड़िया की तरह पंख फैलाकर उड़ जाना चाहतती थी। लेकिन क्या हुआ? मैं एक पिंजड़े में से दूसरे पिंजड़े में आ गयी।"[31]

इस प्रकार उपन्यास में आए उक्त कथनों से प्रतीत होता है कि उपन्यास का शीर्षक 'आकाश पक्षी' के रूप में हेमा को ही बताया गया है, जो राजपरिवार की खोखली सामन्ती विचार–धाराओं रूपी पिजड़े को तोड़कर उन्मुक्त गगन में उड़ जाना चाहती है।

'सूखा पत्ता' उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। उपन्यास का नायक कृष्ण कुमार सूखेपत्ते के समान है, जो भावावेग रूपी आँधी आने पर सूखेपत्ते के समान किसी भी दिशा में उड़ जाता है। वह अपने मित्र के साथ अपनी तुलना करता हुआ कहता है – "कृपाशंकर और उसका जीवन मेरे सामने नाच उठता। वह उस वृक्ष की तरह था, जिसकी जड़े गहरी होती है और जो आँधी–बवंडर मे भी नहीं उखड़ता, पत्तों और फलों से भरी उसकी डालियाँ सबकी सेवा को उत्सुक हो मानो फैली रहती है। कृपाशंकर सूखे पत्ते की तरह कभी नहीं था, जो जैसी हवा बहे उसी में उड़ जाता है, हवा बंद होने पर धराशायी, व्यर्थ और बेकार! मैं अब तक सूखापत्ता ही तो रहा हूँ।"[32]

काव्यात्मकता

कथाकार अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में यत्र–तत्र लोकगीतों के माध्यम से पाठक वर्ग को ग्रामीण संस्कृति के दर्शन कराये है। इन लोकगीतों के माध्यम से अमरकांत के उपन्यासों की भाषा जीवंत हो उठी है। भाषा के काव्यात्मक रूप से उपन्यास के पात्रों में जीवंतता व प्रसंगो में सौंदर्यावृद्धि देखी जा सकती है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है –

'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में "जब सुन्नर पांडे की पतोह की डोली पहुँची तो औरतों ने दूल्हा–दुल्हिन का परछौना करते हुए निम्नलिखित गीत गाया –

"हँसत–खेलत मेरे बाबू गइल, मन धूमिल काहे अइलें,
मन बेदिल काहे अइलें, सासु छिनरिया न जोग कइलें,
मन धूमिल काहे अइलें।।"[33]

सुन्नर पांडे की पतोह जब प्रेमा को आशीर्वाद देने लगी तो प्रेमा लजा गई और उठकर कमरे के अंदर चली गई। उसके बाद सुन्नर पांडे की पतोह राग बांधकर गाने लगी–

"चुटकी भर सेनुर के कारण ए बाबा
होई गइली बेटी पराई"[34]

कुछ ही क्षण में सुन्नर पांडे की पतोह के मुँह से अजीब स्वर में मुश्किल से पहचान में आने वाले एक गाने की तरह कोई चीज निकलने लगी –

"इलाहाबाद की लड़की बड़ी शौखीन होती है,
कभी जूता, कभी चप्पल, कभी सैंडिल पहनती है .."[35]

'पराई डाल का पंछी' में टंडन की छोटी बेटी मीना की सालगिरह पर निर्मला व मोहल्ले की स्त्रियाँ गीत गाती है –

"चमकता आता है बदली का चाँद।
है बदली का चाँऽऽद
चमकता आता है बदली का चाँद।"[36]

'बीच की दीवार' उपन्यास में दुल्हा–दुल्हन को कोहबर में ले जाने की रस्म के दौरान दूल्हे से कोई दोहा अथवा गीत गाने को कहा जाता है, तब दूल्हा यह गीत गाता है –

"है प्रभु! आनंददाता! ज्ञान इनको दीजिए
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर इनसे कीजिए .....
.... वीर, व्रतधारी बने।।"[37]

'सूखापत्ता' उपन्यास में उपन्यासकार ने कृष्णकुमार व दीनेश्वर के माध्यम से गंगा घाट पर शमशान में व्याप्त भय को दूर करने हेतु भूषण की वीर रस की कविता का आश्रय लिया है –

"साजि चतुरंग सैन अंग मे उमंग भरि, सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषण भनत नाद बिहद नगारन के, नदी–नद मद गैबरन के रलत है।
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल–गैल, गजन की वेल–पेल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि, थारा पर पारा पारावर यों हालत है।"[38]

"भुज–भुजगेश की वैसंगिनी भुजंगिनी–सी
खेदि खेदि खाती दीह दारून दलन के।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति, मीन,
.... तेरी बरछीने बर छीने हैं खलन के।"[30]

'बिदा की रात' उपन्यास में उपन्यासकार अमरकांत ने शायर 'गौहर' गोरखपुरी की गज़ल का एक टुकड़ा लिया है, जो सुल्ताना बेगम की जिंदगी का हाल बयां करता है। सुल्ताना बेगम की जिंदगी राह में पड़े पत्थर के समान है, जो चलने वाले मुसाफिरों की ठोकरों से इधर–उधर होता रहती है।

"हर गम पर ठोकर का लेता है सहारा,
चलता है 'गौहर' गर्दिशे ऐयाम का मारा।"[40]

अमरकांत ने भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम के सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभायी थी। उस समय की जोशीली कविताओं का वर्णन उनके उपन्यास में अनेक स्थानों पर देखने को मिलता है। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में अमरकांत जी ने गांधी जी की पत्रिका 'हरिजन' में स्व. रामसिंहासन सहाय 'मधुर' की कविता 'डोम' की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत की है।

"डोमराज भयभीत न होना, निष्ठुरता हारेगी।
प्रभु की करूणा ह्रदय चीरकर यह बाजी मारेगी।
अन्तर भींग रहा है, कैसे दीपक राग जगाऊँ?
बापू, अपनी चिनगारी दे, मैं भी आग लगाऊँ।।"[41]

"नौजवाँ बढ़े–चलो, तेजतर बढ़े चलो
लीडरों की यह पुकार–इन्तजार, इन्तजार,
इनको गोली मार दो, इनका सर उतार दो,
तेजतर बढ़े चलो, नौजवाँ बढ़े चलो।।"[42]

इसी उपन्यास में नीलेश अपने दोस्त गोवर्धन से मिलने जाता है, वहाँ गोवर्धन की पत्नी कनिया राष्ट्रभक्त, प्रगतिशील, क्रांतिकारी कवि प्रभुनाथ मिश्र की कविता सुनाती है –

"प्रलय–घन छा रहे साथी!
महा विध्वंस बेला का सन्देशा ला रहे साथी।
प्रलय धन .... साथी।।"[43]

कहीं–कहीं प्रंसगानुकूल हास्य कविताओं का भी चित्रण हुआ है। दामोदर जोकर के रूप में दर्शकों का मनोरंजन करता है।

"बीवी मेंढकी हो! तू तो पानी में की रानी।
कौआ तेरा भाई–भतीजा, चील तेरी देवरानी,
बगुला तेरा प्यारा देवरा, चोंच लम्बी तानी।
बीवी मेंढकी हो!"[44]

सीतानाथ की चाची जो कि वृद्ध है, वह अपनी बहू आनंदी के साथ चक्की चलाते समय गृहस्थी के लोकगीत गुनगुनाने लगी।

"तीन चीजुइया याद आवे ....
भूल गइलीं बाबा माई, भूल गइलीं धमा–चौकड़ी
तीन चीजुइया याद आवे, तीन चीजुइया याद आवे।।"[45]

संक्षेप में एक उपन्यासकार का अंचल–विशेष की संस्कृति को जीवन्त बनाये रखने हेतु प्रचलित लोकगीतों तथा प्रसिद्ध कवियों की देशभक्ति से ओत–प्रोत पंक्तियों का प्रयोग प्रसंगानुरूप किया गया है। परिणामस्वरूप अमरकांत के उपन्यासों की भाषा में सौंदर्यवृद्धि के साथ–साथ उपन्यास जीवंत हो उठे है।

चित्रात्मकता

शब्दकोश के अनुसार 'चित्र' शब्द (संज्ञा पु.) (सं.) मस्तक पर चंदन आदि का चिह्न, सजीव और विस्तृत विवरण काव्य का एक भेद, जिसमें व्यंग्य की प्रधानता नहीं रहती।"[46] अर्थात् चित्रात्मकता से तात्पर्य किसी प्रसंग के सजीव व विस्तृत वर्णन से है।

अमरकांत जी ने अपने उपन्यास साहित्य में रूप चित्र और दृश्य चित्रों का प्रमुख रूप से सहारा लिया है। उन्होंने प्रसंगों, स्थिति, घटनाओं व पात्रों का ऐसा वर्णन किया, जिसे पढ़कर पाठकों के समक्ष उसका दृश्य खींचता चला जाता है। उनके वर्णन में यह साफ झलकता है कि वे जिस वातवरण का चित्रण कर रहे हैं, वह उनके द्वारा प्रत्यक्ष देखा और अनुभव किया गया है।

'बीच की दीवार' उपन्यास में 'दीप्ति' के अन्तर्मन में उठने वाली भाव–तरंगों का चित्रात्मक वर्णन हुआ है। "दीप्ति का जीवन अभी एक ऐसा शांत सरोवर की तरह था, जिसका जल निर्मल होता है। वह सरोवर खूबसूरत था। उदय होते और डूबते सूर्य की लाली में वह अत्यधिक भव्य हो उठता था। लेकिन उसमें कभी लहरें न उठी थी। पर अशोक की बातों ने दीप्ति के मन पर एक अत्यधिक कोमल आघात किया था, जैसे किसी सुपरिचित स्नेही व्यक्ति ने एक हल्की सी कंकड़ी फैंक दी हो। दीप्ति के मन में छोटी–छोटी लहरिया उठने लगी।"[47]

'सूखापत्ता' उपन्यास में शमशान घाट पर गंगा का चित्रात्मक वर्णन उपन्यासकार द्वारा प्रत्यक्षानुभूति का बेजोड़ उदाहरण है–"गंगा एक ओर बालू के बड़े–बड़े टीलों तथा दूसरी ओर माटी की ऊँची चट्टानों का स्नेहाश्रय में चाँदनी की धवल सेज पर सोई थी। जल एकदम स्वच्छ और निर्मल था, नन्हीं–नन्हीं रजत लहरियाँ चैतन्य होकर मन्दगति से रेंग रही थी। पैरों के पास किनारें पर गोल–गोल गाज तैर रहे थे। .... दूसरे किनारे पर अलग–अलग खड़े वृक्ष गंगा के अह्लादकारी सौन्दर्य को छक–छक पी रहे थे।"[48] अमरकांत जी ने 'सूखापत्ता' उपन्यास में जहां एक ओर गंगा के मनोहारी रूप का चित्रात्मक वर्णन किया है, वहीं दूसरी ओर 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में गंगा के भयावह रूप को दर्शाया है। "रतनसिंह काल्पनिक आशंकाओं से बेहद डर गए थे। वैसे अनिश्चितता के कुछ ठोस कारण भी थे। शहर और गाजीपुर घाट स्टेशन काफी पीछे छूट गया था और निर्जनता में जहाँ नदी का फैलाव बढ़कर और भयावह हो गया था, उसकी विनाशलीला भी नजर आने लगी। किनारे अधडूबे झाड़ी–झंखाड़ .... एक बहती हुई पलानी और गाय के छोटे बछड़े का शव .... एक वृक्ष की जल–स्पर्श करती लम्बी मजबूत डाली और उस पर बैठा और प्रेत की तरह घूरता कोई लँगोटधारी अधेड़ व्यक्ति .... लहरों में नाचता काठ का पटरा और टूटा छाता ...."[49]

'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में 'सुन्नर पांडे की पतोह' के व्यक्तित्व विवरण में चित्रात्मकता का समावेश हुआ है। "वह सड़क की धूल भरी बाईं पटरी से जा रही थी। डगमग और टेढ़ी–तिरछी चाल से वह झुकती हुई चल रही थी। उसका लम्बा, छरहरा और ठाँठ शरीर अब कमजोर होकर आगे झुक गया था और उसके कूल्हे पीछे को निकल आए थे। उसका दयनीय गौरा चेहरा झँवराकर और झुर्रियों तथा लकीरों के एक जाल में बदलकर अब ऐसी स्थिति में पहुँच गया था, जब उसे देखकर जवान छोकरों और बच्चों को बेतहाशा हँसी आने लगती है। मटमैली साड़ी पहने और वैसा ही चादर ओढ़े तथा दाहिने हाथ में एक छोटा–सा डंडा पकड़े दाना चुगते हुए कबूतर की तरह, वह दो–चार कदम चलने पर सिर उठाकर आगे देखती, फिर सिर झुका लेती है।"[50] इस प्रकार अमरकांत जी के उपन्यास साहित्य में प्रकृति के आल्हादकारी दृश्य तथा व्यक्तित्व वर्णन में चित्रात्मकता का समावेश अनायास ही देखा जा सकता है।

वातावरण प्रयोग

अमरकांत ने अपने उपन्यासों में देशकाल को सर्वोपरि माना है और इसके लिए उन्होंने अपने आसपास के वातावरण से रचना के संदर्भ लिये है। फिर वह चाहे कस्बाई वातावरण हो चाहे ग्रामीण व शहरी। वातावरण के विभिन्न रूपों को अभिव्यक्त करने में वे सिद्धहस्त है। उनके उपन्यासों में वातावरण प्रयोग मात्र उद्दीपन रूप में नहीं वरन् चरित्रों के जटिल अनुभवों के रूप में भी चित्रित हुआ है। अमरकांत ने अपने उपन्यासों में भय, करूणा तथा हास्य इत्यादि रसों के वातावरण को उद्दीप्त कर भाषा में सौंदर्यता तथा जीवंतता ला दी है।

उपन्यासकार ने 'बीच की दीवार' में सुधा की विदाई का कारूणिक वातावरण प्रस्तुत किया है। "मोहन को देखकर उसने लपककर उसके पैर पकड़ लिए और फूट–फूटकर रोने लगी। .... मोहन को भी रूलाई आ रही थी .... अचानक उससे सब कुछ असह्य हो गया और वह झुककर उसको अलग करके यह कहते हुए कि 'चुप रह सुधा' वहाँ से भाग खड़ा हुआ। ..... सुधा की चीख–चिल्लाहट ने दृश्य को और भी कारूणिक बना दिया। .... गोपालबाबू एक ओर खड़े होकर नाक छिनक रहे थे ..... आखिर में उसको एक डोली में बिठाया गया, जो जल्दी ही रवाना हो गई।"[51] इस प्रकार चारें ओर दुःख व करूणा का वातावरण फैल गया।

'ग्रामसेविका' उपन्यास में लखना की बीमारी तथा उसकी मृत्यु का अत्यन्त कारूणिक दृश्य तथा भयावह वातावरण प्रस्तुत हुआ है। "लखना की हालत सचमुच ठीक न थी। वह हाथ–पैर फैंक रहा था। उसकी आँखे लाल–लाल हो रही थी और वह किसी को पहचान नहीं रहा था। .... शरीर उसका भट्टी की तरह गर्म था। .... दमयन्ती का साहस जवाब देने लगा। मरीज बार–बार पानी मांग रहा था। पानी पीकर वह शान्त हो जाता। कभी आँखें बन्द कर लेता और कभी आँखे फाड़कर सामने देखने लगता। उसको कुछ भी होश नहीं था। ...... दयमन्ती रातभर लखना के सिहराने बैठी रही और रोती रही। सवेरा होते–होते डॉक्टर आया था, परन्तु उस समय तक सब कुछ खत्म हो चुका था। दमयन्ती बुत की तरह खाट पर बैठी थी और पथराई दृष्टि से लखना के शव को देख रही थी।"[52]

'सूखापत्ता' उपन्यास मे भय मिश्रित हास्य वातावरण प्रस्तुत हुआ है। 'सूखापत्ता' उपन्यास का नायक कृष्ण कुमार स्वयं को क्रांतिकारी समझता है। वह विचार करता है कि उसे निडर होना चाहिए। अपनी निडर शक्ति के परीक्षण हेतु वह अपने मित्र दीनेश्वर को साथ लेकर गंगा घाट के शमशान में एक रात बिताने का विचार करता है। दोनों एक रात गंगा किनारे शमशान घाट पर चले जाते हैं, लेकिन डर दोनों के हृदय में विघमान रहता है और वह डर कब बाहर आकर सारे वातावरण को भयानक बना देता है। "भय को दबाने के लिए मैंने दुनिया–भर की दलीलें दी, किंतु कोई नतीजा न निकला, और ऐसा लगने लगा कि वह नर–कंकाल मेरे पीछे

आकर खड़ा हो गया। मैं चौंक–चौंक कर पीछे देखने लगा। दूर के पेड़, ... बड़े–बड़े प्रेतों जैसे प्रतीत होने लगे। .... दीनेश्वर ने मेरी और झुककर साँय–साँय आवाज में कहा, उस रेत के किनारे देखो। ..... मैं पानी में निकली रेतीली जमीन के किनारे गौर से देखने लगा और कुछ ही देर में मैंने जो दृश्य देखा उससे मेरे शरीर का खून जमने लगा। रेत के दाहिने किनारे एक मुर्दा आ गया था, जो काफी फूल गया था और जिसका चेहरा अत्यधिक भयावह तथा वीभत्स हो गया था। .... हिल रहा है। डरावनी आँखों से मुझे घूरते हुए फुसफुसाहट भरी आवाज में दीनेश्वर ने कहा। ...... इसी समय पता नहीं किधर से शायद रेतीली जमीन या पीछे की ओर से हू–हू की आवाज आई। ..... इस आवाज को सुनते ही दीनेश्वर उछलकर खड़ा हो गया और यह कहते हुए कि 'कृष्ण कुमार भागो, मुर्दा 'हू–हू' करके हँस रहा है, चप्पलें जहाँ की तहाँ छोड़कर जोर से भागा। उसके भागते ही मेरा सारा विवेक और साहस रफूचक्कर हो गया और मैं भी उसके पीछे भाग चला।"[53] इस प्रकार भय मिश्रित हास्य का रोचक दृश्य उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है।

'कंटीली राह के फूल' में संध्या के वातावरण का वर्णन इस प्रकार हुआ है – "अभी सूर्यास्त नहीं हुआ था और कुछ धूप बाकी थी, जो सिन्दूर की तरह लाल होकर वृक्षों के शिखरों पर चढ़ गई थी। हवा कुछ तेज चल रही थी, यद्यपि उससे भी गर्मी शान्त नहीं हो रही थी। अक्टूबर का आकाश लगभग साफ था, सिर्फ पूर्वी क्षितिज पर बादलों के दो बड़े टुकड़े चट्टान की तरह जमे थे।"[54]

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में बारिश के वातावरण का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक व यथार्थ रूप में हुआ है। "सितम्बर का महीना, करीब चार बजे थे। नीलेश बाहर के कमरे में बैठकर पढ़ रहा था। उसे पता नहीं लगा कि बादल कब घिर आए, चारों ओर अँधेरा छा गया और तेज हवा के साथ जोरदार बारिश होने लगी। वह खिड़की के पास आकर बाहर खड़ा हो गया और बाहर का दृश्य देखने लगा। मूसलाधार बारिश में सामने के मकान और वृक्ष धुँधले नजर आने लगे है, जैसे कोहरे में डूबे हों। सारा माहौल एक ही भाव में मग्न। .... देखते ही–देखते उसके दरवाजे के सामने पानी लग गया, जिसमें दूर खड़े शीशम के वृक्ष का प्रतिबिम्ब काँपने लगा, जो बीच–बीच में हवा और तेज होने के कारण पानी में ही घुल–मिल जाता। कुछ बकरियाँ, कुत्ते और गदहे दीवारों से सटकर खड़े थे।"[55]

ध्वन्यात्मकता

अमरकांत जी ने अपने उपन्यास साहित्य में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया है। ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से उनके उपन्यास जीवंत हो उठे है। कुछ उदाहरण उद्धृत हैं –

"सुन्नर पांडे की पतोह ने **खर–खर** हँसते हुए कहा, जीओ ...... इतने बड़े हो जाओ।"[56]

"सरोजबाल ने एक कोने में रखे फ्रिज से बोतल निकालकर **हकर–हकर** पानी पिया।"[57]

"उसने तो चाय भी नहीं पी थी और उसका पेट **गुड़–गुड़** बोलने लगा। श्यामाप्रसाद की सांसों की हल्की **खर–खर** आवाजें मच्छरों की **भन–भन** के साथ मिलकर कभी–कभी उसके अंदर गुस्सा उत्पन्न कर देतीं .....।'[58]

"बिल्ली घुसी हो या बाधिन, तुमसे मतलब? तुम तो **फों–फों** सोने में ही मस्त थे ....।"[59]

"खट् की आवाज हुई और सारा पानी रकिया के शरीर पर।"[60]

"वह छोटी बच्ची को गोद में लेकर खूब उछलती रही और अपने पोंपले मुँह को चियार कर **खीं–खीं** हँसती रही।"[61]

"**ढबर–ढबर** बाजा बज रहा था।"[62]

"हमारी चप्पलों की **फट–फट** की आवाज ऐसी लग रही थी, जैसे हृदय पर कोई हथौड़े की चोट कर रहा हो।"[63]

"पानी पीट रहा था। **झम–झम–झम–झम–झम–झम–झम–झम**। कभी–कभी जोर से बिजली कड़क उठती। उर्मिला की माँ की नाक अब भी **खर्र–खर्र खों** कर रही थी।"[64]

"इसी वक्त बाहर से **खट–खट** की आवाज हुई।"[65]

"इसके बाद दूसरी ओर से एक काला, नाटा नौजवान पढ़ाते हुए आया **डू–डू–डू–डू–डू**......."[66]

"खाते समय यदि किसी के मुँह से आवाज निकलती **चप–चप, चापुड़–चापुड़ या सुड़–सुड़** तो वह क्रोध से देखकर दूसरी ओर मुँह कर लेता अथवा वहाँ से उठकर चला जाता।"[67]

"रात अँधेरी थी, गर्मी और उमस की सीमा नहीं पसीने की गंध, तरह–तरह की पगध्वनियाँ, दम लगाने के समय काँखने–कूँखने के अस्फुट शब्द, **धम–धम, थप–थप, भड़–भड़** 'उठा लऽ', 'बच के भाई', 'कोनिया के निकल जाइऽ' जैसी हिम्मत बाँधने वाली टिप्पणियाँ।"[68]

'उसने पहले ऊँट की तरह मुँह को उठाया जैसे आकाश को निहार रहा हो, फिर उसको जोर से झुकाते हुए बोला, **"आऽऽछीं**। उफ, बड़े जोर का जुकाम हो गया है, मालूम होता है लौकी खाने से ऐसा हो गया है।"[69]

इस प्रकार अमरकांत जी ने अपने उपन्यास साहित्य में ध्वन्यात्मक भाषा का प्रयोग कर अनेक अव्यक्त ध्वनियों को शब्दबद्ध किया है। उनकी सूक्ष्म निरीक्षण–शक्ति, अद्भुत है, जिसके माध्यम से वे ध्वान्यात्मक शब्दों द्वारा प्रभावोत्पादक ढंग से चित्र खड़ा करने में पूर्णतः सफल हुए है।

6.3 शब्द–प्रयोग

शब्द का अर्थ – उच्चारण की दृष्टि से ध्वनि भाषा की लघुतम इकाई है, लेकिन सार्थकता की दृष्टि से शब्द को यह स्थान प्राप्त है। इसलिए भाषा को शब्द व्यापार कहा गया है। शब्द ही विचार और अनुभूति को अभिव्यक्त करते है। शब्द ही भाषा में ध्वनियों के अर्थ वैभव और चमत्कार देते है। शब्द ही मनुष्य की वाणी को अन्य प्राणियों की ध्वनियों से भिन्न करते हैं। शब्द ही अक्षरों को सहेजकर पद और वाक्य में बदलते है।

परिभाषा

"पतंजलि ने अपने महाभाष्य में सूचित किया है कि लोक व्यवहार में जिस ध्वनि से अर्थ का बोध होता हैं, वह शब्द है। पतंजलि ने यह भी बताया है कि मुख से उच्चारित, कान से श्रुत, बुद्धि से ग्राह्य और प्रयोग से स्फुरित होने वाली आकाशव्यापी ध्वनि शब्द है।"[70]

"वर्णों के सार्थक मेल को शब्द कहा जाता है।"[71]

"दूसरे शब्दों में सार्थक ध्वनि या ध्वनि समूह ही शब्द कहलाते है।"[72]

शब्द–प्रयोग – "किसी एक भाषा में दिखाई पड़ने वाली बात असाधारण शब्द–योजना या प्रयोग है।"[73]

प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार किसी भाव की अभिव्यक्ति हेतु शब्दों का चयन ही शब्द प्रयोग अथवा शब्द–योजना है। अमरकांत ने अपने उपन्यासों में तत्सम, प्रादेशिक, अंग्रेजी, अरबी–फारसी, मुहावरों, कहावतों इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने अपशब्दों, सूक्तियों तथा आलंकारिक शब्दों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। उनकी शब्द संज्ञा विपुल है।

तत्सम शब्द

"तत्सम शब्द संस्कृत भाषा के दो शब्दों तत्+सम से मिलकर बना है। तत् का अर्थ है – उसके तथा सम् का अर्थ है – समान। अतः कहा जा सकता है कि – "संस्कृत भाषा के वो शब्द जो हिंदी भाषा में ज्यों–के–त्यों लिए गए है, तत्सम शब्द कहलाते है।"[74]

"मानक हिंदी कोश' में तत्सम शब्द की परिभाषा के विषय में लिखा है कि 'किसी भाषा का वह शब्द जो किसी दूसरी भाषा में अपने मूल रूप में चलता हो।"[75]

अमरकांत ने अपने उपन्यासों में प्रसंगानुसार कई स्थानों पर तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है –

"अनुकूल **श्रोता** पाकर उसकी **सम्भाषण** शक्ति असाधारण रूप से बढ़ गई थी।"[76]

"वह **पवित्रता** और **कर्मठता** की जिंदगी व्यतीत करना चाहता है।"[77]

"वह शंकर के व्यवहार से मन–ही–मन खुश तथा उसके प्रति अत्यधिक **कृतज्ञ** हो गए थे।"[78]

"पहले उन्होंने दुर्गावती नांमक महाकाव्य से कुछ **अंश** सुनाया, जिसमें आए **'तडित'**, **'शोणित'**, **'खड्ग'** .... **'रूण्ड–मुण्ड'** आदि शब्दों से लोग बहुत ही प्रभावित हुए।"[79]

"माताजी मेरी **धृष्टता** के लिए मुझे माफ कीजिएगा।"[80]

"उन्होंने किसी मँजे हुए कूटनीतिज्ञ की तरह **प्रतीक्षा** करना **श्रेयस्कर** समझा था।' .... उनका विचार **पूर्णतया विद्रूपात्मक** था।"[81]

"वह **एकाग्रता** से **विनय** की **दृष्टि** की **प्रतीक्षा** करती थी .... वह मुस्कराहट **स्वतः** लुप्त भी हो जाती थी।"[82]

"वह अपनी **अहम्मन्यता** तथा **अकर्मण्यता** में यह सोचता रहा कि खूब खाने–पीने से लखना अच्छा हो जाएगा।"[83]

"मैं उनके **आकस्मिक** और **अप्रत्याशित** आगमन से कुछ **संकुचित** हो उठा।"[84]

"**सम्भवतः** रविवार का दिन था।"[85]

"मेरा **हृदय** एक अजीब क्रोध और **वितृष्णा** से भर गया।"[86]

"मैं अपने उल्लास में **विजड़ित** वहीं बैठा रहा .... **आत्मतोष** के लिए यह मेरा कल्पना मात्र थी।"'[87]

"उसके मुख पर **पृथकत्व**, अछूतेपन, **निर्दोषता** और **पवित्रता** के भाव निखर उठते ...... एक रोज कोई **अप्रत्याशित** घटना घटेगी।"[88]

"मुझे लगा कि इसमें **सत्यांश** है।"[89]

"**गर्वान्वित** और **आह्लादित** हो उठा था।"[90]

"**स्नेहयुक्त दृष्टि**, **शीघ्रता, भीत–दृष्टि, स्नेह–विव्हल, आंलिग्न–पाश, गत्यावरोध, उद्वेलित**।"[91]

"**प्रशंसा, आत्मीयता** या **दुःख–संवेदना** प्रकट करते समय वह सर्वोच्च बुलन्दी पर पहुँच जाते और उनकी आँखें भर आती तथा **कंठ अवरूद्ध** होने लगता।"[92]

"क्या यह **संयोग** है, क्या इसी को भाग्य कहते है? इसका तो अर्थ यही हुआ कि कोई प्रभावशाली एवं शक्तिशाली व्यक्ति इसे नहीं बनाता और उस पर अपना **वरदहस्त** नहीं रखता और आज वह सजग और सचेत है, उसके अन्दर **अद्‌भुत** आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया है और हर पल जैसे उससे कोई कह रहा है कि तुम्हारे भीतर महानता के **विलक्षण** गुण है जो तुम्हें **उच्चतम** शिखर पर ले जाएँगे।"[93]

अरबी–फारसी

अमरकांत ने आम जनता के बीच से भाषा का चुनाव किया है। इसलिए जनता की भाषा के वे सारे शब्द उनके उपन्यासों में हमें यथा स्थान दिखाई देते हैं, जो जनता में प्रचलित है। इसमें हमें हिंदी के अतिरिक्त उर्दू, अरबी–फारसी के शब्दों की भरमार मिल जायेगी, जो आम जनता में भारी संख्या में इस तरह घुलमिल गये है कि उन्हें पहचानना मुश्किल है कि वे हिंदी के शब्द है या अन्य भाषा के। ये शब्द आमवर्ग में सुविधा से बोले जाते हैं। इसलिए उपन्यासकार ने इनका प्रयोग अपने उपन्यास में सहजता से किया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है –

"वह **दफ्तर** में काम करती है, ...पुरूष से **बहस–मुबाहिस** करती है, कोई अन्याय **बरदाश्त** नहीं करती।"[94]

"वह उनकी बहुत **इज्ज़त** करता रहा था।"[95]

"उसकी पत्नी ने फिर भी उससे **काफी जिरह** की थी।"[96]

"**दरअसल** वह उसको प्यार करती है और उस प्यार के लिए **कुर्बानी** भी कर सकती थी।"[97]

"वह **तकल्लुफ** कहने नहीं आता था।"[98]

"परन्तु इन गालियों का भी उन पर कोई **लिहाज़** नहीं था।"[99]

"**शहर** के कौन–कौन से **रईस इशतरगंज** जाते है।"[100]

"इन बातों का वह **शोख़ लापरवाही** के साथ बयान करते।"[101]

"ऐसा लग रहा है कि यह जिन्दगी **खाक़** में मिलने के लिए हैं, किंतु मुझे जरा भी **अफ़सोस** नहीं।"[102]

"मैंने अपने गुस्से का **इज़हार** किया।"[103]

"मेरे शरीर में एक अजीब **दहशत** ..... छाने लगी।"[104]

"इस पर **मदहोशी**–सी छा गई।"[105]

"हमारा तो **इज्ज़त–आबरू** और **तहज़ीब** वाला **ख़ानदान** है, यहाँ ये **बग़ावती नामाकूल** बातें कोई भी **बरदाश्त** नहीं करेगा।"[106]

"**बहरहाल**, उस समय बड़ी **राहत महसूस** की गई .... इस गाड़ी में अगर किसी **मुसाफिर** को कोई गाली भी देनी होती है तो सिफ **'बदतमीज'** ही कहता है।"[107]

"देखते ही देखते उस विशाल, साफ–सुथरे **बैठकखाने** में **'चुनांचे', 'दरख्वास्त', 'कत्ल', 'फैसला'** आदि **नुक्ता, बेनुक्ता** वाले **उर्दू** के शब्द तैरने लगे।"[108]

"वाहियात बात! कलक्टर सुरेश्वर प्रसाद ने गुस्से से अपनी पत्नी को देखा।"[109]

"**कचहरी** में **मुकदमा** चला नहीं।"[110]

अंग्रेजी

अमरकांत के उपन्यासों में अग्रेंजी के शब्दों तथा वाक्यों का प्रयोग पात्र एवं विषयानुरूप हुआ है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित है –

"इसकी तो आदत है **नान–सीरियस** बात करने की।"[111]

"**यूनिवर्सिटी** में पढ़ती हो तो दिमाग जमीन पर थोड़े ही रहता है।"[112]

"**आई वांट टू बी ए मिलिटरी मैन**।"[113]

"आपको मालूम होगा कि मेरे बड़े लड़के मानवेन्द्र स्वरूप जी सचिवालय में **सुपरिंटेंडेंट** हो गए है।"[114]

"तुम **'प्रेजूडिस्ड'** मालूम पड़ती हो।"[115]

"**कीप क्वाइट**!' वह गुस्से में जल भुन गया।"[116]

"नहीं बुआ, **'वर्ड इज वर्ड'**। मैं **'वर्ड'** दे चुकी हूँ। **टेलीग्राम** देने में देर ही कितनी लगती है! किधर **टेलीग्राफ ऑफिस** है?"[117]

"कई **'कम्पलीकेशन्स डेवलप्ड'** कर गए थे।"[118]

"मुझे **लिटरेचर** से बहुत प्रेम है। मैं तो आगे चलकर **राइटिंग** में भी कुछ करना चाहती हूँ। मैं अभी से '**फिक्शन**' बहुत पढ़ती हूँ। मुझे **अगाथा क्रिस्टी** और **पीटरी चीनी** के **'नावल्स'** बहुत पसंद है।"[119]

"मैं **बी.ए. फर्स्ट ईयर** में थी, तो अक्सर **यूनिवर्सिटी** जाती ही नहीं थी। बाद में कुछ **'परसेंटेज शार्ट'** हुआ था, **फाइन–वाइन** देने से सब ठीक हो गया था।"[120]

"आई डू नाट लाइक दिस हैबिट'.......... 'यू हैव गॉट फीवर।"[121]

"वहाँ कुछ **'मार्केटिंग'** करके किसी **रेस्तराँ** में भोजन करेंगे, **सैंकड शो सिनेमा** देखेंगे और फिर वापस लौटेंगे। **डू यू अंडरस्टैंड'?** .... ओ अनूप, **फार गॉड सेक डोंट रिफ्यूज़**। ....**'आई विल बी ऐंगरी विद यू**।" .... [122]

"उसने **इंटरमिडिएट** की शिक्षा प्राप्त की थी।"[123]

"बड़े सरकार किसी **सोल एजेन्ट** की तरह बोले।"[124]

"प्रान्त में उनकी आठवीं **पोजीशन** थी।"[125]

"**माई ग्रेट मम्मी, आई एम हैप्पी, द हैपिएस्ट मैन इन दिस वर्ल्ड....** ।"[126]

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास अमरकांत जी का सन् 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन पर केन्द्रित एक देशव्यापी उपन्यास है। इसमें एक अंग्रेजी अफसर नेदसोल का कथन अंग्रेजी–हिंदी मिश्रित है।

"गोली मार दो ...... **शूट हिम**।' नोदरसोल चिल्लाया। **देन टेक हिम अवे** .... ले जाओ इसे।"[127]

"**वेल डन** .... **गो ऑन**। "**वॉटर** ....।"[128]

"नम्रता गुस्से मे **मजिस्ट्रेट** से कह रही थी।"[129]

"यद्यपि वह **इंटरमिडिएट** के इम्तहान में .... तो आज **एम.ए.** में होता, तथापि **बी.ए. फाइनल** की छात्रा को जब **गाइड** ....।"[130]

इस प्रकार अमरकांत जी ने अपने उपन्यास साहित्य में अग्रेंजी का प्रयोग प्रसंगानुसार किया है।

प्रादेशिक शब्द

आधुनिक रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में स्थान–विशेष से संबंधित शब्दावली का प्रयोग किया है। अमरकांत का शब्द–भंडार समृद्ध है। इसका कारण उनके जीवनानुभवों का संबंध ग्रामीण और शहरी दोनों परिवेशों से होना है। अपने उपन्यासों में यथार्थता लाने के उद्देश्य से तथा भाषा में चमत्कारिक आकर्षण पैदा करने हेतु उन्होंने प्रादेशिक शब्दों का कुशलता से प्रयोग किया है।

"सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में अभिवादन हेतु प्रयुक्त शब्द– **'गोंड़ लागीं पँडाइनजी।"**[131]

"तबीयत **फरहर** है ना? .... बाद में उसके सिर पर तेल **चाँतने** लगी।"[132]

"हाँ ए **दुल्हिन**, बाहर **ओसारे** में **बँसखट** बिछा देना,"[133]

"मर्द से ही तो स्त्री की **जिनगी** है ..."[134]

"कहते है – **"अमवा मोजर गइल, लगले टिकोरवा** से, दिन–पर–दिन **पियराई हो विदेसिया**। एक दिन **अइसन जुलुम क आंधी आइहें**, **डार–पार लिहले भरमाई हो विदेसिया**।"[135]

"अरे **बबुनी** यह **घोड़मुंही** बहुत मनहूस है।"[136]

"क्यों रे, यहाँ तुझे **भोटइनी** छा गई है।"[137]

"कान्ति ठीक से सजाए गए **बिस्तरे** पर **पैतानें सिकुडकर** बैठी थी।"[138]

ग्रामसंविका उपन्यास के अधिकांश पात्र देहाती और अनपढ़ है, इसलिए उनकी भाषा में तद्‌भव तथा देशज शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। गाँव की औरतें जब दमयंती के विषय में वार्तालाप करती है, तो वह गाँव की ठेठ देहाती भाषा का ही प्रयोग करती है – "**बाबा रे** किस तरह **लचक** कर चलती है। **लाज हया** घोलकर पी गई है। मर्दो से किस तरह **मटक–मटक** कर बोलती है। उस दिन बिलाक के अफसर आए थे, तो बेशर्म की तरह न मालूम क्या **गिटपिट–गिटपिट** कर रही थी। पूरी आवारा है, आवारा! सत्तर चूहे खाकर बिल्ली हुई **भगतिन** धर्म नाशने आई है **मुँहजली**।"[139]

'अच्छा–अच्छा अपना **गियान** दूसरी जगह **बघारना**।'[140]

'**बाप रे कपार** तो आग की तरह जल रहा है। उठो–उठो, यहाँ हवा में मत बैठो। ऊपर चलो **बिछौना** लगा देती हूँ। वहीं लेटो। **खराई सेवराई** हो गई होगी। बार–बार कहती हूँ समय पर मुँह में कुछ डाल लिया करो ...... पर मेरी तो कुत्ते की तरह हालत है, **भूकँती** रहती हूँ .... कौन सुनता है .... कन्हैया, **बबुआ** की **खाट** ऊपर पहुँचा दे।"[141]

"**ए बबुआ आसमा तऽ सबमें बडुएस**? **गाय–गोरू, चील–कौवा, फतिंगा**, **कपड़ा–लत्ता** सभी में।"[142]

'पास में बैठी उसकी दादी जीरादई ने पूछा, **कौन दुःखे ए बाबू** यह सब खाओगे? पेट के रोगी या, **बूढ़–मुरनिया** हो या **साधु–फादू**? इससे तो देह गिर जाएगी। **मरद–मानुष** को दौड़–धूप करनी होती है, दुनियां से लड़ना पड़ता हैं, उसे तो **रूखा–सूखा, तर–चिकना** जो कुछ मिले, खूब **हबककर, भकोस–भकोसकर** खाना चाहिए।'[143]

लोकोक्तियाँ

"लोकोक्ति, लोक जीवन की सिद्धियों की अभिव्यक्ति है, इसमें वाचक अर्थ की अपेक्षा लक्ष्यार्थ की प्रधानता होती है। यह लोक जीवन के व्यापक अनुभवों को सामान्य शब्दों के माध्यम से प्रकट करती है।"[144]

दूसरे शब्दों में "विभिन्न प्रकार के अनुभवों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा कथाओं, प्राकृतिक नियमों और लोक विश्वासों आदि पर आधारित चुटीली, सारगर्भित, सजीव संक्षिप्त, लोक प्रचलित ऐसी उक्तियों को लोकोक्ति कहते है, जिसका प्रयोग बात की पुष्टि या विरोध, सीख तथा भविष्य कथन आदि के लिए किया जाता है।"[145]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अपनी बात की पुष्टि हेतु रचनाकार लोकोक्तियों का प्रयोग करता है। यह जनता की उक्ति होती है। लोगों द्वारा कही गई यह उक्तियाँ लोकोक्ति कहलाती है। अमरकांत जी ने अपने उपन्यासों में इन लोकोक्तियों का प्रयोग यत्र–तत्र बड़ी कुशलता से किया है। उदाहरणार्थ–

"अरे नहीं बहन यह बड़ा कड़ा दंड है। **कहीं केकड़ी के चोर को कटारी से मारा जाता है**?" सुमित्रा ने अब भी मजाकिया ढंग से ही कहा।"[146]

"खूब कहती हो, क्या यह नहीं सुना – **दूबर की मेहरारू गाँव भर की भौजाई**?"[147]

"सुना है कि नहीं – **पांचेआम, पचासे महुआ, तीस बरिस पर इमली का फहवा** ...."[148]

"ए बहिनी, **भिखरिया का विदेशिया** सुना है कि नहीं?"[149]

"मैं शुरू से ही भूंकती आई हूँ आपको बाहर लोगों से मिलना–जुलना होता है, आप अपनी चीजें ठीक रखिये। **भेष से ही भीख मिलती है**।"[150]

"**सीधे का मुँह कुत्ता चाटता है**।"[151]

"ऐहे! **उल्टे चोर कोतवाल को डाँटे**।"[152]

"**दाई से पेट छिपाने से कोई लाभ नहीं**।"[153]

"**दीवार के कान होते है**।"[154]

"**बूढ़ा तोता कुछ भी नहीं पढ़ सकता**।"[155]

"**भेष से ही भीख मिलती है**।"[156]

"तुमने वह कहावत सुनी होगी कि **जो चीजें चमकती है वे सभी सोना नहीं होती**।"[157]

"**आप तो राजा हरिश्चन्द्र के अवतार है**।"[158]

"**सत्तर चूहा खाकर बिल्ली हुई भगतिन**।"[159]

"घर पर तो उसके बाबू **फूल की छड़ी से भी नहीं छूते** उसको।"[160]

"ध्यान रहे कि **बात चिराई का पूत भी न जानने पाए**।"[161]

"**उसके पेट में वित्ता भर की छुरी है** जी!"[162]

"कहा भी है कि **बनिया का जी धनिया**। डरपोक और काहिल कभी शासन का काम कर सकता है?"[163]

"**सोनार की सौ और लोहार की एक**।"[164]

"कहा भी है कि **गीदड़, की जब मौत आती है तो वह शहर की ओर जाता** है।"[165]

"तुम लोग चाहती हो न कि **हर्रे लगे न फिटकरी और रंग चोखा का चोखा**।"[166]

"तुम **जिस पत्तल में खाते हो, उसी में छेद कर रहे हो**!"[167]

"यह सभी जानते हैं कि **कानी कुतिया बहुत भौंकती है**, इसलिए तुम इतना गरज–तड़प रही हो।"[168]

"कहा भी गया है, **बड़ा कौर बड़ा दौर**।"[169]

"**वाण, वाण गए, नौ हाथ का फाहा ले गए**।"[170]

"अच्छा तो **मेढ़की को भी जुकाम हो रहा है**।"[171]

"**मूस मोटइहें लोढ़ा हो रहे**।"[172]

"**खर को कहा, अरजगा लेपन, मरकत भूषन अंग**?"[173]

"**घोड़ा घास से यारी करेगा, तो खाएगा क्या**?"[174]

मुहावरे

मुहावरे मूलतः अरबी भाषा की देन है। जिसका सही–सही अर्थ केवल वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही जाना जा सकता हैं। वस्तुतः "मुहावरे का जन्म स्थान गाँव है। साधारणतः ग्रामीणों की बोलचाल में मुहावरे इस तरह घुले–मिले रहते है कि उनकी बातचीत से उन्हें निकालना असम्भव है। गाँव का साधारण सा व्यक्ति भी मुहावरों का प्रयोग जाने–अनजाने करता है। मुहावरे के प्रयोग से भाषा में बोधगम्यता, सरलता, सरसता, चमत्कार और प्रवाह उत्पन्न होता है। मुहावरे का शब्दार्थ नहीं, उसका अवबोध अर्थ ही लिया जाता है।'[175]

मुहावरे के प्रयोग के विषय में डॉ. हरदेव बाहरी विवेचना करते हुए लिखते हैं – "मुहावरों में विशद, चित्रात्मक तथा प्रभावशाली अर्थ की सत्ता होती है। मुहावरे में अमूर्तता की अपेक्षा मूर्तता, व्याकरणिक व्यवस्था की अपेक्षा सामाजिकता, तर्क की अपेक्षा शक्ति की प्रधानता होती है। मुहावरे भाषा की यौवनसम्पन्न शक्ति और समर्थता के प्रतीक होते है।"[176]

अमरकांत जी ने उपन्यासों की भाषा तथा कथ्य को प्रभावशाली बनाने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया है। रूढ़, लाक्षणिक प्रयोग होने के कारण मुहावरों में पर्याप्त अभिव्यंजक शक्ति होती है। साधारणतः भावावेश में सजीवता प्रकट करने के लिए, हास्य–व्यंग्य को प्रभावी बनाने के लिए तथा अभिव्यंजना में सौंदर्य आदि लाने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। उपन्यासों में स्थान–स्थान पर मुहावरों के सफल एवं सार्थक प्रयोग दिखाई पड़ते है। वास्तव में ग्रामीण व आंचलिक मुहावरों के प्रयोग से उनके उपन्यास यथार्थ प्रतीत होते है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है –

"लड़के जिस कौतुक और धैर्य से देख रहे थे, वह प्रशंसनीय था। **सभी कोइरी का देवता बने हुए थे**।"[177]

"उसकी बात पूरी हो और वह कोई कार्रवाई करे, उसके पहले ही वे दोनों बदमाश **नौ–दो ग्यारह हो गये**।"[178]

"औरत की इज्जत तो स्वयं उसी के हाथ में होती है, कोई घूरता है तो उधर देखो ही नहीं, आखिर देखने वाला **अपना ही दीदा खोएगा**।"[179]

'पराई डाल का पंछी' उपन्यास में टंडन मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करता है – "कुमार जी, यह सब मैं नहीं कहता, लेकिन तुम मेरे पीछे पड़ गये इसलिए मैं भी **कुछ उठा न रखूंगा**। .... मैंने तुम्हें जानबूझ कर छोड़ा। यह सोचकर कि अगर तुम **हेन–तेन करोगे** तो तुम्हारा **भंडाफोड़ करूँगा**। ... मैं तो अच्छी तरह जानता हूँ कि जहाँ तक विचारों का सवाल है तुम **बेपेंदी का लोटा** हो।" .... कई बार तुमको यह **डींगे मारते** सुना है कि तुम दूसरों के **मन की बात बहुत जल्दी समझ जाते हो**।"[180]

"बहुत कुछ हद तक वह कंजूस भी था और **पैसे को दांत से पकड़ता**।"[181]

"यह एक नंबर की छटी हुई औरत है। **सत्तर घाट का पानी पी चुकी है**।"[182]

"अब यह **राग न फैलाओ**, दीपक ने गम्भीरपूर्वक कहा।"[183]

"दीप्ति **अँधेरे घर का चिराग** थी।" ...... विशेष रूप से वह अपने बाप की **आँख की पुतली** थी।"[184]

"उसके **दिल में गज–भर का छुरा** है, जिससे वह घनिष्ठतम् सहेली का गला रेत सकती थी।"[185]

"जब मैं दूर रहूँगी तो चाहे जो कुछ करे, पर **जिन्दा मक्खी मुँह से नहीं निगली जाती**।"[186]

"**साँप को कितना भी दूध पिलाओं, वह डसना छोड़ नहीं सकता**।"[187]

"हम लोग भी खेल के हर फ़न में उस्ताद थे, अब तक **भाड़ नहीं झोंकी** थी।"[188]

"यहाँ से चोरी करके तुम भाग गये तो मैं **खून का घूँट पीकर रह गया**।"[189]

"उन्होंने **टेढ़ी ऊँगली से ही निकालने** की बात सोचकर कर्जे की बात कही थी।"[190]

"जरूर **कुछ दाल में काला** है।"[191]

"अगर मुझे कुछ हुआ होता तो वह **जमीन–आसमान एक कर देती**।"[192]

"उसको देखकर **मेरा कलेजा मुँह को आता था**।"[193]

"दिन रात वह काम में **कोल्हू के बैल की तरह जुटी रहती**।"[194]

"इस मर्द का भी **कान कच्चा** है, माँ जो **लहरा देती है**, उसी पर ये विश्वास कर लेते है।"[195]

"इसने तो खुले आम सारे गाँव की **नाक कटा दी**।"[196]

"**दुनियाँ में बहुत से पापड़ बेले हैं**, इसलिए वह बहुत कुछ जानता है।"[197]

"हमारे यहाँ तो **उल्टी–गंगा बहती है**।"[198]

"मैं क्या जानती थी कि **साँप के बच्चे को दूध पिलाकर पाल रही हूँ**।"[199]

"तब ऐसे लोग **गधे के सिर से सींग की तरह गायब थे**।"[200]

"मैं उसको कतई सहन न करूँगा, बल्कि **ईंट का जवाब पत्थर से दूँगा**।"[201]

"इस लड़के ने तो **नाक से पानी पिला दिया** है।"[202]

"ऐसे वक्त बोलते उसकी **जबान कैंची की तरह चलती है**।"[203]

"बेगम ने यह **बेवक्त की शहनाई क्या बजानी** शुरू कर दी।"[204]

"औरतों के आँचल से बँधने पर **गदहपचीसी का भूत उतर जाएगा**।"[205]

"**अपनी–अपनी ढपली और अपना–अपना राग**।"[206]

सूक्तियाँ

अर्थ – "अच्छे और सुंदर ढंग से कही हुई कोई बढ़िया बात सूक्तियाँ कहलाती है।"[207]

डॉ. योगेश गोकुल पाटिल के मतानुसार "सूक्ति जीवन के अनुभव का निचोड़ होती है। वह लेखक की प्रतिभा, चिंतन और अनुभव का उदाहरण होती है।"[208]

अमरकांत जी के उपन्यासों में अंकित सूक्तियाँ उनके जीवानुभवों का आंशिक रूप है। यह सूक्तियाँ उनकी विचाराभिव्यक्ति को अभिव्यक्ति करने में विशिष्ट महत्त्व रखती है। जो इस प्रकार है –

"असली चीज तो गुण है ... आत्मा है जो शरीर के अंदर रहती है, वह कुरुप कभी नहीं होती, उसे ही देखना चाहिए।"[209]

"स्त्री और पुरूष, सभी तो इन्सान ही है .... जिस तरह पुरूष को स्वाभिमान से जीने का अधिकार है, ठीक उसी तरह और उतना ही अधिकार स्त्री को भी है।"[210]

"दो दिन की जिनगी है, कौन किसका है? सबको तो आखिर में कृष्ण मुरारी के यहाँ जाना ही है।"[211]

"सबसे अधिक नैतिकता की बात यहाँ की जाती है और सबसे अधिक नैतिक पतन इसी देश का हुआ है।"[212]

"असल बात यह है कि घर गृहस्थी अकेले नहीं चलती, उसमें दोनों की मदद चाहिए।"[213]

"इंसान के गुण या अवगुण उसके चेहरे पर अंकित हो जाते हैं।"[214]

"बच्चा आग को छूकर ही आग के खतरे से अवगत होता है, इसी तरह कलाकार भी जीवन की हर साँस का अनुभव करना चाहता है।"[215]

"प्यार एक दिमागी चीज़ है, यदि दिमाग दूसरी ओर मोड़ लिया जाए तो प्यार अपने ही आप हट जाएगा।"[216]

"मैं सदा आगे बढ़ने को ही जिंदगी मानती हूँ।"[217]

"पशुता इन्सानियत की हत्या कर देती है।"[218]

"मैं अब अच्छी तरह कह सकती हूँ कि साहस के बिना इन्सान की बड़ी–से–बड़ी खुशी खत्म हो सकती है।"[219]

"अगर हमारी नीवं पक्की रहेगी तो इमारत भी मजबूत बनेगी।"[220]

"कूटनीति तो तलवार की ऐसी धार है, जिस पर चले बगैर कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता।"[221]

भदेश शब्दावली

भदेश के लिए अशुभ शब्द, दुर्वचन, अपशब्द, बिगड़ा हुआ शब्द, निहित शब्द तथा गाली गलौच आदि शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। भदेश शब्दावली का प्रयोग परिवेश तथा पात्रों के अनुरूप होने से साहित्य यथार्थ धरातल पर खरा उतरता है।

अमरकांत जी के साहित्य में भदेश भाषा का प्रयोग यत्र–तत्र दिखाई देता है। उन्होंने समाज में अन्तर्विरोधों और विसंगतियों पर आक्रोश व्यक्त करते हुए कहीं–कहीं भदेश भाषा का प्रयोग किया है, जो कि साहित्यिक दृष्टि से अनुचित माना जाता है। वस्तुतः यथार्थ साहित्य में भदेश शब्दावली प्रतिहिंसा और घृणा की सशक्त अभियक्ति और अनुभूति हेतु अनायास ही समाहित हो जाती है। साहित्य में यथार्थता के दर्शन हेतु परिवेश और आक्रोश के क्षणों में प्रचलित किसी भी अभद्र शब्द का प्रयोग रोका नहीं जा सकता है, चाहे वह किसी भाषा का हो या किसी भी क्षेत्र विशेष का। उनके उपन्यासों में भदेश शब्दावली का प्रयोग पात्रों व परिवेश को प्रभावशाली बनाने में परिलक्षित हुआ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है –

"ऐसी बात सुन्नर पांडे की पतोह बर्दाश्त नहीं कर सकती, फौरन बिगड गई, यह क्यों पूछ रहा है रे **मुहझौंसा**? जाकर अपनी महतारी से क्यों नहीं पूछता?"[222]

"अरे अपना आदमी भी नाम नहीं लेता .... मुँह से हमेशा **हरामिन, चोट्टिन** निकालता है .....।"[223]

"खूब कहती हो बहिनी, हमारी तरह **बनेच्चर**, **सियारिन** औरत कहीं छुट्टा **बिगडैल सांड** को समझा सकती है। "सींग पर चढ़ाकर ऐसा फेंकेगा कि **लेदा–गोदा** सब निकल जाएगा।"[224]

"दीपक ने उसकी भावनाओं की कद्र, कभी नहीं कि बल्कि खरीदी हुई **लौंड़ी–बाँदी** समझता था।"[225]

"पर बबुनी इस **हरामजादी** को घर में अधिक न घुसने देना। ये है **कमीने**, अपना पानी तो भरेंगे ही फिर दूसरों को साथ लेते आएँगें।"[226]

"वह गरज पड़े, "अच्छा रह, **कमीनी–कुतिया** कहीं की।"[227]

"अगर इस **चुडैल** को मालूम हो जाएगा तो यह छाती पर बैठकर उसका खून पी जायेगी। ऐसी **जालिम औरत** है यह।"[228]

"अरे यह **कोडिन** जिस घर में जाएगी, उस घर को चौपट कर देगी।"[229]

"यह किराएदारिन **हरामजादी** अपने को सोलह साल की **लौड़िया** समझती है।"[230]

"तुम तो इतने **नमकहराम** हो कि जिस माँ ने तुम्हारे साथ इतना कुछ किया, उसके रूपए लेकर भाग गए।"[231]

"**रंडी छिनाल** ने मेरी बेटी की जिन्दगी खराब कर दी।"[232]

"यह **हरामजादी** ग्रामसेविका लोगों की मति मूड रही है। **उसको कोढ़ पड़े, उस पर लकवा गिरे, उसको काली मैया उठा ले जाएँ**।"[233]

"वह गरज पड़ा, "तो वहाँ तू क्यों जाता है रे **हराम के बच्चे**।"[234]

"अरे हट! मैं रंडी–मुंडी नहीं हूँ कि नाचती फिरूँ।"[235]

"चुप कुतिया! **कमीनी**! आज से मैं तेरा मुँह नहीं देखूँगा।"[236]

"माँ चिल्ला रही थी, "निकल यहाँ से **मुँहजली**, तू मेरे घर में आग लगाने आयी है **हरामजादी**! जिन्दा गड़वा दूँगी! .... **हरामजादी, वैश्या कहीं की**।"[237]

"**अरे नन्हका! साला! हरामजादा**! ठहर, आज मै तेरा खून पी जाऊँगा। **हरामी का पिल्ला** .... **अबे साले**, कहाँ भाग रहा है? .... मारते–मारते भुरकुस निकाल दूँगी। **कमीना, कुत्ता कहीं का**।"[238]

"**क्यों रे हरामजाद**! यहाँ क्या कर रही थी? पैदा होते ही तेरा गला क्यों नहीं दबा दिया? **कुलबोरनी, कलमुँही** .... । चीखते शर्म नहीं आती? **हरजाई कहीं की**। .... **हरामजादी**, सब लाज धोकर पी गई है। **चलचुडैल**, मैं तेरी सारी गर्मी झाड़कर रख दूँगी।"[239]

"अरे **हरामजादा**, **सूअर, अंग्रेजो का कुत्ता**, तेरी यह मजाल! तुझे अपनी माँ, बहन, बेटी दिखाई नहीं देती?"[240]

"अरे, दरवाजा खोल रे, **चोट्टी छिनार**! दूसरे मर्द से गुलछर्रे उड़वाती है। **तोर शरीर गले। कोढ़ निकले, कीड़ा पड़े। तैं हराम की कमाई खात हो।**"[241]

आलंकारिता

आलंकारिकता भाषा में चमत्कार वैशिष्ट्य को बढ़ाता है। यह अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशाली बनाने वाला तत्त्व है। अमरकांत जी के उपन्यास साहित्य मे स्थान–स्थान पर कवित्व की झलक दिखायी देती है। इस दृष्टि से अलंकारों पर उनकी पकड़ मजबूत दिखायी देती है। इनके उपन्यास साहित्य में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में हुआ है। इनके उपन्यास साहित्य में अर्थालंकारों में से सर्वाधिक प्रयोग उपमा का हुआ है। चूंकि उपमा सादृश्य मूलक अलंकारों की आत्मा मानी जाती है। अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में अनेक स्थलों पर कथा के परिवेश में से ही सुन्दर उपमाओं का चयन किया है। उदाहरणार्थ –

"निर्मल आकाश किसी बालक की बड़ी–बड़ी आँखों की तरह नीला, चमकीला और खुशनुमा था।"[242]

"मटमैली साड़ी पहने ओर वैसा ही चादर ओढ़े तथा दाहिने हाथ में एक छोटा सा डंडा पकड़े, दाना चुगते हुए कबूतर की तरह, वह दो–चार कदम चलने पर सिर उठाकर आगे देखती, फिर सिर झुका लेती थी।"[243]

"गद्दी के एक कोने में ही काले भैंसे की तरह एक मुनीम नाक पर चश्मा लटकाए आगे रखे बही–खाते में डूब–उतरा रहा था।"[244]

"मिसिरजी अपने घर के सामने एक झोलर खाट पर बैठे बन्दर की तरह आँखें मलका–मलका कर इधर–उधर देख रहे थे और हर आने–जाने वाले को रोककर खोद–विनोद कर रहे थे।"[245]

"उसका शरीर गर्म तवे की तरह जलता रहता और वह बकझक करती रहती।"[246]

"जब वह थककर हाँफने लगी तो जमीन पर कटे वृक्ष की तरह गिरकर मछली की तरह छटपटाकर रोने लगी।'[247]

'यह कहना तो अतिरंजना ही है कि उसकी वजह से यहाँ की नारी जाति की हालत वैसी ही हो जाती है जैसी बिल्ली के आगमन पर घर के चूहों की ......।"[248]

"वह बहुत धीमें स्वर में सांय–सांय बोलता। जैसे कोई सूखा सत्तू खाये और उसके गले में सरक जाने से जैसी आवाज निकलती है।"[249]

"नौ बजने के बाद उसका क्रोध गायब हो गया था और उसके मन में नाना प्रकार की शंकाएँ बंद कमरे में धुएँ की तरह उमड़ने घुमड़ने लगी थी।"[250]

"दीप्ति शलवार, मुलायम, लम्बी ऊनी कमीज और नीले रंग का स्वेटर पहने थी, जिससे उसका मुख झील में खिले कमल के सदृश प्रतीत हो रहा था।' ...... वह फिर गौरेये की तरह फुर्ती से बाहर चली गई और हिरनी की तरह सिर उचकाकर सशंक दृष्टि से सड़क को निहारने लगी।"[251]

"उसका शरीर बरसाती नदी की तरह था। .... उसकी चाल में हिरनी की तरह फुर्तीलापन था।"[252]

"दीप्ति का जीवन अभी एक ऐसे शान्त सरोवर की तरह था, जिसका जल निर्मल होता है।"[253]

"औरत का प्यार एक पके आम की तरह होता है।"[254]

"शंकर की दृष्टि उस पर पड़े, इसके पहले की वह अँधरे में किसी विषधर सर्प की तरह गायब हो गया।'[255]

'औरत को हमेशा बाघिन की तरह चौकन्ना रहना चाहिए और मर्द को दबाकर रखना चाहिए।"[256]

"दीप्ति की हालत चोट खाई चिड़िया की तरह हो गई।"[257]

"जब उस लड़की को निस्सहायावस्था में किसी दुख से आकुल–व्याकुल देखा तो उसके हृदय में छिपा मातृत्व भाव जमीन को फोड़कर उगने वाले पौधे की तरह प्रकट हो गया।"[258]

"उनकी हालत उस बरसाती नदी की तरह थी, जो तेजी से हरहराती है, समुद्र से मिलने के लिए दौड़ पड़ती है।"[259]

"भीतर से कभी–कभी किशोरियाँ हिरनियों की तरह दौड़कर बाहर आती, ठिठक कर खड़ी हो जाती, सिर उचकाकर देखतीं और अन्त में गौरेया की तरह फुर्र से उड़कर भाग जाती।"[260]

"सारे मैदान में ऐसा शोर मचा जैसे बढ़ी हुई नदी बाँध तोड़कर हर–हराकर दौड़ पड़ी हो।"[261]

"उसका मुख ओस से भीगे गुलाब की तरह दिखाई दे रहा था।"[262]

"वह इस तरह सिकुड़कर बैठी थी, जैसे कोई छोटी गुड़िया हो।"[263]

"उसका स्वस्थ शरीर किसी ताजे फल की तरह दिखाई दे रहा था।"[264]

"आत्मविश्वास मेरे दिल में सवेरे के सूरज की तरह निकल आया था।"[265]

"वह केवल अपने लिए बुरी थी, पर दूसरों के लिए तो उसका जीवन एक ऐसे हरे–भरे वृक्ष की तरह था, जो थके–माँदे मुसाफिरों को छाया देता है।"[266]

"लेकिन इतना सब सोचने के बाद मुझे रजनी के मुस्कुराते चेहरे का स्मरण होता, जैसे राते अँधेरे में चाँद निकल आया हो।"[267]

"उस चेहरे पर बेहद उदासी थी और थी एक व्यथा की कालिमा, जैसे दिन के बाद काली रात चारों ओर फैल गयी हो।"[268]

"अब मेरी हालत उस क्रुद्ध सर्प की तरह थी, जो किसी के प्रहार से घायल हो गया हो।"[269]

"वह दुःख केवल उस जमीन की तरह था, जिसमें कुछ नहीं उपजता, केवल काँटे–काँटे ही उपजते हैं।"[270]

"समानता के इस एहसास ने मुझे एक ऐसे पक्षी की तरह घायल कर दिया, जो शिकारी की चोट खाकर जमीन पर गिरकर तड़फड़ाने लगता है।"[271]

"चिट्ठी वाली बात से उसके अविश्वास की हालत उस साइकिल की तरह हो गई थी, जिसकी हवा धीरे–धीरे निकल रही हो परिणामस्वरूप गति मन्द पड़ गई हो।"[272]

"उसका मुख वर्षा से नहाए फूल की तरह भीगा था।"[273]

"बादल बरसने वाले नहीं, वे घुड़दौड़ में शामिल होने वाले होशियार और तेज घोड़ो की तरह दौड़ रहे हैं।"[274]

"वह ठिगना और मोटा था और उसका मुँह बड़ा या जैसे कोई बड़ी हँडिया हो।"[275]

"उनका मन बहक–बहक कर भाग रहा है, पगहा तुड़ाने को आतुर बाछे की तरह।"[276]

"मक्खियाँ दिन भर आँगन में, ओसारे में और कमरों में इस तरह ही पड़ी रहती, जैसे किसी बादशाह की बड़ी सेना ने पड़ाव डाला हो।"[277]

"मेरी आँखों से इस तरह आँसू गिर रहे थे, जैसे ओरियानी से बरसात का पानी।"[278]

"जिस तरह बरसात में किस्म–किस्म के जंगली घास–पौधे, कीड़े–मकोड़े और फर–फतिगें पैदा हो जाते हैं, उसी तरह स्कूल खुलने पर असंख्य दल बन जाते है।"[279]

"उनका दाहिना पंजा मेरी दिशा में बाँग देते हुए मुर्गें की भाँति आगे लपक आया था।"[280]

"बाप रे बाप' चिल्लाता हुआ वह इस तरह भागा जैसे अचानक एक जोर का डंडा खाकर कुत्ता चीखता–चिल्लाता हुआ भाग खड़ा होता है।"[281]

"देश के क्रान्तिकारी के बलिदान के किस्सों को पढ़–सुनकर यौवन का गर्व एवं आत्मसम्मान सोए शेर की तरह जाग उठता।"[282]

"जिस तरह चौराई चलती है उसी तरह हम शहर के चारों ओर घूमते और अपनी बातों से प्रभावित होकर पानी में नहाए सुग्गे की तरह फूल–फूल उठते।"[283]

"दरवाजे पर मुद्धिम करे रखी गई पुरानी लालटेन की क्षीण रोशनी दुर्बल मनुष्य के शरीर पर छाए पीलिया की तरह कमरे में फैली थी।"[284]

"कंजूस के धन के समान रक्षित उसकी पवित्रता पर मैंने हमला किया था।"[285]

"शर्म से उसका मुँह ईगुर की तरह लाल हो गया था।"[286]

"गुस्सा के मारे उनके मुँह से लफ़्ज तेज़ी से निकल रहे थे, जैसे छेड़ने पर छत्ते से डंक मारने वाली मधुमक्खियाँ।"[287]

"उसका गला पतला और मीठा था और जब वह गाता तो ऐसा लगता जैसे कोई दरिया कल–कल आवाज़ के साथ बह रहा है।"[288]

"खुशी से उसका रोम–रोम चैतन्य हो गया था पानी में नहाई गोरैया की तरह।"[289]

"पगहा तुड़ाकर भागते बछड़े की तरह मन कुलाँचे मारने लगा।"[290]

"ज्यों ही वह कसरत बन्द करके आगे बढ़ा उसका मुखड़ा दिखाई पड़ा, जैसे बादलों से चन्द्रमा निकल आता है।"[291]

"नीलेश ने अवाक होकर देखा कि उसकी आँखों में दो बड़े–बड़े आँसू अटके हुए हैं, फूल की पंखुरियों पर ओस बूँदों की तरह।"[292]

"हजारों श्राताओं की करतल ध्वनि से ऐसा लगता, जैसे कोई छत पीटी जा रही हो।"[293]

"बार–बार वे ही विचार उस पर तितैयों की तरह हमले कर रहे थे।"[294]

"तुम जो भी हो, यहाँ जो रूप तुम्हारा मैं देखती हूँ, वहीं मुझे बहुत प्रिय है। समुद्र की तरह गम्भीर, वज्र की तरह निर्मम और कठोर, चींटी की तरह व्यस्त और परिश्रमी, पाखंड और प्रदर्शन से दूर।"[295]

"वह मुँह फुलाकर बोल रहा था और उसकी आवाज धीमे–धीमे भों–भों निकल रही थी, जैसे ग्रामोफोन का कोई पुराना घिसा हुआ रेकार्ड।"[296]

"बब्बू की अम्माँ का चेहरा अनजान रूखाई से घोड़े की तरह लटक गया था।"[297]

"दाहिनी ओर आम के बगीचे के बड़े–बड़े वृक्ष अंधेरे में कोई षड्यंत्र करते हुए से जान पड़ते थे।"[298]

"उसका गोरा चेहरा ओस में नहाये पुष्प की तरह लग रहा था।"[299]

"अशोक का मुँह खिले गुलाब की तरह हो गया था।"[300]

"फिर ढोलक के थाप पर उनका कोमल समवेत स्वर ग्रीष्म ऋतु की गंगा के जल की तरह लहराने लगा।"[301]

"बेचारे कोठरी के देवता की तरह चुपचाप चार ही बजे उठ जाते है।"[302]

"तुम्हारा शरीर लता बेल की तरह है, उसकी सेवा न करूँ तो मुरझा जाएगी।"[303]

"उसका मन समुद्र की लहरों के तिनके की तरह अनन्त खुशियों में झूमने लगा था।"[304]

6.4 शैली

शैली को निम्नलिखित परिभाषाओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

"शैली अभिव्यक्ति की विशिष्ट पद्धति है, जिसके माध्यम से कोई काम करने अथवा कोई चीज निर्मित, प्रस्तुत या प्रदर्शित करने तथा किसी प्रसंग का प्रस्तुतीकरण, ढंग अथवा तरीका शैली कहलाती है। रचनाकार अपने भावों व विचारों को बोलकर या लिखकर प्रकट करता है, इसके इस विशिष्ट ढंग जिस पर वक्ता या उसके काल, समाज आदि की छाप लगी होती है, उसे शैली कहते है। एक वक्ता की बोली में अभिव्यक्ति के प्रसंग और उद्देश्य के भेद से दिखलाई देने वाले अंतर शैली कहलाते है।"[305]

"अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में रचनाकार का उद्देश्य, जीवन–दृष्टिकोण, आस्था–विश्वास आदि व्यक्त होते है। शैली के माध्यम से ही हमें रचनाकार के सम्पूर्ण जीवन–प्रणाली के दर्शन होते है। शैली ही रचनाकार की सोच, व्यवहार और मूल्य चेतना का प्रतिबिंब होती है। शैली ही व्यक्तित्व–विशेष की परिचायक है।"[306]

"शैली किसी भी साहित्यकार–कलाकार की सबसे बड़ी शक्ति होती है। यह एक ऐसा माध्यम है, जिससे लेखक अपने कथ्य को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इसलिए कहा गया है – 'स्टाइल इज द मेन।' हमारे यहाँ सर्वप्रथम शैली के पर्याय के रूप में रीति शब्द के प्रयोक्ता वामन रहे है।"[307]

"शैली अभिव्यक्ति के उन गुणों को कहते हैं, जिन्हें लेखक या कवि अपने मन के प्रभाव को समान रूप से दूसरों तक पहुँचाने के लिए अपनाती है।"[308]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि साहित्यकार अपने अनुभव वैशिष्ट्य का साक्षात्कार पाठक को जिस रीति, ढंग अथवा पद्धति से करवाता है, वह शैली कहलाती है।

अमरकांत के उपन्यासों में मुख्यतः वर्णनात्मक शैली, भावनात्मक शैली, आत्मकथात्मक, शैली, पत्रात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, व्यंग्यात्मक शैली और संवाद शैली का प्रयोग हुआ है। उनके उपन्यासों में प्रयुक्त निम्नांकित शैलियां दृष्टिगत है।

वर्णनात्मक शैली

"इसे इतिवृत्तात्मक या व्याख्यात्मक शैली भी कहा जाता है। "वर्णनात्मक शैली में उपन्यासकार अन्य पुरूष के रूप में कथा को विस्तार देता है। इस प्रकार के शैली प्रयोग में उपन्यासकार को अपने–आपको अभिव्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। पात्रों की भावनाओं की अभिव्यक्ति से लेकर सब–कुछ उसे ही स्पष्ट करना होता है। एक प्रकार से उपन्यासकार यहाँ सर्वज्ञ होता है।"[309] इस प्रकार कथानक का काल, समय एवं सामाजिक वातावरण के यथार्थ वर्णन के लिए वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है।

'बिदा की रात' उपन्यास के प्रारम्भ में सुल्ताना बेगम की दुकान और घर का वर्णनात्मक शैली में चित्रण हुआ है। "टाइफाइड से उठने के बहुत दिनों बाद आज वह पहली बार लकड़ी टाल के शेड के नीचे जंग–खाई लोहे की उस कुर्सी पर बैठी है, जिसके सामने एक हल्की–लचकती पर दफती जिल्द वाली कॉपी ओर उसके अंदर एक पेंसिल और बगल में टीन का एक छोटा सा केश बॉक्स रखा है। हरे दरवाजों वाला उनका मकान और लकड़ी की टाल, अंदर उस गली के दोनों ओर आमने–सामने है, जिसकी नालियों से बदबू उठती रहती है और जो बरसात में दरिया बन जाती है। टाल कुछ ऊँची जमीन पर मजबूत टट्टर से घिरी है, जिनका टीनवाला फाटक धड़ाम–भड़ाम की अवाज से खुलता और बंद होता है।"[310] इस प्रकार उपन्यासकार ने यहाँ सुल्ताना बेगम की आजीविका तथा उनकी आर्थिक स्थिति का वर्णन किया है।

'सूखा पत्ता' उपन्यास में मनमोहन के चरित्र के प्रस्तुतीकरण में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। कृष्ण कुमार, मनमोहन के विषय में कहता है कि – "मनमोहन मेरे नहीं, मेरे भाई के मित्र थे। .... पढ़ने में वह काफी तेज थे। हाई स्कूल उन्होंने प्रथम श्रेणी में पास किया था और प्रान्त में उनकी आठवीं पोजिशन थी। स्वस्थ गठीला शरीर, गोरा मुख, सुन्दर, सुडौल नासिका, छोटी चंचल तथा चालाक आँखे, चपटे मजबूत हाथ के गट्टे, मोटी लम्बी अंगुलियाँ, पतली कमर और पत्थर की पटिया की तरह चौड़ी दृढ़ छाती। मनमोहन में एक आश्चर्यजनक विरोधाभास था। साथ ही गुणों और सद्गुणों का ऐसा सुन्दर और अद्भुत समन्वय कि उसका समस्त व्यक्तित्व एक अनोखे रोमांटिक रहस्य से आवृत्त प्रतीत होता था। वह छात्रों और नवयुवकों की मर्दानगी, बहादुरी और लंठई की उमंगों का इस दुलर्भ साहसिकता, महानता, लापरवाही और सुरूचि के साथ प्रतिनिधित्व करते कि सारा युवक समाज उनका पदानुसरण करने को आतुर हो उठता था।"[311]

इसी प्रकार 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में सदायशयव्रत एक सभा आयोजित करते हैं, जिसमें क्रांतिकारी समाजवादी, कम्यूनिस्ट तथा साधारण ग्रामीण शामिल होते है। इस

सभा में सदाशयव्रत द्वारा गांधी जी की नीतियों तथा कार्य पर भाषण दिया जाता है। जिसमें उपन्यासकार ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। वह सभा को संबोधित करते हुए कहते हैं – "एक खास उद्देश्य से आपको यहाँ बुलाया है। आप जानते हैं कि आने वाले अगस्त महीने में कांग्रेस महासमिति का अधिवेशन बम्बई में होने वाला है। ...... उन्होंने कह दिया है 'करो या मरो' यानी यह आजादी की आखिरी लड़ाई है, आप आगे बढ़कर आजादी प्राप्त करने के लिए अपना सब कुछ कुर्बान कर दें। समस्या यह है कि लड़ाई शुरू होने से पहले ही हुकुमत ने प्रहार कर दिया है, हमारे बहुत से नेताओं को सींकचों में बंद कर दिया गया है। दूसरे लोगों को भी पकड़ने की तैयारी हो रही है। ऐसी स्थिति में साधारण जनता के कन्धों पर बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है। .. ... यह अंहिसात्मक लड़ाई है, लेकिन हमने दिखा दिया है कि अंहिसा में बड़ी ताकत है। हम चाहते हैं कि आप अपने–अपने सुझाव दें कि आगे की लड़ाई कैसे संचालित की जाएगी।"[312]

इस प्रकार "वर्णनात्मक शैली द्वारा उपन्यासों में जीवन के विस्तृत क्षेत्र का चित्रण विवरण रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस शैली में लेखक जीवन के किसी भी क्षेत्र को अपनी कथा का माध्यम बना सकता है। इससे घटनाओं का बाहुल्य, पात्रों का आधिक्य, लम्बे संवाद आदि अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। इसमें पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व, चित्रण की आवश्यकता नहीं होती।"[313]

आत्मकथात्मक शैली

उपन्यासकार प्रायः प्रथम पुरूष में ही सारी कथा कहता है। इसलिए प्रथम पुरूष की ओर से प्रस्तुत की जाने वाली सभी प्रकार की कथाओं को आत्मकथात्मक शैली के अंतर्गत लिया जा सकता है। कई बार लेखक ही अपने स्वानुभवों का लेखा–जोखा इस शैली द्वारा प्रस्तुत करता है। इसमें लेखक वर्णन के माध्यम से अथवा पात्र के द्वारा अपने बारे में कुछ न कुछ कहता है। इस शैली में लिखे गये उपन्यासों में एक पात्र की ओर से सम्पूर्ण कथा कह दी जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह पात्र उपन्यासकार के दृष्टिकोण एवं मान्यताओं इत्यादि का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें पात्रों के चरित्र पर जोर दिया जाता है। इसके अंतर्गत पात्र अपना आत्मविश्लेषण करते है। अमरकांत के अत्यधिक पात्र काल्पनिक न होकर यथार्थ भूमि पर गढ़े गये है। आत्मकथात्मक शैली में लेखक के अपने विचार, अनुभव या पृष्ठभूमि का विश्लेषण किया जाता है। अमरकांत के 'सूखापत्ता', 'आकाशपक्षी', 'काले–उजले दिन', 'कंटीली राह के फूल' इत्यादि उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

'कंटीली राह के फूल' उपन्यास का प्रारम्भ आत्मकथात्मक शैली में ही होता है। उपन्यास का नायक अनूप स्वयं के विषय में बताता हुआ कहता है कि – "मेरा बी.ए. का प्रथम वर्ष था और मैं विश्वविद्यालय के फुटबाल के अच्छे खिलाड़ियों में था। मेरी तन्दरूस्ती काफी

अच्छी थी। मैं यूकलिप्टस के तने की तरह साफ, सीधा और लम्बा था। मेरे चेहरे तथा होठों पर सदा एक ऐसी चिकनाई, ताजगी, प्रफुल्लता और सन्तुष्टि दृष्टिगोचर होती, जो कठिन शारीरिक परिश्रम करने पर जी भर भोजन करने के पश्चात् मुख पर निखर आती है। मेरी बुद्धि मन्द तो नही थी, परन्तु पढ़ने–लिखने में मेरी तबीयत बहुत लगती नहीं थी।"[314]

'आकाशपक्षी' की नायिका हेमा चालीस वर्षिय राजवधू है। जो अपने यौवन के आरंभिक दिनों तथा रवि के साथ उसकी असफल प्रेम गाथा की आत्मकथा कहती है। "हर वर्ष ऐसा ही होता है। जब मार्च का महीना शुरू होता है और सर्दी में डंक नहीं रह जाता तब मेरा हृदय पीड़ा से भर उठता है। .... आज मेरी उम्र चालीस से कम नही। मैं एक दिन ऐसी हवा में आजाद चिड़िया की तरह पंख फैलाकर आकाश में उड़ जाना चाहती थी। लेकिन हुआ क्या? मैं एक पिजड़े में से दूसरे पिंजड़े में आ गयी। .... मुझे अपने पति से क्या शिकायत हो सकती है? उनकी उम्र साठ से कम न होगी। उनके चेहरे पर झुर्रियाँ सिमट आई है। और चमड़े ढीले पड़कर झूलने लगे है। पर उन्होंने मुझे सुख–सुविधाओं से पाट दिया। लेकिन एक बात मैं विश्वासपूर्वक कह सकती हूँ कि रूपए से मन को नहीं खरीदा जा सकता।"[315] इस प्रकार आत्मकथात्मक शैली में लिखे उक्त उपन्यास की नायिका हेमा सुख–सुविधाओं से लबालब होने पर भी उसका मन रिक्त और जीवन शून्य ही है।

'सूखापत्ता' उपन्यास का नायक कृष्ण कुमार आत्मकथात्मक शैली में अपने बचपन के विषय में बताता हुआ कहता है–"उस समय मैं नवीं कक्षा में पहुँचा था। लड़कपन मेरा विस्मयजनक शान्ति से बीत गया था। सांवला, खूबसूरत, चंचल, शर्मीला और खिलाड़ी–स्कूली तथा शहरी लंठों की बदतमीजियों ओर शरारतों से बचने के लिए मैं अधिकतर घर ही पर बना रहता और खेलकूद के नाम पर भाईयों से गाली–गलौच और मारपीट करके सन्तोष कर लेता। स्कूल जाता, घर आता और बस। मेरे आचरण के विरूद्ध किसी प्रकार का लांछन मुझे बर्दाश्त नहीं था।"[316]

'काले–उजले दिन' उपन्यास का नायक बचपन में विमाता द्वारा दिये गये कष्टों का कटु यथार्थ आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत करता है – "स्कूल से आने पर जब मैं खाने के लिए जिद करता या पैसे के लिए हठ करता, तो माँ मुझे डाँटती थी, गालियाँ देती थी और मुझ पर हाथ छोड़ती थी। शाम को पिताजी आते थे, तो उनसे शिकायत करती थी। ..... इसके बाद धीरे–धीरे पिताजी ने मेरे प्रति कड़ाई का रूख अख्तियार करना शुरू कर दिया। वह मुझकों डाँट देते। कभी कान गरम कर देते। मैं देर तक सिसकता रहता था, लेकिन मुझे मनाने वाला कोई नहीं था।"[317]

भावात्मक शैली

अमरकांत जी ने अपने कैरियर की शुरूआत पत्रकारिता से की थी। उन्होंने कस्बे से लेकर नगरों, महानगरों तक की जिंदगी को अच्छी तरह देखा और समझा है। उन्हें अच्छी तरह पता था कि आज की छल प्रपंच और दिखावे भरी जिंदगी में भावुकता को कहीं कोई स्थान नहीं है। इस दौर से निकलने वाला व्यक्ति हर जगह मारा जायेगा। लेकिन अमरकांत यह भी जानते थे कि मनुष्य तभी मनुष्य है जब तक वह संवेदनशील और भावुक है। इस भावुकता और संवेदना को हटा दें तो वह मनुष्य नहीं नर पिशाच हो जायेगा। आज हमारी संस्कृति की जो दुर्दशा हो रही है, वह इसलिए कि मनुष्य बड़ी तेजी से भावना शून्य और संवेदनहीन होता जा रहा है। अमरकांत अपनी भावनात्मक शैली द्वारा आज के मनुष्य को यथार्थ धरातल पर लौटा लाना चाहते है, जहाँ वह मनुष्य बनकर मनुष्य मात्र के लिए जी सकें।

अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में भावात्मक शैली का प्रयोग किया है। उनके उपन्यास 'पराई डाल का पंछी' में दीपक के घर न लौटने पर अहल्या चिंतित व आशंकित हो उठती है और जैसे ही दीपक घर लौटता है, तो वह अपने भावों को रोक नहीं पाती। अमरकांत जी ने अहल्या की खीझ, डर, खुशी तथा कई संवेदनाओं को एक साथ बड़ी खूबी से प्रदर्शित किया है। एक स्त्री के मन में एक के बाद एक भावों के उठने को उन्होंने शब्दबद्ध कर पात्र को यथार्थ धरातल पर उकेरा है।" अहिल्या की सारी शक्ति जवाब दे गयी। वह चाहते हुए भी कुछ बोल न सकी। उसकी आवाज गले में अटक गयी। वह दौड़कर जाना चाहती थी, परंतु उसके पैर थम गये। रूदन के एक अप्रतिरोध आवेग ने उसके हृदय से उठकर सारे शरीर को अवश कर दिया। वह धम्म से नीचे बैठ गयी और चुपचाप रोने लगी।"[318]

'सूखापत्ता' उपन्यास में नायक कृष्ण कुमार उर्मिला से प्रेम करता है और उससे शादी करना चाहता है, किन्तु विभिन्न जाति का होने के कारण दोनों के परिवार वाले विवाह से इंकार कर देते हैं। उपन्यासकार ने उर्मिला के पिता द्वारा कृष्ण को समझाते समय भावात्मक शैली का प्रयोग किया है। "बेटा, जब समाज बदलेगा, तब बदलेगा। आज नामुमकिन है। .... मान लो, उर्मिला से तुम्हारी शादी कर भी देता हूँ तो जानते हो मेरी दो छोटी लड़कियों की क्या हालत होगी? उनको कोई नहीं पूछेगा, और उनका भविष्य कैसा होगा, यह सोचकर मैं काँप उठता हूँ। अगर मेरे पास पैसे होते, तो भी एक बात थी। तब मैं न डरता। रूपए के जोर से सबका मुँह बन्द कर देता। लेकिन मेरे पास यह भी नहीं। फिर उन लड़कियों का क्या करूँगा? सिर्फ एक ही रास्ता बचा रहेगा कि हम सभी जहर खाकर खुदखुशी कर ले। इससे मैं तुमसे त्याग करने की प्रार्थना करने आया हूँ, बेटा।"[319]

'बिदा की रात' उपन्यास में जब सुल्ताना, युसुफ को उसकी असलियत बताती है कि वह मुस्लिम परिवार से न होकर हिन्दू परिवार से है। उसके पिता का नाम हरिहर सिंह और माता का नाम कमला है। एक मजहबी दंगे में उसके पिता को गोली लगने से उनकी मृत्यु हो जाती है तथा माता द्वारा जहर खा लिया जाता है। उसकी माँ ने मरते समय छोटे बच्चे को उसकी गोद में देते हुए कहा था कि इसे अपना पुत्र समझकर पालना तथा बड़ा होने पर किसी हिंदू परिवार को दे देना। यह सब सुनकर युसुफ भावनाओं में बहकर अपने होश खो बैठता है। अमरकांत जी ने युसुफ की पीड़ा को भावनात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। युसुफ कहता है – "हाय अम्मी, आपने यह क्या किया? आप फिर से कह दीजिए कि आपने जो कुछ बताया है, वह झूठ है। आप किसी दूसरे का किस्सा बता रही थी। आपने मुझ मासूम के साथ यह क्या किया। आप अपने अल्फाज़ वापस ले लीजिए। मैं तो किसी दूसरी अम्मी को जानता तक नहीं। मैं असली और नकली कुछ नहीं समझता। मैं तो एक ही अम्मी को जानता हूँ। आप सब वापस लीजिए। और मुझें यहीं रहने दीजिए। मैं यहीं रहूँगा, कहीं नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा ....।"[320]

व्यंग्यात्मक शैली

'व्युपत्ति' की दृष्टि से व्यंग्य 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'अहज्' धातु में 'ण्यत्' प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका आशय है शब्द का निगूढ़ अर्थ जो व्यंजना वृत्ति के द्वारा सांकेतिक अथवा प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त हो। 'व्यंग्य' अंग्रेजी के –'सटायर' शब्द का हिंदी रूपातंरण है। व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक बुराईयों व न्यूनताओं को सीधे शब्दों में न कहकर अन्य माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। "व्यंग्य समाज और व्यक्ति को दुर्बलता, विसंगति, मिथ्याचार, आसमंजस्य, अविचार आदि की पहचान करता हुआ उस पर प्रहार करता है और हँसता है। यह हँसी, पीड़ा और कसक प्रदान करती है। इसका उद्देश्य समाज और व्यक्ति का सुधार करना होता है। व्यंग्य के लिए यह जरूरी नहीं कि वहाँ कोरा हास्य अथवा मात्र क्रीड़ा कौतुक हो तथा उसका मूल प्रयोजन मनोरंजन नहीं होता। यह नैतिक बोध को सामने लाने वाला होता है। व्यंग्य में व्यथा उत्पन्न करने वाली विडम्बनाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है।"[321]

अमरकांत मूलतः यथार्थवादी उपन्यासकार है। स्वानुभूत विषयों को उन्होंने अपने साहित्य में स्थान देकर उसे और भी जींवत बना दिया है। उनके उपन्यासों की संवेदना यथार्थ धरातल पर रची गई है। वास्तव में करूणा जब संवेदना के शिखर पर पहुँचती है, तो मनुष्य अपने आप व्यंग्यात्मक हो उठता है। अमरकांत ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक आदि विषयों पर करारा व्यंग्य किया है। उनके उपन्यासों में व्यंग्य का पक्ष जगह–जगह उभरता दिखाई देता है।

अमरकांत जी ने अपने उपन्यास 'ग्रामसेविका' में प्रधान जी के माध्यम से यहाँ नेताओं सामन्तों, जागींदारों पर व्यंग्य करके उनके चारित्रिक यथार्थ को पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है। 'प्रधान जी ने गाँव की जनता के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया था। मसलन वह गरीबों को रूपये सूद पर देते। वह प्रेमपूर्वक कर्ज को उस हद तक चढ़ जाने देते थे, जब गरीब लोग पूरा चुकता कर ही नहीं सकते थे। वे चुकाते भी जाते थे और कर्ज बना भी रहता था। इस तरह गांव के लोगों की एक अच्छी–खासी संख्या उन पर आश्रित थी। जिनकी आर्थिक स्थिति खराब थी, उनमें से कोई खेत–खलिहान देखता था, कोई गाय–बैलों को सानी–पानी चला देता था और कोई रात को पहरा दे देता।"[322]

इसी प्रकार 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में सम्पन्न, रईस व सज्जन लोगों पर व्यंग्य किया गया है। ये सज्जन सरकारी नौकरी के विभिन्न ओहदों पर पदस्थ है और स्वयं को सम्मानित वर्ग से मानते है लेकिन रात के अंधेरे में कोठो पर अपनी अस्मत लुटाते हुए नजर आते है। "शाम के शुरू के खेपों में अनेक सामान्य वकील, मुख्तार, मुहर्रिर, अहलमद, पेशकार, नकलनवीस आदि होते, जो दिन–भर झूठ और तिकड़म से रूपए बटोरते, मुवक्किलों के सहारे पूड़ी, लड्डू और समोसे उदरस्थ करते और कचहरी छूटते ही जल्दी–जल्दी मुड़ियाते हुए सिर नीचा करके इशतरगंज की तरफ कदम बढ़ा देते और शाम की अन्तिम किस्मों में रईसी के मारे, बुढ़ाते शौकीन और अन्य सम्पन्न लोग तथा दुकानबन्दी के बाद लाभांश में से एक छोटा निजी अंश जेब में डालकर आराम, सुकून और ताजगी की खोज में कई सेठ–साहूकार और मुनीम आदि।"[323]

अमरकांत जी ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक और राजनीतिक भ्रष्टाचार का यथार्थ 'लहरें' उपन्यास में व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। "कोई भी ऐसा विभाग नहीं है, जहाँ कोई भ्रष्टाचारी नहीं हो। बिना रिश्वत दिए काम को सम्पूर्ण कराना कल्पना से परे की बात हो चुकी है। वर्तमान में किसी कार्य को संपूर्ण कराने के लिए नीचे से लेकर ऊपर तक के व्यक्ति को प्रसन्न किया जाना आवश्यक होता है।"[324] वर्तमान में नौकरी तथा पदोन्नति में भ्रष्टाचार अधिक देखा जाता है। 'लहरे' उपन्यास का नायक "श्यामाप्रसाद सिविल सर्विस की परीक्षाओं में बैठकर बुरी तरह असफल होता रहा। गनीमत यह हुई कि एक सहपाठी की जिद पर वह रेलवे की एक मामूली परीक्षा में बैठा और लिखित परीक्षा में सफल हुआ, परंतु इंटरव्यू में पास होना इतना आसान नहीं था, फिर तो उसने पिता पर दबाव डाला। अंत में उसके पिता ने कहीं से कर्ज काढ़कर इतंजाम किया और वह सफल घोषित कर दिया गया।"[325]

'आकाश पक्षी' उपन्यास की नायिका बचपन में माता–पिता के होते हुए भी स्नेह से वंचित रहती है। वह रजवाड़े परिवार से है, जहां भौतिक सुख–सुविधाओं के माध्यम से ही

बच्चों को स्नेह प्रदर्शित किया जाता है। हेमा सामन्ती विचारधारा पर व्यंग्य करते हुए कहती है – "माँ और बड़े सरकार कपड़े बहुत ही अच्छे पहनते थे और उनके शरीर से खुशबू उड़ा करती, परंतु उन्होंने कभी मुझे गोद में लेकर खिलाया, यह मुझे याद नहीं आता। राजा और रानी के लिए जरूरी भी क्या है कि वे अपने बच्चों को प्यार करें? उनके बच्चों को न खाने–पीने की कमी, न पहनने–ओढ़ने की कमी। उनके जीवन में खेलकूद और मनोरंजन का भी कोई अभाव नहीं रहता। नौकर–चाकर उनको हाथों–हाथ लिए रहते है।"[326]

'पराई डाल का पंछी' उपन्यास में दीपक एक शादीशुदा पुरूष है, उसके दो बच्चे भी है। वह स्वभाव से धूर्त व व्यभिचारी है। पड़ौस में रहने वाली रेखा को वह प्रेम जाल में फंसा लेता है। रेखा यूनिवर्सिटी में पढ़ती है। उसकी उम्र अभी कम है। उन दोनों के विषय में दीपक की पत्नी अहल्या को पता चल जाता है। दीपक की पत्नी द्वारा दीपक को दोषारोपण करने पर दीपक रेखा को ही आवारा, बदमाश लड़की बताता है कि उसने ही उसे फंसा लिया था। पति–पत्नी की यह बात रेखा चुपके से सुन लेती है। कुछ दिनों बाद जब दीपक रेखा से मिलने यूनिवर्सिटी जाता है और उससे पूर्ववत् बात करने का प्रयास करता है और पूछता है कि यूनिवर्सिटी से छूटने का उसका समय क्या है, तो रेखा दीपक पर व्यंग्यार्थ करते हुए कहती है – "यूनिवर्सिटी से तो मैं उसी समय छूटती हूँ, लेकिन अब मेरी जैसी आवारा लड़की से मिलने की जरूरत नहीं। मुझको बहुत अफसोस है कि मैंने आप जैसे सीधे–सादे मर्द को अपने जाल में फंसाया है। सचमुच, इसमें आपका जरा भी दोष नहीं। सारा दोष मेरा है।"[327]

'सूखापत्ता' उपन्यास का नायक कृष्ण कुमार, उर्मिला से प्रेम करता है। एक दिन उर्मिला की माँ, कृष्णकुमार और उर्मिला को प्रेमकेलि करते देख लेती है और उर्मिला को भला–बुरा कहती हुई मार–पीट करती है। कृष्णकुमार घर से बाहर निकल जाता है। गलियों में इधर–उधर निरर्थक ही भटकने के बाद जब वह घर पहुंचता है तो उसके पिताजी उसे व्यंग्यार्थ करते हुए कहते है–"कृष्ण? आ गए? कहाँ थे बेटा अब तक? ..... खूब घूमो बेटा, ... अच्छे लड़के मिल हो! तुम्हारी वजह से तुम्हारे बाप का नाम पूरा उजागर हो रहा है। तुमको पाल–पोसकर बड़ा किया गया, पढ़ा–लिखा दिया गया, तुम ऐसा न करोगे तो कौन करेगा, पर तुम्हारी रहन बनतीं जा रही है। बेटा, अब यही बाकी रह गया है कि छुरा लाओ और अपने माँ–बाप के गले को रेत डालो।"[328]

इस प्रकार अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विसंगतियों पर प्रहार कर उसे यथार्थ स्वरूप देने का प्रयास किया है। अपनी तीक्ष्ण व्यंग्यात्मक विलक्षण शक्ति के माध्यम से लेखक ने समाज की जटिलताओं को पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है। फलतः व्यंग्यकारों की यह नैतिक जिम्मेदारी

बनती है कि वह शोषण की विभीषिका से परिचय करवाकर शोषकों के प्रति आक्रोश तथा शोषितों के प्रति पाठकों में करूणा को चेतित करे। समाज में फैल रही विकृतियों व विडम्बनाओं का पर्दाफाश कर, बैबाक चित्रण करना व्यंग्यकार की अपनी विशेषता है। अमरकांत के उपन्यास में व्यंग्य के सभी तत्त्वों यथा – यथार्थता, संवेदनशीलता, बौद्धिकता, प्रौढ़भाषा सांकेतिकता तथा तटस्थ विश्लेषण इत्यादि को देखा जा सकता है।

पूर्वदीप्ति शैली

पात्र की स्मृति में कुछ घटनाओं को दिखाकर उनकी यादों को चेतना पटल पर लाने के लिए उपन्यासों में फ्लैश बैक पद्धति को अपनाया जाता है। इसमें एक ही घटक पर पात्र विशेष के दोहरे मनोभावों का प्रभाव सहज रूप से दिखाया जाता है। अतीत घटनाओं को वर्तमान से जोड़कर उन्हें रोचक प्रभावोत्पादक तथा कौतुहल पूर्ण बनाने के लिए लेखक इस शैली का प्रयोग करते है। "मनोवैज्ञानिकता के समावेश से कथा साहित्य में नयी शिल्प विधियों का उद्भव हुआ। अन्तर्मन की गहराईयों को नापने के लिए और मनःस्थिति के विभिन्न रेशों को सुलझाने के लिए उपन्यासकारों ने जिस प्रवाही पद्धति का प्रयोग किया, उसमें पूर्वी दीप्ति चेतना प्रवाही पद्धति प्रमुख मानी जाती है।"[329]

वस्तुतः यथार्थ परक घटनाएँ जीवन को अधिक तीव्रता से अभिभूत करती है, वे ही उपन्यास साहित्य में यथोचित स्थान ग्रहण कर पाते है। इस सन्दर्भ में डॉ. देवराज उपाध्याय ने लिखा है–"वर्तमान क्षण तो अपने में क्षुद्र, अल्प और क्षणिक होता है, पर यदि अतीत को अनुप्राणित कर अर्थात् अपनी सांस उसमें फूंककर उसे सप्राण कर, उसके कंधे पर बैठ सकें तो वह बहुत ही भव्य और विशाल कृति का दृश्य खड़ा कर सकता है।"[330]

अमरकांत जी ने 'ग्रामसेविका' उपन्यास की नायिका दमयन्ती के विगत जीवन के कटु यथार्थ का चित्रण पूर्वदीप्ति शैली में किया है। "पता नहीं क्यों उसको आज माँ की याद आ रही थी। वह दुबली–पतली थी, परंतु उनका रंग गोरा था। ..... उनको पेट की टी.बी. हो गई थी। ... कभी–कभी वह उसको और विनय को अंक में खींचकर बुरी तरह रोने लगती थी। ...... जिस दिन वह मरी थीं वह दिन भी उसको अच्छी तरह याद है। मरते समय दादी आँखे पोंछते हुए उसको तथा विनय को कमरे से बाहर ले गई थी। फिर वे दोनों शव–यात्रा आरम्भ होने के समय बगल वाले पड़ोसी के घर भेज दिए गए थे।"[331]

'आकाश पक्षी' उपन्यास की नायिका हेमा विवाह के लगभग बीस वर्षों पश्चात् अपने बचपन के सुनहरे अतीत को याद करती है। यहाँ अमरकांत जी ने पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया है। वह बचपन की स्मृति में खो जाती है। "बीस वर्ष पहले मैं कैसी थी? मैं यह नहीं बता सकती कि मैं कब जवान हो गयी यदि मेरा बस चलता, तो मैं कभी जवान होती भी नहीं, बल्कि

सदा एक छोटी सी बच्ची की तरह चहकती रहती। मेरे बचपन के आरम्भिक वर्ष बडे ही खुशी और शान–शौकत में बीते। न मालूम कितने नौकर और नौकरानियां थीं। मेरी माँ सदा रेशमी गलीचे की पलंग पर बैठकर पान कचरती रहती।"[332]

'सूखापत्ता' उपन्यास का प्रारम्भ कृष्णकुमार के लड़कपन और दोस्तों तथा बलिया जिले की पृष्ठभूमि से प्रारम्भ होता है, जिसका चित्रण पूर्वदीप्ति शैली में किया गया है। "जब कभी अपने लड़कपन और स्कूल दिनों की बात सोचता हूँ तो सबसे पहले अपने चार दोस्तों और मनमोहन की याद आती है। राजा बलि या वाल्मीकि के नाम पर बसे हुए अपने इस कस्बे की स्थिति सन् 43 में कुछ विचित्र ही थी। आज वहाँ कुछ तरक्की हुई है। वहां के छात्र और नवयुवक पैंट–कमीज पहनकर बुद्धिमान और आधुनिक नायक की व्यस्तता से झूम–झूमकर चलते है और अपने व्यक्तित्व के उत्थान के लिए लड़कियों का पीछा करना आवश्यक समझते है, किंतु तब ऐसे लोग गधे के सिर से सींग की तरह गायब थे।"[333]

'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास में दोमितलाल और सुन्नर पांडे की पतोह की पूर्व की जान–पहचान को पूर्वदीप्ति शैली के माध्यम से व्यक्त किया गया है– "दस–बारह वर्ष पहले की बात है। वह जापलिनगंजवाली कोठरी को छोड़कर स्टेशन के पास पचकौरी पंसारी के खंजड़ मकान के बाहरी बरामदे की एक अन्धी–अँधेरी कोठरी में रहने लगी थी। उस समय उसका शरीर टाँठ था। सफेद–चादर ओढ़े और उसी का सिर के आगे थोड़ा घूंघट निकाले, वह इधर–उधर जाते दिखाई दे जाती। वह बड़ी फुर्ती से चलती थी। कितनी बार वह अपनी कोठरी में आती और कितनी बार बाहर जाती, इसकी गणना नहीं की जा सकती।"[334]

'बिदा की रात' उपन्यास में लेखक ने पूरे उपन्यास में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया है। सुल्ताना के बचपन के वृत्तान्त में इस शैली का प्रयोग हुआ है। 'तीनों बहनों और एक भाई में सुल्ताना कुछ अलग ही थी। कभी नरम दिल और कभी गुस्सैल और जिद्दी। .... नाराजी में वह बोलना छोड़ देती, अलग बैठ जाती, और बहुत हुआ तो बहस करने लगती या खाना छोड़ देती। ऐसे वक्त बोलते उसकी जबान कैंची की तरह चलती। तब तो उसकी वालिदा मेहताब बेगम भी उसका मुकाबला न कर पाती और गुस्से में चिल्लाने लगती, अरे यह घोड़–पराड़ हिंदुओं की आजाद ख्याल, बेशर्म छोकरियों की आदतें सीख रही है।"[335]

पत्रात्मक शैली

एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास कोई लिखित संदेश भेजना पत्र कहलाता है। यदि पत्र लिखने तथा पढ़ने वाले के बीच कोई तीसरा न हो, तो वह आत्मीय वार्तालाप बन जाता है। यह अपेक्षाकृत नया शैली–प्रकार है। इसमें पात्र अपनी बात या विचार प्रत्यक्ष न कहकर चुने हुए पात्रों द्वारा कहते है। किसी चरित्र के जीवन तथा उसकी आतंरिकता को समझने के लिए

पत्रात्मक शैली उपयुक्त है।"[336] यह बहु प्रचलित शैली न होते हुए भी अमरकांत के 'सूखापत्ता' 'लहरें' और 'इन्हीं हथियारों से' आदि उपन्यासों की कथा–योजना का आधार बनी है।

'लहरें' उपन्यास का पात्र श्यामाप्रसाद उसकी अनपढ़ पत्नी 'बच्ची देवी' को गांव में ही छोड़कर शहर नौकरी करने आ जाता है। एक दिन श्यामाप्रसाद को उसके पिताजी का पत्र प्राप्त होता है। जिसमें लिखा था–"मैंने सोचा था कि तुम अपनी गलती महसूस करोगे। अपनी आखिरी सांस लेता हुआ मैं यह चिट्ठी लिख रहा हूँ। अब मैं तुम्हारी पत्नी की देखभाल नहीं कर सकता। तुम आकर उसे ले जाओ, भले ही उसे अपने पास ले जाकर काट ही दो ......।"[337]

'ग्रामसेविका' उपन्यास में अतुल दमयंती को एक पत्र लिखता है, जिसमें वह अपने प्रेम को प्रकट करता है। "जब रात में सभी सो गए तो उसने कागज खोलकर पढ़ा था। वह एक लम्बा प्रेम पत्र था, जिसमें अतुल ने लिखा था कि वह दमयंती को प्यार करता है।"[338] बाद में अतुल की कहीं और शादी हो जाती है। कुछ दिनों के पश्चात् दमयन्ती के नाम वह एक चिट्ठी लिखता है, जिसमें लिखा था – "मैं दब्बू का दब्बू ही था। मैंने तुम्हारे साथ जो अन्याय किया है, उसकी माफी मैं नहीं मागूँगा। मैं तुमसे यही प्रार्थना करूँगा कि तुम किसी अच्छे लड़के से शादी कर लेना और मुझे भूल जाना .....।"[339] इस प्रकार अमरकांत जी ने बड़ी कुशलता से आंतरिक प्रसंगों के उद्घाटन हेतु पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है।

'आकाश पक्षी' उपन्यास में पत्रात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। उपन्यास की नायिका हेमा अपने सहेली नीतू को पत्र लिखती है –

प्रिय नीता,

क्या तुम जाते ही मुझे भूल गयी? तुमने न मालूम कितनी बार कहा था कि तुम वहाँ पहुँचकर चिट्ठी लिखोगी, लेकिन तुमने एक लाइन भी न लिखी। मैं रोज ही तुम्हारी चिट्ठी की प्रतीक्षा करती हूँ और शाम को जब डाकिया सामने से गुजर जाता है, तो मुझे बहुत दुःख होता है।"[340]

इस पत्र के प्रत्युत्तर मैं नीता भी हेमा को पत्र लिखती है।

प्रिय हेमा,

'तुम्हारी चिट्ठी पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई ...... मैं तुमको भूल कैसे सकती हूँ? लेकिन इससे पहले कि मैं कुछ लिखूँ मैं तुम्हें बधाई देना चाहती हूँ तुम्हारी सफलता के लिए।"[341]

'आकाश पक्षी' उपन्यास में रवि हेमा को प्रेम पत्र भी लिखता है।

मेरी सबसे प्यारी हेमा,

यह पत्र देखकर तुम अचम्भा करोगी, लेकिन तुमसे अलग होकर मेरी हालत वही हो गयी है जैसे हवा के बिना प्राणी ....।”[342]

प्रत्युत्तर में हेमा रवि को पत्र लिखती है।

मेरे सबसे प्यारे,

आपका पत्र मिला। मैं पढ़कर खूब रोयी। मैं बेकार ही आपके जीवन में आयी। .... आप मुझे माफ न कीजिएगा और घृणा कीजिएगा। मेरे नाम पर आप थूकिएगा। सदा के लिए विदा ....।”[343]

अभागिनी

हेमा

‘सूखापत्ता’ उपन्यास में अनेक स्थानों पर पत्रात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। उपन्यास के नायक कृष्णकुमार को मनमोहन पसंद करता है। कृष्णकुमार को भी मनमोहन की दोस्ती पसंद है। लेकिन एक दिन वह मोहन का पत्र पाकर अत्यन्त क्षुब्ध हो जाता है। मोहन के विकृत प्रेम के परिणामस्वरूप कृष्णकुमार के मन में मोहन के प्रति जो आदर्श छवि बनती है, वह धराशायी हो जाती है। इसके उपरांत मोहन कृष्ण से क्षमा मांगने के लिए पत्र लिखता है।

वस्तुतः ‘सूखापत्ता’ उपन्यास में पत्रात्मक शैली का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। कथा को गति प्रदान करने के लिए उपन्यासकार ने पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। उर्मिला और कृष्ण एक–दूसरे से प्रेम करते है। उनके प्रेम के विषय में दोनों के घरवालों को पता चलने पर वे उर्मिला और कृष्ण से नाराज हो जाते है। तब कृष्णकुमार उर्मिला के पिता के नाम एक पत्र लिखता है।

पूज्य चाचाजी,

मैं उच्च कर्त्तव्य के भाव से प्रेरित होकर यह पत्र आपके पास लिख रहा हूँ। यदि इसमें कोई घृष्टता की बात नजर आए तो मुझे क्षमा कीजिएगा।

चाचाजी, आप मेरे यहां से बहुत दुखित होकर गए है, जिसका मुझे स्वयं भी दुःख है। ...... एक बात में कह दूं कि उर्मिला गंगा की तरह पवित्र है। .... यह जाति की सीमा बहुत ही तुच्छ सीमा है, चाचाजी। एक दिन यह नष्ट–भ्रष्ट हो जाएगी। मैं ब्राह्मण हूँ तो क्यों किसी से श्रेष्ठ हूँ और कोई शूद्र है तो क्यों मुझसे बड़ा नहीं है? इन्सान–इन्सान बराबर है। सभी जातियों में अच्छे और बुरे लोग होते है और सभी के सुख और दुःख एक ही किस्म के होते है। चाचाजी, मैंने और उर्मिला ने एक–दूसरे से शादी करने का निश्चय किया है। ...... आप दो निर्दोष जिदंगियों को

बरबाद होने से रोक सकते है। मैं आपके पैर पड़कर प्रार्थना करता हूं कि आप हमकों अपना स्नेहाशीर्वाद दे।"[344]

आपका

कृष्ण

इसके पश्चात् उपन्यास में कृष्णकुमार का उर्मिला को सांत्वना पत्र, उर्मिला का कृष्णकुमार को पत्र, कृष्णकुमार को उर्मिला का पत्र इत्यादि प्रमुख है। इन पत्रों में कृष्णकुमार और उर्मिला के बीच प्रेमानुकूल वार्तालाप भावों के अनुरूप दर्शाया गया है।

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में भी पत्रात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। महाराजलक्ष्मी अपनी स्कूल की सहेली नम्रता को पत्र लिखती है।

प्रिय नम्रता,

तुमकों शायद न मालूम हो कि मेरी शादी हो गई है ...... आओगी न प्यारी बहन!"[345]

तुम्हारी

राजलक्ष्मी

संवाद शैली

"दो या अधिक पात्रों के बीच बातचीत के माध्यम से कथा को प्रस्तुत करना वार्तालाप या संवाद शैली है। कथा को गतिशील बनाने तथा चरित्रों के कार्यकलाप को स्पष्ट करने में संवाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संवाद छोटे–बड़े, गंभीर–रोचक, पात्र–प्रसंग, भाव तथा विषय के अनुरूप कईं प्रकार को होते हैं।"[346]

अमरकांत ने उपन्यास साहित्य में पात्रों की विविधतानुसार पात्रों के अनुकूल संक्षिप्त, रोचक और प्रभावशाली संवादात्मक शैली का बहुतायत में प्रयोग किया है।

कुछ उदाहरण इस प्रकार है –

'कंटीली राह के फूल' में दीप्ति और अनूप के मध्य का संवाद कुछ इस प्रकार है –

"भाई साहब आज नहीं आएंगे, उनकी तबीयत ठीक नही।'

नमस्कार के बाद उसने कहा। 'अधिक खराब तो नही?'

'जी नहीं, हकारत है।' 'शाम को आऊंगा।"[347]

'काले–उजले दिन' में नायक का अपनी पत्नी कांति के प्रति उपेक्षित व्यवहार होता है। इस कारण कांति अत्यधिक दुःखी रहती है तथा अकेलेपन की वजह से वह रोती रहती थी। दोनों का संवाद इस प्रकार है –

'क्यों, क्या बात है? तकलीफ है क्या कोई? मैंने पूछा।'

'नहीं कुछ भी नहीं है कांति ने आँखे पौछतें हुए कहा ....'

'मैं इसलिए नहीं रो रही थी।'

'फिर क्यों रो रही थी?'

'यूं ही पुरानी बातें याद आ रही थी।'

'कौन–सी पुरानी बाते'

'यही बचपन की बातें'

'किसकी बातें। 'जरा सुनूं तो।'

'अरे नहीं भाई–बहिनों की बातें कितना हम खेलते–कूदते थे।'

'कैसे तुम्हारे दिमाग में ये बातें आती है?'

'बैठे–बैठे आ जाती है।

'बातों के आने का क्या है?'[348]

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में उपन्यासकार ने सीतानाथ व उसकी पत्नी के संवाद को बड़े ही स्वाभाविक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है, जिसमें उनके पुत्र नीलेश के विवाह को लेकर दोनों आपस में वार्तालाप करते है –

"कोई लड़की है क्या? सीतानाथ ने दूध–भात का एक कौर डालकर मुँह चलाते हुए सामान्य ढंग से पूछा।

उनके मायके में पडौस में ही रहती है।

'कह रही थी, राजा है लोग।

'बाप क्या करते है?'

'पटवारी है, बड़ी इज्जत है, काफी खेतीबारी है।'

'अच्छा।'

'भौजी कहती थी दान–दहेज से घर भर देंगे.........।'

'अरे दान–दहेज की बात छोड़ो जी।'[349]

उपन्यासकार अमरकांत जी ने 'आकाशपक्षी' उपन्यास की नायिका हेमा व उसके पड़ोस में रहने वाली हम उम्र नीता के वार्तालाप को बाल सुलभ संवाद–शैली में प्रस्तुत किया है।

"तुम्हारा क्या नाम है ....?'

अनीता कर्णवाल। 'तुम्हारा'?

'हेमवती सिंह।'

मैं सात में पढ़ती हूँ। तुम?

मैं भी।'

मेरा भाई इण्टर में पढ़ता है। उससे मेरी नहीं पटती, हमेशा लड़ाई रहती है।'

'क्यों लड़ाई रहती है?'

यूँ ही बड़ा शैतान है। .. खाने में जरा भी देर होने पर बिगड़ जाता है।"[350]

इस प्रकार उपन्यासकार ने अपने उपन्यास साहित्य में संवादात्मक शैली का बड़ी कुशलता से प्रयोग किया है।

निष्कर्षतः किसी भी रचना का प्राणतत्त्व कथ्य है तो शिल्प उसका शरीर। उपन्यास में शिल्प के अंतर्गत उन सभी विधियों नियमों, कल्पनाओं, विचारों एवं तरीकों का समावेश हो जाता है, जिसके माध्यम से उपन्यास की घटना पात्र, वार्तालाप, दृश्य तथा वातावरण सजीव हो उठते हैं। अमरकांत के उपन्यास साहित्य का शिल्प सौन्दर्य कथ्य के अनुरूप प्रभावी, सशक्त, मंजा हुआ एवं उच्च कोटि का है।

उनके उपन्यासों में भाषा एवं शैली का वैविध्यपूर्ण प्रयोग हुआ है। भाषा एक देवीय अंश है, जो मनुष्य को प्रकृति प्रदत्त बहुमूल्य उपहार स्वरूप प्राप्त है। इसके माध्यम से वह समाज के अन्य मनुष्यों से अपनी भावनाओं और विचारों को सहजता से अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी संवेदना, बोध एवं अनुभूत्यानुसार साहित्यिक भाषा का प्रयोग करता है। भाषा को साहित्य का अस्त्र माना जाता है। अमरकांत ने भाषा रूपी अस्त्र का प्रयोग पात्रों व परिवेश के अनुरूप किया है। साधारण बोलचाल की भाषा को साहित्यिक गरिमा में ढ़ालने तथा तराशने का श्रेय संभवतः प्रेमचंद को जाता है। अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में प्रतीकात्मकता, लयात्मकता, चित्रात्मकता व ध्वन्यात्मकता इत्यादि का प्रयोग कर भाषा की समृद्धि में इतिश्री कर प्रेमचंद की परम्परा का ही निर्वहन किया है। प्रेमचंद के ही अनुरूप अमरकांत का

भाषाकोश ग्रामीण एवं शहरी दोनों परिवेश से जुड़ाव के कारण विपुल एवं समृद्ध है। उनके उपन्यासों की भाषा पात्रों की मानसिक स्थिति, प्रसंगविशेषानुसार, कथ्यानुरूप व पात्रानुकूल है।

अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में लोकगीतों के प्रयोग के माध्यम से अचंल विशेष की संस्कृति के दर्शन कराये हैं। भाषा के काव्यात्मक रूप से उपन्यासों के प्रसंगों में सौंदर्य वृद्धि तथा पात्रों में जीवंतता देखी जा सकती है। उनके उपन्यासों में कहीं–कहीं चित्रात्मकता का गुण भी दिखाई देता है। उनके उपन्यास साहित्य में ध्वन्यामकता विशेष रूप से ध्वनित हुई हैं, जिससे साहित्य स्पंदित हो उठा है।

भाषा के सफल संयोजन हेतु शब्द–विधान का प्रयोग अत्यंत आवश्यक है। अमरकांत के उपन्यास साहित्य का शब्द–विधान वैविध्यपूर्ण है। मूलतः उपन्यासकार ने पूर्वी बलिया के आस–पास की आंचलिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर कथ्य का चयन किया है। उनके उपन्यास साहित्य के पात्र, परिवेश, वातावरण इत्यादि ग्रामीण व शहरी दोनों से सम्पृक्त होने के कारण उनके पात्र कभी संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का प्रयोग करते हैं, कभी उर्दू–फारसी, तो कभी अंग्रेजी, तो कहीं उनकी बोली में प्रादेशिक शब्दावली का बासंती बयार लहलहाता दिखाई देता है। भाषा में प्रभाव तथा पैनापन उत्पन्न करने के लिए उपन्यासकार ने लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग किया है। जहां उपन्यासकार ने लोकोक्तियों के उपयोग से जीवन के विविधानुभवों, नियमों, विश्वासों इत्यादि को अत्यंत सजीव, संक्षिप्त, सारगर्भित तथा चुटीले अंदाज में प्रयुक्त किया है। वहीं मुहावरों के प्रयोग से भाषा को यौवन सम्पन्न शक्ति और समर्थता भी प्रदान की है। उन्होंने उपन्यासों में पात्रों की विचाराभिव्यक्ति हेतु सूक्तियों का भी प्रयोग किया है। साथ ही समाज में व्याप्त अन्तर्विरोधों और विसंगतियों पर आक्रोश व्यक्त करते हुए कहीं–कहीं भदेश भाषा का भी प्रयोग किया गया है।

प्रत्येक साहित्यकार का अपना अनुभव जगत होता है। लेखक अपने अनुभव वैशिष्ट्य का साक्षात्कार पाठक को जिस रीति, ढंग अथवा पद्धति से करवाता है, वह शैली कहलाती है। साहित्यिक जगत में कथ्य के प्रकटीकरण हेतु अनेकानेक शैलियां प्रचलित है। उपन्यास साहित्य में शैली का वैशिष्ट्य कथानक संरचना के रूप में तो दृष्टिगत होता है। साथ ही वह पात्र के चरित्र–चित्रण की पद्धति में भी सहायक है। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, भावात्मक, व्यंग्यात्मक, पत्रात्मक, संवादात्मक तथा पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया है।

संदर्भ

1. अमरकांत का कथा साहित्य कथ्य एवं शिल्प, डॉ. योगेश गोकुल, पाटिल, पृ. 184
2. हिंदी शब्द सागर, संपा., श्यामसुंदर दास, पृ. 2751
3. मानविकी पारिभाषिक कोश, संपा. – नगेन्द्र, पृ. 24
4. हिंदी–उर्दू उपन्यास, शिल्प–बदलते परिप्रेक्ष्य, डॉ. प्रेम भटनागर, पृ. 3
5. शचीद्रं उपाध्याय के कथा साहित्य में संवेदना और शिल्प, डॉ. अनीता वर्मा, पृ. 222
6. हिंदी उपन्यासों की शिल्प विधि का विकास, डॉ. ओम शुक्ल, पृ. 17–18
7. प्रेमचन्द्रोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि, डॉ. सत्यपाल चुग, पृ. 10
8. हिंदी भाषा और महाकाव्य एक अध्ययन, डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय', पृ. 9
9. सामान्य हिंदी, डॉ. हरदेव बाहरी, पृ. 3
10. व्यावहारिक सामान्य हिंदी, डॉ. राघव प्रकाश, पृ. 1
11. मोहन राकेश के उपन्यासों में चरित्र सृष्टि, डॉ. लक्ष्मण जे. वाणवी, पृ. 274
12. लहरें, अमरकांत, पृ. 27
13. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 49
14. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 151
15. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 91
16. लहरें, अमरकांत, पृ. 29
17. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 9–10
18. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 290
19. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 175
20. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 19
21. हिंदी भाषा और महाकाव्य एक अध्ययन, डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' पृ. 86
22. एनसाइक्लोपीडिया, ब्रिटेनिका वाल्युम 43, पृ. 284
23. मानक हिंदी कोश, खण्ड तीसरा, सं. रामचंद्र वर्मा, पृ. 614
24. लहरे, अमरकांत, पृ. 65–66
25. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 50
26. कंटीली के राह फूल, अमरकांत, पृ. 45
27. अमरकांत का कथासाहित्य : कथ्य एवं शिल्प, डॉ. गोकुल पाटिल, पृ. 190
28. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 213
29. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 218
30. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 186

31. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 7
32. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 184
33. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 50
34. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 19
35. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 20
36. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 47
37. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 131
38. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 83
39. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 84
40. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 131
41. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 95
42. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 99
43. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 189—190
44. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 222
45. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 346
46. नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ. 377
47. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 10
48. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 79
49. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 335
50. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 7
51. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 134
52. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 111
53. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 81
54. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 9
55. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 19
56. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 19
57. लहरें, अमरकांत, पृ. 10
58. लहरें, अमरकांत, पृ. 55
59. लहरें, अमरकांत, पृ. 57
60. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 35
61. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 51

62. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 123
63. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 78
64. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 152
65. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 159
66. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 65
67. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 86
68. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 436
69. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 98
70. श्यामसुन्दर दास, हिंदी शब्द सागर, स.पा., पृ. 01
71. सम्पूर्ण हिंदी व्याकरण और रचना, डॉ. अरविन्द कुमार, पृ. 78
72. व्यावहारिक सामान्य हिंदी, डॉ. राघव प्रकाश, पृ. 2
73. सुगम हिंदी व्याकरण तथा रचना, सुखलाल गुप्त, पृ. 148
74. तत्सम–तद्भव, Hindi Gyan Ganga, www.hindigyanganga.com
75. मानक हिंदी कोश, खंड दूसरा, सं. रामचन्द्र शर्मा, पृ. 501
76. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 97
77. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 66
78. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 44
79. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 13
80. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 30
81. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 61
82. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 105
83. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 109
84. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 17
85. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 56
86. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 114
87. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 127
88. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 138
89. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 139
90. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 147
91. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 148
92. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 351

93. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 52
94. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 94
95. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 44
96. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 48
97. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 139
98. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 71
99. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 134
100. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 11
101. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 15
102. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 32
103. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 51
104. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 141
105. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 143
106. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 21
107. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 318
108. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 325
109. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 414
110. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 484
111. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 19
112. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 63
113. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 05
114. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 11
115. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 19
116. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 29
117. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 62
118. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 63
119. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 64
120. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 65
121. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 68
122. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 71
123. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 15

124. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 151
125. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 13
126. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 162
127. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 458
128. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 459
129. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 484
130. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 520
131. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 18
132. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 61
133. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 108
134. लहरें, अमरकांत, पृ. 30
135. लहरें, अमरकांत, पृ. 39
136. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 101
137. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 112
138. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 30
139. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 10
140. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 10
141. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 134
142. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 22
143. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 57
144. सुगम हिंदी व्याकरण तथा रचना, सुखलाल गुप्त, पृ. 148
145. वृहद हिंदी लोकोक्ति कोश, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 10
146. लहरें, अमरकांत, पृ. 19
147. लहरें, अमरकांत, पृ. 35
148. लहरें, अमरकांत, पृ. 38
149. लहरें, अमरकांत, पृ. 39
150. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 15
151. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 90
152. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 42
153. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 74
154. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 87

155. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 40
156. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 76
157. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 103
158. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 156
159. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 05
160. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 30
161. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 78
162. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 89
163. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 63
164. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 135
165. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 135
166. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 143
167. आकाशपक्षी, अमरकांत, पृ. 199
168. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 17
169. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 57
170. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 116
171. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 142
172. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 146
173. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 189
174. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 440
175. प्रयाग सामान्य हिंदी, सुशील कुमार, पृ. 159
176. राग दरबारी का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, राधा दीक्षित, पृ. 223
177. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 19
178. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 48
179. लहरें, अमरकांत, पृ. 15
180. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 48
181. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 54
182. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 101
183. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 174
184. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 06
185. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 21

186. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 41
187. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 64
188. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 30
189. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 38
190. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 46
191. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 101
192. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 108
193. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 129
194. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 11
195. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 44
196. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 89
197. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 137
198. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 141
199. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 199
200. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 09
201. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 42
202. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 13
203. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 18
204. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 20
205. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 162
206. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 199
207. https://shabdkosh.raftaar.in
208. अमरकांत का कथासाहित्यः कथ्य एवं शिल्प, डॉ. गोकुल पाटिल, पृ. 200–201
209. लहरें, अमरकांत, पृ. 45
210. लहरें, अमरकांत, पृ. 68–69
211. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 11
212. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 29
213. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 40
214. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 94
215. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 19
216. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 115

217. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 144
218. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 114
219. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 24
220. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 90
221. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 420
222. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 25
223. लहरें, अमरकांत, पृ. 38
224. लहरें, अमरकांत, पृ. 69
225. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 06
226. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 69
227. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 42
228. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 50
229. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 08
230. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 57
231. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 42
232. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 160
233. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 49
234. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 55
235. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 22
236. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 49
237. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 150
238. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 73
239. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 156
240. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 105
241. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 290
242. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 07
243. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 07
244. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 13
245. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 44
246. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 55
247. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 69

248. लहरें, अमरकांत, पृ. 11
249. लहरें, अमरकांत, पृ. 87
250. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 07
251. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 05
252. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 06
253. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 10
254. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 17
255. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 60
256. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 64
257. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 77
258. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 81
259. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 115
260. बीच की दीवार, अमरकांत, पृ. 126
261. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 30
262. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 70
263. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 30
264. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 57
265. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 62
266. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 81
267. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 83
268. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 87
269. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 99
270. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 108
271. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 121
272. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 10
273. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 10
274. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 33
275. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 42
276. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 58
277. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 121
278. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 200

279. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 10
280. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 19
281. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 38
282. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 48
283. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 50
284. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 139
285. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 144
286. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 151
287. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 17
288. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 47
289. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 43
290. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 57
291. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 59
292. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 68
293. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 82
294. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 92
295. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 133
296. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 382
297. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 8
298. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 10
299. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 13
300. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 31
301. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 43
302. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 66
303. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 67
304. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 86
305. राग दरबारी का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, राधा दीक्षित, पृ. 9
306. अमरकांत का कथा साहित्यः कथ्य एवं शिल्प, डॉ. योगेश गोकुल पाटिल, पृ. 207
307. डॉ. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की निबंध शैली, डॉ. प्रत्यूष गुलेरी, चक्रवात, जुलाई–सितम्बर, 2018, अंक–45, संपादक – निशांत केतु, पृ. 34
308. हिंदी आत्मकथा साहित्य का शैलीगत अध्ययन, डॉ. कमलापति उपाध्याय, पृ. 48

309. अमरकांत का कथा साहित्यः कथ्य एवं शिल्प, डॉ. योगेश गोकुल पाटिल, पृ. 209
310. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 11
311. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 13
312. इन्हीं हथियारों, अमरकांत, पृ. 198
313. उपन्यासकार कमलेश्वर : संवेदना और शिल्प, डॉ. देशाणी महेन्द्र कुमार जे, पृ. 308
314. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 5
315. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 7
316. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 10
317. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 10
318. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 10
319. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 171
320. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 172
321. अमरकांत के साहित्य में मध्यवर्ग, डॉ. संजय कुमार, पृ. 221
322. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 58–59
323. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 47
324. साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना, कृष्ण कुमार बिस्सा, पृ. 154
325. लहरें, अमरकांत, पृ. 43
326. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 8
327. पराई डाल का पंछी, अमरकांत, पृ. 183
328. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 159
329. अमरकांत का कहानी साहित्य, कथ्य एवं शिल्प, वर्षारानी व्यास, अप्रकाशित शोध प्रबंध सत्र–2014, पृ.217
330. आधुनिक हिंदी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, देवराज उपाध्याय, पृ. 32
331. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 11
332. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 8
333. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 9
334. सुन्नर पांडे की पतोह, अमरकांत, पृ. 8
335. बिदा की रात, अमरकांत, पृ. 18
336. अमरकांत का कथा साहित्य कथ्य एवं शिल्प, डॉ. गोकुल पाटिल, पृ. 211
337. लहरें, अमरकांत, पृ. 47
338. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 13

339. ग्रामसेविका, अमरकांत, पृ. 19
340. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 123
341. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 124
342. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 208
343. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 209
344. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 162
345. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 208
346. अमरकांत का कथा साहित्य, कथ्य एवं शिल्प, डॉ. योगेश गोकुल पाटिल, पृ. 213
347. कंटीली राह के फूल, अमरकांत, पृ. 21
348. काले–उजले दिन, अमरकांत, पृ. 60
349. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 162
350. आकाश पक्षी, अमरकांत, पृ. 28

सप्तम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

साहित्य में उपन्यास गद्य की वह विधा है, जिसमें मानव–जीवन की व्यापक व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही वह वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म, विशद एवं गहन चित्र यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करता है। अपनी उत्पत्ति काल से ही उपन्यास यथार्थ जीवन की ओर उन्मुख रहा है। इसमें जीवन के सभी लौकिक मूल्यों की व्याख्या सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सन्दर्भों के अंतर्गत की जाती है। उपन्यासकार मानव–जीवन की वास्तविक व यथार्थ अनुभूति को वैचारिक तूलिका में तौलकर उसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद के अंतर्गत करता है। यथार्थवादी परम्परा के उपन्यासकारों की श्रेणी में अमरकांत ऐसे यथार्थवादी लेखक है, जिन्होंने अपने समय के समाज और इससे जुड़ी समस्याओं को जैसा स्वयं अनुभूत किया, वैसा ही अपने उपन्यास साहित्य में भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अमरकांत प्रेमचंद की यथार्थवादी परम्परा के विशिष्ट उपन्यासकार है। उनके उपन्यास साहित्य में मानव–जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पक्षों की समस्याओं का सपाट व सजीव चित्रण वायवी वातावरण में न होकर यथार्थ भूमि पर गढ़ा गया है। उन्होंने समाज व राजनीति के ज्वलंत मुद्दों को व्यंग्य के माध्यम से उभारा है। उनकी लेखकीय संवेदना समाज के मध्यम व निम्न वर्ग के लोगों की आशाओं व आकांक्षाओं के साथ दिखाई देती है।

अमरकांत ने अपने उपन्यास के माध्यम से समाज में घटित मानव–जीवन के सूक्ष्म व गर्हित पक्षों तथा बदले हुए परिवेश में संस्कार और आधुनिकता के मध्य उलझे हुए मध्यवर्गीय मानव–मन के अन्तर्द्वन्द्वों को बड़ी ईमानदारी व सच्चाई के साथ यथार्थ धरातल पर टटोलने का प्रयास किया है। वस्तुतः सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत समाज की वास्तविक स्थिति व परिस्थिति के अनुरूप मनुष्य–जीवन के व्यक्तिगत, सामाजिक मनोभावों को यथार्थता के साथ अभिव्यक्त किया जाता है। इसके अंतर्गत आधुनिकता व फैशन की दौड़ में बदलते परिवेश में मानव–संबंधों की टूटन व बिखराव, पारिवारिक विघटन, प्रेम तथा विवाह की नींव को ध्वस्त करते विवाहेत्तर संबंध, अन्तर्द्वन्द्व तथा प्रणय की ओट में व्यथा–कथा को यथातथ्यता के साथ उकेरा जाता है। इस प्रकार मानव–मन के संबंधों की पीड़ा, कुंठा, संत्रास, एकाकीपन, अलगाव व विपन्नता आदि के बीच जीवन जीने के लिए विवश लोगों की मानसिकता व कारूणिक स्थिति का चित्रण अमरकांत के सूखापत्ता, ग्रामसेविका, काले–उजले दिन, सुन्नर पांडे की पतोह, आकाश पक्षी, इन्हीं हथियारों से इत्यादि उपन्यासों में सर्वत्र दिखाई देती है। इन उपन्यासों में समाज के बहुआयामी पक्षों को लेखक ने अपनी यथार्थपरक दृष्टि प्रदान की है।

उनके उपन्यासों में रोजी–रोटी तथा प्रेम–कलह की समस्याओं से लेकर सामाजिक बुराईयों तक की समस्याओं तथा प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति की आस्थाओं–शंकाओं, आशाओं–निराशाओं इत्यादि का यथातथ्य अंकन हुआ है। उन्होंने अपने साहित्य में सामाजिक तथ्यों यथा–सामाजिक प्रतिष्ठा, दिखावा, आधुनिकता, फैशन, संयुक्त परिवारों का विघटन, मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों, प्रेम, यौन–चेतना, नारी की दयनीय तथा दोयम दर्जे की स्थिति पर दृष्टिपात किया है। उन्होंने समाज के गर्हित व धुंधले पक्षों के साथ–साथ समाज के उजले पक्षों को भी अपने साहित्य में स्थान दिया है। उनके उपन्यास साहित्य की नारी समाज में अपनी दिशाओं को खोजती दिखाई देती है। वह अपने प्रति हो रहे शोषण से मुकाबला कर समाज में अपनी पहचान स्थापित करती है। उनकी रचनाएं मानव–मूल्यों के संरक्षण एवं सामाजिक नव–निर्माण के उत्कृष्ट आकांक्षा की रचनाएं हैं, जिनका संबंध कल्पना के वायवी वातावरण से न होकर जीवन की व्यावहारिकता व वास्तविकता से है।

अमरकांत ने बाल्यकाल से ही राजनीतिक समस्याओं का दौर देखा था। तब पूरे देश में गांधी व नेहरू राजनेता के तौर पर सम्पूर्ण मानस–पटल पर छाए हुए थे। स्वयं अमरकांत पर भी तत्कालीन राजनीतिक सरगर्मियों का असर हुआ और वे गांधी जी के स्वाधीनता संग्राम से जुड़ गए। गांधी जी द्वारा 'हरिजन' पत्रिका में लिखे लेखों ने आम जनता में क्रांतिकारी भावना को इस प्रकार प्रज्वलित किया, जैसे सूखी लकड़ी में अग्नि का प्रवेश शीघ्र ही हो जाता है। आम जनता स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए उस लकड़ी के समान ही धूँ–धूँ करके मुक्ति के लिए जलने लगी और स्वाधीनता का स्वर मुखरित होने लगा।

अमरकांत ने जब लेखन कार्य प्रारम्भ किया वह एक संधियुग था। जहां एक और राष्ट्रीय भावना से जुड़ी विचारधाराओं पर साहित्य लिखा जा रहा था, तो दूसरी ओर समाजवादी विचारधारा का यथार्थवादी चित्रण साहित्य में हो रहा था। उन्होंने अपने उपन्यास 'सूखापत्ता' तथा 'इन्हीं हथियारों से' में स्वातंत्र्यपूर्व के भारत व देश–प्रेम की घटनाओं का यथातथ्य अंकन प्रस्तुत किया है। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में बलिया क्षेत्र में घटित देशव्यापी आंदोलनों तथा क्रांतिकारी घटनाओं का यथार्थ चित्रित है। इन जन–आंदोलनों के तहत विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर विदेशी दस्तावेजों व वस्त्रों की होली जलाना, सूत कातना, खादी धारण करना तथा जगह–जगह सरकारी स्कूल, कालेजों व दफ्तरों इत्यादि में हड़ताल करना इत्यादि घटनाओं को यथार्थ भूमि प्रदान की गयी है।

अमरकांत ने देश के प्रमुख नेताओं (गांधी व नेहरू), क्रांतिकारियों के साथ–साथ आम वर्ग के बलिदान व साहस का वर्णन कर सम्पूर्ण देशवासियों के भीतर आजादी के स्वप्न को साकार करने के जज्बे व आदर्श को प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यास 'इन्हीं हथियारों

से' में ब्रिटिश सत्ता की क्रूरता व बर्बरता का कटु व नग्न यथार्थ व्यापक स्तर पर देखा जा सकता है। देश की स्वतंत्रता के लिए भारतवासियों को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। एकता स्वतंत्रता संग्राम की नींव थी, किंतु देश–विभाजन से एकता की मजबूत दीवार भी धराशायी हो गयी। जिस आजादी को हमने दीर्घकालीन अनुशासन, तप, त्याग और अंहिसा के मार्ग पर चलकर जीता था। उस आजादी के मिलते ही भारत–विभाजन के दंश ने साम्प्रदायिकता रूपी भीषण ज्वाला को धधका दिया। जिसमें भारतवासियों ने अपने ही लोगों के खून की होली खेली। भारत–विभाजन व साम्प्रदायिकता की तपन आज भी भारत व पाकिस्तान दोनों ही देशों में महसूस की जाती है। साम्प्रदायिकता ने जातिवाद को बढ़ावा दिया है। अमरकांत ने देश–विभाजन व साम्प्रदायिकता की पीड़ा को 'इन्हीं हथियारों से', 'बिदा की रात' तथा 'आकाश पक्षी' इत्यादि उपन्यासों में प्रमुखता से दर्शाया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में शासन की लोकतत्रांत्मक शासन प्रणाली सामने आयी, फलस्वरूप अत्यधिक लोगों को प्रभावित कर उन पर अंकुश रखने के लिए सत्ताधारी की आवश्यकता महसूस हुई। इस प्रयोजनार्थ नेता ऐसा हो जो सुशासन का प्रबंध कर जनता के हित में कार्य करें। कहा भी गया है – "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।" आजादी के कुछ समय पश्चात् तक तो सत्ताधारियों की यही नीति थी, किंतु धनलोलुपता, स्वार्थलिप्सा के चलते नेताओं का नैतिक पतन होने लगा तथा उनकी लोकहित की चाहत सियासत में बदल गई। फलस्वरूप भ्रष्ट प्रजातंत्र, नौकरशाही तथा लालफीताशाही का जन्म हुआ। इसके चलते आम वर्ग तथा ग्रामीणों के अधिकारों का हनन होने लगा। सरकारी योजनाओं का लाभ बिचौलियों को मिलने लगा। इन सभी ज्वलंत मुद्दों को अमरकांत ने ग्रामसेविका, बिदा की रात इत्यादि उपन्यासों में उठाया है।

वस्तुतः राजनीति आज अस्थिरता, अराजकता, अनैतिकता व अनिश्चितता के दौर में गुजर रही है। राजनीति अपने मूल रूप में नीतियों का राजतंत्र है। इसलिए कहा जाता है कि जहां एक नीति बदलती है, वहां पूरा राजतंत्र बदल जाता है। देश नीति, नेतृत्व व नीयत से बनता है। जब देश में नीतियां सही होगी, तो लोगों की नीयत भी सही होगी और उनमें नेतृत्व क्षमता भी कहीं अधिक बलवती होगी। अमरकांत के उपन्यासों में राजनीति के कटु यथार्थ के साथ–साथ राजनीति के नव–निर्माण का बीजमंत्र भी दिखाई देता है।

आजादी के बाद का जमाना नये युग तथा नये भारत के निर्माण का जमाना था। निश्चित ही नेहरू इस जमाने के निर्विवाद नायक थे। अमरकांत नेहरू के व्यक्तित्व से खासे प्रभावित थे। नेहरू का दृष्टिकोण वैज्ञानिक सोच लिए था। वे स्वाधीनता, राष्ट्रवाद, समाज इत्यादि के साथ–साथ अर्थ प्राप्ति पर भी जोर देते थे। उनका मानना था कि देश को अर्थागत दृष्टि से

भी मजबूत होना चाहिए। अमरकांत को अपने पत्रकारिता के कैरियर के दौरान आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ा था। उनका जन्म मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। अपने बाल्यकाल से ही उन्होंने आर्थिक समस्याओं को देखा था। वस्तुतः रचनाकार समाज का जागरूक प्रहरी होता है। वह समाज में रहकर उनकी सम्भावित समस्याओं के बनते–बिगड़ते स्वरूप को यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करता है। अमरकांत ने स्वातंत्र्यपूर्व भारत की आर्थिक विषमताओं का यथार्थ चित्रण 'सूखापत्ता' तथा 'इन्हीं हथियारों से' में किया है, वहीं स्वातंत्र्योत्तर भारत में नवीन आर्थिक परिस्थितियों से जुझते निम्न व मध्यमवर्गीय समाज की हताशा, दुःख, पीड़ा व विवशताओं का कटु व वीभत्स यथार्थ 'ग्रामसेविका', 'काले–उजले दिन', 'कंटीली राह के फूल', 'बिदा की रात', 'पराई डाल का पंछी', 'बीच की दीवार', 'लहरें', 'आकाशपक्षी' तथा सुन्नर पांडे की पतोह' इत्यादि उपन्यासों में किया है।

आधुनिक जीवन शैली अर्थाधारित है। वर्तमान में किसी व्यक्ति अथवा वस्तु की आवश्यकता केवल एक स्टेटस सिम्बल बनकर रह गयी है। आज यदि हम ध्यान दें, तो हमारे घरों में बहुत सी वस्तुएं आपको अनावश्यक दिखेंगी। जैसे–मंहगे फर्नीचर, कईं प्रकार की क्रॉकरी, कपड़े, जूते–चप्पल इत्यादि। जबकि सीमित संसाधनों से भी जीवन यापन किया जा सकता है। वास्तव में औद्योगिकरण तथा मशीनीकरण के युग ने हमें उपभोक्तावादी बना दिया है। मशीनी युग ने हमारे घरों में फ्रिज, कूलर, टी.वी., मिक्सर, ओवन, माइक्रोवेव इत्यादि के प्रयोग से न केवल हमारी जीवन शैली को ही प्रभावित किया है, बल्कि इन सब वस्तुओं का घर में होना सामाजिक प्रतिष्ठा, समृद्धि एवं सम्पन्नता से भी जोड़कर देखा जाने लगा है। इस प्रकार अर्थ ने दिखावे की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। अमरकांत ने दिखावे की प्रवृत्ति को आकाशपक्षी, सूखापत्ता, लहरें इत्यादि उपन्यासों में उभारा है।

आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण तथा भौतिकता के कारण मानवीय संवेदनाएं क्षीण होती जा रही है। पारिवारिक संबंधों में अर्थ का महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है। परिवार के सभी सदस्य एक–दूसरे से अर्थाधारित संबंधों के चलते औपचारिक बंधनों में बंधे नजर आते है। इस प्रकार पारिवारिक संबंध स्थापित करने यथा – विवाह इत्यादि में स्नेह, प्रेम की जगह उपयोगितावादी दृष्टि पनप रही है। प्रेम व दाम्पत्य संबंधी संवेदनाएं भी अब पूर्ववत नहीं रही। पूर्व में ये संबंध प्रेम, त्याग, सहयोग, समर्पण इत्यादि से जुड़े दिखाई देते थे, परन्तु आज स्वार्थ के चलते इन संबंधों में स्थायित्व की कमी देखी जा सकती है। अर्थाधारित संबंधों ने पिता–पुत्र, पति–पत्नी, गुरू–शिष्य, भाई–बहन, प्रेमी–प्रेमिका जैसे मजबूत संबंधों की नींव को भी हिला कर रख दिया है। परिणामस्वरूप मानव–संबंधों में टूटन, घुटन, संत्रास, विध्वंस, अंशाति, उद्वेलन इत्यादि स्थितियों को देखा जा सकता है। संबंधों की टूटन ने संयुक्त परिवारों के विघटन, दोहरे

जीवन की त्रासदी, संदेहशीलता, नारी–शोषण, अलगाव तथा विभिन्न पारिवारिक जीवन की समस्याओं को जन्म दिया है।

अतः वर्तमान भौतिकवादी तथा मशीनीकरण के युग में जीवन को पुनः मानवीय संवेदनाओं से जोड़ने की महती आवश्कता है। इसकी प्रथम सीढ़ी है–आपसी संवाद। आपसी संवाद ही वह साधन है, जिसके माध्यम से एक–दूसरे की समस्याओं, दुःख व पीड़ा से अवगत हो, उनके समाधान हेतु प्रयास किया जा सकता है।

अमरकांत के उपन्यासों में संस्कृति के विविध रूप परिलक्षित होते है। उनका मानना है कि सामाजिक संस्करण में संस्कृति की उपादेयता अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। संस्कृति किसी भी देश की अस्मिता को जीवंत और सतत् प्रवाहमान बनाये रखने के लिए सहायक होती है। वस्तुतः नैतिक दृष्टि से संस्कृति का संबंध नैतिकता, ईमानदारी, सच्चाई, आदर्श, नियमों व सद्‌गुणों से है। संस्कृति का संबंध सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् से है। वास्तव में व्यक्ति जो कुछ भी अपने आस–पास की संस्कृति से ग्रहण करता है, वह उसके व्यवहार में समाविष्ट हो जाता है। अमरकांत ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज को देश की प्राचीन व समृद्ध संस्कृति से रूबरू कराने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों में भारतीय व्यंजनों की भरमार है, जो बलिया, इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश इत्यादि क्षेत्र–विशेष से परिचित कराती है। साथ ही वहां की भाषा, बोली, रहन–सहन, वेश–भूषा, रीति–रिवाज, उत्सव व मेले इत्यादि का चित्रण लेखक ने यथार्थ धरातल पर किया है।

उनके उपन्यासों के पात्रों में धार्मिक भावना मूलरूप से विद्यमान है। भारतीय संस्कृति विभिन्न धर्मों की संरक्षिता के रूप में जानी जाती है। यह जन–समुदाय के लिए विभेदक न होकर उसका संरक्षण करती है। स्वातंत्र्यपूर्व का भारत हिन्दु–मुस्लिम दोनों समुदायों के धर्मों के प्रति आस्था व एकता का प्रतीक रहा है। इसका स्वाभाविक व यथार्थ चित्रण उपन्यासकार ने 'इन्हीं हथियारों से' तथा 'बिदा की रात' उपन्यासों में व्यापक स्तर पर किया है। सदियों से धर्म एक शाक्तिशाली अस्त्र के रूप में देखा जाता रहा है। वह व्यक्ति को बुराई, अन्याय व अत्याचार से संघर्ष करने के लिए प्रेरित भी करता है, किंतु धर्म को आधार बनाकर साम्प्रदायिक दंगे फैलाने वालों के लिए भारत एक उदाहरण के रूप में है। साम्प्रदायिक दंगों ने आज जातिगत साम्प्रदायिकता का रूप ले लिया है। भारत में जाति–पाति तथा छूआ–छूत की जड़े इतनी गहरी है कि शिक्षा के प्रचार–प्रसार तथा लोगों में अपने अधिकारों के प्रति आई जागरूकता के कारण इसका प्रभाव कुछ कम तो हुआ है, लेकिन वर्तमान समाज में जाति–पाति के बंधन पूर्णतः शिथिल नहीं हो पाए है। अमरकांत ने 'सूखापत्ता' से लेकर 'इन्हीं हथियारों से' तक लगभग सभी उपन्यासों में उक्त ज्वलंत समस्याओं को उठाया है।

उनके उपन्यासों में परम्पराओं, रूढ़ियों व अंधविश्वासों का कटु व विकृत यथार्थ अंकित है। वस्तुतः आज भी निम्न वर्ग से लेकर उच्च व शिक्षित वर्ग के लोग दैवीय चमत्कारों की शक्ति में विश्वास करते है। ये लोग अंधविश्वासों में पड़कर अपने जीवन को खतरे में डालते है तथा जीवन भर इस विकृति का शिकार बनते रहते है।

आधुनिक युग में जहां वर्ण–व्यवस्था, जाति–पाति तथा छूआ–छूत का क्रम समाज व संस्कृति के लिए अभिशाप बना हुआ है, वहीं अविश्वास व मान्यताओं से समाज का विकृत रूप परिलक्षित होता है। वर्तमान में उक्त समस्याओं से उबरने के लिए लोगों में शिक्षा व जागृति उत्पन्न करने के साथ–साथ निरंतर प्रयास व निर्णय लेने की महती आवश्यकता है।

अमरकांत के उपन्यास साहित्य के युग की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक अवधारणाएं जहां अपने–अपने क्षेत्र में नव–निर्माण के लिए प्रयत्नशील है, वहीं समकालीन समय में भी यह नव–प्रवर्तन की दिशा सुनिश्चित करती है। युवाओं का देश कहलाने वाले भारत में आज आधुनिक पीढ़ी पश्चिम की चकाचौंध से आकर्षित हो उसकी संस्कृति को आत्मसात करती जा रही है। ऐसे में अमरकांत का साहित्य हमारा पथ–प्रदर्शक हो सकता है। उनके उपन्यास के युवा पात्र अपने–अपने समय व समाज से संघर्ष करते हुए विद्रुपताओं व विसंगतियों को तोड़ते नजर आते है। उनके उपन्यास के युवा स्वाधीनता सैनानी, समाज–सेवी, दृढ़ संकल्पी, परिश्रमी इत्यादि गुणों में आपुरित है। जहां पाखण्ड और अंधविश्वास अपनी गहरी पैठ बनाते जा रहे है, पूंजीवादी व्यवस्था ने जहां नारी को 'वस्तु' बना दिया है। ऐसे में अमरकांत अपने साहित्य के माध्यम से जीवन की विसंगतियों और शोषण की कथाओं को यथार्थ रूप में सबलता के साथ समाज के सम्मुख रखते है, जिससे समाज की जड़ता में से चेतना का प्रवाह फूट सके। उनका साहित्य भारतीयों में अपनी संस्कृति व सभ्यता के प्रति आत्मगौरव की भावना जाग्रत करता है। इसी में वे भारत की प्रगति का मार्ग देखते है।

शोध–सारांश

हिंदी साहित्य में समस्त पाठक स्वीकार करते हैं कि रचनाधर्मिता की दृष्टि से समकालीन हिंदी साहित्य का परिदृश्य वैविध्यमय तथा सम्भावनापूर्ण है। इसे सम्पन्न बनाने हेतु अनेकों रचनाकारों ने सभी विधाओं में अभूतपूर्व योगदान दिया है। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सम्पूर्ण हिंदी साहित्य में जो जीवन चेतना विकसित होने लगी है, उसकी व्यापक और सशक्त अभिव्यक्ति उपन्यास में हुई है। वैचारिक क्रांति के इस युग में सामाजिक जीवन के प्रति विशेष जागरूकता आयी और गतिशील जीवन के विविध रूपों को आधार बनाकर सृजन होने लगा। उपन्यासकार अधिक वस्तुनिष्ठ और अप्रतिबद्ध दृष्टि से जीवन को देखने लगा और उसके आंतरिक तत्त्वों को अधिक गहराई से समझने लगा। इसलिए जीवन के प्रति यथार्थपरक दृष्टिकोण अपनाना आज के वैज्ञानिक युग की व्यावहारिकता और विवेकशीलता का परिणाम है।

हिंदी उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद का आयाम बड़ा ही विस्तृत एवं व्यापक है। उपन्यास गद्य की वह विधा है, जिसमें यथार्थ की अभिव्यक्ति सहज रूप में की जा सकती है। यथार्थ अनुभूति का विषय है, जिसमें जीवन के विविध पक्षों का बोध होता है। साहित्यकार अपनी उर्वर कल्पना, सांस्कृतिक विरासत, ऐतिहासिक संदर्भ और सम–सामयिक यथार्थ को अपनी रचनाओं में रूपायित कर उन्हें कालजयी बना देने का प्रयास करता है। हिंदी उपन्यासों में यथार्थवाद की सुदीर्घ और लम्बी यात्रा प्रेमचंद जी के साहित्य में देखने को मिलती है। अमरकांत प्रेमचंद की परम्परा के सशक्त व यथार्थवादी साहित्यकार है। प्रेमचंद के साहित्य से यथार्थवाद की जो धारा निःसृत हुई, वह अटूट भाव से आज भी निरंतर बह रही है। अतः यथार्थवाद की व्यापकता, गहनता एवं प्रभावात्मकता की दृष्टि से अमरकांत का उपन्यास साहित्य बहुत समृद्ध प्रतीत होता है।

यथार्थवाद जीवन तथा समाज की समस्याओं का वास्तविक तथा प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत करता है। आज के अति भौतिकवादी युग में मानव जीवन में संत्रास, घुटन, टूटन, विध्वंस, अशांति, उद्वेलन इत्यादि स्थितियों को देखा जा सकता है। इस दृष्टि से "अमरकांत के उपन्यास साहित्य में चित्रित यथार्थवाद : एक अनुशीलन" विषय अपने आप में आज मौलिक, प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण है। इसकी यही मौलिकता शोध की आवश्यकता, महत्ता एवं उसके उद्देश्य को प्रमाणित करती है। प्रस्तावित शोध–प्रबंध सात अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय – 'अमरकांत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' शीर्षक के अंतर्गत अमरकांत का परिचय, समकालीन परिस्थितियों, उपन्यासकार की वैचारिक अवधारणाओं के विषय में प्रकाश डाला गया है। साथ ही उनके साहित्यिक सृजन के सोपान यथा–कहानी, उपन्यास, बाल साहित्य, संस्मरण इत्यादि का उल्लेख किया गया है।

हिंदी साहित्य जगत में अमरकांत युगधर्मी और स्वतंत्र चेतनाशील लेखक के रूप में प्रख्यात है। उन्होंने प्रयागभूमि के गौरवभूत त्रिवेणी की आभा से विभूषित इलाहाबाद के शहर बलिया के भगमलपुर गाँव को 01 जुलाई 1925 को उपकृत किया था। इनके पिता श्री सीताराम वर्मा पेशे से मुख्तार थे तथा यशस्विनी मातृ श्री का नाम श्रीमती आनंदी देवी था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बलिया में ही हुई। शिक्षा के प्रारम्भ से ही इनमें ज्ञान का उन्मेष प्रकट होने लगा तथा स्नातक स्तर तक आते–आते इनके प्राक्तज संस्कार उद्बुद्ध होने लगे। अतः ज्ञान के स्फोटन तथा प्रयोजनार्थ इन्होंने एक पत्रकार के रूप में अपना व्यवसाय प्रारम्भ किया। सन् 1948 में आगरा के दैनिक पत्र 'सैनिक' के संपादकीय विभाग से प्रारम्भ इनकी रचनाधर्मिता 'अमृत पत्रिका', 'दैनिक भारत' तथा 'कहानी' मासिक पत्रिका से होती हुई, अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में 'डिप्टी कलेक्टरी' कहानी के पुरस्कृत होने से सर्वप्रथम यशस्वित हुई। संप्रति 'मनोरमा' इलाहाबाद के संपादकीय विभाग से संबद्ध रहते हुए वहीं से सेवानिवृत्त हुए। अपने व्यवसायिक दौर में अमरकांत को कईं बार आर्थिक संकट से गुजरना पड़ा। स्वाभिमानी स्वभाव के कारण उन्होंने कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। पारिवारिक दुःख, आर्थिक संकट तथा शारीरिक कष्ट को झेलते हुए भी उन्होंने कभी हार नहीं मानी और निरंतर साहित्य सृजन द्वारा कंकटाकीर्ण समाज में गुलाब की तरह अपना सौरभ और मकरंद बिखेरते रहे। उनका व्यक्तित्व कईं गुणों यथा – गायन, लेखन, पत्रकार, राजनीतिज्ञ एवं व्यवहार संबंधी विशेषताओं इत्यादि का मणिकांचन संयोग है।

अमरकांत की वैचारिक अवधारणा समाज, राजनीति, साहित्य व संस्कृति से जुड़ाव रखती है, जिसका प्रभाव उनके लेखन में भी परिलक्षित होता है। उन्होंने जिस समय लेखन प्रारम्भ किया, वह एक संधियुग था। जहाँ एक ओर राष्ट्रीय भावना से जुड़ी विचारधाराओं पर साहित्य लिखा जा रहा था, तो दूसरी ओर समाजवादी विचारधारा का यथार्थवादी चित्रण साहित्य में हो रहा था। उनका साहित्य अपने जीवनानुभवों तथा चारों ओर के परिवेश की सच्चाईयों का दर्पण है। उनकी रचनाओं में मानवता की पीड़ित अनुभूति का स्वर मुखरित हुआ है। अतः उपन्यासकार को लेखन की प्रेरणा समाज और उसमें रहने वाले प्रधान मनुष्य के प्रति लगाव, गहरी सहानुभूति और संवेदनाओं से प्राप्त हुई।

अमरकांत का रचना साहित्य विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य कहानी, उपन्यास, संस्मरण इत्यादि रचनात्मक रूपी रत्नों से जड़ित समृद्ध साहित्य है, वहीं साहित्यिक संसार का एक ऐसा गुलदस्ता है, जिसमें विभिन्न रंग, रूप, गंध के पुष्प एक साथ महकते व पल्लवित होते हैं। उनके कहानी संग्रहों में – 'जिंदगी और जोंक', 'देश के लोग', 'मौत का नगर', 'मित्र–मिलन', 'कुहासा', 'तूफान' इत्यादि प्रमुख हैं। प्रौढ़ साहित्य में – 'सुग्गी चाचीा का गांव', 'एक स्त्री का सफर', 'झगरू लाल का फैसला', संस्मरण में – 'सूखा पत्ता', 'ग्रामसेविका', 'कंटीली राह के फूल'', 'बीच की दीवार'', 'लहरे', 'काले–उजले दिन', 'विदा की रात', 'पराई डाल का पंछी' तथा 'इन्हीं हथियारों से' प्रमुख

है। उन्होंने बाल उपन्यासों की भी रचना की है, जिनमें 'नेऊर भाई', 'वानर सेना', 'मंगरी', 'बाबू का फैसला', 'दो हिम्मती' बच्चे इत्यादि प्रमुख है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कईं पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन किया, जिनमें 'बहाव' प्रमुख है। इसका प्रारंभ सन् 2003 में नये साहित्यकारों की रचनाओं को एक मंच प्रदान करना था।

अपनी रचनाधर्मिता के कारण उपन्यासकार को कईं अलंकरणों से पुरस्कृत किया गया। उन्हें 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास के लिए सन् 2007 में साहित्य अकादमी पुरस्कार, 'सूखापत्ता' उपन्यास तथा कहानियों के लिए सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार, 'मौत का नगर' कहानी संग्रह के लिए यशपाल पुरस्कार तथा इलाहाबाद न्यूज रिपोर्टर्स क्लब से पत्रकारिता के योगदान हेतु गौरवान्वित, ज्ञानपीठ पुरस्कार से नवाजा गया। इसके अतिरिक्त उन्हें और भी कईं नामचीन पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

उपन्यास मानव जीवन के विस्तृत फलक को प्रस्तुत करने का एक सशक्त व सफल माध्यम है। मानव जीवन के सभी रहस्य पूर्णता के साथ उपन्यास में विवृत्त होते है। इसमें लेखक जीवन के यथार्थ अनुभव, विचारों की गहनता, सृजनशीलता, कल्पना, रचनाशक्ति एवं विवेचन क्षमता के द्वारा विविधताओं और विषमताओं से युक्त मानवता को गति व दृष्टि दोनों प्रदान करता है।

अमरकांत का अनुभव फलक एक खुले आकाश की भांति अत्यन्त व्यापक है, जिसमें उनकी रचनाओं रूपी अनेक तारे विद्यमान है। उन्होंने जनसामान्य की पीड़ा को अपनी रचनाओं के माध्यम से उजागर किया है। मुख्य रूप से उनके उपन्यास साहित्य में मध्यवर्गीय मानस की कमजोरियों, विसंगतियों एवं विकृतियों का यथार्थ चित्रण व्यापक स्तर पर हुआ है। प्रस्तुत अध्याय में अमरकांत के उपन्यासों का संक्षिप्त सार भी विवृत्त है। उनके 'आकाश पक्षी' उपन्यास में सामन्ती जीवन की विकृत मनोदशा को उकेरा गया है। 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास असाधारण ग्रामीण नारी के जीवन संघर्ष की करूण गाथा है। 'ग्रामसेविका' उपन्यास भारतीय ग्रामीण, अज्ञान, अंधविश्वास, गरीबी व शोषण की झलक प्रस्तुत करता है। 'लहरें' उपन्यास पुरूष समाज द्वारा स्त्रियों पर किये गये अत्याचार व अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने तथा संघर्षरत स्त्रियों के आन्दोलित मन की कथा है। 'बिदा की रात' में स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिति को दर्शाया गया है। 'पराई डाल का पंछी' उपन्यास मध्यवर्गीय नवयुवकों की मानसिक स्थितियों, आकांक्षाओं, कुंठाओं, विकृतियों तथा स्वार्थपरता का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है। 'कंटीली राह के फूल' अनूप, मधु तथा कामिनी के त्रिकोण प्रेम की कहानी है। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा उत्तरप्रदेश के एक छोटे से क्षेत्र बलिया की कहानी है। प्रस्तुत उपन्यास अमरकांत की रचनाओं में सबसे वृहत् एवं गंभीर है।

द्वितीय अध्याय – यथार्थवाद : 'स्वरूप एवं विकास' के अंतर्गत यथार्थवाद का पारिभाषिक स्वरूप व प्रकृति, यथार्थवाद उद्‌भव एवं विकास, यथार्थ और यथार्थवाद, उपन्यास साहित्य और यथार्थ का अन्र्तसम्बन्ध, यथार्थ उपन्यास साहित्य की विशेषताएँ तथा अमरकांत के उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद पर प्रकाश डाला गया है। कोशगत अर्थ तथा विभिन्न भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने यथार्थ को मानव के सामाजिक संबंधों का स्वतंत्र चित्रण संपूर्णता के साथ करने का माध्यम माना है। उनके अनुसार किसी वस्तु, तत्त्व अथवा पदार्थ की यथार्थ वस्तुस्थिति, जो कि वास्तविक जगत् में प्रत्यक्ष एन्द्रिय भूत हो, उसका हूबहू वर्णन अथवा निरूपण ही यथार्थ है।

यथार्थवाद की प्रकृति के विषय में विद्वानों का मत है कि यथार्थवाद अपनी प्रकृति में नकारात्मक न होकर सकारात्मक, कलात्मक तथा सृजनात्मक है। मनुष्य प्रत्येक वस्तु को अलग–अलग ढंग से अनुभव करता है। इसलिए सभी का दृष्टिकोण यथार्थ के विषय में भिन्न–भिन्न प्रकृति का है। भौतिकवादी यथार्थ को स्थूल रूप में देखता व स्वीकार करता है। दर्शनवादी यथार्थ के सूक्ष्म रूप को ही सत्य मान उसके प्रत्येक पहलू का अध्ययन करता है। इस प्रकार यथार्थवादी साहित्यकार वस्तुगत तत्त्व को देखकर अपनी संवेदनाओं से सामंजस्य स्थापित कर कलात्मकता के माध्यम से स्वानुभूति को ही साहित्य में अभिव्यक्त करता है।

वास्तविकता, सत्य, यथातथ्यता तथा विरूपता यथार्थ के निकटवर्ती संदर्भ हैं, जो किसी न किसी रूप में एक–दूसरे से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। वास्तविकता अपने मूलरूप में वास्तविक, अपरिवर्तित तथा अविकृत होती है। यथार्थ में वास्तविक स्थितियों को ग्रहण करके उन्हें घोषित करने के उपरांत अभिव्यक्ति होती है। सत्य जीवन की वास्तविकता की देन है। अपनी बोधेन्द्रियों द्वारा हम उसे प्राप्त करते हैं। यथातथ्यता को विद्वानों ने प्रकृति की हूबहू नकल माना है, जबकि यथार्थ सृजनकर्ता अपनी कलात्मक दृष्टि के माध्यम से सत्य को उजागर करता है। विरूपता के अंतर्गत यथार्थवाद के विषय में सामान्यतः यह भ्रांति है कि वह जीवन के कुरूप, घिनौने तथा वीभत्स पक्षों को प्रश्रय देता है अर्थात् वह जीवन की विरूपता को ही प्रदर्शित करता है। यथार्थवाद के विषय में सत्यता बिल्कुल विपरीत है। यथार्थवादी, साहित्य में निश्चित रूप से समाज के दोनों पक्षों का उद्‌घाटन करता है। यदि वह सत्य का आग्रही है तो उसे जीवन के श्रेष्ठ व सुन्दरतम रूपों से नयनाभिराम करने के साथ–साथ जीवन के कुरूप, घिनौने व वीभत्स पक्ष से भी आँखे मिलानी पड़ेगी। यहाँ यथार्थवादी साहित्यकारों का विरूपता के चित्रण का एकमात्र उद्देश्य समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा विरूपताओं को सबके सामने लाना है, ताकि समाज में इसके प्रति जाग्रति हो और समाज इन विरूपताओं तथा असंगतियों से मुक्त हो सके।

यथार्थ, वैज्ञानिक बोध, स्वचेतना, संवेदनशीलता तथा दृष्टिकोण की व्यापकता को यथार्थवाद के तत्त्व के रूप में माना गया है। इन सब तत्त्वों से मिलकर ही यथार्थवाद आकार और अन्विति को

प्राप्त करता है। यहाँ यथार्थ, यथार्थवाद का मूल एवं अनिवार्य तत्त्व है। इसके बिना यथार्थवाद की संकल्पना ही संभव नहीं है। जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है, पर इसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है। वैज्ञानिक यथार्थबोध से युक्त साहित्यकार सूक्ष्म दृष्टि से सम्पन्न हो जाता है। इस दृष्टि से सम्पन्न लेखक अथवा कवि को जीवन के सत्य को जानने हेतु इस मानसिक प्रक्रिया से गुजरना ही पड़ता है। स्वचेतना यथार्थवाद का तीसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। स्वचेतना साहित्य में प्राणतत्त्व का कार्य करती है। साहित्यकार अपनी रचना में जो संवेदना के तत्त्व डालता है, जैसे – सुख–दुःख, पाप–पुण्य, करूणा, प्रेम, भय इत्यादि की अनुभूति चेतना के कारण ही होती है। एक साहित्यकार सामान्य मनुष्य की तुलना में अधिक संवेदनशील, ऊर्जावान और अधिक बुद्धि प्रवण होता है। जिस रचना में साहित्यकार की संवेदनशीलता जितनी तीव्र और सघन होती है, वह रचना उतनी ही स्थायी होती है। यथार्थवाद का अंतिम महत्त्वपूर्ण तत्त्व दृष्टिकोण से तात्पर्य साहित्य में दृष्टिकोण की व्यापकता से है। इसमें एक ओर अच्छाई, पुण्य, प्रेम, सद्भाव इत्यादि गुण देखने को मिलते हैं, तो दूसरी ओर बुराई, पाप, नफरत, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि कटुभाव दिखाई देते हैं। यथार्थवादी दृष्टिकोण इन सभी विकासोन्मुख भावों को समझने, उनका अध्ययन करने तथा उन्हें स्वीकार करने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार साहित्यकार सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक इत्यादि सभी विचारधाराओं को अपने साहित्य में स्थान देता है। उसकी व्यापकता का यही फलक उसे समसामयिक परिवेश से जोड़ता है।

यथार्थवाद का उद्भव पाश्चात्य संस्कृति, आविष्कारों तथा औद्योगिक क्रांति की देन है। ज्ञान की अनन्त पिपासा और सत्य के प्रति अकृत्रिम निष्ठा 19 वीं शताब्दी के यथार्थवादी लेखकों की आधारभूत विशेषता मानी जा सकती है। ये वे लेखक थे, जिन्होंने पूंजीवाद की असंगतियों के उद्घाटन तथा जीवन सत्यों की खोज और उनके चित्रण के सिलसिले में बुर्जुआ समाज के प्रति निर्मम आलोचना का रूख ग्रहण किया। यही कारण है कि यथार्थवाद के इतिहास में उनके यथार्थवाद को आलोचनात्मक यथार्थवाद के नाम से अभिहित किया गया है। इनमें–बाल्जक, जॉर्ज इलियट, सेमुअल बटलर, तोल्स्तोय इत्यादि नाम हैं, जिन्हें आलोचनात्मक यथार्थवाद को उपलब्धियों के शिखर तक ले जाने का श्रेय प्राप्त है।

बीसवीं शताब्दी को संक्राति की शताब्दी कहा गया है। इस शताब्दी में सामंतवादी तथा पूंजीवादी सभ्यता का दमन होने के साथ–साथ नयी समाजवादी व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, चेखव, अनातोले फ्रांस इत्यादि ऐसे यथार्थवादी लेखक थे, जिन्होंने पूंजीवादी अन्तर्विरोधों, वर्ग–संघर्ष तथा उसके परिणामों का भी अपनी कृतियों में चित्रण किया। अतः यूरोप को यथार्थवाद के उद्भव एवं विकास का प्रमुख केंद्र माना जाता है। भारत में यथार्थवाद के उदय की परिस्थितियों का कारण वही है, जो पश्चिम में था। यूरोपीय विचार धाराओं का प्रचार,

ज्ञान–विज्ञान का प्रभाव, अंग्रेजों के रहन–सहन का प्रभाव तथा ईसाई मिशनरियों का हिन्दू धर्म पर प्रहार इत्यादि ऐसे कारण थे, जिन्होंने नवीन चेतना को ओर भी गतिशील बना दिया।

नोबल पुरस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ टैगोर ने रूस तथा पूर्वी यूरोप का दौरा करने के बाद अपने पत्रों के माध्यम से समाजवादी चेतना का प्रचार–प्रसार किया था। देश के अन्य बुद्धिजीवी वर्ग, साहित्यकारों, कवियों तथा विचारकों ने भी रूसी क्रांति का पत्र–पत्रिकाओं में जिक्र किया है। 'जागरण' पत्रिका के संपादकों में जहाँ श्री सम्पूर्णानन्द आचार्य नरेन्द्र देव जैसे सुप्रसिद्ध समाजवादी के नाम आते है, वहीं हंस पत्रिका विशुद्ध रूप से प्रेमचंद की समाजवादी आकांक्षाओं का प्रतिफल थी। प्रगतिशील लेखक संघ के नेतृत्व में हिंदी भाषी प्रदेशों में ही नहीं, समूचे देश में एक नये प्रगतिशील आंदोलन की शुरूआत हुई, इसे भारतीय साहित्य में यथार्थवादी समाजवादी चेतना के प्रचार और प्रसार का पहला संगठित प्रयास माना गया। भारतेन्दु के साहित्य में यथार्थवादी साहित्य का आगाज देखा जा सकता है। इस श्रृंखला में गिरिजा कुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेन्द्र मेहता, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मुक्तिबोध इत्यादि के नाम लिये जा सकते है। इस प्रकार यथार्थवाद के उद्‌भव व विकास का क्रम पश्चिमी आंदोलन, क्रातियां तथा औद्योगिकरण की देन है। जिसने भारत में यथार्थ के बीज बोने का कार्य किया है।

यथार्थ और यथार्थवाद को स्थूल रूप से देखने पर दोनों एक ही दिखाई देते है, परन्तु दोनों में तात्विक दृष्टि से पार्थक्य है। यथार्थवाद दो शब्दों से मिलकर बना है – यथार्थ+वाद। यथार्थ का सामान्य अर्थ है, जो जैसा है और वाद का अर्थ है सिद्धांत, विचारपूर्ण कथन, अनुकरण करना या उसी मार्ग पर चलना। इस प्रकार यथार्थवाद का अर्थ हुआ, जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में वर्णन करना। यथार्थवादी उपन्यास साहित्य की विशेषता है कि इसमें एक काल विशेष के सामाजिक जीवन की संस्कृति के दर्शन स्पष्ट रूप में होते है। साथ ही उस युग विशेष की राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिवेश तथा सम्पूर्ण इतिहास की झांकी प्रस्तुत की जाती है। अतः यथार्थ उपन्यास साहित्य किसी भी युग को जानने का एक सरल व सटीक माध्यम है।

प्रेमचंद की यथार्थवादी धारा के कथाकार अमरकांत स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते है। उनके साहित्य की मुख्य विशेषता है उनका यथार्थ दृष्टिकोण। जिसके माध्यम से उन्होंने समाज में घटित रोजमर्रा की समस्याओं को जानने–समझने तथा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों में समाज की अनेक रूढ़ियों, कुठांओं तथा विसंगतियों इत्यादि का यथार्थ चित्रण हुआ है।

तृतीय अध्याय – 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद का विकास' के अंतर्गत पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद, प्रेमचन्द युगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद,

प्रेमचन्द्रोत्तरयुगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद तथा समकालीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद पर प्रकाश डाला गया है।

हिंदी साहित्य में उपन्यास का विकास 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से होने लगा था, किन्तु प्रेमचंद पूर्व के उपन्यासों में पश्चिम उपन्यासों की मूल छवि नहीं थी। वे भारत में प्रचलित आख्यायिकाओं या कथाओं से नहीं उबर सके थे। इन उपन्यासों का उद्देश्य घटना चमत्कार का प्रदर्शन कर या तो मात्र मनोरंजन करना था या कोई उपदेश प्रस्तुत करना। इस प्रकार के उपन्यास जीवन यथार्थ से कम ही जुड़े होते थे। पूर्व प्रेमचंद युग में जासूसी, तिलस्मी, ऐयारी उपन्यासों की रचना मनोरंजन के उद्देश्य से हुई। इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना भी की गई, जिनमें सामाजिक प्रेमाख्यानों की भरमार भी देखने को मिलती है। हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा में पण्डित गौरीदत्त कृत 'देवरानी–जेठानी की कहानी' हिंदी के प्रारम्भिक उपन्यासों में से एक है, जिसमें स्त्रियों की दुर्दशा का चित्रण कर तत्कालीन समाज में बाल विवाह तथा विधवा की दुर्दशा का चित्रण कर एक वर्ग को यथार्थ रूप में उतारने की कोशिश की गई है। देवकीनंदन खत्री का उपन्यास चंद्रकाता, चंद्रकाता संतति और भूतनाथ ऐयारी व तिलस्मी कोटि के उपन्यास है। इस प्रकार के उपन्यास यूं तो यथार्थ कोटि में नहीं रखे जा सकते, लेकिन इसी उपन्यास में उस काल के हिंदू–मुस्लिम संबंधों का यथार्थ रूप भी दर्शाया गया है। दोनों समुदायों में आज जिस कट्टरता के दर्शन हो रहे हैं और जो भारत के विकस में बहुत बड़ी बाधा बनी हुई है, उसके बीज उसी काल में विकसित होने शुरू हो गये थे, जिस काल में हिंदी उपन्यास पैरों चलने की तैयारी कर रहा था।

जासूसी उपन्यासों में घटनाओं का आधार समाज ही होता है, कोई दूसरी दुनियां नहीं जैसा कि तिलस्मी उपन्यासों में था। इसलिए यह अधिक विश्वसनीय होते हैं तथा इनका कथानक यथार्थ धरातल पर रचा होता है। जासूसी उपन्यासों में गोपालराम गहमरी का नाम प्रमुख है। गहमरी का मनना था कि किसी रचना को पढ़कर यदि पाठक को उस पर विश्वास न हो तो वह कृति अधिक मूल्यवान नहीं है, किंतु उनकी कथनी व करनी में वैमनस्य दिखाई देता है। उनके उपन्यास भी यथार्थ से कोसो दूर केवल मनोरंजन के लिए ही थे। लाला श्रीनिवास कृत 'परीक्षा गुरू' व देवरानी–जेठानी' तथा लज्जाराम मेहता द्वारा रचित उपन्यास 'धूर्त रसिक लाल', 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी', 'आदर्श दम्पत्ति' इत्यादि सभी उपन्यासों की रचना सामाजिक सन्दर्भता में की गई हैं। तत्कालीन युग की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक संक्रांति की सजगता उनके उपन्यासों में देखी जा सकती है। 'धूर्त रसिक लाल' में लेखक की दृष्टि सुधारवादी और तत्कालीन समाज के प्रति यथार्थवादी है। इस प्रकार हिंदी उपन्यास को तिलस्मी, ऐयारी व जादूगरी से खींच लाने का श्रेय लज्जाराम मेहता को दिया जा सकता है। इसी श्रृंखला में बालमुकुंद गुप्त व किशोरीलाल गोस्वामी के नाम महत्त्वपूर्ण है।

श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' तथा किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'पुनर्जन्म' या 'सौतिया डाह', 'लीलावती' इत्यादि में रूढ़िवादी विचारों का यथार्थ अंकन है। बृजनन्दन सहाय कृत 'सौन्दर्योपासक', ठाकुर जगमोहन कृत 'श्यामास्वप्न', मन्नद्विवेदी कृत 'रामलाल' इत्यादि ऐसे नामचीन नाम हैं, जो कि सामाजिक यथार्थ को अपने में समेटे हुए है। अतः इस युग में जासूसी, ऐयारी व तिलस्मी उपन्यासों में तो यथार्थ बोध की प्राप्ति नहीं होती, किंतु समाजवादी उपन्यासों में यथार्थ की स्पष्ट अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

प्रेमचंद युगीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद के अंतर्गत यद्यपि प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यासों में यथार्थवाद के बीज बोये जा चुके थे, किन्तु हिंदी उपन्यास में यथार्थवाद के पोषण हेतु खाद–पानी डालने का कार्य प्रेमचंद ने अपनी लेखनी के माध्यम से किया। प्रेमचंद का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उनके उपन्यासों में समाजवादी यथार्थवाद तथा आलोचनात्मक यथार्थवाद के रूप में सामने आता है। उनके 'प्रेमा' उपन्यास में विधवा की समस्या को केंद्र में रखा गया है। सेवासदन तथा निर्मला में दहेज की समस्या को प्रमुखता से उभारा गया है। वैश्यावृत्ति भी इस समय की विकट समस्या थी, जिसके निराकरण के सुझाव सेवासदन, गबन, कर्मभूमि और गोदान में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। उन्होंने गोदान, रंगभूमि व प्रेमाश्रम में पारिवारिक विघटन के रूप में समाज के विकृत होते स्वरूप का यथार्थ उद्‌घाटन किया है। 'वरदान' उपन्यास में अछूतों के छूआ–छूत की गंभीर समस्या और उसके निराकरण की अभिव्यक्ति हुई है। सेवासदन से लेकर गोदान तक के लगभग सभी उपन्यासों में हिन्दू–मुस्लिम, धार्मिक, साम्प्रदायिकता का यथार्थ प्रस्तुत है। इस प्रकार प्रेमचंद ने अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का तथा इसमें निहित दीन–हीन लाचार किसानों की दशा, सामाजिक बंधनों में तड़पती नारी की वेदना, वर्ण व्यवस्था की कठोरता से संत्रस्त हरिजन की पीड़ा इत्यादि का वर्णन यथार्थ धरातल पर किया है।

जयशंकर प्रसाद प्रेमचंद के निकट दिखने वाले कथाकार हैं, क्योंकि वस्तुजगत की सारी मूर्तता और सक्रियता उनके कथा साहित्य को यथार्थवादी बनाती है। उन्होंने 'काव्य कला और निबंध' में यथार्थ संबंधी विचार प्रस्तुत किये है। उनके अनुसार यथार्थ की विशेषता वेदना है। प्रसाद के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के रूप में जीवन की वेदना को चित्रित किया गया है। उनके 'कंकाल' उपन्यास में ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुतायत में है, जो पुरूषों के शोषण व अत्याचार के शिकार है, जिन्हें परिवार से अस्वीकृत किया जा चुका है। अपने आप में यह उपन्यास शुद्ध यथार्थवादी है। 'तितली' उपन्यास संघर्षशील नारी की गाथा है, जो गांव से नगर के यथार्थ में संक्रमण करती हुई भारतीय और पश्चिमी जीवन प्रवृत्तियों और संस्कृति की टकराहट में भारतीयता का गौरव गान करती है।

निराला के उपन्यास यथार्थ और आदर्श के मध्य एक ऐसा मार्ग स्वीकार करते है, जो यथार्थ होते हुए भी घोर यथार्थ वाद तथा अश्लीलता से परे है। इनके 'अप्सरा', 'प्रभावती', 'निरूपमा', 'अलका' इत्यादि उपन्यास सामाजिक यथार्थ का ऐसा चित्र प्रस्तुत करते है, जिनमें न तो घोर निराशा है न आदर्शवादिता, न ही वो प्रकृतिवादी है। वे तो उत्तरदायित्त्व, स्वातंत्र्य, सार्वभौमिकता तथा यथार्थ के उज्ज्वल पक्षों से युक्त साहित्य की श्रेष्ठ रचनाएं हैं, जो साहित्य के महाप्राण कहलाने वाले विराट लेखक की लेखनी से निःसृत है। समाजवादी यथार्थवाद की परम्परा में आने वाले अन्य लेखकों में विश्वनाथ शर्मा 'कौशिक', पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', दुर्गाप्रसाद खत्री, चतुरसेन शास्त्री, सियारामशरण गुप्त, प्रतापनारायण श्रीवास्तव इत्यादि प्रमुख है।

प्रेमचन्द्रोत्तर उपन्यास व यथार्थवाद के अंतर्गत प्रेमचंद परवर्ती कथाकारों ने समाज को केंद्र में रखने के बजाय व्यक्ति को प्रमुखता देते हुए यथार्थवादी उपन्यास साहित्य को एक नयी लीक पर ले जाने का प्रयास किया है। ये उपन्यास इतने व्यक्ति प्रधान हो उठे कि आलोचकों ने इसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास एक नये नाम से अभिहित किया है। इनमें मनोविज्ञान के सत्य के नये आलोक में लक्षित होने वाली पात्रों की टूटन, यौन कुण्ठा, तज्जन्य स्वप्न तथा चेतना प्रवाह इत्यादि का प्रभाव कमोबेश रूप में उपलब्ध है। इस प्रवृत्ति का चित्रण करने वाले उपन्यासकारों में अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी इत्यादि प्रमुख है। जैनेन्द्र के साहित्य के पात्र सामाजिक यथार्थ से दूर वैयक्तिक यथार्थ की परिधि में चक्कर लगाते है। इन पात्रों का संघर्ष समाज के भीतर न होकर व्यक्ति के भीतर चलता है। 'परख' उपन्यास में समाज की कुरीतियों तथ 'सुखदा' उपन्यास में दाम्पत्य विसंगतियों का यथार्थ प्रस्तुत है।

अज्ञेय मूलतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार है, किन्तु उनके पात्र व जीवन की अनुभूतियां जीवन से ही ली गयी है। उनके उपन्यास 'शेखर एक जीवनी', 'अपने–अपने अजनबी', 'नदी के द्वीप' विस्तृत और वैविध्यिपूर्ण जीवानुभवों को यथार्थवादी ढ़ग से अभिव्यक्त करते है। उनकी रचनाओं में उनके जीवन की विभिन्न कालों की संवेदना अभिव्यक्त हुई है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद उपन्यासकारों की परम्परा में इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क तथा भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास सामाजिक परिवेश तथा नये उभरते जीवन–मूल्यों का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं। अतः प्रेमचंद परवर्ती उपन्यासों में एक शक्ति व ऊर्जा परिलक्षित होती है, जिसमें यथार्थ की अभिव्यक्ति सशक्त रूप में हुई है।

समकालीन उपन्यास साहित्य और यथार्थवाद के अंतर्गत समकालीनता से तात्पर्य साठोत्तर भारतीय परिवेश से है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मोहभंग और निराशा का चित्रण समकालीन उपन्यास साहित्य में हुआ है। देवराज की 'अजय की डायरी' डायरी शैली में रचित व्यक्तिवादी उपन्यास है,

इसमें लेखक की व्यक्तिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। 'पथ की खोज' तथा 'बाहर–भीतर' उपन्यास में किशोरमन की अतृप्त यौन वासना का यथार्थ अंकित है।

धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' में आदर्शवादी प्रेम यथार्थ धरातल पर दम तोड़ देता है। वहीं 'सूरज का सातवां घोड़ा' में सात दोपहर की कथा में प्रेम बंधनों के माध्यम से समस्त जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है। नरेश मेहता का उपन्यास 'डूबते–मस्तूल' में एक स्त्री के भावनाग्रस्त, कुंठाग्रस्त, करूण जीवन का यथार्थ अंकित हुआ है, वहीं 'दो एकांत' उपन्यास में दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों तथा अकेलेपन का कटु यथार्थ प्रस्तुत है। निर्मल वर्मा का उपन्यास 'वे दिन' यूरोपियन जीवन के अकेलेपन, निरर्थकता तथा विसंगतियों का यथार्थ प्रकट करती है। इसी प्रकार 'एक चिथड़ा सुख' तथा 'अंतिम अरण्य' में अकेलेपन, दुःख तथा मृत्यु का मार्मिक यथार्थ दृष्टिगत है। 'रात का रिपोर्टर' में आज की राजनीतिक विसंगतियों का शिकार रिशी के मानसिक द्वन्द्व और संकट का यथार्थ चित्रण उपन्यास में दिखाया गया है। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर कई छोटे–बड़े उपन्यास यथार्थ भूमि पर सृजित हुए। इनका सृजन क्षेत्र समाज व व्यक्ति के बाह्यजगत से कहीं अधिक अन्तर्जगत रहा है। वस्तुतः मानव मन की असंगतियों, विषमताओं, कुंठाओं तथा अकेलेपन की पीड़ा को यथार्थ रूप में हिंदी साहित्य में स्थान मिला है।

अध्याय चतुर्थ – 'अमरकांत और उनके समकालीन उपन्यासकारों में यथार्थवाद' के अन्तर्गत मुख्य रूप से कमलेश्वर, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र यादव तथा मन्नू भंडारी इत्यादि लेखकों के साहित्य में सामाजिक जन–जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त किया गया है।

कमलेश्वर के उपन्यास जमीनी सतह से उठायी गई किसी न किसी समस्या की ओर संकेत करते हैं फिर वह समस्या आर्थिक हो, सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक। प्रमुख रूप से उनके उपन्यास गरीब, मध्यवर्गीय शोषित, पीड़ित, आम आदमी के सवालों का यथार्थ दस्तावेज प्रस्तुत करते है। उनका उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियां' कस्बाई जीवन के लोगों की संवेदनाओं यथा अच्छाई–बुराई, प्रेम, हिंसा, दोस्ती–दुश्मनी इत्यादि का यथार्थ अंकन है। 'डाक बंगाल' उपन्यास नारी जीवन की त्रासदी का लेखा–जोखा है। इसमें पुरूष प्रधान समाज में नारी की स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। 'लौटे हुए मुसाफिर' में विभाजन कालीन स्थितियों, बंटवारे की भीषणता तथा खून–खराबे का यथार्थ दृष्टव्य है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में शहरी मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक अभावों के कारण खिन्न–भिन्न होती हुई जिंदगी की कथा वर्णित है। 'काली आंधी' में राजकीय दावपेंचों तथा 'आगामी अतीत' में कस्बे में वैश्याओं की जिंदगी के यथार्थ को 'चांदनी' के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। 'तीसरा आदमी' उपन्यास शहरी परिवेश, आर्थिक कठिनाइयां तथा विषाक्त दाम्पत्य जीवन का कटु सत्य प्रस्तुत करता है। 'वही बात' उपन्यास सफलता की अंधी चाह में परिवार विघटन की करूण गाथा है। 'कितने पाकिस्तान'

उपन्यास समय सीमा को लांघकर लिखा गया एक वृहद् उपन्यास है, जिसका रचना फलक व्यापक है। इसमें वैश्यावृत्ति, बलात्कार, राजनीतिक–आपराधिकरण, साम्प्रदायिक समस्या, धार्मिक अंधविश्वास तथा बाह्य आडम्बरों की समस्या को उजागर किया गया है। इस प्रकार कमलेश्वर के उपन्यास साहित्य में यथार्थ अभिव्यक्ति सशक्त रूप में हुई है।

अमरकांत के ही समकालीन रहे 'मोहन राकेश' को मानवीय संबंधों का यथार्थ चितेरा कहा जाता है। उनके तीनों उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे में', 'न आने वाला कल' तथा 'अंतराल' मध्यवर्गीय संघर्षों, पीड़ा तथा कुंठा को प्रदर्शित करते हैं। मानवीय संबंधों के विधान से उत्पन्न आज के आदमी के जीवन की त्रासदी और अकेलेपन की पीड़ा को लेखक ने अनुभव के धरातल पर यथातथ्य उकेरने का प्रयास किया है। उनका 'अंधेरे बंद कमरे में' उपन्यास संत्रास व अस्तित्व बोध को दर्शाता है। अंतराल में भी अस्तित्ववादी विचारधारा को देखा जा सकता है। यह उपन्यास उनके अनुभूत साक्ष्यों में से एक है, जो एक स्त्री पुरूष के सबंधों का यथार्थ प्रस्तुत करता है।

वस्तुतः मोहनराकेश ने अपने उपन्यासों में आधुनिक महानगरीय संत्रास, यांत्रिकता, समकालीन जीवन संबंधों की कटुता, अजनबीपन आदि समस्याओं से गुजरते हुए व्यक्तियों को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया है, जिनमें नारी–पुरूष संबंधों की भूमिका अहम है। आधुनिक जीवन की कटुता, विसंगति तथा विडम्बनाओं का यथार्थवादी चित्रण उनके उपन्यासों की सफलता का मूल रहस्य है।

अमरकांत के समकालीन उपन्यासाकारों में विष्णु प्रभाकर जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका प्रथम उपन्यास 'निशिकांत' उनके व्यक्तिगत जीवन संघर्षो के अनुभवजन्य यथार्थ का प्रामाणिक परिणाम है। उक्त उपन्यास में पात्र निशिकांत की इच्छा, आकांक्षा, छटपटाहट और विवशता को दर्शाया गया है। उपन्यास में तत्कालीन मध्यवर्गीय युवक का आत्म–संघर्ष वर्णित है। 'तट के बंधन' में स्त्री की पीड़ा, पारम्परिक विवाह की बेड़िया तथा स्त्री–मुक्ति का स्वर मुखरित हुआ है। 'कोई तो' उपन्यास समाज और पुरूष वर्ग से प्रताड़ित अनेक नारियों की कथा–व्यथा है। 'संकल्प' में नारी–मुक्ति तथा 'अर्द्धनारीश्वर' में नर–नारी के यौन संबंधों पर सामाजिक व्यापकता से विचार किया गया है।

राजेन्द्र यादव नयी कहानी आंदोलन की त्रयी के प्रमुख कथाकार है। उनका बहुचर्चित उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' में स्वातंत्र्योत्तर नेताओं में आयी चरित्रहीनता को यथार्थ धरातल पर उकेरा गया है। उक्त उपन्यास में कांग्रेसी नेताओं के पतन तथा मार्क्सवादी आंदोलन के उदय को उभारा गया है। साथ ही मध्यवर्गीय कुंठाओं का यथार्थ दृष्टव्य है। 'कुलटा' में मध्यवर्ग की कृत्रिम शहरी जिंदगी को उजागर किया गया है। 'मंत्र–विद्धा' की सुरजीत सामंती घुटन से मुक्ति चाहती है। 'सारा–आकाश' मुख्यतः निम्न मध्यवर्गीय युवक के अस्तित्व के संघर्ष की कहानी है। प्रस्तुत उपन्यास निम्न मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार की विसंगतियों को उजागर करता है।

मन्नू भंडारी आजादी के बाद भारत की मुख्य लेखिकाओं में से एक है। उनके उपन्यास जीवन यथार्थ की सफल अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हैं। उनके उपन्यासों के पात्र आस–पास के जन–जीवन से लिये गये हैं तथा घटनाएँ उनके अनुभवों का प्रतिफल है। 'आपका बंटी' उपन्यास साधारण इंसान के संघर्ष तथा मेहनत की कहानी है। इसमें तलाकशुदा पति–पत्नी की समस्या को बच्चे को केंद्र में रखकर लिखा गया है। साथ ही नारी के दर्द, पीड़ा, व्यथा और आक्रोश को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। 'स्वामी' में नारी के स्वाभिमान तथा प्रेम व दाम्पत्य जीवन की समस्या को अभिव्यक्ति मिली है। वहीं 'महाभोज' उपन्यास में नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार के बीच आम आदमी की पीड़ा और दर्द की गहराई का अत्यंत कारूणिक यथार्थ प्रस्तुत किया गया है।

अमरकांत के समकालीन उपन्यासकारों में भीष्म साहनी, राही मासूम रज़ा, फणीश्वर नाथ रेणु, कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्गल, उषा प्रियंवदा, जैनेन्द्र कुमार इत्यादि उपन्यासकारों के नाम लिये जा सकते हैं। जिनके उपन्यास साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक इत्यादि विविध पक्षों में देखी जा सकती है। सभी ने अपने साहित्य में समाज में अकेलेपन को झेलते लोगों, उनमें तनाव, टूटन व कसक को तथा नारी की दयनीय व शोषित स्थिति को यथार्थ धरातल पर अंकित करने का प्रयास किया है।

पंचम अध्याय – 'अमरकांत के उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति' के अंतर्गत अमरकांत के उपन्यासों में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सन्दर्भों में प्रस्तुत किया गया है।

जीवन की असंगतियों के बीच तालमेल बैठाने की जद्दोजहद करने वाले अमरकांत के उपन्यास साहित्य में बदले हुए परिवेश में संस्कार और आधुनिकता के मध्य उलझे हुए मध्यवर्गीय मानव मन का अन्तर्द्वन्द्व मुखरित है। उनके उपन्यास साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक यथार्थ के उजले व धूमिल पक्षों को देखा जा सकता है। उन्होंने अपनी लेखनी से सामाजिक अस्मिता के व्यष्टि और समष्टि तत्वों को समायोजित कर सामाजिक यथार्थ को रेखांकित किया है। उन्होंने अपने साहित्य को आदर्श और खोखली मर्यादाओं के खोल से निकाल कर मानवीय मूल्यों को यथार्थ धरातल पर स्थापित करने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों में सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक संबंधों, मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों, संयुक्त परिवारों का विघटन, आधुनिकता की दौड़ में आत्मकेंद्रित होती युवा वर्ग की आस्थाओं का खोखला यथार्थ देखा जा सकता है।

उनके 'सूखा पत्ता', 'आकाश पक्षी' तथा 'इन्ही हथियारों से' उपन्यासों में समाज के उस यथार्थ का निरूपण हुआ है, जहाँ व्यक्ति अपनी झूठी प्रतिष्ठा व सम्मान का दिखावा करते हैं, लेकिन उनकी संवेदनाएं मरी हुई हैं। संयुक्त परिवारों के विघटन के दंश को 'आकाश पक्षी', 'काले–उजले दिन'

तथा 'बिदा की रात' में चित्रित किया गया है। उनके उपन्यासों में 'विवाह' संबंधों के प्रति पूर्ण निष्ठा स्त्री पात्रों में सजग रूप में दिखाई देती है। 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास की राजलक्ष्मी, 'काले–उजले दिन' की कांति, 'लहरें' की बच्ची देवी तथा 'बिदा की रात' उपन्यास की सुल्ताना बेगम में विश्वसनीयता, सहनशीलता इत्यादि पतिव्रता रूपी गुणों की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। 'इन्ही हथियारों से', 'आकाश पक्षी' तथा 'लहरें' उपन्यास में अनमेल विवाह तथा विवाह रूपी रिवाज की आड़ में अपनी ही बेटी का सौदा करने वाले लोगों का यथार्थ अंकित है। स्वच्छंदवादी जीवन जीने की चाह में स्त्री–पुरूष नैतिक बंधन शिथिल होते जा रहे हैं, जिसके फलस्वरूप विवाहेत्तर संबंध पनप रहे हैं। इसकी अभिव्यक्ति 'आकाशपक्षी' के बड़े सरकार, 'ग्रामसेविका' उपन्यास के प्रधान जी व रामजस तिवारी तथा 'इन्हीं हथियारों से' के दामोदर में देखी जा सकती है।

अमरकांत जी के 'सूखापत्ता', 'बीच की दीवार', 'काले–उजले दिन', 'आकाश–पक्षी' इत्यादि लगभग सभी उपन्यासों में रोमांटिक एटीट्यूड देखने को मिलता है। अतः उनके उपन्यास साहित्य में प्रेम अपने सशक्त व यथार्थ रूप में सामने आया है। प्रेम मानव हृदय की उदात्त और अनिवार्य अनुभूति है, किंतु यही प्रेम जब शारीरिक आकर्षण की सीमा में ही कैद होकर रह जाता है तब प्रेम की पवित्र भावना गौण रूप धारण कर लेती है तथा यौन चेतना प्रधान हो जाती है। अमरकांत के लगभग सभी उपन्यासों में यौन चेतना व दमित इच्छाओं का भयावह व घृणित यथार्थ दृष्टिगत है। भावात्मक संबंधों की दूरी तथा बढ़ती प्रदर्शनप्रियता के कारण मनुष्य–मनुष्य से दूर होता जा रहा है, फलस्वरूप मनुष्य का मानसिक संघर्ष व असंतोष बढ़ा है। वह एक पीड़ा तथा टूटन की स्थति को प्राप्त हो, शनैः–शनैः मानसिक द्वन्द्वात्मकता, कुंठा तथा तनाव से ग्रसित हो रहा है। इसकी अभिव्यक्ति 'सूखापत्ता', 'पराई डाल का पंछी', 'बीच की दीवार', 'आकाश–पक्षी', 'कंटीली राह के फूल' और 'काले–उजले दिन' में व्यापक स्तर पर देखी जा सकती है।

अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में समाज में नारी के अस्तित्व व नारी विमर्श को महत्त्व दिया है। उनके 'सूखा पत्ता' उपन्यास से लेकर 'इन्ही हथियारों से' तक सभी उपन्यासों में पुरूष प्रधान समाज की बर्बरता, नारी के दोयम दर्जे की स्थिति तथा उसकी दुर्गति के मार्मिक चित्र अंकित है। साथ ही उनके उपन्यासों में नारी के प्रति हो रहे अन्याय व अत्याचार के विरूद्ध विद्रोही स्वर भी मुखरित हुआ है। जहाँ उनके उपन्यास साहित्य में एक ओर पीड़ित व दयनीय नारी का चित्रण हुआ है, तो वहीं दूसरी ओर सशक्त, सबल तथ विद्रोही नारी के दर्शन 'सुन्नर पांडे की पतोह' उपन्यास की राजलक्ष्मी, 'ग्रामसेविका' की दमयन्ती तथा 'इन्ही हथियारों से' की नम्रता में देखे जा सकते हैं।

अमरकांत के उपन्यासों में राजनीति के विविध आयाम दृष्टिगत है। स्वयं उपन्यासकार ने गांधी जी के प्रभाव से सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भागीदारी की थी। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में सहभागी जनता के सहयोग व योगदान को उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभूत किया था, जिसका प्रभाव उनके लेखन में भी दिखाई देता है। इनके द्वारा सृजित 'सूखापत्ता' व 'इन्ही हथियारों से' उपन्यास में राष्ट्रीय–मुक्ति आन्दोलन का स्वर मुखरित हुआ है। उक्त उपन्यास गांधी जी के विभिन्न प्रकार के आंदोलनों तथा क्रांतिकारी घटनाओं का यथार्थ दस्तावेज है। स्वातंत्र्यपूर्व के भारत की तत्कालीन परिस्थितियों का लेखा–जोखा प्रस्तुत करने वाला यह उपन्यास देश की आजादी में अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले साधारण जन–समुदायों का यथार्थ उद्घाटन प्रस्तुत करता है।

अमरकांत ने अपने उपन्यास 'बिदा की रात', 'इन्हीं हथियारों से' तथा 'आकाश–पक्षी' उपन्यास में देश–विभाजन तथा साम्प्रदायिकता के दंश को चित्रित किया है। उनके उपन्यासों में स्वातंत्र्यपूर्व हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रसंग, अंग्रेजों द्वारा साम्प्रदायिकता भड़काना तथा देश–विभाजन से होने वाली पीड़ा को महसूस किया जा सकता है।

उपन्यासकार ने भ्रष्टाचार की समस्या को अपने उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भ्रष्टाचार की समस्या एक माहमारी के रूप में बढ़ती जा रही है। स्वार्थान्धता व भ्रष्टाचार केवल राजनेताओं तक ही सीमित नहीं है। यह अब सरकारी कर्मचारियों में भी फैल चुकी है। आज पैसे के बल पर ही नौकरियां खरीदी जाती है, प्रमोशन करवाये जाते है तथा पैसे से ही अटका हुआ काम द्रुतगति से सम्पन्न हो जाता है। 'लहरें' उपन्यास का नायक सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए रिश्वत का सहारा लेता है। 'बिदा की रात' उपन्यास में राजनेताओं में सियासत की चाह अमीर बनने तथा रूतबा हासिल करने की लालसा का यथार्थ अंकन हुआ है। 'ग्रामसेविका' उपन्यास के प्रधान सरकारी नीतियों का दुरूपयोग कर सरकारी पैसे को बीच में ही हड़प कर जाते है। इस प्रकार भ्रष्टाचार के दलदल में फंसे भ्रष्ट नेताओं, जागीदारों, साहूकारों व प्रधानों से आम जनता का मोह भंग हुआ है। जिसका यथार्थ अंकन अमरकांत के उपन्यास साहित्य में देखा जा सकता है।

अमरकांत के उपन्यासों में अर्थ विभिन्न रूपों में उपस्थित हुआ है। आधुनिक युग में धन–सम्पत्ति का प्रयोग शान–शौकत अथवा दिखावे के लिए किया जाता है। 'आकाश–पक्षी' उपन्यास में हेमा के माता–पिता के माध्यम से उपन्यासकार ने अर्थ प्रदर्शन का खोखला यथार्थ प्रस्तुत किया है। वर्तमान युग में पारिवारिक संबंध स्थापित करने यथा–विवाह इत्यादि में स्नेह, प्रेम की जगह उपयोगितावादी दृष्टि पनप रही है। 'ग्रामसेविका' उपन्यास में अतुल दहेज के लालच में दमयन्ती

का परित्याग कर देता है, वहीं 'आकाशपक्षी' उपन्यास में हेमा के माता–पिता ऐशो–आराम व झूठी प्रतिष्ठा की खातिर हेमा का विवाह उसकी उम्र के दो गुने बड़े व्यक्ति से कर देते हैं।

अमरकांत ने अपने उपन्यासों में स्वतंत्रता पूर्व ब्रिटिशों, साहूकारों, सामन्तों व जमींदारों द्वारा गरीब जनता का दैहिक व आर्थिक शोषण का यथार्थ चित्रण किया है। शोषण की यह प्रवृत्ति स्वतंत्रता पश्चात् भी राजनेताओं व प्रधान जी इत्यादि लोगों में देखी जा सकती है। 'ग्रामसेविका' उपन्यास में ग्राम प्रधान विचित्रनारायण दुबे सरकारी नीतियों का पैसा हड़प लेते हैं तथा गरीब किसानों की जमीन धोखे से अपने नाम करवा लेते हैं। आर्थिक शोषण के साथ–साथ उपन्यासकार ने आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त लोगों का यथार्थ प्रस्तुत किया है। उनके अधिकांश उपन्यासों में मध्यवर्ग की आर्थिक विफलताओं का सूक्ष्म अंकन हुआ है। उनके उपन्यासों में गरीबी, भुखमरी व बेरोजगारी की समस्याएं देखी जा सकती है। उनके उपन्यासों में इसकी परिणति स्वातंत्र्यपूर्व भारत से लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत में यथावत रूप में देखी जा सकती है। 'बिदा की रात' उपन्यास में ऐसे लोगों का जीवन यथार्थ प्रस्तुत हुआ है, जो दो वक्त की रोटी जुटा पाने में भी असमर्थ है। अमरकांत के लगभग सभी उपन्यासों में आर्थिक समस्या से जुझते तथा अर्थ के कारण मानसिक दबाव, तनाव, कुंठा को झेलते लोगों का यथार्थ अंकित है।

अमरकांत जी का मानना है कि सामाजिक संस्करण में संस्कृति की उपादेयता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे अपनी संस्कृति के प्रति अत्यन्त सजग व चेतन दिखाई देते हैं। वास्तव में व्यक्ति जो कुछ भी अपने आस–पास की संस्कृति से ग्रहण करता है, वह उसके व्यवहार में समाविष्ट हो जाता है। उनके उपन्यास साहित्य में संस्कृति के विविध रूप परिलक्षित होते है। उनके उपन्यासों के पात्रों में धार्मिक आस्था मूल रूप से विद्यमान है। लेखक ने स्वतंत्रतापूर्व के भारत की यथार्थ झांकी 'इन्हीं हथियारों से' में प्रस्तुत की है, जिसमें हिन्दू–मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के लोग एक–दूसरे के धार्मिक कार्यों में आस्था रखते तथा रूचि लेते थे। यही धार्मिक आस्था कभी–कभी अंधविश्वास का रूप धारण कर लेती है। लेखक ने ग्रामीणों में प्रचलित अंधविश्वास व मान्यताओं को 'ग्रामसेविका', 'सुन्नर पांडे की पतोह', 'बिदा की रात' तथा 'इन्हीं हथियारों से' इत्यादि उपन्यासों में चित्रित किया है।

उनके उपन्यासों में जाति–पाति तथा छूआ–छूत के मुद्दे को भी उठाया गया है। प्राचीन संस्कृति में वर्णित वर्ण व्यवस्था का निर्धारण कार्यों को सुचारू रूप से चलायमान रखने हेतु किया जाता था, किंतु वर्तमान में वर्णव्यवस्था ने अत्यन्त घृणित स्वरूप प्राप्त कर लिया है। इस वर्ण–व्यवस्था ने जातिगत विभिन्नता रूपी दानव को उत्पन्न कर अपनी जड़ें ओर गहरी जमा ली है। जातिगत व्यवस्था का जटिल व कटु यथार्थ उपन्यासकार ने अपने उपन्यास 'ग्रामसेविका', 'आकाश पक्षी' तथा 'इन्ही हथियारों से' में विस्तृत रूप से किया है।

अमरकांत जन–सामान्य के लेखक हैं। वे समाज व संस्कृति से भली–भांति परिचित हैं। उनके उपन्यास साहित्य की विशेषता है कि वे स्थान विशेष की संस्कृति से पाठक को रूबरू कराते चलते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में खान–पान, वेश–भूषा, रीति–रिवाजों, लोकगीतों, उत्सवों तथा मेलों का स्वानुभूत व जीवंत वर्णन किया है। इस प्रकार अमरकांत के उपन्यास साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक यथार्थ एक साथ परिलक्षित होते हैं।

षष्ठम् अध्याय – 'अमरकांत का उपन्यास साहित्य : भाषा एवं शिल्प विधान' के अंतर्गत अमरकांत के उपन्यास साहित्य में भाषा एवं शिल्प विधान को परिभाषा व उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। विभिन्न कोशगत अर्थ एवं परिभाषा से स्पष्ट है कि किसी भी रचना का प्राणतत्त्व कथ्य है तो शिल्प उसका शरीर। उपन्यास के शिल्प के अंतर्गत उन सभी विधियों, नियमों, कल्पनाओं, विचारों एवं तरीकों का समावेश हो जाता है, जिसके माध्यम से उपन्यास की घटना पात्र, वार्तालाप, दृश्य तथा वातावरण सजीव हो उठते हैं। अपनी भाषा को प्रभावी बनाने के लिए वह भाषा को तोड़–मरोड़कर विभिन्न रूपों में प्रयोग करता है। इसके लिए वह विभिन्न प्रकार की शब्दावली तथा मुहावरों, कहावतों एवं सूक्तियों का सहारा लेता है। वास्तव में इन सभी उपादानों से मिलकर शिल्प का गठन होता है। इन सबके पीछे रचनाकार की संवेदनशीलता, अनुभव वैशिष्ट्य, यथार्थदृष्टि, निरीक्षण शक्ति तथा उसकी अलौकिक प्रतिभा छिपी होती है, जो मानव जीवन के किसी विशिष्ट पहलू पर प्रकाश डालती है, परिणामस्वरूप ऐसी रचना उद्दिष्ट पूर्ति में सहायक होती है।

अमरकांत के उपन्यास साहित्य का शिल्प सौंदर्य कथ्य के अनुरूप प्रभावी, सशक्त, मंजा हुआ एवं उच्च कोटि का है। उनके उपन्यासों में भाषा एवं शैली का वैविध्यपूर्ण प्रयोग हुआ है। विभिन्न कोशगत अर्थ एवं विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं के सारांश स्वरूप भाषा वह पद्धति है, जो विचारों के आदान–प्रदान के साथ–साथ साहित्य में उत्कृष्टता व प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करती है। अतः भाषा एक देवीय अंश है, जो मनुष्य को प्रकृति प्रदत्त बहुमूल्य उपहार स्वरूप प्राप्त है। इसके माध्यम से वह समाज के अन्य मनुष्यों से अपनी भावनाओं और विचारों को सहजता से अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी संवेदना, बोध एवं अनुभूत्यानुसार साहित्यिक भाषा का प्रयोग करता है।

उपन्यासकार अमरकांत ने अपने साहित्य में सहज, सरल, प्रांजल एवं भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। भाषा को साहित्य का अस्त्र माना जाता है। अमरकांत ने भाषा रूपी अस्त्र का प्रयोग पात्रों व परिवेश के अनुरूप किया है। जीवन संदर्भों की यथार्थता के संप्रेषण के लिए जिस भाषा का प्रयोग उपन्यासकार ने किया है, वह यथार्थ भाषा है। उन्होंने अपने उपन्यासों में पात्रों के चित्रण को पूर्णता और स्वाभाविकता देने के लिए वातावरण का भी ध्यान रखा है। उन्होंने अपने

उपन्यासों में ग्रामीण, शहरी, कस्बाई तथा भयानक अथवा करूण वातावरण इत्यादि को भी स्थान दिया है। भाषा को समृद्ध, सुगम व सम्प्रेषणीय बनाने तथा उसमें नयी अर्थवृत्ता और गाम्भीर्यता लाने के लिए अनेक भंगिमाओं तथा तत्त्वों का होना अनिवार्य माना गया है। साधारण बोलचाल की भाषा को साहित्यिक गरिमा में ढ़ालने तथा तराशने का श्रेय संभवतः प्रेमचंद को जाता है। अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में प्रतीकात्मकता, लयात्मकता, चित्रात्मकता व ध्वन्यात्मकता इत्यादि का प्रयोग कर भाषा की समृद्धि में इतिश्री कर प्रेमचंद की परम्परा का ही निर्वहन किया है। प्रेमचंद के ही अनुरूप अमरकांत का भाषाकोश ग्रामीण एवं शहरी दोनों परिवेश से जुड़ाव के कारण विपुल एवं समृद्ध है। उनके उपन्यासों की भाषा पात्रों की मानसिक स्थिति, प्रसंगविशेषानुसार, कथ्यानुरूप व पात्रानुकूल है।

प्रतीकात्मक भाषा प्रयोग इनके उपन्यास साहित्य की भाषागत विशेषता कही जा सकती है। उन्होंने प्रतीकात्मकता का प्रयोग प्रायः अपने उपन्यासों के शीर्षकों में किया है। वस्तुतः प्रतीक साहित्य में विचार या प्रत्यय का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये विशिष्ट अर्थ का द्योतन करते हैं, जिनकी व्यवस्था उपन्यास के कथ्य से उभरती है। इस दृष्टि से उनके 'सूखापत्ता', 'आकाश पक्षी', 'काले–उजले दिन', 'लहरें', 'कंटीली राह के फूल' तथा 'पराई डाल का पंछी' उपन्यास प्रमुख है।

अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में लोकगीतों के प्रयोग के माध्यम से अंचल विशेष संस्कृति के दर्शन कराये हैं। इन लोकगीतों के माध्यम से उपन्यासों की भाषा जीवंत हो उठी है। भाषा के काव्यात्मक रूप से उपन्यासों के प्रसंगों में सौंदर्य वृद्धि तथा पात्रों में जीवंतता देखी जा सकती है। उनके उपन्यासों में कहीं– कहीं चित्रात्मकता का गुण भी दिखाई देता है। उन्होंने रूप चित्र तथा दृश्य चित्रों का प्रमुखता से उपयोग किया है। उन्होंने प्राकृतिक वातावरण के चित्रण में भाषा को शिष्ट, परिमार्जित व अलंकृत रूप प्रदान किया है। उनके प्रसंगों, स्थितियों, घटनाओं इत्यादि के वर्णन को पढ़कर पाठकों के समक्ष वह प्रसंग चित्र रूप में साकार हो उठता है। इन प्रसंगों में रागात्मकता उत्पन्न करने हेतु ध्वनि का विशेष महत्त्व है। 'ध्वनि' साहित्य की सार्थक एवं स्वतंत्र इकाई है। शब्द ध्वनियों के सार्थक समूह होते हैं। अमरकांत के उपन्यास साहित्य में ध्वन्यात्मकता विशेष रूप से ध्वनित हुई है, जिससे साहित्य स्पंदित हो उठा है। उनके लगभग सभी उपन्यासों में ध्वन्यात्मक शब्दावली का प्रयोग देखा जा सकता है।

भाषा के सफल संयोजन हेतु शब्द–विधान का प्रयोग अत्यंन्त आवश्यक है। अमरकांत के उपन्यास साहित्य का शब्द–विधान वैविध्यपूर्ण है। मूलतः उपन्यासकार ने पूर्वी बलिया के आस–पास की आँचलिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर कथ्य का चयन किया है। उनके उपन्यास साहित्य के पात्र, परिवेश, वातावरण इत्यादि ग्रामीण व शहरी दोनों से सम्पृक्त होने के कारण उनके पात्र कभी संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का प्रयोग करते हैं, कभी उर्दू–फारसी, तो कभी अंग्रेजी, तो कहीं

उनकी बोली में प्रादेशिक शब्दावली का बासंती बयार लहलहाता दिखाई देता है। इन सभी शब्दों का प्रयोग उपन्यासकार ने साहित्यिक भाषा में अत्यधिक सरल, सहज व व्यावहारिक रूप में किया है।

भाषा में प्रभाव तथा पैनापन उत्पन्न करने के लिए उपन्यासकार ने लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग किया है। जहाँ उपन्यासकार ने लोकोक्तियों के उपयोग से जीवन के विविधानुभवों, नियमों, विश्वासों इत्यादि को अत्यंत सजीव, संक्षिप्त, सारगर्भित तथा चुटीले अंदाज में प्रयुक्त किया है, वहीं मुहावरों के प्रयोग से भाषा को यौवन सम्पन्न शक्ति और समर्थता प्रदान की है। वस्तुतः मुहावरों का जन्म स्थान गांव माना जाता है। साधारणतः ग्रामीणों की बोलचाल में मुहावरे इस तरह घुले–मिले रहते हैं कि उनका प्रयोग सहज रूप में ही देखने को मिलता है। अतः अमरकांत ने पात्रों तथा वातावरण के भावावेश में सजीवता प्रकट करने, हास्य–व्यंग्य को प्रभावी बनाने तथा अभिव्यंजना में सौंदर्य लाने हेतु मुहावरों का प्रयोग किया है।

अमरकांत ने उपन्यासों में पात्रों की विचाराभिव्यक्ति हेतु सूक्तियों का भी प्रयोग किया है। ये सूक्तियां लेखक के जीवानानुभवों का आंशिक रूप है, जो उनकी प्रतिभा चिंतन और अनुभवों को व्यापक फलक प्रस्तुत करती है। गद्य विधा में भाषा के सुनहरे तार में गुथे हुए सूक्तियों के मोती अपनी अलग द्युति बिखेरती है। इनका उद्देश्य समाज का परिमार्जन व परिशोधन करना है। जहाँ सूक्तियाँ भाषा में जीवन के गहन अनुभवों का सार भरती हैं, वहीं अलंकार अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशाली बनाते हैं। पात्रों के रूपाकार, वेश–विन्यास, उनके मनोभावों, ध्वनियों, मुद्राओं, चेष्टाओं, कार्य–पद्धति, व्यवहार तथा परस्पर संबंधों को स्पष्ट करने हेतु उपमाओं का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः छोटी से छोटी उक्ति को भी उपमानों के माध्यम से कहना अमरकांत की भाव–बोध और वैचारिकता का परिचायक है। उन्होंने समाज में व्याप्त अन्तर्विरोधों और विसंगतियों पर आक्रोश व्यक्त करते हुए कहीं–कहीं भदेश भाषा का प्रयोग किया है। भदेश शब्दावली के माध्यम से उन्होंने समाज की विरूपताओं के प्रति धृणा और प्रतिहिंसा व्यक्त की है। उनके उपन्यासों में भदेश शब्दावली का प्रयोग परिवेश को सशक्त और प्रभावी बनाने में समर्थ है।

शैली–प्रत्येक साहित्यकार का अपना एक अनुभव जगत होता है। लेखक अपने अनुभव वैशिष्ट्य का साक्षात्कार पाठक को जिस रीति, ढंग अथवा पद्धति से करवाता है, वह शैली कहलाती है। साहित्यिक जगत में कथ्य के प्रकटीकरण हेतु अनेकानेक शैलियां प्रचलित है। उपन्यास साहित्य में शैली का वैशिष्ट्य कथानक संरचना के रूप में तो दृष्टिगत होता है साथ ही वह पात्र के चरित्र–चित्रण की पद्धति में भी सहायक है। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, भावात्मक, व्यंग्यात्मक, पत्रात्मक, संवादात्मक तथा पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया है।

वर्णनात्मक शैली में किसी स्थान, दृश्य, अनुभव, वस्तु, घटना व स्मृति इत्यादि का रोचक ढंग से चित्रण किया जाता है। अमरकांत ने 'सूखापत्ता', 'इन्हीं हथियारों से' तथा 'बिदा की रात' में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये उपन्यासों में एक पात्र की ओर से सम्पूर्ण कथा कह दी जाती है। इसके अंतर्गत पात्र अपना आत्मविश्लेषण करता हुआ प्रतीत होता है। अमरकांत के उपन्यासों के पात्र काल्पनिक न होकर यथार्थ भूमि पर गढ़े गये हैं। उनके द्वारा रचित 'सूखापत्ता' उपन्यास का नायक कृष्णकुमार, 'काले–उजले दिन' का नायक, 'कंटीली राह के फूल' का अनूप तथा 'आकाश–पक्षी' उपन्यास की हेमा अपने जीवन के कटु यथार्थ का प्रकटीकरण आत्मकथात्मक शैली में करते हैं। भावात्मक शैली में मानवीय संवेदनाओं का अंकन यथार्थ धरातल पर किया जाता है। इसके माध्यम से पात्रों की मनःस्थिति, पीड़ा, अन्तर्द्वन्द्व, कुंठा व खुशी इत्यादि संवेदनाओं को एक साथ खूबी से प्रदर्शित किया जाता है। 'पराई डाल का पंछी' उपन्यास में दीपक व अहिल्या के माध्यम से दाम्पत्य जीवन की संवेदनाओं यथा – खीझ, खुशी, भय, करूणा इत्यादि को यथार्थ धरातल पर उकेरा गया है। 'सूखापत्ता' उपन्यास में कृष्ण व उर्मिला की प्रेम संवेदना तथा 'बिदा की रात' उपन्यास में सुल्ताना बेगम व युसुफ की संवेदना को वात्सल्य प्रेम का जामा पहनाया गया है। साथ ही साम्प्रदायिक दंगों के कारण अपनों से बिछड़ने की पीड़ा को भावात्मक शैली में प्रस्तुत किया हैं।

अमरकांत ने अपने 'ग्रामसेविका', 'आकाशपक्षी', 'लहरें तथा 'बिदा की रात' इत्यादि उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक बुराईयों व न्यूनताओं को सीधे शब्दों में न कहकर व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार ने पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग पात्रों के अन्तर्मन की गहराई को नापने तथा मनःस्थितियों की गुत्थियों को सुलझाने के लिए किया है। इस शैली में उपन्यासकार किसी पात्र के माध्यम से अतीत की घटनाओं के तार वर्तमान से जोड़ता चलता है। 'सूखापत्ता', 'काले–उजले दिन', 'सुन्नर पांडे की पतोह', 'ग्रामसेविका' तथा 'आकापक्षी' इत्यादि उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग हुआ है। किसी पात्र के जीवन तथा उसकी आंतरिकता को समझने के लिए पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है। उपन्यासकार ने 'सूखापत्ता', 'लहरें', 'ग्रामसेविका', 'आकाशपक्षी' इत्यादि में पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। साथ ही उपन्यासों की कथा को गतिशीलता प्रदान करने तथा चरित्रों के कार्य–कलाप को स्पष्ट करने के लिए संवाद शैली का प्रयोग किया गया है। उन्होंने अपने लगभग सभी उपन्यासों यथा–'कंटीली राह के फूल', 'आकाशपक्षी', 'इन्हीं हथियारों से, 'काले–उजले दिन' इत्यादि में संवादों का प्रयोग अत्यंत सुघड़ता के साथ किया है। उन्होंने पात्रों की विविधतानुसार, पात्रों के अनुकूल संक्षिप्त, रोचक और प्रभावशाली संवादात्मक शैली का प्रयोग किया है। सार स्वरूप उपन्यासकार के समस्त रचनाधर्मिता में भाषा और शिल्प के सभी तत्त्वों का समावेश जल में तरंगों के समान अतुल्य व अनुपम है।

सप्तम अध्याय – नवनीत के अंतर्गत शोध–प्रबंध का सार तथा वर्तमान संदर्भों में अमरकांत के उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद की प्रासंगिकता व उपलब्धि को प्रस्तुत किया गया है। मैंने यथासंभव अपनी समझ व दृष्टि के अनुसार "अमरकांत के उपन्यास साहित्य में चित्रित यथार्थवाद : एक अनुशीलन" पर कार्य करने का लघु प्रयास किया है। शोध–प्रबंध के अंत में आधार पुस्तकों एवं संदर्भ–ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की गई है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

क्र.सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशन
1.	अमरकांत	सूखापत्ता	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1959, नवीन संस्करण 2015
2.	अमरकांत	पराई डाल का पंछी	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003, दूसरी आवृत्ति 2014
3.	अमरकांत	बीच की दीवार	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1981, इस रूप में पहला संस्करण –2008
4.	अमरकांत	आकाश पक्षी	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003,
5.	अमरकांत	काले–उजले दिन	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, पहली आवृत्ति–2014
6.	अमरकांत	इन्हीं हथियारों से	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2003, दूसरी आवृत्ति–2014
7.	अमरकांत	सुन्नर पांडे की पतोह	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005, पहली आवृत्ति–2015
8.	अमरकांत	ग्रामसेविका	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2008, दूसरी आवृत्ति–2015
9.	अमरकांत	बिदा की रात	अमर कृतित्व, इलाहाबद, पहला संस्करण–2008

10.	अमरकांत	कंटीली राह के फूल	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009 दूसरी आवृत्ति 2014
11.	अमरकांत	लहरें	अमर कृतित्व, इलाहाबद, पहला संस्करण—2008

सहायक ग्रन्थ

12.	विजय कुमार बैराटे	कथाकार अमरकांत	अभय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण—2006
13.	बहदुर सिंह परमार	अमरकांत का कथा साहित्य	शिल्पायन, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण—2009
14.	डॉ. संजय कुमार	अमरकांत के साहित्य	नमन प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली प्रथम संस्करण—2011
15.	रवीन्द्र कालिया	अमरकांत एक मूल्यांकन	सामयिक बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण—2012
16.	अमरकांत	दोस्ती	अमर कृतित्व, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण—2013
17.	डॉ. योगेश गोकुल पाटिल	अमरकांत का कथा साहित्य कथ्य एवं शिल्प	साहित्य निकेतन, बिजनौर, उत्तरप्रदेश, प्रथम संस्करण—2013
18.	देवेन्द्र कुमार गुप्ता	प्रेमचंद और युगीन संस्थाएं	शब्ददृष्टि, शकरपुर, दिल्ली, संस्करण—2010
19.	हावर्ड फास्ट	साहित्य और यथार्थ	वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993, आवृत्ति संस्करण 2015
20.	शिवकुमार मिश्र	यथार्थवाद	वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009, आवृत्ति—2017

21.	चित्रलेखा शुक्ल	महाकाव्यात्मक उपन्यास	हर्ष पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012 की अवधारणा और हिंदी उपन्यास
22.	एन.मोहनन	समकालीन हिंदी उपन्यास	वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013, आवृत्ति संस्करण 2015
23.	डॉ. ई.विजयलक्ष्मी	उपन्यासों के सरोकार	राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दरियागंज, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2012
24.	प्रेमचंद	कुछ विचार	मलिक एण्ड कम्पनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर, सस्करण–1998
25.	रामदरश मिश्र	हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा	राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., दरियागंज, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1968, सातवां संस्करण 2016
26.	डॉ. हरदेव बाहरी,	सामान्य हिंदी	प्रकाशक–कमल जैन, जैन प्रकाशन मंदिर, डॉ. केदार शर्मा चौड़ा रास्ता, जयपुर, एकादश संस्करण–2012
27.	डॉ. राघव प्रकाश	व्यावहारिक सामान्य हिंदी	पिंकसिटी पब्लिशर्स, जयपुर, प्रथम संस्करण 1993, पुनः मुद्रित संस्करण–2010
28.	डॉ. हरदेव बाहरी	हिंदी–शब्द–अर्थ–प्रयोग	अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, संशोधित एवं परिवर्धित संस्कण – 2013
29.	डा. अरविंद कुमार	सम्पूर्ण हिंदी व्याकरण	ल्यूसेंट पब्लिकेशन, पटना, संस्करण–2013 और रचना
30.	सुशील कुमार	प्रयाग सामान्य हिंदी	प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, एकादश संस्करण–2005

31.	राजीव अहीर	आधुनिक भारत का इतिहास	स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि., नई दिल्ली, बारहवां संस्करण–2010
32.	ब्रह्मस्वरूप शर्मा	हिंदी उपन्यास की विकास	मनु प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2001 यात्रा
33.	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	जैन का साहित्य चिंतन	प्रकाशक–आराधना ब्रदर्स, कानपुर, संस्करण–2012
34.	नरेन्द्र कोहली	हिंदी उपन्यास सृजन और सिद्धांत	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2002
35.	डॉ. प्रेम भटनागर	हिंदी–उर्दू उपन्यास शिल्प	अर्चना प्रकाशन, जयपुर प्र.सं. बदलते परिप्रेक्ष्य 1992
36.	डॉ. अनीता वर्मा	शचीन्द्रं उपाध्याय के कथा साहित्य में संवेदना और शिल्प	बाबा पब्लिकेशन, जयपुर, 2017
37.	सुखलाल गुप्त	सुगम हिंदी व्याकरण और	आशा प्रकाशन, दिल्ली, रचना संस्करण–1997
38.	पी.सी. खरे	समाज विज्ञान के मूल तत्त्व	जय भारती, इलाहाबाद, संस्करण 1998
39.	डॉ.एस.पी.श्रीवास्तव	भारतीय सामाजिक संस्थाएं	उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1978
40.	डॉ. शैल रस्तोगी	हिंदी उपन्यासों में नारी	वि.भू.प्रकाशन, साहिबाबाद, प्र. स. 1997
41.	यादव (डॉ.) नंदलाल	देवेश ठाकुर : व्यक्ति, समीक्षक और कथाकार	मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली, 1983
42.	राजपाल (डॉ.) हुकुमचंद	आधुनिक काव्य में जीवन	भारतीय संस्कृति भवन जालधर, मूल्य प्रथम संस्करण 1970
43.	पानेरी (डॉ.) हेमेंद्रकुमार	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास :	संधी जयपुर, प्रथम संस्करण मूल्य संक्रमण 1974
44.	राहुल सांकृत्यायन	आज की समस्याएं	किताबमहल, इलाहाबाद, द्वि. सं. 1988

45.	डॉ. (श्रीमती) ओम शुक्ल	हिंदी उपन्यासों की शिल्प	अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, स. विधि का विकास जुलाई 1964
46.	डॉ. सत्यपाल चुग	प्रेमचन्द्रोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि	इकाई प्रकाशन, इलाहाबाद–1, प्र.सं. जनवरी 1968
47.	बिस्सा कृष्णचंद्र 'चंद्र'	साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों राजनीतिक चेतना	दिनमान प्रकाशन, प्रथम में संस्करण–1984
48.	डॉ. अशोक बालुचकर	हिंदी उपन्यासों में महानगरीय अवबोध	प्रकाशक श्रुति पब्लिकेशन्स, संस्करण 2012
49.	डॉ. कंचना सक्सेना	यथार्थ बोध और नयी कविता	अनुभूति प्रकाशन, मानसरोवर, जयपुर, प्रथम संस्करण–2004
50.	डॉ. सरोज सिंह	अमृत लाल नागर की कथा दृष्टि के समाज शास्त्रीय आयाम	राका प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2009
51.	डॉ. सुधाकर अदीब	हिंदी उपन्यासों में प्रशासन संस्करण द्वितीय परिवर्द्धित,	सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, वर्ष–2007
52.	डॉ. लक्ष्मण जे.वाणवी	मोहन राकेश के उपन्यासों में चरित्र सृष्टि	के.एस.पब्लिकेशन,भोपाल, प्रथम संस्करण–2011
53.	डॉ. देशाणी महेन्द्र	उपन्यासकार कमलेश्वर संवेदना और शिल्प	रावत प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम कुमार जे. संस्करण–2014
54.	रामधारी सिंह दिनकर	संस्कृति के चार अध्याय	उदयाचल आर्य कुमार, पटना, प्रथम संस्करण 1962
55.	देवेंद्र मुनि शास्त्री	साहित्य और संस्कृति	भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1970
56.	डॉ. सरला अग्रवाल	साहित्य और संस्कृति	साहित्यगार, जयपुर, प्रथम संस्करण 2009
57.	डॉ. उर्मिला भटनागर	हिंदी उपन्यास साहित्य	अर्चना प्रकाशन, जयपुर, प्रथम में दाम्पत्य चित्रण संस्करण 1991
58.	डॉ. दयाकृष्ण	हिंदी भाषा और महाकाव्य एक अध्ययन	साहित्यगार प्रकाशक, जयपुर विजयवर्गीय 'विजय'

59.	डॉ. मनोहर सर्राफ	खड़ी बोली रामकाव्यो में चित्रित समाज और संस्कृति	विद्या प्रकाशन
60.	डॉ. धर्मवीर भारती	मानव मूल्य और साहित्य	भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999
61.	राधा दीक्षित	राग दरबारी का शैली वैज्ञानिक अध्ययन	साहित्य भंडार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1991
62.	बालेन्दु शेखर तिवारी	हिंदी शब्द शक्ति और पारिभाषिक शब्दावली	क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005
63.	डॉ. नगेद्रं	हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में दिल्ली का योगदान	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995
64.	राजकिशोर	धर्म, साम्प्रदायिकता और	प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, राजनीति प्रथम संस्करण 1995
65.	कौशल्या	सामाजिक चेतना और पड़ाव	मैम्पाई पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली श्री लाल शुक्ल का पहला संस्करण–2002
66.	डॉ. नरेन्द्र सिंह	आधुनिक साहित्य चिंतन और कुछ विशिष्ट साहित्यकार	विद्यानिधि, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002
67.	गंगा प्रसाद विमल	आधुनिकता और उत्तर	नयी किताब, रोहिणी, दिल्ली, आधुनिकता प्रथम संस्करण 2012
68.	प्रकाश नारायण नाटाणी	भारतीय संस्कृति के विविध	अवतार पब्लिकेशन्स, विजयपुर, आयाम संस्करण 2012
69.	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	हिंदी साहित्य का इतिहास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2067 वि.
70.	डॉ. हेतु भारद्वाज	संस्कृति और साहित्य	मंथन पब्लिकेशन, जयपुर, सं. 2004

71.	बालेन्दु शेखर तिवारी	हिंदी शब्द–शक्ति और पारिभाषिक शब्दावली	क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005
72.	डॉ. नगेद्रं सिंह	आधुनिक साहित्य चिंतन और कुछ विशिष्ट साहित्यकार	विद्यानिधि, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002
73.	डॉ. गोविन्द प्रसाद शर्मा	राजनीतिक सिद्धांत	मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (म.प्र.) संस्करण चतुर्थ (संशोधित) 2011
74.	सच्चिदानंद वात्स्यायन	सामाजिक यथार्थ और	नेशनल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, कथा भाषा संस्करण 1990
75.	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	हिंदी उपन्यास उपलब्धियां	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1923

सहायक ग्रंथ अंग्रेजी

1.	Tarachand	History of the freedom Movement in India, Vol. I
2.	Bipin Chandra	India's struggle for Independence zacharia, Rena scent.
3.	Ralpha fox	The Novel and the people
4.	George Lurace	Study in European Realism
5.	Cazamian	A History of English Lierature
6.	George J. Baker	Doucument of Modern Literacy realisim
7.	Domain Grant	Realism

पत्र–पत्रिका

1. कथा, मार्कण्डेय, एकाकी कुञ्ज, इलाहाबाद, 1 जनवरी 1999
2. विकल्प, शुक्ल रवीद्रं, शर्मा सियाराम, मार्च 1999
3. दस्तक, राघव आलोक, सारा जहां जमशेदपुर, बिहार, जनवरी 1994
4. हंस, राजेन्द्र यादव, अक्टूबर 1999
5. समय माजरा, (सं.) डॉ. हेतु भारद्वाज, मार्च 2002
6. वार्षिकी हिंदी कहानी, (सं.) वीरेन्द्र सक्सेना, 1984

7. समालोचक (मासिक), डॉ. रामरतन भटनागर

कोश

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी, वृहत् हिंदी लोकोक्ति कोश, प्रकाशक शब्दकार, वैस्ट दिल्ली, संस्करण 2001
2. आदीश कुमार जैन, नालन्दा विशाल शब्द सागर, आदर्श बुक डिपो, नई दिल्ली, संस्करण 1999
3. अर्जुन प्रसाद, आधुनिक मुहावरा कोश, कायना पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, संस्करण 2013
4. डॉ. हरिवंश तरूण, हिंदी शब्दकोश, प्रिय साहित्य सदन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2013
5. अशोक मानक, हिंदी शब्दकोश, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003
6. द्वारिका प्रसाद शर्मा, संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ तारणीश वेदान्ताचार्य
7. जय शंकर जोशी, हलायुध कोश
8. सं.पा. श्यामसुंदर दास, हिंदी शब्द सागर
9. सं.पा. नगेंद्र, मानविकी पारिभाषिक कोश
10. सं. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, खण्ड तीसरा
11. अशोक मानक, हिंदी शब्दकोश (हिंदी–हिंदी) अशोक प्रकाश, नई दिल्ली, संस्करण 2003
12. अर्जुन प्रसाद, आधुनिक मुहावरा कोश, कायना पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, संस्करण 2013

अंग्रेजी कोश

1. Encyclopedia, Britanica, Vol. 43
2. The Modern Encyclopedia (1968)

वेबसाइट

1. www.Nayichetna. com
2. Shabdkosh.raftarr.in
3. www.Pustak.org.2004
4. googleweblight.com
5. www.hindigyanga.com

प्रकाशित शोध–पत्र

क्र. सं.	शोध–पत्र का शीर्षक	प्रकाशन वर्ष	शोध–पत्रिका /पुस्तक का नाम	ISSN NO.	संस्करण	राष्ट्रीय/ अन्तर्राष्ट्रीय
01.	अमरकांत के उपन्यास साहित्य में राजनीतिक यथार्थ : वर्तमान प्रासंगिकता	2018	वेदाञ्जली	2349–364X	हिन्दी विशेषांक भाग–3, जुलाई से दिसम्बर 2018	अन्तर्राष्ट्रीय
02.	अमरकांत के उपन्यास में सामाजिक यथार्थ	2018	इन्टरनेशनल रिसर्च जरनल ऑफ मैनेजमेंट सोसिओलोजी एण्ड ह्युमानिटिज	2348–9359	हिन्दी विशेषांक vol 9 Issue 4	अन्तर्राष्ट्रीय

IIJ Impact Factor : 2.193 ISSN-2349-364X

वेदाञ्जली

अन्तर्राष्ट्रीय विद्वत्समीक्षित षाण्मासिकी शोध पत्रिका

(International Peer Reviewed Journal of Multidisciplinary Research)

वर्ष-५ अंक-१० भाग-३

जुलाई-दिसम्बर २०१८

प्रधानसम्पादक

डॉ0 रामकेश्वर तिवारी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, श्री बैकुंठनाथ पवहारी संस्कृत महाविद्यालय

बैकुंठपुर, देवरिया

सह सम्पादक

श्री प्रसून मिश्र

प्रकाशक

वैदिक एजूकेशनल रिसर्च सोसाइटी

वाराणसी

ISSN: 2349-364X

वेदांजली

अंतर्राष्ट्रीय विद्वत्समीक्षित मूल्यांकित षाण्मासिकी शोधपत्रिका

(**An International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research**)

प्रधान संपादक :- डॉ॰ ***रामकेश्वर तिवारी***

Cell No. : 9455455802, EMail- vedanjali2014@gmail.com

वैदिक एजुकेशनल रिसर्च सोसाइटी, वाराणसी

Ref.: ved/pc/05/18/05 Date: 30/10/2018

मधु मीना, शोधार्थी, हिन्दी विभाग,

राजकीय कला महाविद्यालय कोटा राजस्थान

आपको यह बताते हुए हर्ष हो रहा है की "**अमरकांत के उपन्यास साहित्य में राजनीतिक यथार्थ : वर्तमान प्रासंगिकता**" इस शीर्षक से आपके द्वारा प्रेषित शोधपत्र **वेदांजली पत्रिका के जुलाई-दिसम्बर 2018, वर्ष-05, अंक-10, भाग- 03,** मे प्रकाशित हो गया है।

पत्रिका परिवार आपके लेखन कौशल के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

प्रधान सम्पादक

VEDANJALI

अनुक्रमणिका

- संस्कृत साहित्य की महत्ता एवं अश्वघोष का स्थान तथा मौलिकता 1–3
  डॉ0 के0के0 थापक व शोभा केशरवानी
- आचार्य धनंजय वर्णित नाट्य–वृत्तियों पर नाट्यशास्त्र का प्रभाव 4–8
  डॉ0 सूर्यप्रकाश सिंह
- शब्द की नित्यता तथा प्रामाण्यः मीमांसा दर्शन के संदर्भ में 9–11
  नुतिश्री दुबे
- 'सुगतो ब्रवीति' में चित्रित सामाजिक वेदना 12–15
  कौशलेन्द्र त्रिपाठी
- रुपसिंह चन्देल के उपन्यास 'गलियारे' में उत्तर आधुनिकता 16–20
  संगीता
- ध्वनि के साथ काव्य के अन्य तत्त्वों का परस्पर सम्बन्ध 21–23
  अतुल कुमार दुबे
- तीर्थराजप्रयागमाहात्म्यम् 24–26
  डॉ0 शालिकरामत्रिपाठी
- हाड़ौती राज्य में धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परायें 27–36
  दौलत सिंह नरूका
- कौटिल्य द्वारा वर्णित दण्डनीति में गुप्तचरों का योगदान 37–39
  डॉ0 नीलिमा चौधरी' व कुसुम सरोज
- मुगल शासक एवं धार्मिक भू–दान प्रथा 40–47
  रश्मि
- हृदय रोगों का समाधान है योग 48–53
  डॉ0 रमेश कुमार
- विविधभाषाणाम् संस्कृतभाषया सह अन्तः सम्बन्धः 54–58
  महेन्द्रकुमारशर्मा:
- स्वामी करपात्री जी के विचारों में शब्दमीमांसा :
  "वेदार्थपारिजात के परिप्रेक्ष्य में" 59–62
  पूजा मिश्रा
- स्मृतियों में वर्णित अपराध की उत्पत्ति विषयक चिन्तन 63–65
  सुनील कुमार
- अमरकांत के उपन्यास साहित्य में राजनीतिक यथार्थ : वर्तमान प्रासंगिकता 66–69
  डॉ0 (श्रीमती) कल्पना लाल, डॉ0 (श्रीमती) कंचना सक्सेना व मधु मीना

अमरकांत के उपन्यास साहित्य में राजनीतिक यथार्थ : वर्तमान प्रासंगिकता

डॉ0 (श्रीमती) कल्पना लाल*, डॉ0 (श्रीमती) कंचना सक्सेना** व मधु मीना***

हिंदी साहित्य जगत में अमरकांत युगधर्मी और स्वतंत्र चेतनाशील लेखक के रूप में प्रख्यात है। उन्होंने प्रयागभूमि के गौरवभूत त्रिवेणी की आभा से विभूषित इलाहाबाद के शहर बलिया के भगमलपुर गाँव को 1 जुलाई 1925 को उपकृत किया था। सन् 1948 में आगरा के दैनिक पत्र 'सैनिक' के संपादकीय विभाग से प्रारम्भ इनकी रचनाधर्मिता 'अमृत' पत्रिका, 'दैनिक भारत' तथा 'कहानी' मासिक पत्रिका से होती हुई, अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में 'डिप्टी कलेक्टरी' कहानी के पुरस्कृत होने से सर्वप्रथम यशस्वित हुई।

अमरकांत की वैचारिक अवधारणा राजनीति से जुड़ाव रखती है, जिसका प्रभाव उनके लेखन में भी परिलक्षित होता है। उन्होंने जिस समय लेखन कार्य प्रारम्भ किया, वह एक संधियुग था। जहां एक ओर राष्ट्रीय भावना से जुड़ी विचारधाराओं पर साहित्य लिखा जा रहा था, तो दूसरी ओर समाजवादी विचारधारा का यथार्थवादी चित्रण साहित्य में हो रहा था। उनका उपन्यास साहित्य अपने जीवानुभवों तथा चारों ओर के परिवेश की सच्चाई का दर्पण है।

मानव के विचार–मंथन की सफल अभिव्यक्ति ज्ञान–विज्ञान और आंदोलन का परिणाम अथवा निष्कर्ष रूप ही उपन्यास साहित्य है। "साहित्य–लेखन और जीवन का यथार्थ वस्तुतः एक ही कोण की दो भुजाएं है। स्वस्थ मन का भावनात्मक रूप साहित्य है तो उसी की बुद्धिगत परिकल्पना यथार्थ है।"[1] साहित्य की विभिन्न विधाओं में यथार्थ की अभिव्यक्ति हेतु उपन्यास का सर्वोपरि स्थान है। वस्तुतः मानवीय संवेदना और रागात्मक चेतना को अभिव्यक्त करने की जो शक्ति और सामर्थ्य उपन्यास में है, वह अन्य किसी भी विधा अथवा साहित्यिक प्रभेद में दुर्लभ है। आ. रामचन्द्र शुक्ल उपन्यास की शक्ति के विषय में लिखते हैं– "समाज जो रूप पकड़ता है और उसके भिन्न–भिन्न वर्गों से जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती है, उपन्यास इसका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके विस्तार, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।"[2] सम्भवतः इसीलिए उपन्यास का सृजन युग–विशेष की अभिव्यक्ति हेतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उपन्यास–सृजन का क्रम युग–चेतना के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है। अतः आधुनिक काल में युग चेतना और वैज्ञानिक युग की अनुप्रेरणाओं ने उपन्यास सर्जना में अनेक नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। आज हम उपन्यास का जो भव्य और समृद्ध स्वरूप देखते हैं, वह निश्चयतः हिंदी उपन्यासकारों की रचनात्मक सामर्थ्य का परिचायक है।

वस्तुतः उपन्यासकार अमरकांत ने यथार्थ की परिपाटी को इतनी एकनिष्ठता से ओढ़ा और बिछाया है कि उनके उपन्यासों में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति सहज ही देखी जा सकती है। उन्होंने जीवन की छोटी–छोटी साँसों को संवेदनशील शब्दों में जिस तरह ढाला है, उसमें मनुष्य की सच्चाईयाँ किरचे–किरचे बिखरी और जुड़ी प्रतीत होती है। दरअसल अमरकांत ने अपने उपन्यासों में यथार्थवाद की सर्जना को राजनीतिक संदर्भ में उस तमीज से प्रस्तुत किया है, जो आम मानव की पीड़ा के भविष्य को इतिहास की खरल में कूटने–पीटने की तरह है न कि इतिहास को भविष्य के गुलदस्तों में सजाने की तरह।

*शोध–निर्देशिका, हिंदी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)
**सह शोध–निर्देशिका, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)
***शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

वेदाञ्जली, An International Peer Reviewed Refereed Research Journal
वर्ष-५, अंक-१०, भाग-३, जुलाई-दिसम्बर, २०१८ | ISSN : 2349-364X

अमरकांत ने राजनीति में सर्वप्रथम कदम तब रखे, जब स्वतंत्रता संग्राम महात्मा गांधी के नेतृत्व में चरम सीमा पर था। उनके द्वारा सृजित 'सूखापत्ता' व 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में राष्ट्रीय–मुक्ति आंदोलन का स्वर मुखरित हुआ है। अमरकांत स्वयं कहते है कि गांधी जी के 'करो या मरो' आह्वान पर वे अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़कर देश की आजादी की लड़ाई में कूद पड़े थे। उनके संस्मरण 'दोस्ती' में उन्होंने लिखा हैं – "अगस्त के महीने में 'भारत छोड़ो आंदोलन' शुरू हो गया। यह सन् 1942 ई. के दिन थे। बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव 8 अगस्त को पास हुआ और 9 अगस्त की सुबह सभी बड़े–बड़े नेता गिरतार कर लिए गए। मैंने पढ़ाई छोड़ दी और आंदोलन में भाग लेने बलिया चला गया।"3 अपने राजनीतिक दिनों के अनुभव उन्होंने 'सूखापत्ता' व 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में अभिव्यक्त किये हैं। 'सूखापत्ता' उपन्यास में उन्होंने कृष्ण कुमार के मुख से कहलवाया है कि– "उस समय की स्थिति में राजनीति एक ऐसा प्रशस्त पथ था, जिस पर चलने से मेरे मन के आदर्श को आकार मिलता। सन् 42 का आन्दोलन मेरी आँखों के सामने गुजरा था, और उस आन्दोलन को जिस तरह दबाया गया था, उससे मैं भली–भांति अवगत था। देश के क्रांतिकारियों के बलिदान के किस्सों को पढ़–सुनकर यौवन का गर्व एवं आत्मसम्मान सोए शेर की तरह जाग उठता।"[4] 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में बलिया क्षेत्र में घटित देशव्यापी आंदोलनों तथा क्रांतिकारी घटनाओं का यथार्थ वर्णन हुआ है। "गांधी जी ने यहां आने पर बलिया को 'दूसरा बारदोली' कहा था।"[5] इस प्रकार अमरकांत ने अपने उपन्यास साहित्य में आजादी पूर्व राष्ट्रीय–मुक्ति आंदोलन में भाग ले रहे युवकों की मानसिकता तथा स्थिति का यथार्थ अंकन किया है। देश आजाद होने के बाद स्वतंत्र भारत की बागडोर नेताओं के हाथ में आ चुकी थी। हालांकि तब कुछ नेताओं को छोड़ सभी नेता देश के हित में ही सोचा करते थे। जब देश आजाद हुआ तो गरीबी, भुखमरी, विभाजन की त्रासदी, अशिक्षा तथा कई प्रकार की समस्याओं से जुझ रहा था। अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता के बीज बोय थे, जिसके परिणाम स्वरूप देश को विभाजन का दंश भोगना पड़ा। जवाहर लाल नेहरू ने इस संदर्भ में कहा है – "एक साम्प्रदायिकता से दूसरी साम्प्रदायिकता समाप्त नहीं होती। प्रत्येक एक–दूसरे को बढ़ावा देती है और दोनों ही पनपती है।"[6]

वस्तुतः अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता को हथियार बनाकर हमारे देश के टुकड़े–टुकड़े करने की स्कीम निकाल ली थी। यह एक ऐसा हथियार था, जिसकी धार का असर आज भी देखा जा सकता है। देश विभाजन के बाद भी भारत व पाकिस्तान की आम आबादी अपने मन में जुनून और दहशत को लिए जिंदगी गुजारने को मजबूर है। आजादी के बाद लड़खड़ाते हुए देश को फिर से खड़ा करने में नेता तथा समाज सुधारकों का बड़ा हाथ रहा हैं, किंतु धीरे–धीरे नेताओं के नैतिक पतन तथा स्वाधीनता के कारण नेताओं में लोकहित की चाहत सियासत में बदल गई।

देश तरक्की के नाम पर नेता स्वयं की तरक्की में ज्यादा ध्यान देते नजर आए। देश की राजनीतिक स्थिति के संदर्भ में स्वर्गीय अटल बिहारी की मानना था – "हम एक अंधेरी गली में प्रविष्ट हो चुके हैं। जहां फिसलन है और उजाला दिखाई नहीं देता। यदि राजनीति भ्रष्ट, स्वार्थी और सत्ता लोलुप है तो कोई प्रणाली जन–कल्याण का साधन नहीं बन सकती। अब राजनीति में सद्‌गुण नहीं रह गये और यह एक विषैला हस्त–कौशल बन गया है, जिसमें ईमानदारी नहीं रही।"[7]

अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की राजनीति अपनाकर लगभग दो सौ साल तक भारत पर राज किया। आधुनिक राजनेता भी इसी सिद्धांत को अपनाकर शासन कर रहे हैं। वे समय–समय पर लोगों को जातियता तथा साम्प्रदायिकता के आधार पर उनकी धार्मिक भावनाओं से खिलवाड़ कर उनमें विद्वेष फैलाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। इस संबंध में डॉ. हेमेन्द्र कुमार पानेरी लिखते हैं – "स्वतंत्र भारत में ऐसे कतिपय राजनीतिक दलों का विकास हुआ है, जिनके परिणामस्वरूप भी समय–समय पर साम्प्रदायिकता भड़क रही है। .... ये दल किसी भी घटना को साम्प्रदायिकता के चक्षुओं से देखने का प्रयत्न करते हैं। राजनीति में साम्प्रदायिकता का प्रवेश बड़ा विंध्वसकारी होता है। भारत घोषित रूप से धर्म–निरपेक्ष राष्ट्र होते हुए भी धार्मिक साम्प्रदायिकता के विषैले वातावरण से पीड़ित है।"[8]

अमरकांत ने अपने उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' में जातीय भेदभाव समाप्त करने तथा साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने की अपील की है। उन्होंने प्रेमानंद नामक क्रांतिकारी के मुख से कहलवाया है – "हम अगर हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है तथा किसी भी धर्म के है, अपने–अपने धर्म का पालन करते हुए भी हिंदुस्तानी है। हम धार्मिक और जातीय भेद–भाव व छूआछूत को पाप समझते हैं। .... सभी लोग हमारे लिए भाई के समान है। हम सभी छोटी–छोटी बातों में पड़ेंगे, तो इस देश को एक कैसे कर सकते हैं, आजादी कैसे प्राप्त कर सकते हैं? .... मैं सबसे पबले भारतीय हूँ, हिंदुस्तानी हूँ, फिर कुछ और।"[9]

क्रांतिकारी प्रेमानंद की राजनीति, देशभक्ति व परहित से ओतप्रोत है, किंतु देशव्यापी राजनीति ने आज अपना विकृत रूप धारण कर लिया है। वर्तमान राजनीति गुंडागर्दी का अखाड़ा बन कर रह गई है। चुनाव जीतने के लिए विपक्षी दल एक–दूसरे पर छींटाकशी करते नजर आते हैं, यहां तक कि वे किसी भी हद तक जा सकते है। विरोधी पार्टी को डारा–धमकाना आज सामान्य बात हो गई है। चुनाव जीतने के लिए गुंडों का सहारा लिया जाता है, यहाँ तक कि उम्मीदवारों की हत्या तक करवा दी जाती है। जाहिर है कि इस कुकर्म में राजनेताओं और अपराधियों की सांठ–गाठ होती है। इस सन्दर्भ में श्यामचरण दुबे लिखते हैं – "सड़क की राजनीति ने दुःसाहसी युवा नेताओं को जन्म दिया, जिन्हें न आदर्शों की चिंता थी, न साधनों की। शब्द–शक्ति व बाहुबल से वे अपना काम चला रहे थे। इस दौर में राजनीतिक नेताओं, आपराधिक तत्त्वों और माफिया गिरोहों के बीच संवाद और सहयोग बढ़ा।"[10] अमरकांत के ग्रामसेविका उपन्यास के प्रधान जी चुनाव जीतने के लिए कईं प्रकार के षड्यंत्र रचते हैं, लेकिन सफल नहीं हो पाते। अंत में वे अपने विपक्षी हरचरण को गुंडो से पिटवा देते हैं।

अमरकांत के उपन्यासों में राजनीति के विविध आयाम देखे जा सकते हैं। जहां तक एक ओर इनके द्वारा सृजित 'सूखापत्ता' व 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में राष्ट्रीय–मुक्ति आंदोलन का बिगुल सुनाई देता है, वहीं दूसरी ओर 'बिदा की रात', 'आकाश–पक्षी' उपन्यास में देश–विभाजन तथा साम्प्रदायिकता की करूण स्वारानुभूति हुई है। उनके उपन्यासों में स्वातंष्यपूर्व हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रसंग, अंग्रेजों द्वारा साम्प्रदायिकता भड़काना तथा देश–विभाजन से होने वाली पीड़ा को महसूस किया जा सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनीति में भ्रष्टाचार एक कोड़ के समान है, जो एक महामारी के रूप में बढ़ता ही जा रहा है। स्वार्थान्धता व भ्रष्टाचार केवल राजनेताओं तक ही सीमित नहीं हैं। अब यह सरकारी कर्मचारियों में भी फैल चुका है। आज पैसे के बल पर ही नौकरियां खरीदी जाती है, प्रमोशन करवाये जाते हैं तथा पैसे से ही अटका हुआ काम द्रुतगति से सम्पन्न हो जाता है। अमरकांत ने भ्रष्टाचार की समस्या को 'लहरें', 'ग्रामसेविका' तथा 'बिदा की रात' उपन्यास के माध्यम से यथार्थ धरातल पर अंकित किया है।

वस्तुतः भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या को केवल हिन्दू–मुस्लिम धर्मों का विरोध मानना ठीक नहीं। साम्प्रदायिक प्रश्न का आधार राजनैतिक अधिक और धार्मिक कम है। आज हमें यह समझने की आवश्यकता है कि हमने राष्ट्रीय आंदोलनों के देशव्यापी सिद्धांतों पर दृढ़तापूर्वक लम्बे समय तक चलकर स्वाधीनता का जो सफर तय किया है, उसके स्वावलम्बन, स्वदेशी एकता के ये मूल्य हमसे छूटने न पाए क्योंकि हमारी स्वतंत्रता और उन्नति के लिए ये मूल्य अत्यन्त आवश्यक है। उपन्यासकार अमरकांत ने 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में एक स्थानीय नेता सदाशयव्रत के मुख से देश की एकता तथा उन्नति के विषय में कहलवाया है – "महात्मा गांधी भारत की आम जनता की स्वाधीनता और एकता के सबसे बड़े मजबूत स्तम्भ है। देश बँट गया, लोग बँट गए, लेकिन गांधी जी लोगों को दिलों को जोड़ने में लगे है। इस देश में और भारत तथा पाकिस्तान के बीच भी लोगों के दिलों को जोड़ना बहुत जरूरी है। हवा–पानी तो एक ही है, भाषा भी एक ही है, या कईं हैं, तो एक जैसी है, संगीत, साहित्य में सांस्कृतिक एकता के तत्त्व हैं। अलग देश बन भी गए हैं तो आपस में प्रेम से रहने से ही दोनों स्वाभिमान से जिन्दा रह सकेंगे, तरक्की कर सकेंगे।"[11]

अमरकांत ने अपने उपन्यासों के माध्यम से देशव्यापी राजनीति के विकृत होते स्वरूपों तथा उसके निराकरण के सुझाव भी प्रस्तुत किये हैं, जो वर्तमान राजनीति व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए खरे उतरते हैं। वर्तमान राजनीति से सबसे बड़ी समस्या भ्रष्टाचार, जातीयता, क्षेत्रवाद, इत्यादि ऐसे मुद्दे है, जिन्हें खत्म किये बिना स्वर्णिम राजनीतिक युग की शुरूआत नहीं हो सकती। इनको खत्म करने की जिम्मेदारी केवल कुछ चुनिदां राजनेताओं की ही नहीं है। बल्कि सभी भारत वासियों की यह नैतिक जिम्मेदारी भी है।

सन्दर्भ :

1. यथार्थबोध और नयी कविता, डॉ. कंचना सक्सेना, पृ. 49, प्रथम संस्करण – 2004, अनुभूति प्रकाशन
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 536
3. दोस्ती, अमरकांत, पृ. 109, प्रथम संस्करण 2013, प्रकाशक अमर कृतित्त्व, इलाहाबाद
4. सूखापत्ता, अमरकांत, पृ. 48, नवीन संस्करण 2015, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली
5. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ.11, दूसरा संस्करण 2014, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली
6. आधुनिक भारत का इतिहास : एक जीवन मूल्यांकन, यशपाल, पृ. 420, 33 वां संस्करण, एस चंद एण्ड कम्पनी लि. रामनगर दिल्ली।
7. दैनिक जागरण, अटल बिहारी वाजपेयी
8. स्वातंष्योत्तर हिंदी उपन्यासः मूल्य संक्रमण, हेमेन्द्र कुमार पानेरी, पृ. 259–260
9. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 499, दूसरा संस्करण 2014, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली
10. समय और संस्कृति, श्यामचरण दुबे, पृ. 162–163
11. इन्हीं हथियारों से, अमरकांत, पृ. 536, दूसरा संस्करण 2014 राजकमल प्रकाश प्रा. लि. नई दिल्ली

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT SOCIOLOGY & HUMANITIES

ISSN 2277 – 9809 (online)
ISSN 2348 - 9359 (Print)

A REFEREED JOURNAL OF

Explore Innovate Educate

Shri Param Hans Education & Research Foundation Trust

www.IRJMSH.com
www.SPHERT.org

Published by iSaRa

International Research Journal of Management Sociology & Humanities

Vol 9 ISSUE 4 APRIL 2018

Linking Learning organizations and financial performance in the BPO industry: A theoretical perspective 3

Jaya Nair 3

Dr. Rajesh N. Pahurkar 3

BUSIENSS DIPLOMACY- An emerging knowledge area 17

Authors: *Dr. Savitha G R &*Dr. Anuradha Mahesh 17

Quantifying the Returns on Equity(ROE): Using Dupont Method ... 22

Mrs. P. Nithya Devi 22

Dr.C.Vadivel, ... 22

GEN Y CUSTOMER RELATIONSHIP PRIMACY THROUGH DIGITAL ENGAGEMENT BY BANKS 27

Dr. Uthira. D 27

AN EMPIRICAL STUDY ON KIRKPATRICK MODEL OF EVALUATION WITH RESPECT TO FINANCIAL INCLUSION TRAINING IMPARTED BY PRIVATE BANKS 50

Dr.V.Nagajothi 50

M.L. Mayalekshmi 50

Single Image Haze Removal Using an Effective Algorithm 60

YashashriSonar[1], Prof.(Dr.)K.K.Warhade[2] 60

Employment Branding Leverage Organizational Development 67

Arisha Ali 67

Online Marketing- Issues and Challenges 72

Dr. D. Rabindranath Solomon 72

दलित अधिकारों का व्याख्यात्मक विश्लेषण 80

डॉ. विजय कुमार 80

Impact of Early Childhood Education on Personality Development . 89

Dr Manjeet Kaur Gill 89

Analysis of Marketing Environment 95

Pardeep 95

Cyber Child Pornography: Legal Status and Efforts for Prevention 102

Manish Kumar 102

भारतीय उच्चशिक्षा एवं शिक्षित बेरोजगारी एक विवेचनात्मक अध्ययन 107

डॉ. विजय कुमार 107

अमरकांत के उपन्यास साहित्य में सामाजिक यथार्थ 113

मधु मीना डॉ. कल्पना लाल 113

A detailed study of the evaluation of Social Media and It's impact on National Security 117

Dimple Chaudhary 117

Travel Writing through the Ages: An Overview 137

Ms. Savita Verdia 137

अमरकांत के उपन्यास साहित्य में सामाजिक यथार्थ

शोधार्थी

मधु मीना
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
मो.नं. 9785975768

शोध–निर्देशिका

डॉ. कल्पना लाल
हिंदी विभाग
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

पूर्वी उत्तरप्रदेश का शहर बलिया। इस जिले ने हिंदी समाज को परशुराम चतुर्वेदी और हजारी प्रसाद जैसी विभूतियां दी। यहीं 1857 के विद्रोह के नायक मंगल पाण्डे का जन्म हुआ। 1942 के आंदोलन में चितू पाण्डे के नेतृत्व में बलिया की क्रांतिकारी भूमिका रही। ऐसे ही महान शहर में अमरकांत का जन्म बलिया के भगमलपुर गांव में सीताराम वर्मा और अनंती देवी के घर 1 जुलाई 1925 को हुआ। "पत्रकारिता से अपने कैरियर की शुरूआत करने वाले अमरकांत की लेखनीय संवेदना स्वाधीनता संग्राम के अनुभव से प्रौढ़ हुई थी। आगरा से प्रकाशित 'सैनिक' में पत्रकारिता के दौरान ही उनकी भेट रामविलास शर्मा से हुई। प्रलेस की गतिविधियों ने उनके लेखकीय सरोकारों को सुस्पष्ट दिशा और तीक्ष्णता प्रदान की। प्रलेस की गोष्ठी में ही उन्होंने अपनी पहली रचना इंटरव्यू सुनाई।" उनकी संवेदना 'नई कहानी' आंदोलन से जुड़ी हुई है। उनकी कहानियाँ और उपन्यास मध्यववर्गीय जीवन के संघर्षों और पीड़ा का प्रामाणिक आख्यान है। "अमरकांत की रचनाशीलता की उत्तरजीविका इसी तथ्य से स्वयंसिद्ध है कि उनका महत्त्व क्रमशः प्रमाणित और स्थापित हुआ। इसकी परिणति अन्ततः उनको 'इन्हीं हथियारों से' के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्राप्ति के रूप में हुई।"[1]

"पिछड़े और साधनहीन लोगों की उनकी परिस्थितियाँ किस तरह गढ़ती हैं, इसका यथार्थवादी चित्रण अमरकांत के साहित्य में मिलता है। उनके साहित्य में सामाजिक जीवन की गतिशीलता एवं यथार्थवादी प्रेक्षण मौजूद है, जो आदर्शों से अनुशासित भी है। उनका मानना था कि आदर्श यथार्थ के बीच में से आना चाहिए न कि कोरी कल्पनात्मक भावुकता से। प्रेमचंद के यथार्थोन्मुख आदर्शवाद की ओर वे खिंचने लगे थे। उनके साहित्य में यथार्थ और आदर्श के संबंध में यही मत प्रकाशित होता है कि यथार्थ से संघर्ष करते हुए ही आदर्श का निर्माण संभव है।"[2]

साहित्य सृजन उनके लिए मनोरंजन का कर्म नहीं बल्कि एक दायित्त्वबोध और संसंक्ति का मामला रहा है। उन्हें साहित्य क्षेत्र में ज्ञानपीठ साहित्य अकादमी, सोवियत लैण्ड नेहरू आदि कईं पुरस्कार प्राप्त हुए। उनकी प्रमुख कृतियां है – 'जिंदगी और जोंक', 'मौत का नगर', 'कुहासा', 'तूफान', 'कलाप्रेमी', जैसे कहानी संग्रह तथा 'सूखापत्ता', 'आकाश पक्षी', 'ग्राम सेविका', 'सुखजीवी', 'इन्हीं हथियारों से', 'सुन्नर पाण्डे की पतोह' तथा 'बीच की दीवार' जैसे उपन्यासों में यथार्थ के प्रति जागरूकता तथा ऐतिहासिकता एवं प्रगतिशील जीवनदृष्टि व्यक्त की है।

अमरकांत हिंदी कथा साहित्य के ऐसे विशिष्ट रचनाकार हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी से सामाजिक अस्मिता के व्यष्टि और समष्टि तत्त्वों को समायोजित करते हुए सामाजिक यथार्थ को रेखांकित किया है। अमरकांत को प्रगतिशील रचनाकार की द्वन्द्वात्मक दृष्टि प्राप्त थी। अतः अमरकांत ने प्रेमचंद की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए साधारण अंदाज में रचनाएं लिखीं। उनके कथासाहित्य में ग्रामीण और शहरी जीवन की विंडबनापूर्ण स्थिति तथा सामाजिक जन–जीवन की संवेदनात्मक गहराई देखी जा सकती है।

वस्तुतः "समाज' शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया जाता है। यहाँ व्यक्ति के बीच पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर निर्मित व्यवस्था को समाज कहा गया है। जब असंख्य सामाजिक सम्बन्धों का जाल अनेक रीतियों एवं सामाजिक मूल्यों द्वारा व्यवस्था में बदल जाता है तो उसे समाज कहते है।"[3] चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, साहित्यकार भी समाज का ही एक अंश है और समाज में रहते हुए वह अनेक प्रकार के घात–प्रतिघातों को झेलता हुआ सामाजिक परिदृश्य प्रस्तुत करता है। समाज में घट रही घटनाओं व समस्याओं का यथार्थ चित्रण करना ही साहित्यकार का दायित्त्व है।

वस्तुतः यथार्थ जीवन की सच्ची अनुभूति है। समाज में व्याप्त बुराईयों, रूढ़ियों, कुरूतियों इत्यादि का यथार्थ रूप में चित्रण करना ही सामाजिक यथार्थ का परिचायक है। सामाजिक यथार्थ की मान्यता है कि – "लेखक समाज विकास की द्वन्द्वात्मक भूमिका को अपनाकर ही यथार्थ चित्रण की ओर अग्रसर हो।"[4]

"सामाजिक यथार्थवाद उस चित्रण को कहते हैं, जिसमें समाज की यथार्थ अवस्था को अभिव्यक्ति मिली हो। सामाजिक वास्तविकता व्यक्ति ओर समाज के अनेक विध संघर्ष से निर्मित होती है। यथार्थवादी साहित्यकार इन्हीं संघर्षों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। वह अपने समय की परिस्थितियों के आधार पर आर्थिक, नैतिक और राष्ट्रीय अवस्थाओं का मूल्यांकन करता हुआ व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध निश्चित करता हे। सामाजिक यथार्थवादी समाज की वास्तविकता का ऐसा चित्र उपस्थित करता है कि पाठक समाज में होने वाले विभिन्न व्यापारों के औचित्यानौचित्य को सरलतापूर्वक समझ सके और एक आदर्श समाज–व्यवस्था की ओर प्रवृत्त हो सके। सामाजिक यथार्थवाद को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद भी कहा गया है।"[5]

समाज की यथार्थपरक अनुभूति वैसे तो गद्य की सभी विधाओं में देखी जा सकती है, किंतु उपन्यास इसकी अभिव्यक्ति को व्यापक फलक प्रस्तुत करता है। कहा भी गया है कि – "उपन्यास गद्य की एक विशिष्ट यथार्थ दृष्टि को प्रस्तुत करता है, जो उसी की पहुँच में है, काव्य, नाटक, चित्रकला अथवा संगीत द्वारा संभव नहीं।"

"उपन्यास में वर्णित समाज भी मानव समाज होता है, सामान्य मानव की तरह ही उसके पात्र भी उस समाज में अंतः क्रियायें करते हैं, संबंधों की स्थापना करते हैं, विभिन्न घात–प्रतिघातों संघर्षों का मुकाबला करते हैं। उपन्यास का सृष्टा सामाजिक प्राणी होता है और समाज से ही अनुभूतियां ग्रहण करता है। उपन्यास के अस्तित्त्व का मूल आधार जीवन का पुर्नसर्जन है। इस प्रकार उपन्यास मानव जीवन और सामाजिक संदर्भो की भावाभिव्यक्ति भी करता है।"[7]

अमरकांत का उपन्यास साहित्य आज के सामाजिक परिदृश्य की विस्तृत झांकी प्रस्तुत करता है। निस्संदेह उनके उपन्यास साहित्य के भीतर से जीवन की यथार्थ धड़कनों को सुना और महसूस किया जा सकता है। उनके साहित्य में रोजी–रोटी तथा प्रेम–कलह की समस्याओं से लेकर सामाजिक बुराईयों की समस्यओं का भी यथार्थ अंकन हुआ है। युगबोध व युग सत्य को अमरकांत ने सदैव प्राथमिकता दी है। समाज के हर तबके के व्यक्ति की आस्थाएं–शंकाएं, आशाएं–निराशाएं आदि सब अपने यथार्थ रूप में उभरकर सामने आते है। उनकी रचनाएं मानव–मूल्यों के संरक्षण एवं सामाजिक नव–निर्माण के उत्कृष्ट आकांक्षा की रचनाएं है। उनका उपन्यास साहित्य कल्पना के वायवी वातावरण की संरचना नहीं करता अपितु व्यावहारिक व वास्तविक जिंदगी से उनका सीधा संबंध है। मध्यमवर्गीय तनावों अन्तर्विरोधों एवं संक्रमण की स्थितियों को संवेदना की गहराई से अनुभव कर उन्होंने अपने साहित्य का सृजन यथार्थ के व्यापक स्तर पर किया है।

उन्होंने उपन्यास साहित्य में सामाजिक बुराईयों यथा – छूआ–छूत, जाति–पाति, रूढ़ियों, संयुक्त परिवारों का विघटन, रिश्ते–नातों का परिवर्तित रूप, प्रेम–विवाह, अनमेल–विवाह, टूटते दाम्पत्य संबंधों, अनैतिक संबंधों, बाल–विवाह इत्यादि पर दृष्टिपात किया है। अमरकांत के उपन्यास 'कंटीली राह के फूल', 'बीच की दीवार', 'काले–उजले दिन' इत्यादि में इन प्रमुख समस्याओं को उजागर किया है। समाज के धुंधले पक्ष के

साथ–साथ समाज के उजले पक्ष को अमरकांत ने अपने साहित्य में स्थान दिया है। आज की नारी समाज में अपनी दिशाओं को खोजती हुई दिखाई देती है। वह अपने प्रति हो रहे शोषण से मुकाबला करती है तथा समाज में अपनी पहचान स्थापित करती है। उनके उपन्यांस 'ग्राम सेविका' की 'दमयन्ती', 'सुन्नर पाण्डे की पतोह' की 'राजलक्ष्मी' तथा 'लहरे' उपन्यास की 'बच्चीदेवी' इसका ज्वलंत उदाहरण है। अमरकांत ने जहाँ एक ओर 'आकाशपक्षी' उपन्यास में सामन्ती लोगों की विकृत मनोदशा का यथार्थ चित्रण किया है तो दूसरी ओर 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में साधारण तबके के लोगों द्वारा आजादी की लड़ाई में कूद पड़ने तथा अपनी–अपनी क्षमतानुसार सहयोग करने का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है। निःसन्देह अमरकांत के उपन्यास समाज की यथार्थ झांकी प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं।

संदर्भ –

1. हिंदी के गोर्की थे अमरकांत (आलेख) से, डॉ. ऋषिकेश राय, पृ.सं. 117–118, हिंन्दी पत्रिका, छपते–छपते दीपावली विशेषांक–2014
2. हिंदी के गोर्की थे अमरकांत (आलेख) से, डॉ. ऋषिकेश राय, पृ.सं. 117–118, हिंन्दी पत्रिका, छपते–छपते दीपावली विशेषांक–2014
3. अमृत लाल नागर की कथा दृष्टि के समाज शास्त्रीय आयाम, डॉ. सरोज सिंह, पृ.सं.–2, राका प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2007, इलाहाबाद–2
4. यथार्थवाद, शिव कुमार मिश्र, पृ.सं. – 67
5. हिंदी उपन्यासों में कथा–शिल्प का विकास, डॉ. प्रताप नारायण टंडन, पृ.सं. 55, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, पृ.सं. 1956
6. अमृत लाल नागर की कथा दृष्टि के समाजशास्त्रीय आयाम, डॉ. सरोज सिंह, पृ.सं. 12–13
7. यथार्थबोध और नयी कविता, डॉ. कंचना सक्सेना, पृ. 81–82